# वक्तव्य।

कथानुयोग के द्वारा लोकमें ज्ञान, उपदेश और शिक्षा का प्रचार करने की बहुत पुरानी परिपाटी है। इसी लिये अपने जैनाचार्योंने कथानुयोगकी बहुतेरी पुस्तकें रच डाली हैं, जिनसे मनुष्य-समाजको सदा आशातीत लाभ पहुँचता रहा है। इस तरह के ग्रन्थोंमें सबसे बढ़कर खूबी यही है, कि इनसे विद्वान्से लेकर मूर्ख तक सभी समान भावसे लाभ उठा सकते हैं। वास्तवमें प्राचीन पुरुषोंके अद्भुत, अनुकरणीय और आदर्श चरित्रोंका पाठ करनेसे मनुष्य को विशेष लाभ होता ही है। दूसरे, कथा-कहानी सुननेमें सबका मनभी—खूब लगता है।

कोई कठिन विषयका ग्रन्थ देखतेही साधारण मनुष्योंका जी ऊब उठता है और वे कुछ ही अंश पढ़ या सुनकर भागनेकी राह देखने लगते हैं; परन्तु कथा-कहानी सुनने या पढनेमें इतना जी लगता है, कि आदमी खाना-पीना भूलकर उसे पढ़ता-सुनता है। मनुष्य स्वभावकी इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर अपने आचार्योंने इस तरहके अनेक उप-देश प्रद ग्रन्थोंकी रचना की है।

वर्त्तमान ग्रन्थभी उसी ढंगका है। इस ग्रन्थमें छ प्रस्ताव दीये गये हैं। पहले प्रस्तावमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीके पहले, दूसरे, और तीसरे भवका वर्ण आता है। दूसरे प्रस्तावमें चौथे और पाँचवें भवका वर्णन आता है। तीसरे प्रस्ताव में छट्ठे और सातवें भवका वर्णन आता है। चौथे प्रस्तावमें आठवें और नवें भवका वर्णन आता है।

पाँचवे' प्रस्तावमें दशवे' और ग्यारहवे' भवका वर्णन आता है। और छट्ठे प्रस्तावमें बारहवे' भवका वर्णन आता है। इस तरह भगवान् के बारह भवोंका सुविस्तृत वर्णन बडीही उत्तम रीतिसे दिया गया है।

इस चरित्रके आदिके पॉच-प्रस्तावोंमे, मंगल-कलशकी कथा, मत्स्योदरकी, मित्रानन्द-अमरदत्तकी, पुण्यसारकी, और वत्सराजकी ये पॉचों कथाये' बड़ीही मनोरञ्जक एव शिक्षा प्रद हैं। और इनका विस्तार भी लंबा आता है। इसके अतिरिक्त और भी छोटी-मोटी रोचक कथाये' आती हैं। छट्ठे प्रस्तावमें तो कथाओंका खज़ाना भर दिया गया है। छोटी-मोटी बहुतसी कथायें आती हैं। प्रत्येक कथा उपदेशसे भरी हुई है, पाठकोंसे हम अनुरोध करते हैं, कि उन्हें ध्यान देकर अवश्य पढ़ें।

आबाल वृद्ध वनिता—सबके लिये इस पुस्तकमें अमूल्य उपदेश भरे हुए हैं। इसका पाठ करने, इसके उपदेशोंको हृदयङ्गम करने और इसके आदर्श चरित्रोंका अनुसरण करनेसे मनुष्यका जीवन उन्नत, पवित्र और अनुकरणीय हो आ सकता है। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी के लिये यह ग्रन्थ अतीव उपदेशजनक है। इसी लिये विपुल व्यय कर इतनो सुन्दरताके साथ हमने इसे प्रकाशित किया है।

इस ग्रन्थके पहले हमारी छ पुस्तकें आप सज्जनोंके समक्ष भेंट हो चुकी हैं। आज यह सातवी पुस्तक भी आपके कर-कमलोंमें समर्पण की जाती है। आशा है, पहलेकी पुस्तकोंके अनुसार इसे भी सप्रेम अपना कर हमारे उत्साहको परिवर्द्धन करेंगे। इस ग्रन्थके किसी किसी चित्रों के भावमें दोष आ गया है, एवं शीघ्रताके कारण छपने में भो अनेक स्थल पर अशुद्धियाँ रह गई हैं, उसके लिये पाठकों से हमारी क्षमा याचना है।

ता० २७-६-१६२५
२०१ हरिसन, रोड
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

# समर्पण

जैन धर्मानुरागी, श्राद्धगुण-सम्पन्न, परोपकार-परायण,
कोठारी-कुल-भूषण, दानवीर, श्रीमान् माननीय

## बाबू भैरुदानजी कोठारी

माननीय महोदय !

आपने आज पर्यन्त जाती एव समाजके उत्कर्प के लिये जो अतुलनीय उत्साह, परिश्रम और धनदान किया है, अनेकानेक अनाथ-निःस्साहाय पुरुषोंको जिस प्रकार उदार होकर मुक्त हस्त से सहायता पहुँचायी है, शिक्षा प्रचार के लिये आपने जो प्रशसनीय उद्योग किये हैं, आपके उन्हीं सब-गुणोंका स्मरण कर मैं यह शान्तिनाथ-चरित्र नामक ग्रन्थ आपके करकमलों में सादर समर्पित करता हूँ। कृपाकर स्वीकार करेंगे।

आपका
काशीनाथ जैन
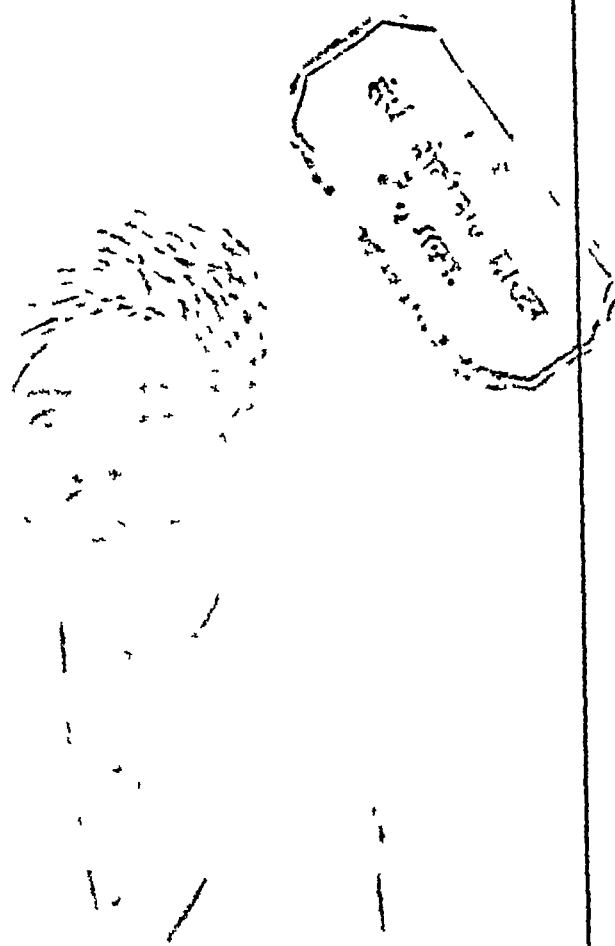
बीकानेर निवासी श्रीमान माननीय
बाबू भैरूदानजी हाकिम कोठारी
हाल कलकत्ता।

परम श्रद्धेय श्रीमान् माननीय

# बाबू भैरूँदानजी

## हाकिम कोठारी

का

## संक्षिप्त जीवन-परिचय

किसी विद्वान्ने ठीकही कहा है, कि:—

*परिवर्तिनि संसारे, मृतः कोवा न जायते ?*
*स जातो येन जातेन, याति जातिः समुन्नतिम् ॥*

इस संसारमें, जिसके रंग नित्य पलटते रहते हैं, जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुल बुलेकेही समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेलसा है। उसमें उसीका जन्म ग्रहण करना ठीक है, जिसके द्वारा अपनी जातिकी कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसारमें रोजही हज़ारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन ध्यान देता है। और इन जातीके उपकार करने वालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके परदेपर सदा विराजमान रहता है। उनके यश-रूपी शरीर को नतो बुढ़ापा आता है, न मृत्यु ग्रास करती है। वे अपनी कीर्त्ति के द्वारा अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर कीर्ति सत्पुरुषोंका नाम सभी लोग बड़ी श्रद्धाके साथ लिया करते हैं।

ऐसेही विरले सज्जनोंमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी ओसवाल-कुल-भूषण श्रीमान् वावू भैंरोंदानजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप वीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १९३८ वैशाख कृष्णा २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वहीं पर कपड़े आदिका कार-वार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रावतमलजी था।

आपकी अवस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकवास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताश्री पर ही आ पड़ा। आपके एक सुशीला वहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम जुहार कूँवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके वाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत १९५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रूपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके वाद आपने विलायती कपड़ेका व्यापार करना शुरू किया; पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके वाद आपने सन् १९६४ की सालसे स्वदेशी कपड़ेकी दलालीका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक वड़े नामी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस वीचमें संवत् १९५६ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मपत्नी वड़ीही सुशीला, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, पतिव्रता और शान्तस्वभावा हैं। धार्मिक शिक्षाका ज्ञान भी यथेष्ट प्राप्त किया है और अपना प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक क्रियामें ही व्यतीत करती हैं। उनके धर्म-कार्यमें आप सदैव साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी वात है, आपकी धर्मपत्नीने नवपद ओलीका वड़ा तप किया था। उसकी समाप्तीके उपलक्षमें आपने एक वड़ा भारी उद्यापन (उजमणा) किया, जिसमें अतुल धन-व्यय कर आप अपूर्व पुण्यके भागी वने।

यद्यपि जैन समाजमें अनेक सज्जन उद्यापन करते रहते हैं। उसके लिये यथेष्ट धनभी खर्च करते हैं; पर उस में उपयोग न रखनेके कारण बहुधा त्रुटी रही जाती है। उद्यापन करनेका क्या उद्देश है? किस तरह विधि-पूर्वक करना चाहिये? इससे क्या लाभ होता है? इत्यादि बातोंको पहले श्रद्धा पूर्वक अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जो सज्जन इन बातोंको न समझकर उद्यापन करते हैं, वे खूब ख़र्च करके भी उसका पूरी तरह लाभ नहीं ले सकते। अतएव उद्यापन करने वाले सज्जनोंको उपर्युक्त बातों की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

श्रीमान्‌ने उपर्युक्त बातोंके लिए पहलेसेही विद्वानोंसे परामर्श कर लिया था, अतएव उद्यापनके वास्तविक रहस्यको आप अच्छी तरह समझ गये थे। आपने उद्यापनके विधि-विधानका काम—श्रीमत् परम पूजनीय जंगम युगप्रधान व्याख्यान-वाचस्पती, भट्टारक श्री१००८ श्रीजिनचारित्र सूरीश्वरजीके आधिपत्यमें रखा था। इसलिये विधि-विधानके काममें किसी तरहकी त्रुटी रह जानेकी आशंका नहीं थीं। आप आचार्य महाराजके पूर्ण भक्त हैं, आचार्य महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य रखते हैं। अतएव आचार्य माहाराज जिस तरह विधिके लिये विधान करवाते गये उसी तरह आप उत्साह पूर्वक करते गये।

उद्यापनका काम शास्त्रानुसार विधि-विधानके साथ करना और इस कार्यमें किसी तरहकी त्रुटी न रह जाये, इसलिये आपने एक सालके पहलेसे ही उद्योग करना आरंभ कर दिया था। उद्यापनके काममें लाये जाने वाली चीज़े आप धीरे-धीरे बनवाते गये। आपने अपने शौक़से एक चाँदी-सोनेका सिंहासन बनवाया उसके लिये धन खर्च करनेमें ज़राभी कमी न रखी। अन्दाजन उसके लिये आपने सात आठ हज़ार रुपया ख़र्च कर दिया। सिंहासन भी एक अतीव रमणीय आदर्श चीज़ बनी। इसके सिवा और भी अनेक चीज़ें बनवाईं।

उद्यापनका मण्डप बीकानेरके बड़े उपाश्रयमें सजाया गया था। मण्डपकी सजावट अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय थी। जो सज्जन सजावटकी ओर निहारता वही आश्चर्य-चकित हो जाता था। उसकी मनोभावना अत्यन्त निर्मल बन जाती थी, उसके विचार में विकास हो जाता था। जो सज्जन एक बार दर्शन कर लेता, वह प्रतिदिन आये विना नहीं रहता था। इस तरहकी मण्डप-रचना बीकानेरमें शायद ही किसी समय हुई होगी। हम ऊपर लिख आये हैं कि, श्रीमान्ने अपने न्यायोपार्जित धनको ख़र्चकर नाना प्रकारकी सोने-चाँदीकी उत्तमोत्तम चीज़ें बनवायीं, वे सब चीजें इस परम रमणीय शोभायमान मण्डपमें स्थापित की गईं।

अट्ठाई महोत्सव आरंभ होनेके पहले आपने कलकत्ता एवं अनेक शहरोंके सज्जनोंको आमन्त्रण भेजा था। अतएव सब जगहके बड़े-बड़े धनी लोग इस सुअवसर पर पधारने लगे। उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये आपने बड़ाही सुप्रबन्ध किया था। जितने सज्जन आये हुए थे उन सबकी सुश्रुषाकेलिये आप हरसमय उपस्थित रहा करते थे। "सेवा करना परम धर्म है" इस मन्त्रको आपने बालावस्थासेही सीख लिया था। आपने इस बातका भी ज्ञान कर लिया था कि, फिर ऐसा सु-अवसर स्वामी भाइयोंकी सेवा का कब मिलेगा? इसलिये आप अत्यन्त हर्षान्वित होकर तन मन और धनसे स्वामी भाइयोंकी सेवा करते थे। आपके इस असाधारण आतिथ्य-सत्कार को देखकर आये हुए सर्व सज्जनोंको अपार आनन्द होता था।

प्रिय पाठको! आतिथ्य-सत्कार महज़ मामूली काम नहीं। इस कामके करनेवाले विरलेही सज्जन होते हैं। लाखों करोड़ों रुपैया पासमें होने पर भी इस कामको करनेमे असमर्थ रहते हैं शास्त्रकारोंनें भी सर्व गुणोंमें इसी गुणको प्रधान बतलाया है। कहा भी है, कि "सर्वस्याभ्यागतो गुरु:" अर्थात् अतिथी-महिमान सब किसीको पूजनीय होता है। अतएव सौ काम छोड़कर भी अतिथीका

आदर—सत्कार करना चाहिये। जो मनुष्य सेवा-गुण जानकर उसका पूर्णरूपसे पालन करता है, वही मनुष्य इस संसारमें मनुष्य रूपेण समझा जाता है, जिसने सेवा-धर्म नहीं सीखा है वह मनुष्य नहीं किन्तु पशु है। हम पहले ही कह आये हैं, कि श्रीमान्ने बालावस्थासे ही इस मर्मकी शिक्षा प्राप्त करली थी। अतएव आप सुचारूरूपसे सेवा-भावका आशय जानते थे। इस गुणके वास्तविक तत्वको जानने वाले अपनी जैन समाजमें आप जैसे पुरुष विरले ही हैं।

अट्ठाई-महोत्सव श्रीचिंतामणजीके मन्दिरमें वडे समारोहके साथ आरंभ किया गया। क्रमशः आठोंदिन विविध प्रकार की पूजायें पढ़ाई गई। इस अवसरपर ओसियांसे आई हुई जैन संगीत मण्डलीने वडोही अच्छी प्रभु-भक्ति की। यह मण्डली प्रतिदिन पूजा एवं जागरणके समय उपस्थित रहा करती थी, और बड़े उत्साह पूर्वक नृत्य-गान स्तुति करती रहती थी, श्रीमानने जिस तरह अत्यन्त प्रेमसे इस मण्डलीको आमंत्रित किया था। उसी तरह मण्डलीने भी पूरे प्रेमसे प्रभुभक्ति करके समाजके सज्जनोंको अत्यन्त प्रसन्न किया। इस तरह आनन्द-मङ्गल पूर्वक आठों दिन वडी शान्तिसे व्यतीत हुये॥

इसके बाद जल-यात्रा एवं स्वामी-वत्सल करनेके लिये बड़ी भारी तैयारी की गई। चिंतामणिजीके मन्दिरसे सवारी निकलना आरम्भ हुई। सवारीकी सजावट अत्यन्त शोभायमान थी, मार्गके चारों ओर सवारीका ही दृश्य दिखता था। सवारीकी सजावट और मण्डलियों के नृत्य-गान स्तुति आदिसे सारे शहरमें अपूर्व आनन्द—मङ्गल छाया हुआ था। मार्गके चारों ओर बडे-बडे विशाल भवन—मकानोंके नीचे-ऊपर नर-नारियोंका अपूर्व झुंड जमा हुआ था। सब कोई सवारीकी ओर चातककी तरह टक-टकी लगाये हुए देख रहे थे। इस समय सब किसीके मुखसे यही शब्द सुनाई देता था। "आजतक अपने बीका-नेरमें इस तरहकी सजावटसे सुशोभित सवारी कभी नहीं निकली थी।" सब कोई सवारी की ओर बार-बार देखकर अत्यन्त प्रसन्न

होते थे। जिस सवारीके सजावटमें हजारों रुपैया ख़र्च किया गया हो वह सवारी भला कैसे दर्शनीय न होगी ?

इसके अतिरिक्त इस सुअवसर पर तीनों समुदायके सज्जनोंने सम्मि-लित हो कर बड़ेही आनन्द मंगल पूर्वक जल यात्रा एवं स्वामीवत्सल का उत्सव मनाया।

आपने संसारमें अच्छा धन, मान और वैभव प्राप्त किया। बचपनसे ही आपके हृदयमें धार्मिक भावना, लोकोपकारी प्रवृत्ति और जाति हितकी लालसा बनी रहती थी। अवस्थाके साथ-ही-साथ आपके ये गुणभी बढ़ते गये। धार्मिकता, सच्चरित्रता, उदारता, और जाती हितैषिता ही आपके जीवनके प्रधान गुण हैं। इन्हीं गुणोंने आपके जीवनको अनुकरणीय बना दिया है।

आपके इन अलौकिक गुणोंकी ओर आकर्शित होकर व्यापारी समाज एवं जातीय सज्जन आपका बड़ाही आदर-सम्मान करते हैं। आप न्यायमार्गके पूर्ण पक्षपाती हैं। आपकी व्यवहार दक्षता एवं न्याय प्रियता अतीव प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। आप स्पष्टवक्ता एवं मिष्टभाषी हैं। अतएव जनतामें आपका बड़ाभारी प्रभाव पड़ता है।

आपका धर्म-प्रेम, जाती-प्रेम, समाज-प्रेम, और देश प्रेम परम प्रशंसनीय है। आपका सारा वैभव आपके अपने बाहुबलका उपार्जन किया हुआ है, इसलिये आप स्वनाम धन्य पुरुष हैं। आपके अध्य-वसाय, साहस, धैर्य आदि गुण सबके अदर्श होने योग्य हैं। आपकी दान शीलताकी जहाँतक प्रशंसा की जाये कम है, आप योंतो सदैव गुप्तदान करते रहते हैं, और अनेक अनाथों, निराधार और निःसहा-योंको सहायता पहुँचाते ही रहते हैं। तथापि आपके दान और औदार्यके बहुतसे ऐसे उज्वल उदाहरण भी हैं, जो आपकी कीर्ति-को चिरस्थाई बनाये रहेंगे।

आपने निम्न लिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है, और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं। बीकानेर जैन

पाठशालाको ५१०० रुपैया, कलकत्ता जैन श्वेताम्बर-मित्र-मण्डल-विद्यालयको ३१०० रुपैया। पूना भण्डारकर पुस्तकालयको १००० रुपैया और ओसियां जैन बोर्डिङ्ग-विद्यालयको भी आप यथासमय सहायता दिया करते हैं। इस तरह आप अपने परिश्रमोपार्जित धनका सदा सदुपयोग भी खूब किया करते हैं।

आपने अभी कलकत्तामें दादाजीके मन्दिरमें मार्बल पत्थरकी रमणीय फरश भी बनवाई है जिसमें अन्दाजन डेढ़ हजार रुपैया लगाया है। इसके सिवा ज्ञान-प्रचार के काममें भी आप यथा समय धन व्यय कर पुस्तकें छपवाकर वित्तिर्ण किया करते हैं।

प्रायः देखा जाता है, कि लोग धन और वैभव पा कर अभिमानमें मत्त हो जाते हैं, अपने सामने दुसरेको तुच्छ समझते हैं, परन्तु आपमें अभिमान तो नाम मात्रको भी नहीं है। आप बड़े ही विनयी हैं, और धर्मका भाव आपके हृदयमें सोलह आने भरा रहता है। आजतक आपने अनेक धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है, और शिक्षा-प्रचारके लियेभी मुक्त हस्तसे दान करते रहते हैं। आपकी इस दान शीलतासे बहुतसे दीन दुःखियोंका उपकार हुआ है। और कितनोंको नीचेसे ऊपर चढ़ाया है, शासन देव आपको दीर्घ जीवी करें और आपके चित्तमें सदैव धर्मकी प्रभावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरीक अभिलाषा है।

श्रीमान्‌का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र बड़ा ही शिक्षाप्रद एवं आदर्श है। हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तक में आपका सारा जीवन-चरित्र प्रकाशित कर दिया जाय; पर हमें आपके संम्पूर्ण जीवन-चरित्र की यथेष्ठ सामग्री न मिली। इसके लिये श्रीमान् से हमने अनेक बार निवेदन किया; पर श्रीमान्‌ने जीवन चरित्र देना ही नापसन्द कर दिया अतएव हम निराश हो गये, किन्तु आरंभ से ही हमने निश्चय कर लिया था कि इस पुस्तक में आपका ही जीवन-चरित्र एवं चित्र देना चाहिये। अतएव हमने पुनः साहस कर श्रीमान् से साग्रह निवेदन

किया, इसपर आपने केवल चित्र देना ही स्वीकार किया और जीवन चरित्रके विषय में सर्वथा निषेध कर दिया।

चित्रके साथ-साथ आपके आदर्श जीवन-परिचयको भी दे देना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। अतएव हमने आपके जीवन घटनाओंका विवरण जाननेके लिये अपने दो चार मित्रोंसे कहा सुनी करी। एक दो मित्रोंने आपकी जीवनीका परिचय भी दिया, पर उससे हमें पूर्ण सन्तोष लाभ न हुआ। इसके बाद हमने अपने परम प्रिय मित्र बाबू अमरचंदजी दफ़तरीसे इसके लिये निवेदन कीया। उन्होंने कतिपय उल्लेखनीय बातें मालूम कीं। इस तरह हमने इधर उधरसे आपके जीवन घटनाओंका विवरण जानकर इस जीवन परिचयको लिखा है, इस लिये संभव है, कि इसके लिखने में त्रुटी रह गई हो। अतएव हमारी क्षमा याचना है।

शेषमें हम अपने प्रिय मित्र साहित्य प्रेमी बाबू अमरचंदजी दफ़तरीको सहर्ष धन्यवाद देते हैं। जिन्होंने आपके जीवन-परिचयके सम्बन्धमें कुछ बातें मालूम कर हमें पूर्ण अनुग्रहीत कीया है।

२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

श्रीशान्तिनाथाय नमः

प्रणिपत्यार्हतः सर्वान्, वाग्देवीं सद्गुरूनपि ।
गद्यबन्धेन वक्ष्यामि, श्रीशान्तिचरितं मुदा ॥१॥

"समस्त अरिहन्तो, सरस्वती देवी तथा सद्गुरुओं को प्रणाम कर, मैं बड़े हर्ष के साथ इस श्री शान्तिनाथ-चरित्र की गद्यात्मक रचना करता हूँ ।

सारे संसार के जीव, अनन्तकाल से बारम्बार भव भ्रमण करते चले आते हैं; परन्तु जो प्राणी जिस समय क्षायिक समकित* प्राप्त करता है, उसको उसी समय भव की संख्या प्राप्त होती है । जैसे, श्री ऋषभदेव स्वामी ने धनसार्थवाह के भवमें श्रेष्ठ तप करने के कारण निर्मल शरीर वाले, पवित्र चारित्र पालन करने वाले, उत्तम पात्र रूपी मुनियों को बहुतसा घी दान किया था । उसी दान-पुण्य के प्रभाव से उस भव में तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन कीया । (यह भव पश्चानुपूर्वी गणना करने से तेरहवाँ ठहरता है ।) इसी प्रकार अन्यान्य

---

* क्षयोपशम अथवा उपशम समकित प्राप्त होनेके बाद से भवकी गिनती होती है । इस जगह क्षायिक कहा हुआ है सो विचारने योग्य है ।

जिनेश्वरों को भी समकित प्राप्तिके समय से ही भवकी संख्या मानी जाती है। इस प्रकार श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर के बारह भव हुए हैं। इनमें से पहले भव की कथा इस प्रकार है,—

इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में अनन्त रत्नों की खान के सदृश श्रीरत्नपुर नामका एक नगर था। उसमें श्रीषेण नामके एक राजा रहते थे। वे न्याय धर्म में निपुण, परोपकार करने में तत्पर, प्रजा का पालन करने में चतुर, शत्रु-रूपी वृक्षों को उखाड फेंकनेमें हस्ती के समान और औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणोंके आधार थे। उनके बॉये अंग की अधिकारिणी और शील रूपी अलंकार से भूषित दो स्त्रियाँ थीं। पहली का नाम अभिनन्दिता और दूसरी का नाम सिंहनन्दिता था। एक समय की बात है, कि पहली रानी ऋतु-स्नान कर, रात के समय अपनी सुख शय्या पर सो रही थी; इसी समय उसने सपना देखा कि, किरणों से शोभित सूर्य और चन्द्रमा, अन्धकार को दूर करते हुए, उसकी गोद में बैठे हुए हैं। यह देखते ही रानी की नींद टूट गयी उसने अपने मनमें बडा हर्ष माना। इसके बाद वह आप ही आप विचार करने लगी,—"शास्त्रकारों ने कहा है, कि शुभ स्वप्न देखकर किसी से कहना नहीं चाहिये और फिर सोना भी नहीं चाहिये।" इत्यादि। इस प्रकार सोच-विचार कर वह रात भर जगी ही रही। सवेरा होते ही उसने अपने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामी से कही। यह सुन, राजा ने अपनी बुद्धि और शास्त्र की दृष्टिसे विचार कर इस स्वप्न का फल अपनी प्यारी पत्नी को इस प्रकार प्रसन्नता भरे वचनों में कह सुनाया। "हे देवी! इस स्वप्न के प्रभाव से तुम्हारे दो पुत्र होंगे जो पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध और कुल का नाम ऊँचा करने वाले होंगे।" यह सुन रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद ही वह गर्भवती हुई और उसके मुखड़े पर शोभा बरसने लगी। गर्भका समय पूरा होने पर सुन्दर लग्न—नक्षत्र मे उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पिता ने दस दिनों तक बडी धूमधाम से महोत्सव मनाया। इसके बाद उन्होने एक का नाम इन्दुषेण और दूसरे का बिन्दुषेण रक्खा। भलीभॉति लालित-पालित होते हुए वे दोनों राजकुमार बड़े होने लगे। क्रमशः वे आठ वर्ष के हुए। अब राजाने उन्हें कलाचार्य के पास शिक्षा निमित्त भेज दिया। वहाँ उन्होंने सब कलाओं की शिक्षा पायी। धीरे-धीरे वे युवा हो चले।

उन दिनों भरत-क्षेत्रके मगध नामक प्रदेशमें अचल नामका एक ग्राम था, जिसमें वेद और वेदांगोंमे निपुण 'धरणिजट' नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम यशोभद्रा था, जिसके गर्भने उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए

थे। एकका नाम नन्दीभूति और दूसरेका नाम शिवभूति था। वे जब पाँच वर्ष के थे, तभीसे उनके पिताने बड़े यत्न से उन्हें वेदशास्त्रोंकी शिक्षा देनी आरम्भ की। उस ब्राह्मणके कपिला नामकी एक दासी थी। उसके पुत्रका नाम कपिल था। वह लड़का भी उसी ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था, परन्तु जातिहीन होनेके कारण कहीं वह बड़ा बुद्धिमान न हो जाये, इसी लिये वह ब्राह्मण उसे पढ़ाता लिखाता नहीं था। परन्तु कपिल केवल सुनते ही सुनते चौदहो विद्याओंमें निपुण हो गया। जातिहीन होनेके कारण जब उस गाँवमें उस बेचारेका मान नहीं हुआ, तब वह घर छोड़कर बाहर चला गया और जनेऊ पहन अपनेको महा ब्रह्मण बतलाता हुआ वह ब्राह्मणो की सी क्रियायें करने में कुशल और वेद-वेदागमें निपुण कपिल पृथ्वी-पर्यटन करता हुआ श्रीरत्नपुर नगरमें आ पहुँचा। उस नगर में सत्यकि नामक एक बड़े भारी पण्डित रहते थे जो अपनी पाठशालामें बहुतसे छात्रोको वेदशास्त्रकी शिक्षा देते थे। कपिल वहीं आ पहुँचा। पण्डितको विद्यार्थीयोंको पढ़ाते हुए देखकर उसने सोचा, कि बस अपनी योग्यता प्रगट करनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। यही सोचकर उसने एक विद्यार्थीसे वेदके किसी पदका अर्थ पूछा। यह देख सत्यकिने अपने मनमें विचार किया—यह तो कोई बड़ा भारी पण्डित मालूम पड़ता है क्योंकि इसने जो बात पूछी है, वह तो मुझे भी नहीं मालूम फिर मेरा विद्यार्थी कैसे बतला सकेगा? ऐसा विचार कर उसमें उत्कृष्ट विद्या-गुण देख तथा स्नान, दान, तथा गायत्री जाप आदि ब्राह्मणोंके कर्ममें उसे निपुण पाकर, पण्डितने उसे अपनी जगह पर बहाल कर लिया। भला गुण किसका मन मोह नहीं लेता? वह सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उससे सबका मनोरञ्जन हो जाता है।

उस सात्यकि पण्डितकी स्त्रीका नाम जम्बूका था। उनके एक लड़की भी थी, जिसका नाम सत्यभामा था। वह बड़ी ही रूपवती और गुण-वती थी। अभीतक उसका विवाह नहीं हुआ था। इसी लिये उपाध्यायने अपने मनमें विचार किया, कि मेरी पुत्रीके योग्य यह वर है। ऐसा विचार कर उपाध्यायने उसीके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। उसके साथ क्रिड़ा करता और विषय-सुख भोग करता हुआ, कपिल बड़े आनन्दसे रहने लगा। उपाध्यायजी उसका सम्मान करते थे, इस लिये वहाँके सभी लोग कपिलका सत्कार करने लगे। विद्वानोंकी सभामें भी उसने बड़ा मान-आदर पाया और राजसभामें भी उसकी प्रसिद्धी हो गयी।

दुष्कालका नाश करने वाली वर्षा-ऋतुका समय था। उन्हीं दिनो कपिल

एक दिन रातको देवकुलमें नाटक देखने गया। वहाँ नाटक और संगीतका आनन्द लेते हुए बड़ी रात बीत गयी। नाटक समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। कपिल भी अपने घर की तरफ़ चला। रात्रिका समय था, तिसपर बादलोंके मारे और भी गाढ़ी अँधियारी छायी हुई थी और पानी बरस रहा था। इसी लिये रास्तेमें कोई आता-जाता नहीं नज़र आता था। कपिलने सोचा— मैं व्यर्थ ही अपने वस्त्रको क्यों भिगाऊँ! रास्तेमें तो कोई आदमी चलता-फिरता नहीं दिखाई देता? यही सोचकर उसने अपने सारे कपड़े उतार कर उनकी पोटली बाँध ली और उसे काँख तले दबाये नंगा ही अपने घर पहुँचा। द्वार पर आते ही उसने अपने कपड़े पहन लिये और तब घरके अन्दर घुसा। उसकी स्त्रि झट पट घरके अन्दरसे अन्य सूखे वस्त्र लाकर बोली "प्राणेश! अपने भींगे कपड़े उतार डालो और इन सूखे वस्त्रोंको पहन लो।" यह सुन, कपिलने कहा,—'प्रिये! मन्त्रके प्रभावसे इस बरसातमें भी मेरे कपड़े नहीं भीगने पाये। यदि तुम्हें सन्देह हो तो देखकर परीक्षा कर लो।' यह सुन वह बड़े आश्चर्यमें पड़ी और हाथ बढ़ाकर कपड़ोंकी परीक्षा कर, उन्हें सूखा देख, मनही मन अचम्भित हो ही रही थी इसी समय बिजली चमक उठी। उसके उँजियालेमें यह देख कर कि उसकी देह तो पानीसे तर है वह सूक्ष्म-बुद्धिवाली सत्यभामा मनमें विचार करने लगी—'अब समझी। यह वर्षाके भयसे वस्त्रोंको छिपाये हुए रास्ते भर नंगा ही आया है और अब मुझसे व्यर्थ की डींग हाँक रहा है। भला यह हरकत कहीं भलेमानसोंकी हो सकती है? यह कदापि कुलीन नहीं है। इसके साथ गृह-धर्मका पालन करना विडम्बना मात्र है। ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही कपिल पर उसका अनुराग कम हो गया। हाँ लोक-दिखावे के लिये वह गृहस्थीके काम-धन्धोंको सदाकी तरह करती रही।

इसी समय कपिलका पिता, जो ब्राह्मण और बड़ा भारी पंडित था, कर्मके दोषसे समय के फेरसे निर्धन हो गया। उसने जब सुना कि उसका कपिल नामक पुत्र रत्नपुरमें जाकर बड़ा वैभवशाली और लोक समाजमें माननीय हो रहा है, तब वह धनकी इच्छासे रत्नपुर आ पहुँचा और कपिलके घरपर अतिथिकी भाँति ठहरा। भोजनके समय कपिल किसी बहानेसे पितासे अलग जा बैठा। यह देख सत्यभामाके मनकी शंका और भी प्रबल हो गयी। उसने ब्राह्मणको एकान्तमें ले जाकर शपथ देते हुए पूछा—"पिताजी! सच कहिये, यह आपका पुत्र आपकी धर्म-पत्नीसे उत्पन्न है या नहीं? इसपर उपाध्यायने उससे सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया, यह सुनकर उसे यह निश्चय हो गया, कि

यह किसी नीच जातिकी सन्तान है। इसके बाद कपिलने अपने पिताको कुछ धन देकर बिदा कर दिया और वह अपने घर चला गया। इधर सत्यभामा ने कपिलकि ओरसे अपना मन फेर लिया और उसके अनजानते में घरसे बाहर हो, श्रीषेण राजाके पास जा, दोनो हाथ जोडकर बोली,—"आप पृथ्वीनाथ हैं— पाचवें लोक-पाल हैं— दीन और अनाथ मनुष्योंको शरण देने वाले है, आपही सबकी गति है, इसलिये मेरे ऊपर दया कीजिये।"

उसका वचन सुन, राजाने कहा,—"पुत्री! तुम्हारे पिता सत्यकि मेरे पूज्य हैं। तुम उनकी पुत्री और कपिलकी पत्नी हो, इसलिये मेरी हर तरहसे माननीया हो। तुम शीघ्र बतलाओ, तुमको कौनसा दुःख है?"

वह बोली,—"हे राजन! मेरा कपिल नामका जो स्वामी है, वह अच्छे कुलमें उत्पन्न नहीं होनेके कारण निन्दनीय है।"

राजाने पूछा,—"तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ?"

यह सुन, उसने कपिलके पिताकी कही हुई कुल बात राजाको कह सुनायी। अन्तमें बोली,—"महाराज! आप ऐसा कर, जिसमें मैं इसके घर से अलग हो जाऊँ और पृथक् रहती हुई भी निर्मल शीलका पालन कर सकूँ। मै आपकी शरणमें आई हूँ।"

उसके ऐसा कहने पर राजाने कपिल को बुलवा भेजा और आने पर उससे कहा,—"कपिल! तेरी स्त्री सत्यभामा तेरे ऊपर प्रीति नहीं रखती, इस लिये तू इस स्नेह हीन स्त्री को छोड दे। आज से यह अपने पितृ गृहकी भाँति मेरे ही घरमे रहे और शील-रूपी अलंकार को धारण कर, कुलोचित धर्मोका पालन करती रहे, इस बातकी इसे आज्ञा दे डाल।"

राजाकी यह बात सुन, कपिलने कहा,—"स्वामी! मुझसे तो इसके बिना घड़ी भर भी चैन नहीं आनेका, मैं इसे छोड़कर रह नहीं सकता, फिर भला आप ही बतलाइये, मै इसे कैसे छोड दे सकता हूँ?"

कपिलकी बात सुन, राजाने सत्यभामासे पूछा—"भद्रे! यदि कपिल तुझे छोडनेको तयार नहीं हो, तो तू क्या करेगी?"

वह बोली,—"यदि इस नीच कुलोत्पन्न पुरुषसे मेरा पिंड नहीं छूटा तो मै अवश्य प्राण दे दूँगी।"

यह सुन, राजाने फिर एक बार कपिलसे कहा,—"कपिल! यदि तू इस स्त्री को न छोडेगा, तो तुझे अवश्य ही स्त्री हत्याका पाप लगेगा। क्या तुझे इस पाप का भय नहीं है? इसलिये यदि तुझे स्वीकार हो, तो जैसे कुछ दिनोंके लिए स्त्रियाँ मायके चली जाती है, वैसे ही इसे भी कुछ दिन मेरे घर मेरी रानीके पास रहने दे।"

कपिलने यह बात स्वीकार कर ली। तब विनय तथा शीलमें उत्तम सत्यभामा राजाकी प्रियाके पास चली आयी और सुखसे रहने लगी।

एक दिन उसी नगरके उद्यानमें श्री विमलबोध नामके सूरि पृथ्वी पर विहार करते हुए आ पहुँचे और एक पवित्र स्थानमें रहे। सूरिके आगमन का हाल लोगो के मुँहसे सुनकर श्रीषेण राजा अपने परिवारके साथ उनकी वन्दना करने को आये। वहाँ पहुँच कर, सूरिको प्रणाम कर, राजा एक उचित स्थान में जा बैठे। तदनन्तर सूरिने राजाको सुनाने केलिये धर्म-देशना आरम्भ की। "हे राजन्! जो मनुष्य-जन्म आदि सामग्रियों को पाकर भी प्रमादके कारण धर्म नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक ही जानना और जिन प्राणियोंने जिन-धर्मका आराधन और सेवन कर, वैभव तथा मोक्ष-सुख पा लिया है, उनका जन्म सार्थक समझना। वे मंगल-कलशकी भाँति सदा प्रशंसाके योग्य हैं।"

यह सुन, श्रीषेणने पूछा,—स्वामिन्! मंगल-कलश कौन था? कृपाकर मुझे उसकी कथा सुनाइये।

सूरि महाराजने कहा,—"राजन्! खूब मन लगा कर उसकी कथा सुनो, मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाता हूँ।

## मङ्गल कलशकी कथा।

उज्जयिनी नामक विशाल नगरी में वैरसिंह नामक एक राजा राज्य करते थे। उनकी सोमचन्द्रा नामक स्त्री उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी थी। उसी नगरी में धनदत्त नामका एक बड़ा भारी सेठ रहता था, । वह बड़ा ही विनयी, सत्य- वादी, दयावान्, गुरु तथा देवताकी पूजामें तत्पर और परोपकारी मनुष्य था। उसके सत्यभामा नामकी एक स्त्री थी। वह बड़ी ही शीलवती तथा पति पर प्रेम रखनेवाली थी, पर बेचारीकी गोद सूनी थी। एक दिन पुत्रकी चिन्तासे उदास बने हुए सेठको देखकर उसकी स्त्री ने पूछा,—"नाथ! आप आज इतने दुःखी क्यों दिखाई देते हैं?" सेठने सब बात बतला दी, वह सुन कर स्त्रीनें कहा,—

"प्राणनाथ ! चिन्ता न कीजिए। इस लोक और परलोक में केवल धर्म ही मनुष्योंको वांछित फलका देनेवाला है। इसलिये आपको सुखी मनसे उसी धर्मका विशेष रूपसे पालन करना चाहिये। "इसपर सेठने कहा,— प्रिये ! मै किस तरह धर्मका आचरण करूँ, वह तुम्हीं बतलाओ। "वह बोली'— "स्वामी ! देवाधिदेव श्रीजिनेश्वरजीकी पूजा करो, सद्गुरुकी भक्ति करो, सुपात्रोंको दान दो और सिद्धान्तके ग्रन्थोंका अध्ययन करो। इसप्रकार धर्म-ध्यान करते हुए यदि पुत्र लाभ हो जाय, तो अच्छी ही है, नहीं तो परलोकमें निर्मल और अखण्डित सुख तो अवश्य ही होगा।"

यह सुन, सेठने परम प्रसन्न होकर कहा,—"प्रिये ! तुमने बहुत ठीक कहा। भली भाँति पालन किया हुआ धर्म चिन्तामणि और कल्पवृक्ष के ही समान होता है।"

इस प्रकार मनमें निश्चय कर, उस अच्छे विचारवाले सेठने मालीको बुलाकर देव पूजाके निमित्त फूल मँगवाये और उसे बहुत सा धन दान किया। इसके बाद वह प्रतिदिन सवेरे उठकर अपने बगीचेमें जाता और तुरन्तके खिले हुए फूल तोड़ लाकर उनसे अपने घरमें रखी हुई प्रतिमाका पूजन करता। इसके बाद नगरके मध्यमें बने हुए जिन-चैत्य (जैन मन्दिर) में चला जाता। उसके द्वारके भीतर प्रवेश करते समय नैषेधिकी आदि कहे जानेवाले दसो त्रिकोंका उचित रीतिसे ध्यान रखते हुए बड़ी भक्तिके साथ चैत्यवन्दन करता था। इसके बाद साधुओंको वन्दना तथा विधिपूर्वक प्रत्याख्यान कर, वह उत्तम मुनियोंको दान देता था। इसी प्रकार सारा दिन और सारी रात, सब सुखको देनेवाले धर्म-कार्यों का ही अनुष्ठान करते रहनेके कारण, शासनकी अधिष्ठात्री देवी उस सेठ पर प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया। इस वरदानसे सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ। इसके बाद पुण्यके प्रभाव तथा देवीके आशीर्वादसे उसी रातको सेठानीको गर्भ रहा और उसने स्वप्नमें मंगल सहित सुवर्ण-पूर्ण कलश देखा। यह देखते ही वह जग पड़ी और इसे पुत्र प्राप्तिका सगुन समझ कर हर्षित हुई। क्रमसे समय पूरा होने पर भली सायतमें उसके पुत्र पैदा हुआ। उस समय उसके पिताने बड़ी धूमधामसे उत्सव किया और दीनहीन जनोंको स्वर्ण और रत्नोंका दान देकर, अपने सब स्वजनोंको इकट्ठा किया और सबके सामने ही स्वप्नके अनुसार उसका नाम मंगल-कलश रक्खा। धीरे-धीरे बढ़ता और विद्याभ्यास करता हुआ वह लड़का क्रमश आठ वर्षका हुआ।

एक दिन मंगल कलशने अपने पितासे पूछा,—"पिता ! तुम सबेरे ही उठ कर प्रतिदिन कहाँ चले जाते हो? "उसके पिताने कहा,— मै देव पूजनके लिए

फूल लाने जाता हूँ। यह सुन पुत्रने कहा,—"अच्छा, तो आज मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा।" यह सुन, पिताने लाख मना किया, तो भी वह पिताके पीछे-पीछे चला ही गया। मालीने उसे अपने मालिकका पुत्र समझ कर उसे प्रसन्न करनेके लिये नींबू और नारंगी आदि सुन्दर स्वादवाले फल लाकर दिये। इसके बाद सेठ फूल ले, पुत्रके साथ ही घर लौट आया। उस दिन सेठने पुत्रके साथ ही स्नान, पूजन और भोजन आदि सभी कार्य किये। इसके अनन्तर बालक पाठशाला चला गया। दूसरे दिन मंगलकलश बड़ी हठकरके अकेला ही फूल लानेके लिये बगीचेमें चला गया और मालीसे सुन्दर-सुन्दर फूल लेकर घर लौट आया। घर आकर उसने पितासे कहा,—"अब आजसे मैं ही प्रतिदिन बाग मे जाकर फूल ले आया करूँगा, तुम घर ही रहकर धर्म-ध्यान किया करो।" सेठने उसकी यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद वह प्रतिदिन बगीचे जाकर फूल ले आने लगा और सेठ सुख पूर्वक देव-पूजा करने लगा। इसी अवसर में क्या क्या घटनाएँ हो गयीं अब उन्हींकी कथा सुनाता हूँ। सुनो,—

भरत क्षेत्रमें **चम्पा** नामकी एक विशाल नगरी है। उसमें सुरसुन्दर नामके एक राजा रहते थे। उनकी रानीका नाम गुणावली था। एक दिन उसने स्वप्नमें अपनी गोदमें कल्पलता देखी। देखते ही वह झट पट उठ बैठी और अपने स्वामी से वह बात कह डाली। राजाने अपनी बुद्धिसे बिचार कर कहा,— इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हे एक सर्व-सुलक्षणा पुत्री होगी।" यह सुन रानी बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद समय पाकर रानीको एक लड़की हुई। राजाने उसका नाम **त्रैलोक्य-सुन्दरी** रक्खा। धीरे धीरे बढ़ती हुई वह बालिका क्रमसे युवती हो गयी, युवा-वस्थाको पाकर वह मानों अतिशय लावण्य और सौभाग्यका आकार बन गयी। एक दिन अपनी उस मनोहर अंगोंवाली पुत्री को देखकर राजा अपने हृदय में उसके लिये वरकी चिन्ता करने लगे। इसी समय रानीने भी उनसे कहा,— "स्वामी! यह बालिका मेरे जीवनका आधार है। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं, कि इसका विरह सहन कर सकूँ, इसलिये आप इसका विवाह किसी और स्थानमें न कर इसी नगरमें **सुबुद्धि** नामक मन्त्री-पुत्रके साथ कर दीजिये। वह इसके सर्वथा योग्य है।" स्त्री की यह बात सुन, राजा मन-ही-मन विचार करने लगे सच पूछो तो विवाहादिक मामलोंमें स्त्रियोंकी ही प्रधानता रहती है।" यही सोचकर उन्होंने सुबुद्धि नामक मन्त्रीको बुलवा कर उससे बड़े आदरके साथ कहा "मन्त्रीजी! मैं अपनी कन्या तुम्हारे पुत्रके साथ व्याह देना चाहता हुँ, इस लिए तुम शीघ्र इनके विवाहकी तैयारी करो।"

यह सुन मन्त्रीने कहा,—"स्वामी! आप ऐसी अनुचित बात क्यों कहते

हैं ? आप अपनी पुत्री किसी राजकुमारको दीजिये, मेरा पुत्र आपके योग्य नहीं है। कहा भी है, कि—

ययोरेव समं वित्तं, ययोरेव समंकुलम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च, नतु पुष्ट-विपुष्टयोः॥ १॥

*"जिन दो मनुष्योंकी धन-सम्पत्ति एकसी हो, कुल एकसा हो, उन्हीं दोनोंमें परस्पर मैत्री या विवाह होना उचित है; परन्तु उनमेंसे यदि एक बलवान और दूसरा निर्बल हो, तो उनमें सम्बन्ध होना ठीक नहीं है।"*

मंत्रीकी यह बात सुन, राजाने फिर कहा,—"मन्त्री! इस बारेमें तुम्हारे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यह बात तो अब होकर ही रहेगी। इसमें कोई संशय न समझना।"

सभासदोंने भी कहा, कि मंत्रीजी! आपको राजाकी बात मान ही लेनी चाहिये। यही सब सुनकर मन्त्रीने, इच्छा न रहते हुए भी, राजाकी बात मान ली।

इसके बाद मन्त्री, घर आ, हथेली पर सिर रखकर मन-ही-मन विचार करने लगा,— "हाय! मेरी तो वही हालत हो रही है, कि एक ओर बाघ बैठा है, और दूसरी ओर नदी लहरा रही है। इधर उसके मुँहमें चले जानेका भय है, उधर नदीमें डूब जानेका। इसका कारण यह है, कि राजाकी पुत्री देवांगना की भाँति रूपवती है और मेरा पुत्र कोढके रोगसे पराभवको प्राप्त हो रहा है। फिर जान-बूझकर मैं इन दोनोंकी जोड़ी क्यों मिलाऊँ? इसी तरहकी चिंताओंमें मन्त्री खाना-पीना भी भूल गया। अन्तमें उसे यह याद आया कि, मेरी कुलदेवी बड़ी जागती देवी है। मै उन्हींकी आराधना करूँ, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जाये। ऐसा विचार कर, मन्त्रीने बड़ी विधिके साथ अपनी कुलदेवीकी आराधना की। उसकी आराधनासे प्रसन्न हो, देवीने प्रत्यक्ष प्रकट हो करके कहा,— "हे मन्त्री! तू किस लिये मेरा ध्यान कर रहा है?" मन्त्रीने कहा,— "माता! तुम तो स्वयं ही सब कुछ जानती हो, तो भी जब पूछ रही हो, तो लो, कहे देता हूँ, सुन लो। मेरा पुत्र, दुष्ट कुष्ट-व्याधिसे पराभवको प्राप्त हो रहा है। तुम ऐसी कृपा कर दो, जिससे मेरा पुत्र इस रोगके पंजेसे छूट जाये।" इस पर देवीने कहा, — "पूर्वमें किये हुए कर्मोंके दोषसे जो व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसे दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिये तुम्हारी यह

प्रार्थना व्यर्थ है।" यह सुन मन्त्रीने मन-ही-मन विचार कर कहा,—"अच्छा यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो तुम कोई उसीकी सी आकृतिवाला व्याधि-रहित, दूसराही पुरुष कहींसे ढूंढ ला दो, तो मैं उसीके साथ राजकुमारीका व्याह कराके पीछे राजकुमारीको अपने पुत्रके हवाले कर दूँगा।" देवीने कहा,—"मन्त्री! मैं किसी बालकको लाकर नगरके दरवाजे पर घोड़ोंकी रक्षा करनेवाले राजपुरुषोंके पास ले आऊँगी। वह जाड़ा दूर करनेके लिये जब आगके पास आ बैठे, तब तुम उस लड़केको वहाँसे उड़ा ले आना।" इसके बाद जैसा उचित जान पड़े, वैसा करना। यह कह देवी अदृश्य हो गयी। इसी बात-पर विश्वास कर मन्त्री बड़ी प्रसन्नताके साथ विवाहकी तैयारियाँ करने लगा। इसके बाद मन्त्रीने अपने अश्वपालको एकान्तमें बुलाकर उससे सारा हाल कह सुनाया और बड़े आदर से कहा,—"यदि कोई बालक कहींसे आकर तुम्हारे पास बैठ रहे, तो तुम उसे झटपट मेरे पास ले आना।" अश्वपालने उनकी यह आज्ञा सादर स्वीकार कर ली।

इसके बाद कुलदेवीने अपने ज्ञानसे यह मालूम कर लिया, कि इस राजपुत्री का वर तो मंगलकलश होने वाला है। बस, उन्होंने उज्जयिनी—नगरीमें आकर बागसे फूल लेकर आते हुए मंगलकलशको देख, आकाशमें ही ठहरे हुए कहा,—"यह जो बालक फूल लेकर चला जा रहा है, वह किराये पर किसी राज-कन्यासे शादी करेगा?" यह सुनकर मंगलकलशको बड़ा विस्मय हुआ। "यह क्या?" यही सोचते हुए उसने मन-ही-मन निश्चय किया, कि घर पहुँचकर पितासे यह बात कहूँगा। इसके बाद जब वह घर पहुँचा, तब पितासे यह बात कहना भूल ही गया। दूसरे दिन, उसने फिर वैसी ही बात सुनी। उस समय उसने अपने मनमें विचार किया,—"अहा! जो बात मैंने कल सुनी थी, वही तो आज भी आकाशमें सुनाई दे रही है। अच्छा, कल तो मैं यह बात पिताजी से कहना भूल गया, पर आज अवश्य कहूँगा।" ऐसा ही विचार करता हुआ वह रास्तेमें चला जा रहा था, कि इसी समय बड़े जोरकी आंधी उठी और उसे चम्पानगरीके पासवाले जंगलमें उड़ा ले गयी। एकाएक वहाँ पहुँच कर वह बड़ा भयभीत हुआ। इसके बाद थका-मांदा और प्यासा होनेके कारण वह एक मानस-सरोवर का सा निर्मल सरोवर देख, वहाँ पहुँचा और वस्त्र भिंगो, और उसीको निचोड़ कर पानी पिया, इसके बाद स्वस्थ हो, कुशके तृण ले, उसने उनकी रस्सी बना डाली और उसके सहारे सरोवरके तीर पर उगे हुए एक बड़े भारी वट-वृक्षपर चढ़ गया। इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। उस समय वट-वृक्षपर बैठे हुए उसने जो चारों ओर नज़र दौड़ाई, तो पासही उत्तर दिशाकी ओर अग्नि

जलती हुई मालूम पड़ी। यह देख, वह वृक्षसे नीचे उतरा, पर साथ ही डर गया। ठंडके मारे उसका शरीर कॉप रहा था। इसी लिये वह धीरे-धीरे उस आगकी सीध पर चल पड़ा। क्रमशः वह चम्पापुरीके बाहरी हिस्सेमें आ पहुँचा और अश्वपालोंके पास बैठकर आग तापने लगा। उसे देखकर अश्व-पालक, "यह दरिद्र बालक कौन है? कहाँसे आया है?" इस तरहकी बाते एक दूसरेसे पूछने लगे। ऊपर लिखे हुए अश्वपालोंके स्वामीने जब यह बात सुनी तब मन्त्रीकी बातका स्मरण कर, उस बालकको अपने पास बुला लिया। उसके पास आनेपर उसने उसकी ठढ दूर करनेका उपाय कर दिया और सवेरा होते ही उसे मन्त्रीके पास ले गया। उसे देख, मन्त्रीको बडा हर्ष हुआ। उसने उसे एक गुप्त स्थानमें ला रक्खा और उसे स्नान-भोजन कराके सन्तुष्ट किया। यह सब देखकर मंगलकलशने सोचा,— "यह मेरी इतनी वेहिसाब ख़ातिरदारी क्यों कर रहा है? साथही मुझे इस तरह छिपा कर क्यो रखा है?" यह विचार मनमें आतेही उसने मन्त्रीसे पूछा,— "इस परदेशीकी आप इसती ख़ातिर क्यों कर रहे हैं? यह नगरी कौनसी है? यह देश कौनसा है? मेरा यहॉ क्या काम है? यह सब सच-सच बतलाइये। मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है।" यह सुन, मन्त्रीने कहा,— "इस नगरीका नाम चम्पा है। यह देश अंग नामसे प्रसिद्ध है। यहॉ सुरसुंदर नामके राजा राज्य करते हैं। मै उनका मन्त्री हूँ। मेरा नाम सुबुद्धि है। मैंने ही तुम्हे एक बहुत बड़े कार्यके लिये बुलवा मँगवाया है।"

मंगलकलशने फिर पूछा,—"वह कौनसा कार्य है?" सुबुद्धिने कहा,— "सुनो! राजाने अपनी त्रैलोक्यसुन्दरी नामक कन्याका विवाह मेरे पुत्रके साथ करना निश्चय किया है, परन्तु मेरा पुत्र कुष्ट-व्याधिसे पीड़ित है। इसी-लिये, हे भद्र! मैंने तुम्हे यहॉ बुलवाया है, कि तुम उस कन्याके साथ विवाह कर, उसे फिर मेरे पुत्रको दे देना।"

यह सुन, मंगलकलशने कहा,— "मंत्रीजी! आप यह इतना बड़ा कुकर्म करनेको क्यों तैयार हैं? कहॉ वह अत्यन्त रूपवती बाला और कहॉ तुम्हारा कोढ़ी पुत्र! मुझसे तो यह कठोर कर्म कदापि नहीं होनेका। यह तो किसी भोले भाले आदमी को कुएँमें उतार कर रस्सी काट डालनेके बराबर है। यह काम भला कौन करे?"

तब तो मन्त्रीने बिगड़ कर कहा,— "अरे दुष्ट! यदि तू यह काम न करेगा, तो मैं तुझे अपने हाथों मार डालूँगा।" यह कह, सुबुद्धि मंत्री अपने हाथ में खड्ग ले, बड़ी भयंकर मुद्रा बना कर उसे डराया-धमकाया, परन्तु वह कुली-

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके सोचे हुए कुकर्ममे साझीदार बननेको तैयार नहीं हुआ। इसी समय कुछ और बड़े बूढ़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उसका वध करने से रोक कर मंगलकलशसे बोले,—"भाई! तुम मंत्रीकी बात मान लो। बुद्धि-मान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं।" यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— "निश्चय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे यहाँ आना क्यों कर होता? सर्व प्रथम आकाशवाणीने भी तो यही बात कही थी। इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये, क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो होकर ही रहती है।" यही सोचकर उसने अबके मंत्री से कहा,— "यदि मुझे लाचार होकर यह निर्दय कार्य करना ही पड़ेगा, तो क्या करूँगा? अस्तु मै आपकी बात माने लेता हूँ, पर आपको भी मेरी एक मांग पूरी करनी होगी।" यह सुनतेही मंत्रीका सुर नरम होगया और उसने बड़े तपा-कके साथ कहा,— "हाँ, हाँ, झटपट कह डालो। मै तुम्हारी मांग अवश्य पूरी करूँगा।"

मंगलकलशने कहा,—"राजा जो-जो चीज़े मुझे देंगे, उन सबका मालिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको तत्काल उज्जयिनीके मार्गमें लाकर उपस्थित कर देना।" मंत्रीने झटपट उसकी यह बात मानली।

इसके बाद, जब व्याहका मुहूर्त्त समीप आया, तब मंत्री उसे अच्छे-अच्छे वस्त्रालंकार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया। उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये। त्रैलोक्य-सुन्दरी उस कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानने लगी। तदनन्तर विवाहके समय 'पुण्याऽहं, पुण्याऽहं' इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए ब्राह्मणने वर-वधूको अग्निका चार बार फेरा दिलवाया। चारों प्रकारके मंगलाचार करवाये। पहले मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, दूसरेमे आभूषण दान किये, तीसरेमे मणि-रत्न, सुवर्ण आदि मूल्यवान् पदार्थ दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये। इस प्रकार बड़े ही आनन्दसे वर-वधूका विवाह हो गया। विवाहकी सारी क्रिया समाप्त होनेपर, जब जामाताने वधूका हाथ पकड़ा, तब उसके हाथ अलग करनेके पहले ही राजाने पूछा,— "वत्स! अब मै तुम्हे कौन सी चीज़ दूँ?" यह सुन, उसने पाँच अच्छी नसलके तेज घोड़े माँगे। राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल उसके मांगे अनुसार पाँचघोड़े उसे दे दिये। इसके बाद गाजे बाजेके साथ सुन्दरियोंके मगल-गीत और भाट चारणोंके जय-जय शब्द सुनते हुए मंगलकलश अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ मंत्रीके घर आया। रातके समय मंत्रीके आदमी छिपे छिपे यह बात

कहते सुनाई दिये, कि अब किसी उपायसे शीघ्र ही यहांसे हटा देना चाहिये। यह सुन और आकार-प्रकार तथा चेष्टासे अपने स्वामीको चंचल देख, त्रैलोक्य-सुन्दरी अपने पतिके पास ही चली आयी। थोड़ी देर बाद मंगलकलश शौचादिके लिये उठ खड़ा हुआ। यह देख, राजकुमारी भी जलका पात्र हाथमे ले, उसके पीछे-पीछे गयी। उस जलको ले, शौचादिसे निवृत्ति होकर मंगलकलश फिर घरमें चला आया, परंतु उसके मनमे चिन्ता बनी हुई थी। उस समय त्रैलोक्य-सुंदरीने अपने पतिको शून्य चित्त देख, बिल्कुल एकान्त पाकर पूछा---"प्राणनाथ! क्या आपको भूख मालूम होती है?" इसके जवाबमें उसने हाँ कह दिया। यह सुन उसने अपनी दासीसे पिताके घरसे आये हुए मिष्टान्न मँगवा कर दिये। उन्हें खाकर पानी पीते-पीते मंगलकलशने कहा,— "अहा! यह सुंदर केसर भरी मिठाई खानेके बाद यदि कहीं उज्जयिनीका जल मिल जाता, तो फिर कैसी तृप्ति होती! बिना उसके तृप्ति कहाँ?"

यह वचन सुन, राजकुमारी मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगी,—"ऐं! ये ऐसी विचित्र बात क्यो बोल रहे हैं? इन्हें उज्जयिनीके जलकी मिठास कैसे मालूम हुई? अथवा हो सकता है, कि इनका ननिहाल वहाँ हो और ये लड़कपनमे वहाँ जाकर वहाँका हवा-पानी देख आये हों। इसके बाद उसने पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे मिश्रित ताम्बूल, अपने हाथों बनाकर, पतिकी मुखशुद्धि के लिये दिये। थोड़ी देरमें मन्त्रीने मंगलकलशके पास आदमी भेजकर उसे समय की सूचना दी, जिसे सुनते ही मंगलकलशने त्रैलोक्यसुन्दरीसे कहा,—"प्यारी! मुझे फिर शौच जानेकी इच्छा हो रही है—पेटमे बड़ा दर्द हो रहा है। लेकिन देखना, इसबार जलका पात्र लेकर जल्दी न आना। थोड़ी देर ठहर कर आना।" यह कह, वह घरसे बाहर चला आया।

मंत्रीके पास पहुँच कर उसने पूछा,—"राजाने जो मुझे अश्व इत्यादि पदार्थ दिये थे, वे सब कहाँ रक्खे हैं?" मन्त्रीने कहा,—"वे सब उज्जयिनीके रास्तेमें हैं।

यह सुन वह वहाँ गया और सब चीज़ोंको एक रथ पर रखकर, उसमें चार घोड़े जोत दिये। पाँचवें घोड़ेको पीछे बाँध दीया। बहुतसी चीजें तो उसने वहीं छोड़ दीं और अपनी नगरीकी राह नापी। रास्तेमें जो जो गाँव मिलते गये, उन सबके नाम उसने मन्त्रीके सेवकोंसे मालूम कर लिये। इस तरह रथमें बैठा हुआ रात-दिन चलकर, वह कुछ दिनोंमें अपनी नगरीमें आ पहुँचा।

इधर मंगलकलशके गुम हो जानेके बाद उसके माता-पिताने उसकी बड़ी खोज-ढूँढ़ करवायी, पर जब कहीं उसका पता न मिला, तब रोते-रोते थककर वे

कुछ दिनोंमें शोक-रहित से हो गये। इतनेमें एक दिन उसकी माताने उसे रथमें बैठे हुए, अपनी घरकी तरफ आते देख, पुत्रको नहीं पहचाननेके कारण, सहसा पुकार कर कहा,— "हे राजपुत्र! तुम मेरे घर पर रथ क्यों ला रहे हो? सीधी राह छोड़कर नयी राह क्यों जा रहे हो?" परन्तु इस प्रकार रोकने पर भी जब उसने रास्ता नहीं बदला, तब सेठानीने बहुत ही घबराकर सेठको बुलाया और उनको सारा हाल कह सुनाया। यह सुन, सेठ उसे रोकनेके लिये ज्योंहीं घरसे बाहर निकले, त्योंही मंगलकलशने रथसे नीचे उतर कर, पिताके चरणोंमें माथा टेका। तबतो पिताने पुत्रको पहचान कर, उसे बड़े प्रेमसे गले लगा लिया। इसके बाद आनन्दके आँसू ढलकाते हुए माता-पिताने पहले तो उसका कुशल समाचार पूछा। इसके बाद और-और बातें पूछीं। इस अपार सम्पत्तिके प्राप्त होनेकी बात भी पूछी। इस पर मंगलकलशने अपना सारा हाल माता-पिता को कह सुनाया। यह सुन, उसके माता-पिताने मन-ही-मन विचार किया, "अहा! इस लड़केका भाग कितना बड़ा है!" इसके बाद सेठने अपने घर को तुड़वाकर क़िला बनवाया और उसमें गुप्त रीतिसे उन पाँचो अश्वोंको रख दिया। पुत्रके घर आजानेकी खुशीमें सेठके घर बड़ी धूमधामसे बधाइयाँ बजने लगीं।

एक दिन मंगलकलशने अपने पितासे कहा,—"पिताजी! अभी मुझे थोड़ासा कलाभ्यास करना बाकी रह गया है, उसे भी पूरा कर डालूँ, तो अच्छा है।" यह सुन, सेठने अपने घरके पास ही रहनेवाले एक कलाचार्यके पास उसे कला सीखनेके लिये भेज दिया। वह वहीं अभ्यास करने लगा।

इधर चम्पापुरीमें मंत्रीने पुत्रको मंगलकलशके गहने कपड़े पहना कर, रात के समय राजकुमारीके कमरेमें भेजा। वह आते ही सेजपर बैठ गया। उसे देखते ही त्रैलोक्यसुंदरीने सोचा,—"यह कौन कोढ़ी मेरे पलंग पर आ बैठा?" इसके बाद वह ज्योंही राजकुमारीको छूनेके लिये आगे बढ़ा, त्योंही वह शय्या से नीचे उतर पड़ी और भागी हुई वहाँ चली आयी, जहाँ उसकी दासियाँ सोयी हुई थीं। उसे इस तरह एकाएक वहाँ पहुँची देख, दासियोंने पूछा,—"स्वामिनी! आप इतनी घबरायी हुई क्यों मालूम पड़ती हैं?" उसने उत्तर दिया,—" मालूम होता है, कि मेरे देवताके समान सुंदर स्वरूपवान् स्वामी कहीं चले गये।" दासियोंने कहा,— "नहीं, नहीं—अभी तो वे तुम्हारे कमरेमें गये हैं!" राजकुमारीने कहा,—" वह मेरा पति नहीं, कोई कोढ़ी मालूम पड़ता है।" यह कह, वह सुंदरी रात भर दासियोंके ही मध्यमें सोयी रही। सारी रात वहीं बिताकर, सवेरा होते ही त्रैलोक्य सुन्दरी अपने पिताके घर चली गयी।

प्रातःकाल कुबुद्धिसे प्रेरित मंत्री राजाके पास पहुँचा। उस समय उसका चेहरा चिन्तासे काला पड़ गया था। यह देख, राजाने उससे पूछा,—"मन्त्री! आज हर्षके स्थानमें तुम्हारे मुखड़े पर विषाद क्यों छाया हुआ है?" मन्त्रीने कहा,—"हे राजन्! मुझे तो भाग्यके दोषसे हर्षके स्थानमें शोक ही प्राप्त हुआ।" राजाने घबरा कर पूछा,—"क्यों, क्यों, क्या हुआ?" उसने कहा,—"हे स्वामिन्! मनुष्य मन-ही-मन हर्षसे फूलता हुआ जिस कार्यको करने के लिये उतारू होता है, उस कार्यके महा शत्रुके समान विधाता उसको एकबारगी उलट पुलट कर देता है।" यह उत्तर पा, राजाने फिर बड़े आग्रहसे मन्त्रीसे उसके दुःखका कारण पूछा। मन्त्रीने एक लम्बी साँस लेकर कहा,—"स्वामी! मेरा भाग्य ही फूटा हुआ है। मेरा पुत्र जैसा है वैसा तो आप अपनी आँखों देख ही चुके हैं। अब यह भाग्यका फेर देखिये, कि आपकी कन्याका स्पर्श होते ही, वह कोढ़ी हो गया! क्या कहूँ? किसके आगे दुखड़ा रोऊँ?"

यह सुन, राजा भी बड़े दुःखित हुए। वे मन-ही-मन विचार करने लगे,—"अवश्य ही मेरी यह पुत्री कुलक्षणा है। तभी तो इसके स्पर्श-मात्रसे ही मेरे मन्त्री का पुत्र कोढ़ी हो गया। यह तो ठीक है, कि इस जगत् मे सभी अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं, परन्तु अन्य प्राणी उसके निमित्त भी तो बन जाया करते हैं। इस संसारमें न तो कोई प्राणी किसीको सुख-दुख देनेकी शक्ति रखता है, न हरण करनेकी। जो कोई सुख-दुख भोग करता है, वह अपने कर्मोंके फल ही भोगता है। कर्म ही सुख-दुखके कारण हैं। इस लिये हे मन! तुम्हें इस समय इसी सुबुद्धिसे काम लेना चाहिये।" इसी प्रकार सोच-विचार कर राजाने कहा,—"हे मन्त्री! मैंने तुम्हारे पुत्रको बड़े कष्टमें डाल दिया। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह न करता तो वह इस दुष्ट रोगसे क्यो दुःख पाता।"

यह सुन, मन्त्रीने कहा,—"महाराज! आपने तो हितका ही काम किया; फिर इसमें आपका क्या दोष है? सब मेरे कर्मोंका ही दोष है।" यह कह, मंत्री तो घर चला गया और उसी दिनसे त्रैलोक्यसुंदरी पहले पिता और परिवारवालों की जितनी ही प्यारी थी, उतनी ही अप्रिय हो गयी। कोई उससे दो-दो बातें करना भी नहीं चाहता था, उसे भर नजर देखता तक नहीं था। वह अकेले ही अपनी माताके घरके पिछवाड़े एक गुप्तगृहमें रख दी गई। वहाँ पड़ी-पड़ी वह विचार करने लगी,—"मैंने पूर्व जन्ममें ऐसा कौनसा पाप किया था, जिससे मेरे नव विवाहित पति न जाने कहाँ चले गये और मुझे व्यर्थकी बदनामी उठानी

पडी ? अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह तो मेरे ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आ पहुँची !" इसी प्रकार सोचते-विचारते उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि जिनका मेरे साथ विवाह हुआ है, वह मेरे स्वामी अवश्य ही उज्जयिनी-नगरी मे चले गये है। कारण उस दिन मिठाई खानेके बाद उन्होंने कहा था कि, यदि मिठाईके ऊपरसे उज्जयिनीका जल मिलता तो क्याही अच्छा होता ! इस से तो यही सभव मालूम होता है, कि वे उज्जयिनी चले गये होंगे। अब यदि मैं किसी उपायसे वहाँ पहुँच सकूँ तो उनसे मिलकर अवश्य ही सुखी हो जाऊँगी। इस प्रकार विचार करती हुई वह, थोडी देरतक वहीं बैठी रह गयी।

एक दिन उसने अपनी मातासे कहा,—"माता ! तू ऐसा कोई उपाय कर जिससे पिताजी एक बार मेरी बात सुनलें।" परन्तु यह सुनकर भी, उसकी माताने उसका मान नहीं रक्खा। तब दूसरे दिन सुन्दरीने सिंह नामक एक सरदारको बुलाकर, उस पर अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसकी आदिसे अन्त तक सारी बातें सुन, मन-ही-मन बहुत कुछ सोच—विचार करनेके बाद सरदारने कहा,—"बेटी ! तू उतावली मत हो। मै अवसर देखकर राजा से तेरी सब बाते कह सुनाऊँगा और तेरी इच्छा पूरी करूँगा।" यह सुन, राजकुमारीको धैर्य हुआ।

एक दिन समय पाकर सिंहने बड़ी युक्तिके साथ राजासे कहा,—"राजन् आपकी पुत्री बेचारी इस समय बड़े कष्टमें है। उसका सम्मान करना तो दूर रहा, कमसे कम इतनी भी तो कृपा कीजिये, कि उसकी बाते सुन लीजिये।" यह सुन, राजा की आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होने सिंहसे कहा,—"सामन्त ! मेरी पुत्रीने किसी पर झूठा अपराध लगानेका अपराध किया है, इसी से इस जन्ममें उस पर कलंक लगा है और वह आपसे आप सुखकी जगह दुःख पा रही है। पर यदि वह मुझसे कुछ कहा चाहती हो तो भले ही मेरे पास आकर कहे, मै सुननेको तैयार हूँ।" इस प्रकार राजाकी आज्ञा पा, सामन्तने त्रैलोक्यसुन्दरीके पास आकर कहा,—"पुत्री ! जा, तू अपने पिताके पास जाकर जो कुछ कहना हो, कह सुना।" यह सुन त्रैलोक्यसुन्दरीने राजा के पास आकर कहा,—"पिताजी ! मुझे राजकुमारोंकीसी पोशाक मँगा दीजिये। यह सुन, राजाने सिंहसे कहा,—"सामन्त ! यह आफत की मारी क्या ऊट-पटाँग बक रही है ?" सामन्तने कहा,—"महाराज ! इसने जो कुछ कहा, वह ठीक ही कहा है। यह परिपाटी तो पहलेसे ही चली आ रही है। राजकुमारियाँ बड़े बड़े कार्योंका साधन करनेके लिये पुरुष-वेश धारण कर सकती हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है, इस लिये आप संशय न करे, प्रसन्नतासे राज-

कुमारीको पुरुषका वेश धारण करनेकी आज्ञा देदें।" यह सुन, सामन्तका वचन युक्तियुक्त मान, राजाने अपनी कन्याको पुरुषकी पोशाक मँगवा दी और उसकी रक्षाके लिये सिंह सामन्तको सैन्यके साथ राजकुमारीके संग जानेकी आज्ञा दी। इसके बाद राजकुमारीने कहा,—"यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं एक बड़े ही आवश्यक कार्यके लिये उज्जयिनी जाना चाहती हूँ। यदि वह कार्य सिद्ध हो गया तो मैं आने पर आपसे सारा हाल कह सुनाऊँगी।" यह सुन राजाने कहा,—"पुत्री! तू सानन्द चली जा, पर देखना ऐसा कोई काम न करना, जिससे अपने कुलमें दाग लगे।" यह कह, राजाने उसे जानेकी आज्ञा देदी।

तदनन्तर पुरुषका वेश धारण कर सुन्दरी पिताकी आज्ञा ले सिंह सामन्तकी बड़ी सेनाके साथ रात-दिन चलती हुई उज्जयिनीमें आ पहुँची। उसी समय लोगोंके मुँहसे वहाँके राजा वैरीसिंहने सुना कि, चम्पापुरीका राजकुमार यहाँ आ रहा है। इन दोनों राजाओंमें परस्पर बड़ी मैत्री थी, इस लिये यह सुनते ही वैरीसिंह उस पुरुषवेशधारिणी सुन्दरीके पास आ पहुँचे और उसका बड़े सम्मानसे आगत-स्वागत कर नगरीमें प्रवेश कराते हुए अपने महलमें ले गये। इसके बाद जब राजाने उसके यहाँ आनेका कारण पूछा, तब उसने कहा,—"पृथ्वीमें प्रसिद्ध और आश्चर्यजनक वस्तुओंसे भरे हुए आपके इस नगरको देखनेके कौतूहलसे ही मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ।" यह सुन राजाने कहा,—"राजकुमार! मेरे-तुम्हारे घरकासा नाता है। राजा सुरसुन्दर और मुझमें कोई अन्तर नहीं समझना।" यह सुन, वह राजपुत्री अपने सैनिकों और सवारियोंके साथ राजाके दिये हुए उस महलमें सुखसे रहने लगी। वहाँ रहते-रहते उसने एक बार अपने सेवकोंसे कहा, कि तुम लोग किसी स्वादिष्ट जलाशयका पता लगा लाओ। सेवकोंने पता लगाकर कहा, कि बस्तीसे पूर्वकी ओर एक स्वादिष्ट जलाशय है, यह मालूम होते ही वह सुन्दरी राजाकी आज्ञा ले, उसी दिशाकी ओर रास्तेमें एक मकान लेकर उसीमें रहने लगी।

एक दिन वह अपने मकानकी खिड़कीमें बैठी हुई थी, कि इसी समय उधरसे पानी पीनेको जाते हुए अश्वोंको देखकर, उसने अपने मनमें विचार किया, ये घोड़े तो मेरे पिताके ही मालूम होते हैं। यह विचार मनमें उठते ही उसने अपने सेवकोंको उनके पीछे लगा दिया और कहा,—"तुम लोग इन घोड़ोंके पीछे-पीछे जाकर देखो, कि ये कहाँ जाकर खड़े होते हैं और उस घरका पूरा पता, उसके मालिकका नाम आदि मालूम कर लाओ।" सेवकोंने ऐसा ही किया और स्थान आदि सब बातोंका पता लगा लाये। तदनन्तर मंगलकलशके कलाभ्यास करनेका हाल मालूम कर, त्रैलोक्यसुन्दरीने सिंह सामन्तसे कहा,—"आप किसी

उपायसे इन अश्वोंके पीछे-पीछे जाइये।" सिंहने कहा, "इन घोड़ोंके मालिककी चित्रशाला यहीं पास ही है। तुम एक दिन वहाँके अध्यापकको विद्यार्थियोंके साथ आकर, भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दे दो, फिर जैसा कुछ होगा, किया जायगा।" सुन्दरीने ऐसा करना स्वीकार किर लिया। भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर उसने उपाध्यायको निमन्त्रण दिया। ठीक समय पर उपाध्याय अपने सब विद्यार्थियोंके साथ आ पहुँचे। उन विद्यार्थियोंके मध्यमें अपने पतिको देख कर, त्रैलोक्यसुन्दरीके मनमें बड़ा ही आनन्द हुआ। तदनन्तर उसने हर्षके आवेशमें आकर अपना आसन और थाल इत्यादि मंगलकलशके लिये भेजा और उसकी बड़ी भक्ति की। सबको आदरके साथ भोजन कराकर उसने वस्त्र भी दिये और मंगलकलशको उसीके शरीरके दो सुन्दर वस्त्र दिये। इसके बाद उसने कलाचार्यसे कहा,—"आपके इन विद्यार्थियोंमें जो खूब अच्छी कहानी सुना सकता हो, वह मुझे एक कथा सुनाये।" यह सुन, मंगलकलशकी विशेष भक्ति हुई देख, डाहसे जले हुए सब विद्यार्थियोंने कहा,—"हमलोगोंमें मंगलकलश ही सबसे अधिक प्रवीण है, यही कथा सुनायेगा।" सबकी ऐसी बात सुन पण्डितने भी मंगलकलशको ही कथा सुनानेकी आज्ञा दी। पण्डितकी आज्ञा पाकर मंगलकलशने कहा,—"कोई कल्पित कथा सुनाऊँ या आप बीती कह सुनाऊँ?" यह सुन कुमार वेशधारिणी राजपुत्रीने कहा,—"कल्पित कथा छोड़ो, आप बीती घटना ही कह सुनाओ।" उसकी यह आवाज़ कानमें पड़ते ही मंगलकलशने सोचा,—"यह तो वही त्रैलोक्यसुन्दरी मालूम पड़ती है, जिसके साथ मैंने चम्पापुरीमें विवाह किया था। वही किसी कारण पुरुष वेश बनाकर यहाँ आयी हुई है।" यही सोच कर वह अपनी रामकहानी सुनाने लगा। आदि, मध्य और अन्तका अपना सारा चरित्र, सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा अपने घरसे हटाये जाने तकका हाल उसने कह सुनाया। यह सुन, राजकुमारीने बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा,—"कोई है? अभी इस झूठी बातें बनानेवालेको गिरफ्तार कर लो।" यह सुनते ही उसके सेवकोंने उसे गिरफ्तार करना ही चाहा, कि स्वयं उसने उन्हें रोका और मंगलकलशको घरके अन्दर ले गयी। वहाँ उसे एक आसन पर बैठाकर, उसने सिंह सामन्तसे कहा,—"मेरा जिनके साथ विवाह हुआ था, वे मेरे स्वामी यही हैं। अतएव अब बतलाइये, कि मैं क्या करूँ? शीघ्र विचार कर कहो।" सरदारने झटपट उत्तर दिया,—"यदि सचमुच यही तुम्हारे स्वामी हों, तो तुम इनको अंगीकार करो।" यह सुन, राजकुमारीने कहा,—"सरदार! यदि तुम्हारे मनमें कोई शंका हो तो तुम अभी इनके घर जाकर, मेरे पिताके दिये हुए थाल आदि

पदार्थोंको देखकर अपना संशय दूर कर सकते हो। जब राजकुमारीने इस सफाईके साथ यह बात कही, तब सिंह सामन्त मंगलकलशके घर गया और अपनी दिल-जमई कर, मंगलकलशके पिताको बुलाकर उसने उससे सारी कथा कह सुनायी। इसके बाद वह फिर राजकुमारीके पास चला आया। तदनन्तर सिंह सामन्त की सलाहसे स्त्रीवेश धारण कर, राजकुमारी मंगलकलशके घर गयी और उसकी धर्मपत्नीके समान रहने लगी।

उज्जयिनीके राजाने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने सेठको अपने पास बुलाया और सब हाल सुन बड़ा आश्चर्य अनुभव किया। तदनन्तर राजाकी आज्ञासे मंगलकलश उसी मकानमें अपनी पत्नीके साथ विलास करने लगा। इसके बाद त्रैलोक्य सुन्दरीने सिंह सामन्तको सब सैनिकोंके साथ चम्पापुरी भेज दिया और उसके साथ ही अपनी मर्दानी पोशाक भी वापिस दी। सिंह सामन्तने चम्पापुरीमें आकर राजासे सब बातें कह सुनायीं। राजाने सब हाल सुन, प्रसन्न होकर कहा,—"अहा, मेरी पुत्रीने कैसी कला-कुशलता दिख-लायी? और इस मंत्रीकी दुष्ट बुद्धिको तो देखो, कि इसने मेरी निर्दोष कन्याके सिर कितना बड़ा दोष मढ दिया!"

इसके बाद राजाने सिंह सामन्तको फिर उज्जयिनी भेजकर अपनी कन्या और जामाताको सादर बुलवा मँगाया और उनका भली भाँति आदर-सत्कार किया। तदनन्तर उस दुष्ट बुद्धि मंत्रीका सारा भण्डाफोड कर, उसकी सारी सम्पत्ति हरण कर ली और उसे वधभूमिमें ले जानेका हुक्म दिया। कोतवाल उसे गधे पर चढा कर बस्तीके सब छोटे-बडे रास्तोंमें घुमाता हुआ, वधभूमिमें ले गया। उस समय मंगलकलशने राजासे बडी विनती करके उसे छुटकारा दिलवा दिया। उसे छोड़नेकी आज्ञा देते हुए राजाने उनसे कहा,—"रे पापी! देख, मैं तुझे अपने दामादके कहने से छोड देता हूँ, पर तू अभी मेरे राज्यसे बाहर निकल जा।"

यह सुन, मंत्री उसी समय उस राज्यसे बाहर हो गया। राजाने कोई पुत्र न होनेके कारण मंगलकलशको ही अपना पुत्र माना और उसके माता-पिताको भी बड़े आदरसे वहीं बुलवा लिया। एक दिन राजाने मंत्री और सामन्त आदिकी सम्मतिसे बड़े धूम-धामके साथ, अपना राज्य मंगलकलशको दे डाला। तदनन्तर सुरसुन्दर राजाने यशोभद्र नामक एक सूरिसे चारित्र ग्रहण किया।

सुरसुन्दर राजाके दीक्षा ग्रहण करने पर, यह सुनकर कि उनके राज्य पर आजकल एक वणिक् जातिके पुरुषका अधिकार है, कई एक सीमा-प्रांतके राजा सेना समेत उस राज्यको हडपकर लेनेकी इच्छासे उस पर चढ़ आये। मंगल-

कलशने अपने पुण्यके प्रभावसे, उन सबको युद्ध-भूमिमें बड़ी आसानीसे परास्त कर डाला। तब तो उसके सभी शत्रु मित्र हो गये। वह सुखसे राज्यका शासन-पालन करने लगा। काल-क्रमसे त्रैलोक्य सुन्दरीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम यशःशेखर रखा गया। पुत्र-जन्मकी बधाईमें मंगलकलश राजाने अपने देशमें सर्वत्र जैनचैत्योंमें जिन-पूजा करायी और 'अमारीपडह' तथा 'रथ-यात्रा, आदि धर्म-कार्य करवाये।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें श्रीजयसिंह सूरि पधारे। यह सुन, मंगल-कलश राजा अपनी रानीके साथ भक्ति-भाव-पूर्वक गुरुकी वन्दना करने गया। उसने गुरुकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उनकी भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हुए पूछा,—"हे भगवन्! कृपा कर यह बतलाइये कि मेरे विवाहके समय मुझे इतनी विडम्बनामें क्यों पड़ना पड़ा और मेरी रानीके सिर कलङ्कका टीका क्यों लगा? यह हमारे किस कर्मके दोषसे हुआ?" सूरिने कहा,—"इस भरत-क्षेत्रमें क्षिति-प्रतिष्ठ नामक एक नगर है। उसमें सोमचन्द्र नामका एक कुलपुत्र रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था। दोनोंमें परस्पर बड़ी प्रीति थी। सोमचंद्र स्वभावसे ही सद्गुणी, सरल-हृदय और सब लोगोंमें माननीय हो रहा था। उसकी स्त्री भी वैसी ही गुणवती थी। उसी नगरमे जिनदेव नामका एक श्रावक रहता था।-उसके साथ सोमचन्द्रकी बड़ी गाढ़ी मित्रता थी। एक दिन जिनदेवने अपने पास बहुत धन-द्रव्य रहते हुए भी अधिक उपार्जन करनेकी इच्छासे परदेश जानेका विचार किया और सोमचन्द्रसे आकर कहा,—"मित्र! मैं धन कमानेके लिये परदेश जाना चाहता हूँ, इसलिये मैं तुम्हे जो धन दिये जा रहा हूँ, उसे विधिके साथ सात क्षेत्रोंमें व्यय करना। इससे जो पुण्य होगा, उसका छठा भाग तुम्हे भी प्राप्त होगा।" यह कह उसने दस हज़ार मुहरें सोमचन्द्रके हाथमें दे, परदेशकी यात्रा कर दी। उसके जाने पर सोमचन्द्रने शुद्ध-चित्तसे उसके दिये हुए धनको विधि-पूर्वक उचित स्थानमें व्यय किया। इसके सिवा उसने अपने पासका भी बहुतसा धन धर्मके कार्योंमें व्यय किया। इससे उसे बड़ा पुण्य हुआ। उसकी पत्नीने भी उस धनको खर्च करनेमें बाधा नहीं दी, इसलिये वह भी पुण्य-भागिनी हुई।

उसी नगरमें श्रीदेवीकी एक सहेली रहती थी, जिसका नाम भद्रा था। वह नन्द सेठकी पुत्री और देवदत्तकी स्त्री थी, कुछ दिन बीतने पर, कर्मके दोषसे देवदत्त कोढ़ी हो गया। इससे उसकी स्त्री भद्रा बड़ी ही दुःखित हुई। एक दिन उसने अपनी सखी भद्रासे कहा,—"हे सखी! न जाने किस कर्मके दोषसे मेरे स्वामी कोढ़ी हो गये हैं।" यह सुन, श्रीदेवीने हँसीके तौर पर कहा,—"सखी!

इसमें सन्देह नहीं, कि तेरे ही अंगोंके स्पर्शसे, तेरा स्वामी कोढ़ी हो गया है। तू बड़ी पापिनी है। जा, तू मेरी आँखोंके सामनेसे दूर हो जा—मुझे अपना मुँह मत दिखा। अपनी सखीके ऐसे वचन सुन, भद्राके मनमें बड़ा भारी खेद हुआ—क्षण भरके लिये उसके चेहरे पर स्याही दौड़ गयी। कुछ ही क्षण बाद श्रीदेवीने कहा,— "सखी! बुरा न मानना। मैंने यह बात दिल्लगीसे कही है।" यह सुन, भद्राके मनका खेद दूर हो गया।

सोमचंद्रने मुनियोंके संगके प्रभावसे, अपनी भार्याके साथ ही जैन-धर्म अंगीकार कर, उसका शुद्ध रीतिसे पालन करते हुए, अंतमें समाधि-मरणसे मृत्यु पायी और सौधर्म नामक पहले देवलोकमें जाकर, पाँच पल्योपम आयुष्यवाला देव हो गया। हे राजन्! उसी सोमचंद्रका जीव देवलोकसे आकर, मंगलकलश हुआ और श्रीदेवीका जीव भी वहींसे आकर, त्रैलोक्यसुंदरी हुई। तुमने सोमचंद्रके भवमें दूसरेके दिये हुए द्रव्यसे पुण्य कमाया था, इसीलिये तुमने इस जन्ममें दूसरेके नाम पर इस राजकन्यासे विवाह किया और त्रैलोक्यसुंदरीने श्रीदेवीके भवमें हँसीसे अपनी सखीको कलंक लगाया था, इसीलिये इस भवमें इसे भी कलंक लगा।"

इस प्रकार गुरु महाराजके मुखसे अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुन, राजा और रानीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद वे राजर्षि क्रमशः सभी सिद्धान्तोंके पारगामी विद्वान हो गये। गुरुने उन्हें आचार्यके पद पर स्थापित किया और त्रैलोक्यसुंदरीको प्रवर्त्तिनीके पद पर बैठाया। काल पाकर वे दोनों ही शुभ ध्यान करते हुए काल-धर्मको प्राप्त हुए और ब्रह्मदेव-लोक नामक पाँचवें स्वर्गमें देव होकर जा विराजे। वहाँ से पुनः आकर मनुष्य-जन्मके तीसरे भवमें उन दोनोंने मोक्ष-पदवी पायी।"

मङ्गलकलश कथा समाप्त।

इस प्रकार धर्म-कथाका श्रवण कर, श्रीषेण राजाको प्रतिबोध हुआ। उन्होंने गुरुसे समकित पूर्वक श्रावक-धर्म ग्रहण किया। इसके बाद सूरि कहीं और विहार कर गये। श्रीषेण राजा अपने राज्य और जैनधर्मका पालन बड़े यत्नसे करने लगे। राजाके ही उपदेशसे उनकी अभिनन्दिता नामक रानीने खासकर वह धर्म अंगीकार कर लिया और दूसरी रानीने भी सुख सौभाग्य प्राप्त किया।

एक समयकी बात है, कि कौशाम्बीके राजा बलभूपने अपनी रानी श्रीमतीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकान्ता नामक अपनी पुत्रीका विवाह श्रीषेण राजाके पुत्र इंदुषेणके साथ करनेके विचारसे स्वयंवराके तौर पर वहाँ भेज दिया। उस समय

उस राज-कन्याको अत्यन्त रूपवती देख, इन्दुषेण और बिन्दुषेण नामक दोनों राजकुमार उससे व्याह करनेकी इच्छासे देवरमण नामक उद्यानमें जा, बख्तर पहन कर, परस्पर युद्ध करने लगे। बहुतोंने उन्हें रोका-थाका, पर वे युद्धसे पीछे न हटे। उस समय अल्प कषायवाले, निर्मल मनवाले, जिनेश्वरकी दृढभक्तिवाले तथा प्रिय वचन बोलनेवाले श्रीषेण राजा जब किसी तरह उन परस्पर शत्रुकी भाँति युद्ध करनेवाले राजकुमारोंको युद्धसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने मन-ही-मन विचार किया,—"यह देखो, विषयकी लम्पटता, कर्मकी विचित्रता और मोहकी कर्कशता कैसी आश्चर्यजनक होती है! मेरे इतने बड़े बुद्धिमान् पुत्र भी किस प्रकार एक स्त्रीके लिये आपसमें युद्ध कर रहे हैं! इनकी यह दुष्टता देख, मुझे तो ऐसी लज्जा हो रही है, कि सभासदोंके सामने मुँह दिखानेका भी जी नहीं चाहता। मै कैसे उन्हें अपना मुँह दिखाऊँगा? इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही ठीक है। कहा भी है, कि प्राण दे देना अच्छा, पर मान गँवाना अच्छा नहीं। क्योंकि मृत्युसे तो क्षण भरका दु:ख होता है, परन्तु मान-भग होनेसे तो हर घडी दु:ख होता रहता है।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाने अपनी रानियों पर भी इस विचारको प्रकट किया। इसके बाद राजाने पंचपरमेष्ठी मन्त्रका स्मरण करते हुए, दोनों स्त्रियोंके साथ विष-मिश्रित कमलको सूँघ कर प्राणत्याग कर दिया। उसी समय सत्यभामाने भी कपिलके डरके मारे उसी रीतिसे प्राणत्याग कर दिया। वे चारों जीव मरकर जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रके अन्तर्गत उत्तर कुरुक्षेत्रमें जुड़ैले बालककी तरह उत्पन्न हुए। श्रीषेण और उनकी पहली स्त्री एक साथ पैदा हुए और दूसरी जुड़ैली बालिकाएँ सिंहनन्दिता तथा सत्यभामा हुईं।

इधर श्रीषेण राजाकी मृत्यु हो जानेके बाद एक चारण-मुनिने वहाँ आकर युद्ध करते हुए इन्दुषेण तथा बिन्दुषेणसे कहा,— "हे राजकुमारों! तुम दोनों ही बड़े कुलीन और सुन्दर हो, पर क्या यह निष्ठुर कार्य करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम्हारी इस दुष्ट चेष्टाको देखकर ही तुम्हारे माता-पिता विष सूँघकर मर गये। अब तो तुम अपने माता-पिताके उपकारका बदला किसी तरह नहीं दे सकते। कहा है, कि—

**अस्मिन् जगति महत्यपि, न किञ्चिदपि वस्तु वेधसा विहितम्।**
**अतिशयवत्सलताया, भवति यतो मातुरूपकारः ॥ १ ॥**

*'इस इतने बड़े संसारमें भी विधाताने ऐसी कोई वस्तु नहीं बनायी, जिससे अत्यन्त वात्सल्यमयी माताका प्रत्युपकार किया जा सके।'*

अतएव हे राजकुमारी! तुम दोनों एक तुच्छ स्त्रीके लिये अपने परम उपकारी माता-पिताकी मृत्युके कारण बने, इसलिये तुम्हें बार-बार धिक्कार है।"

मुनिकी यह बात सुन, उन दोनोंकी आँखें खुलीं और उन्होंने युद्धसे हाथ खींच, बड़े आनन्दसे उस श्रेष्ठ मुनिकी प्रशंसा करनी आरम्भ की। "तुम्हीं हमारे गुरु, पिता और बन्धु हो—तुमने हमको बड़ी भारी दुर्गतिसे बचाया" यह कहते हुए उन्होंने उस चारण-मुनिको प्रणाम किया और उस राजकन्याको छोड़कर दोनों अपने घर चले आये। यहाँ आकर उन्होंने अपने माता-पिताके मरण-कार्य सम्पन्न किये। इसके बाद अपने किसी सम्बन्धीको राजका भार सौंप, वे दोनों ही धर्मरुचि नामक गुरुके पास चले आये और अन्य चार हज़ार मनुष्योंके साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। तदनन्तर बहुत दिनों तक दीक्षाका पालन कर, विविध प्रकारसे तपस्या करते हुए अपने कर्मोंका क्षय कर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, वे मोक्षको प्राप्त हुए।

इधर उत्तर-कुरुक्षेत्रके श्रीषेण आदि चारों जुड़ले तीन पल्योपम आयुष्यको पूर्ण कर, सौधर्म नामक देवलोकमें जा, तीन पल्योपम आयुष्यवाले देवता हुए।

# द्वितीय-प्रस्ताव

इस भरत क्षेत्रके वैताढ्य-पर्वतपर उत्तर श्रेणीके अलङ्कारके समान रथनूपुर चक्रवाल नामका नगर है। उसमें ज्वलनजटी नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम वायुवेगा था। उसीके गर्भसे उत्पन्न, अर्क (सूर्य) द्वारा स्वप्नमें सूचित किया हुआ, अर्ककीर्त्ति नामका एक पुत्र भी उस राजाके था। वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसे युवराजके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उस राजा को चन्द्रमाकी रेखाके उत्तम स्वप्नसे सूचित एक पुत्री हुई, जिसका नाम स्वयंप्रभा रखा गया। क्रमशः वह बालिका बड़ी होने लगी।

एक समयकी बात है, कि उस नगरके उद्यानमें अभिनन्दन और जगतनन्दन नामक दो श्रेष्ठ विद्याधर मुनि आ पहुँचे। उन्हीं लोगोंके पास आकर स्वयंप्रभाने धर्मदेशना सुनी और शुद्ध समाचारी सहित श्राविका हो गई। इसके बाद वे दोनों मुनिश्रेष्ट वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये। एक दिन स्वयंप्रभाने किसी पर्व दिवसको पौषध व्रत ग्रहण किया। शुद्ध रीतिसे पौषध-व्रतका पालनकर पारणाके दिन, प्रातकाल ही गृहप्रतिमाका पूजनकर, उस बालिकाने पिताके पास जाकर उन्हे शेषा* अर्पित की। राजाने उसे सिरपर चढ़ाकर कन्याको अपनी गोद में बैठा लिया। उसका रूप और वयस देख राजा मनही-मन-विचार कर करने लगे,—"देखता हूँ कि मेरी यह कन्या विवाह करने योग्य होगई, तो फिर इसके योग्य कौनसा वर हो सकता है? कहा है कि—

कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च ।
वरं गुणाः सप्त विलोकनीयाः, ततः परं भाग्यवशा हि कन्या ॥

*अर्थात्—कुल, शील, सनाथता,* विद्या, धन, शरीर, वयस ये सात बातें वरमें देख लेनी चाहियें । यही सब देख-सुनकर कन्याका विवाह कर देना चाहिये । इसके बाद तो कन्याका जैसा भाग्य होगा, वैसा होगा ।*

इस प्रकार विचार कर राजाने अपनी कन्यासे कहा,—"बेटी ! अब जाकर तू पारणा करले ।" यह सुन, राजकुमारी अपने स्थानको चली गयी । इसके बाद राजाने अपने मन्त्रियोंको बुलवाकर अपने मनकी बात कह सुनायी । सब सुनकर मन्त्रीगण विचार करने लगे । सोच-विचारकर सबसे पहले सुश्रुत नामके मन्त्रीने कहा,—"हे स्वामी ! रत्नपुर नगरमें मयूरग्रीव राजाका पुत्र अश्वग्रीव नामक विद्याधरेन्द्र राजा है । वह भारतके तीन खण्डोंपर राज्य करता है । वही आपकी पुत्रीके योग्य वर है ।"

बहुश्रुत नामक मन्त्रीने कहा,—"यह बात मुझे तो अच्छी नहीं लगती ; क्योंकि अश्वग्रीव बूढ़ा है । इसलिये कोई दूसरा ही वर ढूँढ़ना चाहिये, जो कुल, शील और वय इत्यादिमें समान हो ।"

तदनन्तर सुमति नामक मन्त्रीने कहा,—"हे राजन् ! उत्तर श्रेणीमें प्रभङ्करा नामकी नगरी है । उसमें मेघरथ नामका राजा है । उसके मेघमालिनी नामकी स्त्री है । उसके विद्युत्प्रभा नामका पुत्र और ज्योतिर्माल्या नामकी पुत्री है । उस विद्युत्प्रभाको तो अपनी पुत्रीका स्वामी बनाइये और ज्योतिर्माल्या आपके राजकुमार अर्ककीर्त्तिकी पत्नी होने योग्य है, इसलिये उसको उसके पितासे माँग लीजिये ।"

इसके बाद श्रुतसागर नामक मन्त्रीने कहा,—"इसी समय राजकुमारीका स्वयंवर करना चाहिये, उस समय जो देश विदेशके राजकुमार आयेंगे, उनमेंसे कोई-न-कोई योग्य वर मिल ही जायेगा ।"

* यह देखना चाहिये, कि वरके माँ-बाप, भाई-बन्धु आदि हैं या नहीं । यदि हों, तो वह सनाथ कहा जायेगा ।

इस प्रकार सब मन्त्रियोंकी कही हुई बातें सुनकर, राजाने उन्हें हृदयमें रख लिया और उन्हें विदा कर दिया। इसके बाद, दूसरे ही दिन, राजाने संभिन्नश्रोत नामक एक श्रेष्ठ ज्योतिषीको बुलाकर, उससे स्वयंप्रभाके वरका स्वरूप पूछा। यह सुन, ज्योतिषीने कहा,—"हे राजन्! पोतनपुर नामक नगरमें प्रजापति नामका राजा है। उसके त्रिपृष्ठ और अचल नामके दो पुत्र हैं। वे इस भरतक्षेत्रमें वासुदेव और बलदेव होनेवाले हैं और इस अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेवको मारेंगे। साथही यह बात मैंने साधुके मुँहसे सुनी है और मेरे ज्योतिष शास्त्रसे भी ऐसाही मालूम होता है, कि त्रिपृष्ठ वासुदेव तुम विद्याधरोंका स्वामी भी होनेवाला है। यह स्वयंप्रभा उसीकी पटरानी होगी।"

यह बात सुन, राजा उस ज्योतिषी पर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे बड़े आदर-सम्मानके साथ विदा किया।

इसके बाद ज्वलनजटी विद्याधरने मारीच नामका एक दूत पोतनपुर भेजा। उसने वहाँ जा, प्रजापति राजासे कहा,—"हमारे स्वामी राजा ज्वलनजटी अपनी स्वयंप्रभा नामक पुत्रीका विवाह आपके पुत्र त्रिपृष्ठके साथ करना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।"

यह सुन, राजा प्रजापतिने कहा,—"यह बात तो मेरे भी मनोनुकूल है।" यह कह, राजाने दूतका खूब आदर-सत्कार किया, इसके बाद दूतने अपने राजाके पास पहुँचकर सारा हाल कह सुनाया।

इधर प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव राजाने पहलेसे ही भाग्यका हाल जान लेनेके लिये अश्वबिन्दु नामके ज्योतिषीको बुलाकर पूछा,—"हे निमित्तज्ञ! यह तो बतलाओ, कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी?" निमित्तज्ञने कहा,—"राजन्! जो मनुष्य तुम्हारे चण्डवेग नामक दूतको परास्त कर देगा और तुम्हारे शालि-क्षेत्रका विनाश करनेवाले सिंहको मार गिरायेगा, वही तुम्हारा भी नाश करेगा।" यह सुन, राजाने उस ज्योतिषीका आदर-सत्कार कर, उसे जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय प्रतिवासुदेवने लोगोंके मुँहसे सुना, कि प्रजापति राजाके

दोनों पुत्र बड़े ही बलवान् और उद्धत हैं। यह सुनकर उसने अपने चण्डवेग नामक दूतको राजा प्रजापतिकी सभामें भेजा। जिस समय राजा प्रजापतिकी सभामें नाट्य और सङ्गीत हो रहे थे, उसी समय वह दूत वहाँ आ पहुँचा। इससे सभामें बैठे हुए सभी लोग बड़े व्याकुल हो गये। इस प्रकार नाटकके रङ्गमें भङ्ग पड़ते देख, त्रिपृष्ठ और अचल नामक दोनों राजकुमारोंको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ, परन्तु उस समय वे उस क्रोधको पी गये और मन-ही-मन समझ-बूझकर चुप हो रहे।

इसके बाद राजा प्रजापतिने प्रतिवासुदेवके दूतका आदर किया और उसकी बातें सुन, उसे विदा किया। वह घर लौट चला। इसी समय राजकुमारोंके सेवकोंने उनके पास आकर कहा,—"राजासे आदर-मान पाकर वह दूत नगरकी ओर चला जा रहा है।" यह सुन, दोनों राजकुमार उसके पीछे चले और उसके पास पहुँच, उसे इस बातकी याद दिलाकर, कि तूने हमारे रङ्गमें भङ्ग डाल दिया है, उसकी लात-घूँसोंसे खूब मरम्मत की। अपने पुत्रोंकी इस कारवाईका समाचार पाकर प्रजापति राजाने झटपट उस दूतके पास आकर उससे माफ़ी माँगी और पुनः उसे वस्त्र इत्यादि देकर सम्मानित किया, जिससे वह सन्तुष्ट हो गया। कहा भी है, कि—

> को न याति वशं लोके, मुखे पिण्डेन पूरितः।
> मृदङ्गो मुखलेपेन, करोति मधुरध्वनिम् ॥ १ ॥

*अर्थात्—"मुँहमें पिंड भर देने पर, कौन वशमें नहीं हो जाता? देखो, मृदंगके मुँहपर आटा लगा देनेसे, वह भी मधुर ध्वनि सुनाने लगता है।"*

इधर प्रतिवासुदेवके चरोंने उसे चण्डवेगके पराभवकी बात पहले ही आकर सुना दी। कहा भी है, कि—

> चरैः पश्यन्ति राजानो, धनुर्गन्धेन पश्यति।
> पश्यन्ति ब्राह्मणा वेदै-श्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ १ ॥

*अर्थात्—"राजा लोग चरोंके द्वारा देखा करते हैं; गाय गन्धके*

*द्वारा देखती है ; ब्राह्मण वेदोंके द्वारा देखते हैं और अन्य मनुष्य आँखोंसे देखते हैं।"*

इसके बाद दूत भी वहाँ आ पहुँचा। राजाधिराजको तो मेरा सारा हाल पहलेही मालूम हो गया होगा, यही सोचकर उस दूतने उनसे सारी बातें सच-सच कह डालीं। इसके बाद बोला,—"हे महाराज! यह तो उन बालकोंकी चपलता मात्र थी ; परन्तु प्रजापति राजाने तो आपकी आज्ञाका बाल बराबर भी उल्लंघन नहीं किया ; इस लिये आपको उनपर क्रोध नहीं करना चाहिये।" यह सुन, राजेन्द्रने मौन धारण कर लिया।

राजाके शालिके बहुतसे क्षेत्र थे, परन्तु उनमे सिंहका उपद्रव भी बहुत हुआ करता था। इसीलिये प्रत्येक वर्ष कोई न-कोई राजा उसकी आज्ञाके अनुसार वहाँ आकर उन क्षेत्रोंकी रक्षा किया करता था। इस वर्ष प्रजापति राजकी बारी न होनेपर भी अश्वग्रीव राजाने उसके पास दूत भेजकर उसीको क्षेत्र-रक्षाका भार दिया। यह सुन, प्रजापति राजा चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन विचार करने लगे। इसी समय उस कठिन आज्ञाकी बात सुन, त्रिपृष्ठ और अचलने पिताके पास आकर कहा,—"हे स्वामिन्! आप चिन्ता न करे। आपका यह काम हमलोग करेंगे। आप निश्चिन्त रहें।"

यह कह, वे दोनों बलवान् राजकुमार शालि-क्षेत्रमे जा पहुँचे। वहाँके रक्षकोंको उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा,—"सब राजा लोग इन शालिक्षेत्रोकी रखवाली करनेके लिये अपने सैनिकों और वाहनोंके साथ आते और चारों ओरसे उनका पहरा बैठा देते हैं, तब कहीं रक्षा हो पाती है। परन्तु तुम लोग तो बड़ेही विचित्र रक्षक मालूम पड़ते हो ; क्योंकि न तो तुम्हारे शरीर ही बख्तरसे ढके हुए हैं, और न तुम अपने साथ सैन्य-परिवारही लाये हो।"

यह सुनतेही त्रिपृष्ठने कहा,—"भाइयों! पहले तुम लोग हमें उस

ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पड़ा। इतने में बडी फुर्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुँहमें डाल, उसके दोनों होंठ दोनों हाथोंसे पकड़ कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड़डाला। (पृष्ठ २६)

सिंहको दिखला दो, जिससे हम यह रखवालीकी बला सब राजाओंके सिरसे आजही टाल दें।"

यह सुन, उन रखवालोंने गिरि-गुहामें पड़े हुए सिंहको उन्हें दिखला दिया। उसे देखकर त्रिपृष्ठ रथपर सवार हो, उस गुफाके द्वारके पास पहुँचा। रथकी घरघराहट सुनतेही सिंह जग पड़ा और अपने मुख-रूपी गुफाको खोले हुए गुफाके बाहर निकल आया। उस समय सिंहको पैदल चलते देख, त्रिपृष्ठ भी रथसे नीचे उतर आया और उसे वेहथियार देख, आप भी अपना हथियार नीचे डाल दिया। कुमारकी यह हरकत देखकर सिंहको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! एक तो आश्चर्यकी बात यही है, कि यह राजपुत्र यहाँ अकेला ही आया है। दूसरी बात अचरजकी यह हुई, कि यह रथसे नीचे उतर पड़ा। तीसरे, यह भी कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं, कि इसने अपने हाथका खड्ग भी फेक दिया। अच्छा रहो, मैं इसे अपनी अवज्ञाका अभी मजा चखाता हूँ।" ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पड़ा। इतनेमें बड़ी फुर्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुँहमें डाल, उसके दोनो होंठ दोनों हाथोंसे पकड़ कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड डाला—उसका शरीर दो टुकड़े होकर भूमिपर गिर गया और वह इसी आनपर क्रोधके मारे काँपने लगा, कि मुझे एक सामान्य मनुष्यने मार डाला। यह देख, राजकुमारके सारथिने कहा,—"हे सिंह! यह राजकुमार नरसिंह है और तू पशुसिंह है। इसलिये जब सिंहने ही सिंहको मारा, तब तुम क्यों क्रोध कर रहे हो?" उसकी यह बात सुन, सिंह प्रसन्न हो गया और मरकर नरकको प्राप्त हुआ। इसके बाद प्रजापतिके उन पुत्रोंने उस सिंहका चमड़ा प्रतिवासुदेवके पास भेजकर विद्याधरकी जुबानी कहला भेजा, कि हे अश्वग्रीव महाराज! अब आप हमारी कृपासे बड़ी आनन्दके साथ इस शालिका भोजन कीजिये। अश्वग्रीवने उस चमड़ेको देख और उनकी कहलवायी हुई बात सुन कर

अपने मनमें विचार किया,—"जब यह इतना बलवान है, तब तो मेरे साथ युद्ध भी कर सकता है।" ऐसा विचार कर वह मौन रह गया।

एक समयकी बात है, कि अश्वग्रीव राजाने राजकुमारी स्वयप्रभाकी सुन्दरताका वृत्तान्त सुनकर ज्वलनजटीसे उसकी याचना की। यह सुन, ज्वलनजटीने दूतके मुँहसे उसे कुछ उत्तर कहला भेजा और उसे शांत कर दिया। इधर गुप्त रीतिसे अपनी कन्याको पोतनपुर ले जाकर उसने ज्योतिषीके कहे अनुसार राजकुमार त्रिपृष्ठके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद हरिश्मश्रु नामक मन्त्रीने किसीसे स्वयंप्रभाका विवाह हो जानेकी बात सुनकर अपने मालिक राजा अश्वग्रीवसे यह बात कह सुनायी। इसपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने हुक्म दिया,—"मन्त्री तुम अभी त्रिपृष्ठ, अचल और मायावी ज्वलनजटीको बाँधकर मेरे पास ले आओ।" सचिवने अश्वग्रीवके हुक्मकी तामिल करनेके लिये उधरको दूत रवाना किया। उस दूतने पोतनपुर जाकर गर्विष्ट वचनोंसे ज्वलनजटीसे कहा,—"अरे मूर्ख! तू मेरे स्वामीको अपनी कन्यारत्न दे डाल। क्या तू नहीं जानता, कि मेरे स्वामी सब प्रकारके रत्नोंके आधार हैं? कहा भी है, कि—

"मणिर्मेदिनी चन्दनं दिव्यहेति-र्वरं वामनेत्रा गजो वाजिराज।
विनाभूभुजं भोगसम्पत्समर्थं, गृहे युज्यते नैव चान्यस्य पुंस.॥ १॥"

*अर्थात्—"मणि, पृथ्वी, चन्दन, दिव्यशस्त्र मनोहर स्त्री, उत्तम गज और श्रेष्ठ अश्व आदि उत्तम पदार्थ भोगकी सम्पत्तियोंसे भरे हुए राजाके सिवा और किसीके घरमें शोभा नहीं पाते॥"*

यह कह, जब वह दूत चुप हो गया, तब ज्वलनजटीने कहा,—"हे दूत! मैं तो अपनी लड़कीका विवाह त्रिपृष्ठके साथ कर चुका। इसलिये अब तो वही उसका मालिक है। मेरा उसपरसे अधिकार जाता रहा।"

यह सुन, वह दूत त्रिपृष्ठके पास चला गया। वहाँ त्रिपृष्ठने उससे कहा,—"हे दूत! मैंने इस कन्याके साथ विवाह किया है। अब यदि

तुम्हारे स्वामी इसकी इच्छा करते हैं, तो मैं पूछता हूँ, कि क्या उन्हें अपना जीवन भारी मालूम पड रहा है? यदि ऐसी बात हो, तो जाओ, अपने स्वामीसे कह दो, कि यदि उनमें कुछ भी बल-पराक्रम हो, तो तुरत यहाँ चले आयें।"

दूतने राजा अश्वग्रीवके पास पहुँच कर ठीक यही बातें ज्यों-की त्यों कह सुनायीं। सुनतेही क्रोधमें आकर उसने अपने विद्याधर-वीरोंको शत्रुका संहार करनेके लिये भेजा। स्वामीके भेजे हुए उन वीरोंने पोतनपुर पहुँचकर प्रभुकी प्रेरणाके अनुसार युद्ध करना आरम्भ किया; परन्तु त्रिपृष्ठने बात-की-बातमें उन सबको परास्त कर दिया। इसके बाद त्रिपृष्ठ विद्याधरोंकी सेना साथ लिये हुए अपने ससुरके नगरमें आ पहुँचा। अश्वग्रीव भी अपनी सारी सेना समेत वहीं आधमका। फिर तो दोनों मुख्य सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। विद्याधरगण अपनी विद्याके बलसे पिशाच, राक्षस और सिंह आदिके स्वरूप धारण करने लगे। इससे त्रिपृष्ठकी सेना बहुत डरी और नष्ट सी हो गयी। इतनेमें त्रिपृष्ठकुमारने रथपर आरूढ़ हो, अपने खेचरोंको साथ लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। पहले तो उसने शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनतेही उसकी सारी सेना सज्जित हो गयी और शत्रुकी सेना हारने लगी। यह देख, अश्वग्रीव भी अपने रथपर सवार हो, त्रिपृष्ठके सामने आकर युद्ध करने लगा। अश्वग्रीवने जिन-जिन दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको त्रिपृष्ठने बात-की-बातमें उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अन्धकारका नाशकर देता है। अब तो अश्वग्रीवने ऊबकर त्रिपृष्ठपर एक भयङ्कर चक्र चलाया। वह चक्र त्रिपृष्ठकी छातीसे आकर चिपक गया और अश्वग्रीवके पास न लौटकर वहीं पड़ा रहा। त्रिपृष्ठने शीघ्रही उस चक्रको अपने हाथमें लेकर अश्वग्रीवसे कहा,—"रे अश्वग्रीव! तू अभी मेरे सामने हाथ जोड़कर प्रणाम कर और घर जाकर सुखसे जीवन व्यतीत कर।" यह सुन, अश्वग्रीवने कहा,—"वैरीको प्रणाम करनेसे तो मर जाना कहीं अच्छा है।" यह सुन, त्रिपृष्ठने उसपर वह चक्र

छोड़ दिया, जिससे उसका सिर कटकर गिर पड़ा। वासुदेवके हाथों प्रतिवासुदेवका मरण होनाही इस संसारकी रीति है।

सुदर्शन नामका वह चक्र-रत्न अश्वग्रीवका मस्तक छेदन कर त्रिपृष्ठके पास लौट आया। उसी समय देवताओंने आकाशसे त्रिपृष्ठके मस्तक-पर फूलोंकी वर्षा की और कहा,—"यह त्रिपृष्ठ आजसे इस भरतक्षेत्रका वासुदेव कहलायेगा।" इसके बाद त्रिपृष्ठ वासुदेवने दक्षिण भारतके तीन खण्डोंको जीतकर उनमें अपनी हुकूमत चलायी और बायें हाथसे कोटि-शिला उत्पाटन कर छत्रकी तरह मस्तकपर धारण करके ही छोड़ा। इसके अनन्तर विद्याधरों और नरेन्द्रोंने उसे वासुदेव मानकर उसका पट्टाभिषेक किया। वासुदेवने ज्वलनजटीको विद्याधरोंका अधिपति बना दिया। त्रिपृष्ठकी आज्ञासे विद्युत्प्रभाकी बहन ज्योतिर्माला अर्क-कीर्त्ति कुमारको व्याही गयी। इसके बाद तीन खण्डोंके स्वामीके रूपमें त्रिपृष्ठने अपने नगरमें प्रवेश किया। उसके सोलह सहस्र रानियाँ हुईं, जिनमें स्वयंप्रभा ही मुख्य पटरानी और राजाकी अत्यन्त प्यारी बनी रही।

इधर श्रीषेण राजाका जीव सौधर्म नामक देवलोकसे च्युत होकर अर्ककीर्त्ति राजाकी रानी ज्योतिर्मालाके गर्भरूपी सरोवरमें उत्पन्न हुआ। उस समय माताने स्वप्नमें अत्यन्त तेजस्वी सूर्यको देखा। समय पूरा होने पर रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताने बड़ी धूमधामसे उत्सव मनाया और पुत्रका नाम अमिततेज रखा। वह क्रमसे बड़ा होने लगा। एक दिन अर्ककीर्त्तिके पिता ज्वलनजटीने अभिनन्दन नामक मुनिसे दीक्षा ले ली। इसके बाद सत्यभामाका जीव भी सौधर्म नामक देवलोकसे च्युत होकर उसी राजा अर्ककीर्त्तिकी रानी ज्योतिर्मालाकी कोखमें पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुआ। उस समय उसकी माताने स्वप्नमें ताराओंसे शोभित रात्रि देखी। क्रमसे काल पूरा होनेपर उसे पुत्री पैदा हुई। स्वप्नके ही अनुसार उसका नाम सुतारा रखा गया। धीरे-धीरे वह बालिका युवावस्थाको प्राप्त हुई। अभिनन्दिताका जीव स्वर्गसे च्युत

होकर त्रिपृष्ट वासुदेवकी रानी स्वयंप्रभाके उदरमें पुत्रके रूपमें आया। उस समय उसकी माताने स्वप्नमें लक्ष्मीदेवीका अभिषेक होता हुआ देखा। इसीलिये जब उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नाम 'श्रीविजय' रखा गया। इसके बाद त्रिपृष्ट वासुदेवको उसी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे 'विजयभद्र' नामका एक दूसरा पुत्र भी हुआ। सिंहनन्दिताका जीव स्वर्गसे च्युत होकर उसी राजा त्रिपृष्टकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे पुत्री-रूपमें उत्पन्न हुआ। उस कन्याका नाम ज्योतिष्प्रभा रखा गया। वह भी क्रमशः युवावस्थाको प्राप्त हुई।

त्रिपृष्टने ज्योतिष्प्रभाके लिये स्वयंवर रचाया। दूत भेजकर राजाओंको निमन्त्रित किया गया। उसी समय अर्ककीर्त्ति राजाने वासुदेवके पास अपने प्रधान मन्त्रीको भेजा। उसने वासुदेवके पास आकर कहा, "हे देव! मेरे स्वामीने यह कहला भेजा है, कि यदि आपकी आज्ञा हो, तो उनकी पुत्री सुताराको भी इसी स्वयंवरमें अपने लिये वर चुननेका अवकाश दिया जाये।" यह सुन, वासुदेवने कहा,—"बस, तुम जाकर उसे झटपट भेजही दो। मेरे और अर्ककीर्त्तिके बीच बिलकुल घरौआ है—हम दोनों एक दूसरेसे अलग नहीं हैं।"

इस प्रकार उसकी आज्ञा पाकर राजा अर्ककीर्त्ति अपनी कन्या और कुमार अमिततेजके साथ वहाँ आ पहुँचा। वासुदेवने उसकी बड़ी आवभगत की। तदनन्तर वासुदेवने एक अच्छा दिन देखकर स्वयंवरका मण्डप बनवाया। उसमें बहुतेरे मञ्च स्थापित किये गये। भिन्न भिन्न राजकुमारोंके नामसे अलग-अलग आसन रखवाये गये। इसके बाद सब राजा राजकुमार बुलवाये गये। वहाँ आकर सब अपनी-अपनी जगहपर बैठ गये। उस मण्डपमें विष्णु और बलभद्र भी मुख्य स्थान पर बैठ गये। सबके यथायोग्य आसन ग्रहण कर लेनेके बाद स्नानकर श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत पुष्प और अंगराग धारण किये, सुन्दर पालकियों पर चढ़ी हुई ज्योतिष्प्रभा और सुतारा नामक दोनों राज-कुमारियाँ स्वयंवर-मण्डपमें आयीं। पालकीसे नीचे उतर, सब राजे

राजकुमारोंको भली भाँति देख-भालकर ज्योतिष्प्रभाने अमिततेजके गले में माला डाल दी। सुताराने भी श्रीविजयके गलेमें वरमाला पहिना दी। यह देख, सब भूमि और आकाशमें विचरण करनेवालोंने कहा,-"अहा! इन दोनोंही कन्याओंने बड़े उत्तम वर चुने।" तदनन्तर त्रिपृष्ठ और अर्ककीर्त्तिने आये हुए सब राजाओंका यथाशक्ति आदर-सत्कार कर उन्हें बड़े मानके साथ विदा किया और बड़ी धूमधामसे प्रीतिसहित अपनी-अपनी कन्याओंका विवाह करडाला। इसके बाद अर्ककीर्तिने अपने पुत्र और ज्योतिष्प्रभाको साथ ले, अपनी कन्या सुताराको वहीं छोड़, अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर सुखसे राज्य करने लगा। कुछ दिन बीते, अर्ककीर्त्ति राजाने वैराग्य ले लिया और अपने पुत्र अमिततेजको राज्यका भार अर्पणकर किसी मुनीश्वरसे दीक्षा लेली।

क्रमशः त्रिपृष्ठ वासुदेवको परलोक प्राप्त हो गया। उसके बाद एक दिन पोतनपुरके उद्यानमें श्रेयांस जिनेश्वरके शिष्य सुवर्णकलश नामक सूरि परिवार सहित आ पहुँचे। उनके आनेका समाचार पा, अचल बलदेव उनकी वन्दना करनेके लिये उद्यानमें आये। उसने आचार्यको प्रणामकर, गुरुसे मोहका नाश करनेवाली देशना श्रवण की। इसके बाद अचलने समय देखकर उनसे पूछा,—"हे भगवन्! गुणमें बड़ा और वयसमें छोटा मेरा भाई त्रिपृष्ठ मरकर किस गतिको प्राप्त हुआ है?" सूरिने कहा,—"तेरा भाई पञ्चेन्द्रियादिक जीवोंका वध करनेमें आसक्त रहता था, उसकी आत्मा कठोर थी, वह बड़े-बड़े आडम्बरोंमें तत्पर था, इसलिये वह मरकर सातवें नरकमें चला गया है।" यह सुनकर स्नेहके मारे आकुल हो, अचल बहुत विलाप करने लगा। उसने कहा,-"हे वीर! हे धीर! यह तेरी कैसी गति हुई?" गुरुने कहा,—"हे अचल! तू खेद मत कर। पूर्वमें ही जिनेश्वर कह चुके हैं, कि उसका जीव इस चौवीसीमें पिछला तीर्थङ्कर होगा।" यह सुनकर अचलने दूसरे पुत्रको युवराजका पद दे दिया और आप सूरीश्वरसे दीक्षा ले ली।

राजा श्रीविजय राज्यका पालन कर रहे थे। इसी बीच एक दिन

द्वारपालने सभामें आकर कहा,—"हे स्वामी। आपसे मिलनेके लिये कोई ज्योतिषी राजमहलके द्वारपर आया हुआ है। क्या उसे यहाँ ले आऊँ अथवा जानेको कह दूँ?" राजाने उसे सभामें ले आनेकी आज्ञा दे दी। उसने सभामे आतेही राजाको आशीर्वाद दिया और उचित आसन पर जा बैठा। राजाने पूछा,—"हे निमित्तज्ञ। तुम्हारे हाथमें पोथी है, उसे देखकर तुम जो कोई शुभाशुभ जानते हो, वह मुझे बतलाओ।" ज्योतिषीने कहा,—"महाराज! मैंने गणना करके जो कुछ मालूम किया है, उसे कहनेको तो समर्थ नहीं था; पर जब आपने आज्ञा दी है, तब कहता हूँ, कि आजके सातवें दिन पोतनपुरके स्वामीके सिरपर अवश्य ही बिजली गिरेगी।" यह सुनते ही सारी सभा वज्राहत सी दुःखित हो गयी। श्रीविजय राजाने उसी समय क्रोधसे तमतमाते हुए कहा,—"रे दुष्ट ज्योतिषी! यदि पोतनपुरके स्वामीके सिरपर बिजली गिरेगी, तो तेरे सिरपर क्या गिरेगा?" ज्योतिषीने कहा,—"राजन्! आप मेरे ऊपर क्यों क्रोध करते हैं? मैंने जो कुछ गिनती करके मालूम किया है, वह झूठा नहीं हो सकता। सच जानिये, जिस समय आपके सिरपर बिजली गिरेगी, उसी समय मेरे सिरपर वस्त्र, आभूषण और रत्नोंकी वृष्टि होगी।" राजाने फिर पूछा,—"यह निमित्त-शास्त्र तूने किससे सीखा है?" उसने कहा,—"राजन्! सुनिये। जिनसे बलदेवने दीक्षा ली थी, उन्हींसे मैंने भी दीक्षा ली थी। कुछ समय तक तो मैंने उसका पालन किया। उसी समय मैंने जो शास्त्राध्ययन किया था, उसीके प्रभावसे इस प्रकार आपसे कुछ कह सकता हूँ, सर्वज्ञके शासनके सिवा और किसी शास्त्रसे सत्यका ज्ञान नहीं होता। इसके बाद मैं विषयोंमें आसक्त होकर गृहस्थ हो गया। आज धनकी ही आशासे मैं आपके पास आया था।" यह सुन, सब राजकर्मचारी उसके निमित्त-ज्ञानको सच समझ कर अपने स्वामीकी रक्षाका उपाय सोचने लगे।

एक मन्त्रीने कहा,—"सात दिन तक हमारे स्वामी समुद्रमें जहाज़के अन्दर रहें, तो ठीक हो।" एक दूसरे मन्त्रीने कहा,—"माना, कि

पानीमें बिजली नहीं गिरती पर यदि जहाज़पर गिरे,तो फिर क्या किया जायेगा ? इससे तो यही अच्छा होगा, कि स्वामीको वैताढ्य-पर्वतकी गुप्त गुफामें रखकर बिजलीसे उनकी रक्षा की जाये।” तीसरेने कहा,—“यह उपाय अच्छा नहीं है, इससे तो उलटा और भी अधिक विपद् आनेका भय है। इसपर एक बहुत अच्छा दृष्टान्त है, वह सुनो—

विजयपुरमें रुद्रसोम नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम ज्वलनशिखा था। उनके शिखी नामका एक पुत्र भी था। एक बार उस नगरमें कोई माँसका लोभी राक्षस आ पहुँचा। वह लगातार बहुतसे मनुष्योंकी हत्या करने लगा। यह देख, उस नगरके राजाने अपने मंत्रियोंकी सलाहसे उस राक्षसके साथ यह नियम कर लिया, कि मैं तुम्हें सदा एक मनुष्य दिया करूँगा। राक्षसने इसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद राजाने सब नगर-निवासियोंके नाम अलग-अलग पर्चोंपर लिखकर उनको मोड़-माड़कर गोलियाँ सी बना लीं। इसके बाद प्रति दिन उन गोलियोंमें से एक-एक निकालकर वे जिसका नाम उस काग़ज़में लिखा देखते, उसको बुलवाकर राक्षसके हवाले कर देते। ऐसा करनेसे बहुतोंकी रक्षा हो जाती थी। इसी तरह बहुत दिन बीत गये। एक दिन उक्त ब्राह्मणके पुत्रका नाम निकल आया। उसके घर राजाकी बुलाहट ज्यों ही पहुँची, त्योंही उसकी माँ रोने-पीटने लगी। उसकी रुलाई सुन, पासहीके घरमें रहनेवाले भूतोंको दया आगयी और उन्होंने उस ब्राह्मणीसे आकर कहा,—“माता! तू खेद मत कर। यदि राजा तेरे पुत्रको उस राक्षसके पास भेज भी देगा, तो हमलोग उसे लौटा लायेंगे।” यह सुनकर, वह हर्षित हो गयी। राजाने जब उसके पुत्रको राक्षसके हवाले कर दिया, तब पहलेसे ही सधे हुए भूत उसे वहाँसे उड़ा लाये और उसकी माँके पास ले आये। उसकी माताने मृत्युके भयसे उसे एक पर्वतकी गुफामें बन्द कर उसका द्वार बन्द कर दिया। वहीं रातके समय उस लड़केको एक अजगर निगल गया।” इसलिये जब बिजली गिरनेवाली है, तब तो गिर कर ही रहेगी,

उसे कोई रोक नहीं सकेगा। हाँ, उस उपद्रवको रोकनेके लिये तप इत्यादि धर्म-कार्य करना चाहियें।"

यह सुन, चौथे मन्त्रीने कहा,—"इन मन्त्री महाशयने बहुत ही उत्तम उपाय बतलाया है, इसमें सन्देह नहीं, पर मेरे चित्तमें जो बात आती है, वह मैं भी कह सुनाता हूँ।" यह कह उसने राजाकी आज्ञा लेकर फिर कहा,—"इस ज्योतिषीने कहा है, कि पोतनपुरके स्वामीके मस्तक पर बिजली गिरेगी; यह नहीं कहा, कि राजा श्रीविजयके ऊपर गिरेगी, इस लिये मेरी राय तो यह है, कि इन सात दिनोंके लिये किसी और ही मनुष्यको यहाँका राजा बना दिया जाये और इतने दिन उसीकी हुकूमत जारी रहे।"

उस मन्त्रीकी यह बात सुन, उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करता हुआ वह ज्योतिषी बोला,—"इस मन्त्रीने बहुतही ठीक कहा। तुमलोग ऐसाही करो। मैं भी यही कहनेके लिये यहाँ आया था। बस इन सात दिनों-तक श्रीविजय राजा जिनमन्दिरमें बैठे हुए तपमें लगे रहें, जिससे यह विपद् टल जाये।"

उसकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"जिस किसीको राज्य दिया जायेगा, वह बेचारा तो जीसेही जायेगा; फिर ऐसा अधर्म क्यों किया जाये?" राजाकी यह बात सुन, सब मन्त्रियोंने एकत्र होकर विचार करके कहा,—"यक्षकी प्रतिमाको राज्याभिषेक देकर उसीका हुक्म चलाया जाये। यदि देवताके प्रभावसे यक्षकी प्रतिमा नहीं नष्ट हुई, तब तो अच्छा ही है; नहीं तो काष्ठकी प्रतिमा ही न जायेगी! वह फिर नयी हो जा सकती है।"

उनलोगोंकी यह राय सुन, श्रीविजय राजाने भी उनकी बात मान ली। इसके बाद राजा अपनी रानीके साथही श्रीजिनेश्वरके मन्दिरमें चले गये और पौषध-व्रत ग्रहणकर तप-नियममें तत्पर रहते हुए, आसनमारे मुनियोंकी तरह पञ्चपरमेष्ठि नमस्कारके ध्यानमें मग्न हो गये, इधर मंत्रियोंने और सामन्तोंने मिलकर राजाके स्थानमें यक्षकी प्रतिमाको स्थापितकर,

उसीके समीप बैठने और उसीको राजा मानकर सेवा करने लगे। सातवें दिन एकाएक आसमानमें बादल घिर आये। बड़े ज़ोर ज़ोरसे बादल गरजने और पानी बरसने लगा। इसी समय बार-बार चमककर भयङ्कर बिजली उस यक्ष प्रतिमाके ऊपर आ गिरी, बातकी बातमें वह प्रतिमा नष्ट हो गयी, पर राजाकी जान बच गयी। वे सकुशल रह गये। यह देखकर लोगोंको बड़ा अचम्भा हुआ। उपसर्ग शान्त होने पर ज्योतिषीके कहे अनुसार राजा श्रीविजय अपने महलमें आये। उस समय अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ हर्षके मारे उस ज्योतिषीको रत्न, अलङ्कार और वस्त्रादिक देकर सम्मानित करने लगीं। राजाने भी उसे बहुतसा धन दे आदरके साथ उसकी विदाई की। नयी रत्नमयी यक्ष-प्रतिमा बनवाकर राजाने बड़ी धूमधामसे जिन प्रतिमाकी पूजा करवायी और अपने राज्य भरमें पुनर्जन्म महोत्सव करवाया।

एक दिन राजा श्रीविजय, रानी सुताराके साथ, ज्योतिर्वन नामक उद्यानमें क्रीडा करनेके निमित्त गये हुए थे। वहाँ पर्वतकी छाया युक्त शिलाओंपर स्वामीके साथ घूमती-फिरती और क्रीड़ा करती हुई मनोहर अङ्गोंवाली रानी सुताराने एक सुनहले रङ्गके मृगको देखकर अपने स्वामीसे कहा,—"प्राणनाथ! यह मृग तुम मुझे लाकर दो।" यह सुन प्रेमके कारण मोहमें पड़े हुए राजा उसे पकड़ने दौड़े। वह मृग उन्हें देख, उछलता कूदता हुआ भाग गया। इसी समय राजाकी प्रिया सुताराको कुर्कटजातिके सर्पने डँस दिया। अतएव वह बड़े दुःख भरे स्वरमें चिल्ला उठी,—"नाथ! जल्दी आओ।" उसकी पुकार सुनतेही राजा तत्काल पीछे लौट आये और अपनी पत्नीको विषकी पीड़ासे छटपटाते देखा। उन्होंने रानीको बचानेके लिये तरह-तरहके तन्त्र-मन्त्र किये, पर कोई काम न आया और रानीने राजाके देखते-देखते आँखें बन्द करलीं, उसका मुँह काला पड़ गया और वह बेहोश हो गयी। यह देख राजाको भी मूर्छा आगई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे जब उन्हें होश हुआ, तब वे इस प्रकार विलाप करने लगे,—"हे देवी समान

इसी समय राजाकी प्रिया सुतारको कुर्कुटजातिके सर्पने डँस दिया। अतएव वह बड़े दुःख भरे स्वरमें चिल्ला उठी,—हे नाथ? जल्दी आओ। (पृष्ठ २८)

रूपवती। हे गुणवती! हे सुतरा! हे प्राणवल्लभा! तुम कहाँ हो?" इसी तरह बहुत रो चुकने पर राजा मरनेको तैयार हो गये। उनके नौकरोंने उनका यह हाल देख, राजमहलमें आकर लोगोंसे यह समाचार कह सुनाया। यह सुनकर उनकी माता स्वयंप्रभा और भाई विजयभद्रको बड़ा दुःख हुआ। इसी समय आकाश मार्गमें आकर किसी पुरुषने कहा,—"हे देवी स्वयंप्रभा! तुम विषाद न करो—मेरी बात सुनो रथनूपुर नगरके स्वामी अमितेजके द्वारा सम्मानित संभिन्नश्रोत नामका एक उत्तम ज्योतिषी है। वही मेरा पिता हैं, मैं उसीका पुत्र हूँ, मेरा नाम दीपशिख है। हम दोनों पिता पुत्र ज्योतिर्वनमें क्रीड़ा करने गये हुए थे। वहाँ हमने उस नगरके आगे बहुत दूर अमरचञ्चापुरीके स्वामी अशनिघोष राजाके द्वारा हरी जाती हुई और शरण-विहीन तुम्हारी रानी सुताराको देखकर उस आकाशचारी राजासे कहा,—"रे पापी दुष्ट! तू हमारे स्वामीकी वहूको कहाँ लिये जारहा है?" यह सुन, सुताराने हमसे कहा,—"इस समय तुम्हारी कोई चेष्टा काम न करेगी, इसलिये तुम पोतनपुरके उद्यानमें जाकर वैतालिनी विद्याके द्वारा मोहमें पड़े हुए श्रीविजय राजाको होशमें लाओ; क्योंकि वे सुतारा बनी हुई एक वैतालिनीके पीछे जान देनेको तैयार हो रहे हैं।" सुताराकी यह बात सुन, हमने उद्यानमें जाकर राजाको चेत कराया है, जिससे तुरतही दुष्ट वेतालिनी विद्याका नाश हो गया। इसके बाद देवीका हाल सुनकर राजा श्रीविजय उनकी प्राप्तिका उपाय कर रहे हैं। उन्हींकी आज्ञासे मैं आप लोगोंको यह ख़बर देने आया हूँ। यह सुन स्वयंप्रभा देवीने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। इसके बाद वह फिर राजा श्रीविजयके पास चला आया और वहाँसे संभिन्नश्रोत तथा दीपशिखा राजाको रथनूपुर नगरमें ले गये। वहाँ राजा अमिततेज़ने श्रीविजय राजाकी बड़ी आवभगत की और उनके आनेका कारण पूछा। यह सुन उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुन अमिततेजको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मरीचि नामक एक दूतको समझा-बुझाकर उसी समय

अशनिघोषके पास भेजा । उस दूतने अमरचञ्चा नगरीमें राजा अशनि-घोषसे जाकर कहा,—"हे राजन्! आप मेरे स्वामीकी वहन और राजा श्रीविजयकी पत्नी सुताराको विना समझे बूझे यहाँ ले आये हैं, इसलिये उन्हें चुपचाप धीरेसे लौटा दीजिये, नहीं तो अनर्थ होजायेगा।" यह सुन अशनिघोषने कहा,—"अरे दूत! क्या मैं इस स्त्रीको लौटानेकेही लिये ले आया हूँ? जो कोई इसे मेरे यहाँसे हटा ले जाना चाहता है, वह मेरी तल-वारके घाट उतरना चाहता है, ऐसाही समझो।" यह कह, अशनिघोषने दूतको गर्दनिया देकर निकलवा दिया। दूतने अपने नगरमें आकर अपने स्वामीको कुल कैफ़ियत कह सुनायी।

इसके वाद राजा अमिततेजने राजा श्रीविजयको दो विद्याएँ सि-खलायीं—पहली पर-शस्त्र-निवारिणी और दूसरी वन्ध-मोक्ष-कारिणी अर्थात् वन्धनसे छुडाने वाली। श्रीविजयने सात दिनों तक इन दोनों विद्याओंकी विधिपूर्वक साधना की। तदन्तर विद्यामें सिद्धि लाभकर, श्रीविजय शत्रुको जीतने चले। उनके साथ-साथ अमिततेजके रश्मि वेग आदि सैंकडों पुत्र तथा और भी वहुतसे वीर जो अन्यान्य विद्याओंके वलसे वलवान तथा भुजवलसे शक्तिमान थे, चल पड़े। सव लोगोंके साथ राजा श्रीविजय अशनिघोषके नगरके पास आ पहुँचे।

इसके वाद राजा अमिततेज अपने सहस्र रश्मि नामक जेठे वेटेके साथ दूसरोंकी विद्याका नाश करनेवाली महाज्वाला नामक विद्याकी साधना करनेके लिये हिमवान पर्वत पर चले गये। वहाँ एक महीने का उपवास लेकर वे विद्याकी साधना करने वैठे।

इधर अशनिघोषने राजा श्रीविजयके सैन्य-सहित आनेका समाचार सुन, अपने पुत्रोंको सैन्य लेकर लड़नेको भेजा। दोनों सैन्योंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। दोनोंमें से कोई सेना पीछे हटती हुई नहीं मालूम पड़ती थी। इसी प्रकार एक महीने तक लड़ते रहनेके वाद अमिततेजके पुत्रों-ने अशनिघोषके बलवान् पुत्रोंको पराजित कर दिया। यह देख, अशनि-घोष स्वयं मैदानमें उतर आया। इस वार अशनिघोषने अमिततेजके

पराक्रमी पुत्रोंको हरा दिया। तब अपनी सेनाको तितर-बितर होते देख, राजा श्रीविजय स्वयं संग्राम करनेको आगे आये। क्रोधसे भरे हुए राजा श्रीविजयने खड्गके प्रहारसे अशनिघोषके दो टुकड़े कर डाले। मायावी अशनिघोषने झटपट अपने दो रूप कर डाले। श्रीविजयने फिर इन दोनोंको काट डाला। तब चार अशनिघोष हो गये। इसी प्रकार बार-बार काटे जाते हुए अशनिघोषने अपनी मायाके प्रभावसे अपने सौ रूप बना डाले। ज्यों-ज्यों राजा श्रीविजय उसपर प्रहार करते जाते, त्यों-त्यों उसके रूपोंकी संख्या बढ़ती जाती थी। इससे राजा श्रीविजय उसका वध करते-करते उकता गये। इतनेमें राजा अमिततेज अपनी साधनाकी सिद्धि करके वहाँ आ पहुंचे। अब राजा अमिततेजने अपनी विद्याके प्रभावसे अशनिघोषकी मायाका नाश कर दिया, जिससे वह घबराकर भाग चला। उसे भागते देख, अमिततेजने अपनी विद्याको आज्ञा दी, कि उस पापी अशनिघोषको दूरसे ही पकड़ लाओ। इस प्रकार आज्ञा पाकर वह विद्यादेवी उसके पीछे पीछे चली। इधर सीमनग * नामक पर्वतपर श्रीऋषभदेवके मन्दिरके पासही बलदेवमुनिको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये देवगण उनका वन्दन तथा ज्ञानका उत्सव करनेके लिये आये हुए थे। यह देख, अशनिघोष उन केवलीकी शरणमें आ गिरा। इसीलिये विद्यादेवी वहाँतक आकर पीछे फिरी और अमिततेजके पास आकर सारा हाल सुनाने लगी। उसके मुँहसे सब कुछ सुनकर अमिततेजने अपने मरीचि नामक दूतको बुलाकर कहा,—"हे दूत! तुम अभी अमरचञ्चा नगरीमें जाकर वहांसे सुतारादेवीको लिये हुए मेरे पास सीमनग-पर्वत पर चले आओ।" यह कह, राजा अमिततेज, श्रीविजय तथा अन्यान्य सैन्य-सामन्तोंको साथ लिये हुए, बाजे-गाजेके साथ, सीमनग—पर्वतपर बलभद्रमुनिकी वन्दना करने आये। सबसे पहले जिनेश्वरके मन्दिरमें आकर जिनेन्द्रकी स्तुति करनेके बाद श्रीविजय और अमिततेज बलदेवके पास आये। इधर मरीचि

* क्षेत्रकी मर्यादा बाँधने वाला पर्वत।

दूत भी सुताराको लिये हुये वहाँ आ पहुँचा और अखण्डित शीलवती सुताराको राजा श्रीविजयको सौंप दिया। इसी समय अशनिघोषने दोनों राजाओंसे क्षमा माँगी। उन लोगोंने भी उसका यह भाव देख, अच्छा आदर-मान किया। इस प्रकार उनके दिलोंके भेद—ईर्ष्याद्वेष—मिट गये। उसी समय केवलीने भी यह धर्मदेशना सुनायी, कि—

"रागद्वेषवशीभूता, जीवोऽनर्थपरम्पराम् ।
कृत्वा निरर्थकं जन्म, गमयन्ति यथा तथा ॥ १ ॥"

*अर्थात्—प्राणी रागद्वेषके वशमें पड़कर अनर्थों की लड़ीसी लगा देता है, जिससे उसका साराजीवन योंही नष्ट हो जाता है ।*

रागद्वेषमें पड़े हुए प्राणी मोक्षपद पानेको समर्थ नहीं होते। हे मनुष्यो! तुमलोग इन्हें अपना परम बलवान् शत्रु समझकर इनसे नेह मत लगाओ।"

इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनकर बहुतसे मनुष्योंको ज्ञान उत्पन्न हो गया। इनमेंसे कितनोंहीने दीक्षा ग्रहण कर ली और कितनोंहीने श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। उसी समय अशनिघोषने केवलीसे पूछा,—"हे प्रभु! बिना किसी प्रकारके रागद्वेषकेही, मैं उस सुतारा नामक स्त्रीको हरण कर क्यों अपने घर लाया?" केवलीने कहा,—"इस अमित-तेजका जीव पूर्व भवमें रत्नपुर नामक ग्राममें श्रीषेण नामक राजा था। उस समय तुम कपिल नामके ब्राह्मण थे। उस समय उसके सत्यभामा नामकी एक प्यारी स्त्री थी। अनुक्रमसे भव-भ्रमण करती हुई उस जन्म-की सत्यभामाही इस जन्ममें सुतारा हुई है और जो कपिल था, वही भव-भ्रमण करता हुआ, तपस्वीके कुलमें जन्म पाकर अज्ञानतप करके अशनिघोष बन गया है। हे राजन्! पूर्वभवके सम्बन्धसे ही ले जाने-वालेने बिना किसी प्रयोजनके इस बेचारीको हर लिया। पूर्वभवमें इसे ही तुमसे कम राग था, इसलिये तुम भी इसपर कम अनुराग रखते हो।"

इस प्रकार अपने अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तान्त श्रवण कर अमिततेज

और श्रीविजयको बड़ा हर्ष हुआ और ये एकबारगी कह उठे,—"अहा! ज्ञानके आगे कुछ भी असाध्य नहीं है"

तदनन्तर केवलीको नमस्कार कर अमिततेजने कहा,—"हे प्रभो! यह तो कहिये, मैं भव्य हूँ या अभव्य?" केवलीने कहा,—"हे राजन्! आजसे नवें भवमें तुम इस भरतक्षेत्रमें पांचवें चक्रवर्त्ती होगे और उस भवमें शान्तिनाथ नामसे सोलहवें तीर्थङ्कर कहलाओगे। उस समय इस श्रीविजयका जीव तुम्हारा पुत्र होगा और पहला गणधर बनेगा।" यह सुन, उन दोनोंहीने उनहीं केवलीसे समकित सहित श्रावक-धर्म ग्रहण किया। अशनिघोष राजाने चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण, अपने पुत्रको राज्यका भार दे, उन्हीं केवलीसे दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीविजय राजाकी माता स्वयंप्रभा देवीने भी बहुतसी स्त्रियोंके साथ-साथ उन्हीं बलभद्र मुनिसे चारित्र ग्रहण किया। इसके बाद श्रीविजय और अमिततेज अपने-अपने परिवारवर्गोंके साथ मुनिको प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गये और देवपूजा, गुरुसेवा तथा जप-तप आदि धर्म-कार्यके द्वारा श्रावकधर्मका प्रकाश करते हुए समय बिताना आरम्भ किया।

कुछ दिन बाद पुण्यात्मा राजा अमिततेजने पाँच रंगके रत्नों द्वारा एक जिनमन्दिर तैयार करवाया। उसमें जिनेश्वरकी सुन्दर प्रतिमा-की स्थापना कर, उसने उसके पासही एक सुन्दर पौषधशाला बनवायी। किसी समय उसी पौषधशालामें विद्याधरोंकी सभाके बीचमे बैठकर वह राजा धर्मोपदेश कर रहा था। उसी समय दो चारण-मुनि शाश्वत जिनेश्वरकी प्रतिमाकी वन्दना करते हुए चले जा रहे थे। वे उस जैनमन्दिरको देखकर वन्दना करनेके लिये वहाँ ठहर गये। उन्हें देख, राजा अमिततेजने उन्हें श्रेष्ठ आसनोंपर बैठाकर भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। एक मुनिने कहा,—"हे राजा! यद्यपि तुम अपने धर्मकी बातें जान गये हो, तथापि धर्मकी बातें कहना हमारा ही काम है।" इस-लिये सुनो,—"हे राजा! मनुष्यभव आदि सामग्रियोंको पाकर संसारका

स्वरूप जानना और धर्म करना ही उनके लिये उचित है, जो सुख-की इच्छा रखते हों। इस धर्मको मनसे अलग करना क्या है, सुखसे ही नातातोड़ करना है। जो मनसे धर्ममें अन्तर करता है, उसके सुखमें भी अन्तर पड़ जाता है। जैसे धनद नामक सेठके पुत्रको, जिसका दूसरा नाम मत्स्योदर था, अन्तरवाला धर्म करनेके कारण अन्तरवाला सुख भी प्राप्त हुआ था। यह सुन, अमिततेज राजाने भक्तिके साथ हाथ जोड़ मुनिसे पूछा,—"हे पूजनीय! वह मत्स्योदर कौन था? उसने किस कर्मके दोषसे अन्तरवाला सुख पाया था? उसकी कथा कृपाकर कहिये।" यह सुन मुनिने कहा,—

## मत्स्योदरकी कथा।
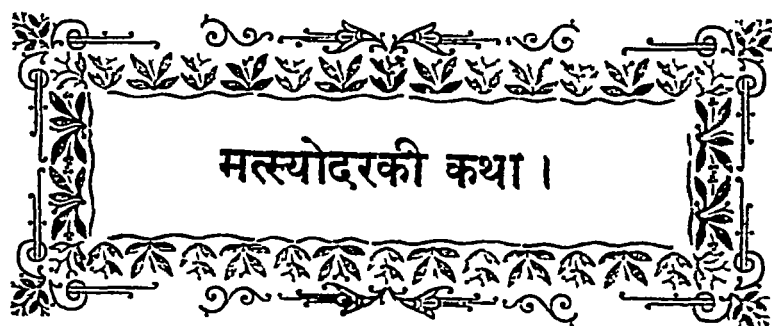
इसी भरतक्षेत्रमें अपनी समृद्धिके कारण अमरावतीकी बराबरी करनेवाला कनकपुर नामका एक नगर है। उस नगरमें नय, विनय इत्यादि गुणोंसे शोभित 'कनकरथ' नामके राजा थे। उनकी पट-रानीका नाम 'कनकश्री' था। उसी नगरमें उदारता आदि गुणोंके अपार-स्वरूप, धर्मात्मा पुरुषोंमें अग्रसर और राजदरबारसे मान पाया हुआ रत्नसार नामका एक सेठ भी रहता था। उसकी भार्य्या, जिसका नाम 'रत्नचूला' था, वह बड़ी ही लज्जावती, शीलवती और मीठी वाणी बोलनेवाली थी। उनके सुन्दर चरित्रवान् और सब कलाओं-में कुशल धनद नामका एक पुत्र था।

उसी नगरमें सिंहल नामका एक जुआरी रहता था। वह सदा पुरदेवीके मन्दिरमें कौड़ियाँ लिये हुए जुआ जमाये रहता था। एक दिन उस अभागेने कुछ भी नहीं जीता। इससे क्रोधित होकर उस दुष्टने

देवीसे कहा,— "मैं सदा तुम्हारे मन्दिरमें रहता हूँ और तुम्हारी सेवा करता हूँ, तो भी तू ऐसी दुष्ट है, कि मुझे कुछ भी नहीं देती? तुम आज ही प्रत्यक्ष होकर मुझे कुछ धन दो, नहीं तो मैं विना अनर्थ किये न मानूँगा।"

देवीने कहा,— "रे दुरात्मा! क्या तूने या तेरे बापने मेरे पास कुछ धरोहर रख छोड़ी है, जो मैं तुझे धन दूँ?"

यह सुन, उस जुआरीने एक बड़ा सा पत्थर उठाकर कहा,— "तुम चाहे जहाँसे लाकर मुझे धन दो, नहीं तो मैं तुम्हारी मूर्त्ति तोड़ फोड़कर रख दूँगा।"

यह सुन, देवीने विचार किया,— "यह दुष्टात्मा स्पष्टवक्ता है, इस लिये यह निर्दय सचमुच कुछ-न-कुछ ऊटपटाङ्ग काररवाई किये विना न रहेगा। फिर कोई इसका हाथ थोड़े ही रोकने जायगा, अतएव कुछ दे देना ही ठीक है।" ऐसा विचार कर देवीने उसके हाथमें एक काग़ज़का टुकड़ा दिया, जिसपर एक गाथा लिखी हुई थी। यह देख, उस पापीने कहा,—"अरी राँड़! मैं इस काग़ज़के टुकड़ेको लेकर क्या करूँगा?" देवीने कहा, "तू इसे बाजारमें लेजाकर बेच दे। जो तुझे एक हज़ार रुपये दे, उसीको यह गाथा देना।" यह सुन, वह जुआरी उस गाथावाले काग़ज़को बाज़ारमें ले गया और यही कह-कह कर फेरी लगाने लगा,—"भाइयो! कोई यह गाथा मोल ले लो। ले लो गाथा अनमोल माल है!" लोगोंने पूछा,-"अरे यह क्या चीज है?" उसने गाथाका काग़ज़ दिखला दिया। उसे व्यर्थकी वस्तु समझकर लोगोंने बड़े आश्चर्यके साथ उसका दाम पूछा। उसने उसका मूल्य एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ बतलाया। इतना बेहिसाब मूल्य सुनकर ही गाहक भड़क जाते थे। किसीने वह गाथा मोल नहीं ली। अन्तमें वह धनद नामक उस सेठके बेटेकी दूकान पर गया और उसे वह गाथा दिखला कर उसका दाम बतलाया। सेठके पुत्रने वह गाथा हाथमें लेकर पढ़ी। उसमें इस प्रकार लिखा था,—

"जं चिय विहिणा लिहियं, त चिय परिणमइ सयललोयस्स ।
इय जाणेउणा धीरा, विहुरे वि न कायरा हुंति ॥ १ ॥"

अर्थात्—*"विधाताने जो कुछ भाग्यमें लिख रखा है, वही सबको प्राप्त होता है। यही समझ कर धीर पुरुष विपद् पड़ने पर कायर नहीं होते।"*

इस गाथाको पढ़कर धनदने अपने मनमें विचार किया,—"यह गाथा तो लाख मुहरोंको भी सस्ती है। फिर जब एक हज़ार मुहरों पर ही बेच रहा है, तो बड़ा सस्ता माल है, लेही लेना चाहिये।" यह विचार कर, उसने उस जुआरीको मुँहमाँगा मूल्य देकर वह गाथा ले ली और बार-बार उसे पढ़ने लगा। इतनेमें उसका पिता सेठ रत्नसार आ पहुँचा। उसने पूछा,—"बेटा! आज तुमने कौनसा व्यापार किया?" यह सुन पासकी दूकानोंके व्यापारी हँसते हुए बोले,—"सेठजी! आज तो आपके बेटेने बहुत बड़ा व्यापार कर डाला है। उसने हज़ार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली है। सचमुच यदि तुम्हारे पुत्रकी व्यापारमें ऐसी ही कुशलता बनी रही, तो यह घरकी पूँजीको बहुत बढ़ा देगा।"

लोगोंकी यह तानेज़नी सुनकर सेठ जल गया और क्रोधके साथ अपने पुत्रसे कहने लगा,—"रे दुष्ट! तू अभी यहाँसे चला जा। मैं तेरा मुँह देखना भी नहीं चाहता। सूना घर अच्छा, पर चोरोंसे भरा हुआ घर अच्छा नहीं, तू पुत्र ही है तो क्या? मुझे तेरी यह कार-रवाई बिलकुल ही नापसन्द है।"

इस प्रकारके अपमानयुक्त वचन सुनकर धनद उसी क्षण दूकानसे नीचे उतर आया और मन-ही-मन उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ चल पड़ा। नगरके बाहर हो, वह सायंकालके समय उत्तर दिशामें एक वनमें आ पहुँचा। वहाँ निर्मल जलसे भरा हुआ एक बड़ा भारी सरोवर देख, उसीमें स्नान कर, वह पास ही एक वटवृक्षके नीचे पत्तों-की सेज बिछाकर सो रहा। इसी समय दैवसंयोगसे एक धनुष-

इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे मरा हुआ समझकर उठाये हुए समुद्रके बीचोबीच एक द्वीपमें ले आया। (पृष्ठ ४७)
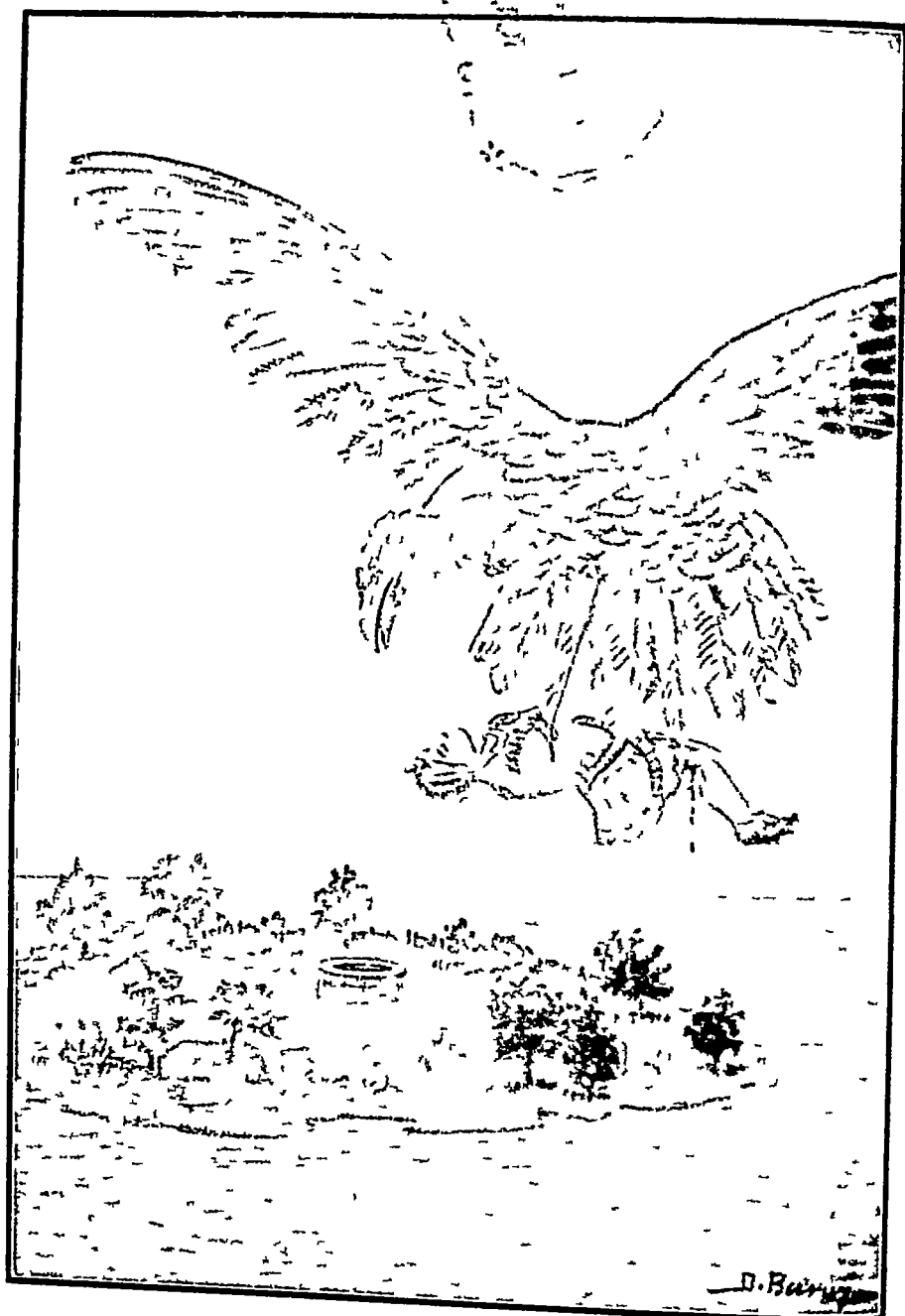
धारी शिकारी जल पीनेके लिये आये हुए जानवरोंका शिकार करने-की इच्छासे वहाँ आ पहुँचा।

उसी समय सेठके बेटेने नींदमें ही पड़े पड़े एकबार करवट बदली, जिससे सूखे पत्ते खड़खड़ा उठे। वह शब्द सुन, शिकारीने विचार किया,—मालूम होता है, कोई जंगली जानवर जा रहा है।" ऐसा विचार कर उसने उसी शब्दकी सीधपर बाण छोड़ दिया। वह बाण उस सोये हुए सेठके पुत्रके पैरमें आ लगा। निशाना ठीक बैठा, यह जानकर वह शिकारी उसे देखनेके लिये उसके पास आया। इतनेमें बाणकी चोट खाये हुए धनदने तकलीफके मारे उक्त गाथाका उच्चारण किया। यह सुनकर उस शिकारीने सोचा,—"आह! यह तो मालूम होता है, कि मैंने बिना समझे बूझे किसी थके-माँदे सोये हुए मुसाफिरको ही मार डाला।" इस तरहकी बात मनमें आते ही उसने उसके पास आकर पूछा, —"हे भाई! मैंने अनजानतेमें तुम्हें,बाणसे विद्ध कर डाला है। कहो तो तुम्हें कहाँ चोट आयी? ऐसा कहकर उसने उसके पैरमेंसे बाण खींचकर निकाल लिया और उसके जख्मपर मरहमपट्टी करने लगा। सेठके बेटेने उसे मरहमपट्टी करनेसे रोकते हुए कहा,—"भाई! तुम अपने घर चले जाओ।" इस प्रकार सेठके पुत्रसे आज्ञा पाकर वह शिकारी अपने घर चला गया। इधर सेठके बेटेके पैरसे खून जारी हो गया। बहुतेरा खून निकलनेके कारण वह प्रातःकाल होते-होते बेहोश हो गया। इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे मरा हुआ समझकर उठाये हुए समुद्रके बीचोबीच एक द्वीपमें ले आया। उसने ज्योंही उसे खानेका विचार किया, त्योंही उसमें जीवनका कुछ चिह्न देख उसे वहीं छोड़कर उड़ गया। इसके बाद उस द्वीपकी ठंढी ठंढी हवाके लगनेसे धनदको चेतना हो आयी। वह खड़ा होकर चारों ओर देखने लगा। देखते-देखते उसे एक निर्जन वन दिखलाई दिया। उसने मनमें विचार किया,—"मेरा नगर यहाँसे कितनी दूर है? यह भयंकर वन ही किस स्थान पर है? अथवा

मेरे इस सोच-विचारका ही क्या नतीजा है ? दैवकी चिन्ता ही बल-वान् है।" इसी प्रकार सोचता-विचारता हुआ वह-जंगलमें क्षुधा तृष्णासे व्याकुल होकर फल और जलकी तलाशमें घूमने लगा। घूमते-घूमते उसने एक स्थानपर एक टूटे-फूटे घरोंवाला सून-सान नगर देखा। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी उजड़े हुए नगरमें भ्रमण करते हुए उसने एक कुआँ देखा। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उस कुएँसे जल निकालकर उसने अपनी प्यास बुझायी तथा केलेके फल आदि खाकर अपनी प्राणरक्षा की। इसके बाद वह भयके मारे उस नगरसे दूर जा रहा। इतनेमें सूर्य अस्त हो गया। अन्धकारसे सारा संसार ढक गया। उस समय धनदने एक पर्वतके समीप जा वहीं आग सुलगाकर ठंढ दूर कीया और किसी तरह रात बिता दी। सवेरा होतेही उसने देखा, कि उसने रातको जहाँ आग सुलगायी थी, वहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है। यह देखते ही उसने अपने मनमें विचार किया,—"मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि यह स्थान अवश्यही सुवर्णद्वीप है। कारण, अग्निका संयोग होतेही यहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होतेहीं उसने हर्षित होकर विचार किया,—"मैं यहीं रहकर सोना निकालूं, तो ठीक हो।" इसके अनन्तर उसने पर्वतकी मिट्टी काट-काटकर अपने नामकी ईंटें बनायीं और उन्हें आगकी भट्टीमें पकाया। वे सब ईंटें सोनेकी हो गयीं। एक दिन घूमते घामते उसने पर्वतके निकुञ्जमें रत्नों-का ढेर पड़ा देखा। वह उन रत्नोंको अपने सोनेके ढेरके पास ले आया। धीरे-धीरे उसके पास बहुतसी सोनेकी ईंटों और रत्नोंका समूह हो गया। केले आदि फल खाकर ही वह जीवन निर्वाह करता चला जाता था।

एक समयकी बात है, कि सुदत्त नामका एक व्यापारी जहाज़में बैठ-कर वहाँ आया। उसके जहाज़में पहलेसे लेकर रखा हुआ जल और ईंधन चुक गया था, इसलिये उसने अपने आदमियोंको जल तथा ईंधन लेनेके लिये उसी द्वीपकी ओर भेजा। उन आदमियोंने वहाँ धनदको

देखकर पूछा,—"भाई तुम कौन हो?" धनदने कहा,—"मैं तो वनचर हूँ।" वे सब बोले,—"तुम हमें कोई जलाशय बतलाओ।" इसपर धनदने उन्हें कुआँ दिखला दिया। सार्थवाहके उन सेवकोंने कुएँके पास सोनेकी ईंटों और रत्नोंका ढेर पड़ा देखकर धनदसे पूछा,—"हे वनचर! यह सब किसका है?" उसने कहा,—"मेरा है। इस धनको जो कोई स्थल मार्गमें ले जायगा, उसको मैं इसका चौथाई हिस्सा दे डालूँगा।" इस तरहकी बातें हो ही रही थीं, कि उक्त व्यापारी भी वहीं आ पहुँचा और धनदको बड़ी विनयके साथ प्रणामकर, आलिङ्गन करते हुए, उससे कुशल-प्रश्न करने लगा। इसके बाद उसने धनदसे इस बातकी प्रतिज्ञा की, कि वह इस सारे धन-रत्नको उसके घर पहुँचा देगा। इसके बाद सार्थवाहने (व्यापारीने) अपने नौकरोंसे उन सुनहरी ईंटों और रत्नोंको अपने जहाज़ पर लदवाना शुरू किया। धनद भी गिन-गिनकर ईंटों और रत्नोंको उनके हाथमें देने लगा। यह अपार सम्पत्ति देख, सार्थवाहके मनमें पाप जगा और उसने अपने नौकरोंको एकान्तमें बुलाकर कहा,—"इस आदमीको उसी कुएँमें ढकेल दो।" इस प्रकार अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर उन आदमियोंने धनद-से कहा,—"हे परोपकारी महात्मा! हम लोग कुएँसे पानी खींचनेका हाल नहीं जानते। तुम्हें यह ऐसे ही इसका अभ्यास है। इसलिये कृपाकर हमें थोड़ासा जल कुएँसे निकाल दो।" यह सुनकर, धनद दयाके मारे कुएँसे पानी खींचने लगा। इतनेमें मौक़ा पाकर उन दुष्टोंने उसे कुएँमें ढकेल दिया। दैवयोगसे वह पत्तोंसे भरे हुए उस कुएँकी मेखला परही गिरा, पानीमें नहीं गिरने पाया। सौभाग्यसे उसके ज़रा भी चोट नहीं आयी।

अब तो धनद उसी गाथाको याद करता हुआ कुएँके इर्द गिर्द नज़र दौड़ाने लगा। अकस्मात एक स्थानपर गुफासी नजर आयी। कौतु-हलके मारे वह उसीके अन्दर घुस पड़ा। अन्दर आकर पैरसे मालूम करता हुआ वह उसी मार्गसे बहुत नीचे उतरता चला गया। आगे जा-कर उसे समतल मार्ग मिला। उसी मार्गसे आश्चर्यके साथ आते-आते

उसे कुछ दूर पर एक देवमन्दिर दिखाई दिया। वह उसके अन्दर चला गया। देवमन्दिरके भीतर उसे गरुड़-वाहिनी, चक्रायुध-धारिणी, महिमामयी चक्रेश्वरी देवी दिखलायी पड़ीं। उन्हें देखकर वह दोनों हाथ जोड़े भक्तिके साथ अपनी विचक्षण वाणीमें इसप्रकार देवीकी स्तुति करने लगा,—"हे श्रीऋषभ स्वामीकी शासन देवी! भयङ्कर कष्टोंको हरने वाली! अनेक भक्तोंको समस्त सम्पति प्रदान करनेवाली! तुम्हारी जय हो। आज इस दुःखमें मुझे तुम्हारे दर्शन हुए। अब तुम्ही मुझे अपने चरणोंमें शरण दो।" उसके इन भक्तिपूर्ण वचनोंको सुनकर देवीने प्रसन्न होकर कहा,—"हे वत्स! आगे चलकर तेरा सब प्रकारसे भला ही होगा। अच्छा, तू इस समय मुझसे कुछ माँग।" यह सुन, धनदने कहा, -"हे देवी! तुम्हारे दर्शनोंसे ही मुझे सब कुछ मिल गया। अब मैं क्या माँगू।" उसके ऐसा कहने पर सन्तुष्ट होकर देवीने उसके हाथमें बड़ेही प्रभाव-शाली पाँच रत्न दिये और उनका प्रभाव इस प्रकार बतलाया,—"देख, इसमें से एक रत्न तो सौभाग्यका दाता है, दूसरा लक्ष्मी देनेवाला है, तीसरा रोग-हारक है, चौथा विषका प्रभाव नष्ट करनेवाला है और पाँचवाँ सब कष्टोंका निवारण करने वाला है। इस प्रकार उन रत्नोंका प्रभाव बतलाकर, उनकी अलग-अलग पहचान कराकर देवी अन्तर्द्धान हो गयीं। धनद उन रत्नोंके गुण चित्तमें धारण कर आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाते-न-जाते उसे एक स्थानपर व्रण (घाव) अच्छा करनेवाली संरो-हिणी नामकी औषधि मिली। उसे भी उसने अपने पास रख लिया। इसके बाद उसने अपनी जंघा चीरकर उसीमें उन पाँचों रत्नोंको रख दिया और उसी संरोहिणी औषधिके द्वारा उस व्रणको अच्छा कर लिया। वहाँसे आगे बढ़ने पर, उसे एक पातालनगर दिखाई दिया। उसने उस नगरमें प्रवेशकर देखा, कि उसमें खाने-पीनेके सामानोंसे भरे हुए घरों और दूकानोंकी श्रेणी तो मौजूद हैं; पर कहीं कोई आदमी नहीं नज़र आता। आगे चलकर उसने क़िला, फाटक और खिड़कियोंसे सुशोभित एक बड़ा भारी राजमहल देखा। उसके अन्दर प्रवेशकर जब वह उसके

सातवें खण्ड पर पहुँचा. तब वहाँ एक बालिकाको देख, उसे बड़ा विस्मय हुआ। इतने में वह बालिका उससे पूछ बैठी,—"हे सत्पुरुष! तुम यहाँ कहाँसे आ रहे हो? हे भद्र! सुनो—यहाँ तुम्हारे प्राणों पर संकट आनेकी सम्भावना है, इसलिये यदि तुम जीना चाहते हो, तो झटपट यहाँसे कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह सुन, धनदने कहा,—"भद्रे! तुम खेद न करो। मुझे अपना ब्योरेवार हाल कह सुनाओ। यह नगर सूनसान क्यों है और तुम कौन हो, यह बतलाओ।'

यह सुन, धनदके रूप और धैर्यको देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई वह बालिका बोली,—"हे सुन्दर! यदि तुम्हारी यह जाननेकी बड़ीही अभिलाषा है, तो सुनो—

"इसी भरतक्षेत्रमें श्रीतिलक नामका एक नगर है। उसमे महेन्द्रराज नामक राजा राज्य करते थे। वही मेरे पिता थे। एक बार उनके राज्यके समीपवर्ती शत्रुराजाओंने उनपर चढ़ाई की और उन्हें हरा डाला। इसी समय एक वैतालने आकर स्नेहके साथ राजासे कहा,—"हे राजा! तुम मेरे पूर्व जन्मके मित्र हो, इसलिये तुम मेरे योग्य कोई काम बतलाओ। कहो, मैं तुम्हारी कौनसी भलाई करूं? यह सुन राजाने कहा,—"हे मित्र! तुम मेरी सहायता करो, जिससे मैं अपने शत्रुओंको हरा सकूँ।" यह सुन वैतालने कहा,—"मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार गिरानेमे असमर्थ हूँ; क्योंकि मुझसे भी अधिक बलवान वैतालगण उनके मददगार हैं; पर हाँ, मैं और तरहसे तुम्हारी मदद कर सकता हूँ।" यह कह, वह वैताल उस नगरके सब लोगोंके साथ मेरे पिता और उनके परिवारको यहाँ ले आया। उसीने इस पाताल नगरकी रचना की। उसने एक कुएँके अन्दरसे इस नगरमे आने-जानेका मार्ग बनाया। उस कुएँकी रक्षाके लिये उसने बाहरके हिस्सेमें एक दूसरा नगर भी बसाया। इसके बाद जहाज़ोंमे भर-भरकर यहाँ सामान पहुँचने लगे। इस तरह सब लोग सुखसे रहने लगे। कुछ दिन इसी प्रकार बीत जानेके बाद, एक राक्षस कुएँकी राहसे यहाँ आ पहुँचा। वह दुष्ट माँसका लोभी था। वह

क्रमशः इस नगरके निवासियोंको खाने लगा। कुछ ही दिनोंमें उसने इस नगरके सब मनुष्योंका सफ़ाया कर दिया। इसके बाद वह बाहरवाले नगरके लोगोंको चट करने लगा। इसलिये वे लोग जहाज़ पर चढ़-चढ़कर भागने लगे। इस तरह उस दुष्ट राक्षसने दोनों नगर उजाड़ डाले। हे साहसिक! उसने एक मात्र मुझको ही विवाह करनेकी इच्छासे छोड़ रखा है। उसने मुझसे आजसे सात दिन पहले कहा था,—"भद्रे! मैं बड़ाही भयङ्कर राक्षस हूँ। मैं मनुष्यके माँसके लोभसे ही यहाँ आया था और तुम देखही रही हो, कि मैंने समस्त पुरजनोंका नाश कर डाला है। सिर्फ़ एकही कारण ऐसा है, जिससे मैंने तुम्हें जीता छोड़ दिया है।" उसकी यह बात सुनकर मैंने पूछा,—"वह कारण क्या है?" वह बोला,—"आजके सातवें दिन बड़ाही अच्छा शुभग्रह युक्त लग्न है। उसी दिन मैं तुम्हारे साथ विवाह कर तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा।" हे भद्र! आजही वह सातवाँ दिन है और उस राक्षसके आनेका समय भी हो गया है। जब तक वह यहाँ आये तब तक तुम यहाँसे टल जाओ।" यह सुन धनदने कहा,—"हे मुग्धे! तुम तनिक भी भय मत करो। वह दुष्ट मेरे हाथों मारा जायेगा।" बालिका बोली,—"यदि ऐसी बात है, तो लो, मैं तुम्हें उसके मारनेका ठीक समय बतलाये देती हूँ। जिस समय वह विद्याका पूजन करने बैठे, उसी समय तुम उसे मार डालो। उस समय वह न बोलचाल करता है, न उठकर खड़ा होता है। उसी अवसरमें तुम मेरे पिताके इस खड्गका उपयोग करना।"

वे दोनों इस प्रकार बातें करही रहे थे, कि वह राक्षस हाथमें एक मनुष्यकी लाश लिये हुए आया। वहाँ धनदको बैठा देखकर उसने हँस कर कहा,—"अहा! आज तो बड़े अचरजकी बात देखनेमें आ रही है। मेरा भक्ष्य आपसे आप मेरे घर आ पहुँचा है।" इस प्रकार अवज्ञा पूर्ण वचन कहकर उसने लाशको नीचे रख दिया और विद्याका पूजन करने लगा। इसी समय धनदने खड्ग खींचकर कहा,—"ठहर जा, पापी! आज मैं तेरा सफाया ही किये देता हूँ।" उसकी यह बात सुनकर भी वह राक्षस

अवज्ञाके साथ हँसता रहा। वह पूजा पर बैठाही रहा और धनदने खड्गका ऐसा वार किया, कि वह यमराजके घर जा पहुँचा। इसके बाद उसी शुभ समयमें उसकी लायी हुई सामग्रियोंका उपयोग करते हुए धनदने उस तिलकसुन्दरी नामक बालिकासे विवाह कर लिया। उसके साथ रहकर भोग-विलास करता हुआ, वह कुछ दिनों तक वहाँ रहा।

इसके बाद वह स्त्री, रत्न, सुवर्ण तथा उत्तमोत्तम वस्त्र इत्यादि अच्छे-अच्छे पदार्थोंको साथ लिये हुए उसी कुएँमें आ पहुँचा। इसके बाद पीछे लौटकर उसने और भी अपनी पसन्दकी चीज़ें ले लीं और भक्तिपूर्वक आकर चक्रेश्वरी देवीको प्रणाम कर उस कुएँकी मेखला पर आपहुँचा। इतनेमें उस द्वीपके पास एक जहाज़ आया। उस जहाज़के आदमी उसी कुएँसे जल लेने आये। उन्होंने कुएँमें रस्सी डाली। धनदने उस रस्सीको पकड़कर कहा,—"भाइयो! मैं कुएँमें गिर पड़ा हूँ, कृपाकर मुझे बाहर खींच लो।" यह सुनकर उन आदमियोंने यह बात अपने स्वामी देवदत्त नामक सार्थवाहसे कही। वह भी कौतूहलके मारे वहाँ आ पहुँचा। इसके बाद उसने उस रस्सीमें एक छोटीसी खटोली बाँधकर लटकायी। उसी पर चढ़कर धनद कुएँसे बाहर निकला। उसका यह सुन्दर रूप और उत्तम वस्त्र-भूषण देख, विस्मित होकर सार्थवाहने पूछा,—"भद्र! तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और इस कुएँमें कैसे गिर पड़े, इसका हाल बताओ।" धनदने कहा,—"हे सार्थवाह! मेरी स्त्री भी इसी कुएँमें गिर पड़ी है; उसे भी बाहर निकालना चाहिये। साथ ही मेरे रत्नालङ्कार आदि भी इसी कुएँमें पड़े हुए हैं। पहले इन सबको बाहर निकलवाइये, पीछे मैं अपना सारा हाल आपसे कहूँगा।

यह सुन उस सार्थपतिने कहा,—"हे भद्र! तुम खुशीसे अपनी स्त्री और समस्त वस्तुओंको बाहर निकाल लो।" धनदने ऐसाही किया। तिलकसुन्दरीको देख, सार्थवाह हक्का बक्का सा हो गया। इसके बाद सार्थवाहने जब धनदसे उसकी रामकहानी पूछी, तब उसने कहा,—"हे

सार्थपति! मैं भरतक्षेत्रका रहनेवाला हूँ। जातिका वणिक हूँ। मैं धन-उपार्जन करनेके लिये, अपनी प्रियतमाके साथ जहाज़ पर सवार हो, कटाह-द्वीपकी ओर चला जा रहा था। दैवयोगसे मेरा जहाज़ समुद्रमें टूट गया और मैं स्त्री सहित यहीं आ निकला। प्यासके मारे व्याकुल होकर मेरी स्त्री जलकी तलाशमें घूमती-घामती इसी कुएँके पास आयी और झाँककर पानी देखते-देखते कुएँमें गिर पड़ी। मैं भी उसके स्नेहके मारे उसके पीछे-पीछे कूद पड़ा, पर भाग्यसे हम दोनों कुएँकी मेखला पर ही रहे, पानीमें नहीं गिरे। इस कुएँमें रहने वाली जल देवीने प्रसन्न होकर मुझे बहुतसे रत्नालङ्कार आदि दिये और यह कहा, कि कुछ दिन बाद यहाँ एक जहाज़ आयेगा। तुम उसीपर बैठकर सुखसे अपने घर चले जाना। भाई सार्थवाह! यही तो मेरी रामकहानी है। अब तुम कुछ अपनी कथा सुनाओ, जिससे परस्पर प्रीति बढ़े।"

यह सुन, देवदत्तने कहा,—"हे भद्र! मैं भी भरतक्षेत्रका ही रहने वाला हूँ। मैं भी कटाह-द्वीपसे लौटा हुआ अपने घर जा रहा हूँ। तुम खुशीसे मेरे साथ चलो, हम लोग एक साथ चले जायेंगे, तुम अपनी प्रिया और समस्त वस्तुओंको मेरे जहाज़ पर चढ़ा दो।"

उसकी यह बात सुन धनदने कहा,—"अच्छी बात है। ऐसा ही करो। भाई सार्थेश! यदि मैं अपने घर पहुँच गया तो इन रत्नोंमेंसे छठा हिस्सा तुम्हें दे डालूँगा।" यह सुन, सार्थवाहने कहा,—"भाई! यह असार धन तो कोई चीज़ नहीं है, तुम्हारी यह भक्ति ही सब कुछ है।"

इसके बाद सार्थवाहने उसकी कुल चीज़ें अपने जहाज़ पर लदवा दीं, जहाज़ आगे बढ़ा। रास्तेमें उस दुष्टात्मा सार्थवाहका चित्त स्त्री और धन देखकर डाँवाँडोल हो गया और वह धनदकी बुराई करनेको तैयार हो गया। एक दिन रातके समय धनद शौच जानेके लिये मञ्च पर बैठा था, उस समय सब लोग सो रहे थे। इसी समय सार्थवाहने चुपचाप उसके पास आकर उसे मञ्च परसे समुद्रमें ढकेल दिया। कुछ दूर आगे बढ़ने पर सार्थवाहने शोर मचाना शुरू किया। "आइयो! मेरे प्राणप्रिय
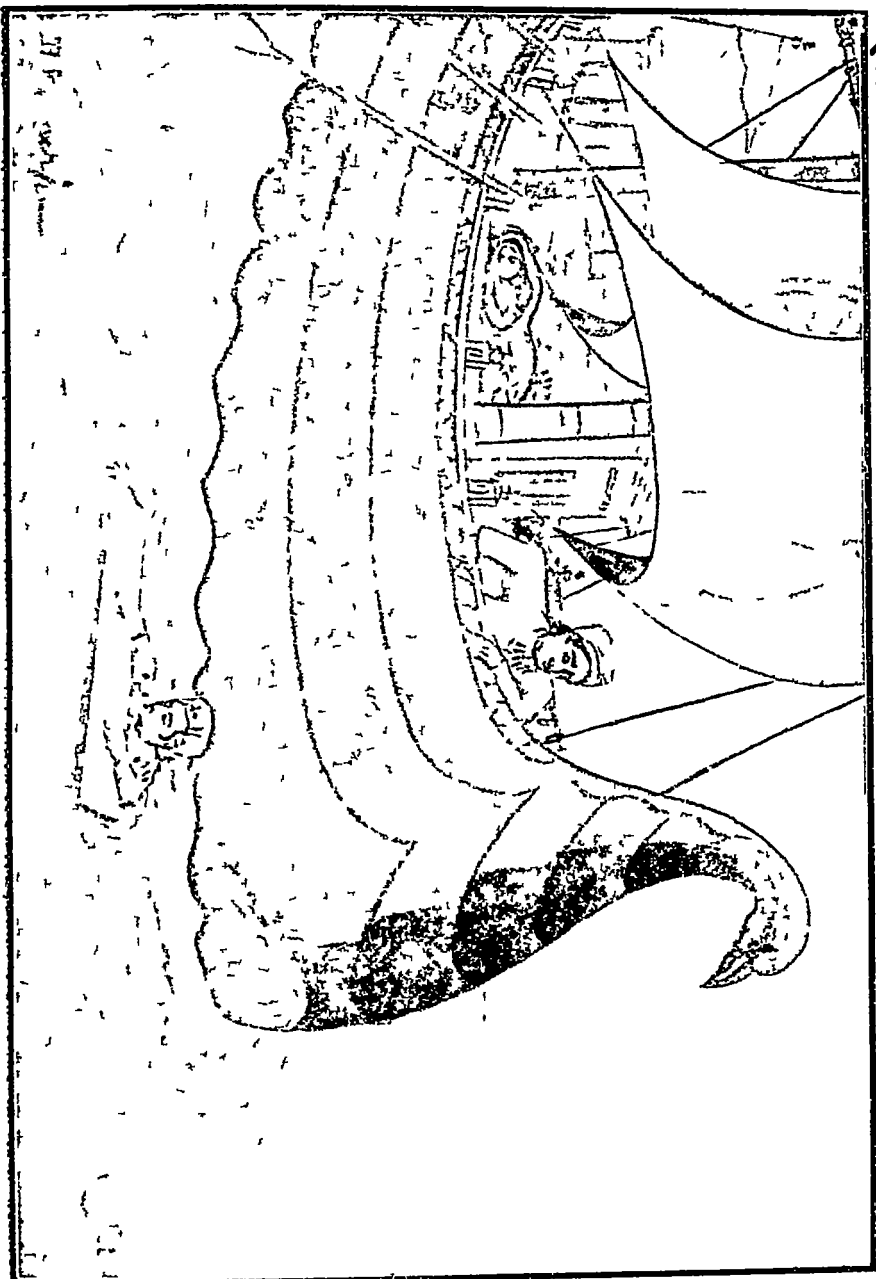
मित्र धनद शौच करनेके लिये मञ्चपर जाकर बैठे हुए थे, वे अभी तक लौट कर नहीं आये। कहीं वे समुद्रमें तो नहीं गिर पड़े?" ऐसा कहकर उसने लोगोंको दिखलानेके लिये अपने आदमियोंसे चारों तरफ़ खोज़ करवायी; पर कहीं धनदका पता नहीं लगा। तब वह मधुर वचनोंसे उसकी प्रियाको ढाँढस बँधाने लगा। एक दिन उसने तिलकसुन्दरीसे कहा,—"भद्रे! दैवयोगसे तुम्हारे पतिकी मृत्यु होगई, इसलिये अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ।" यह सुनतेही उस चतुर स्त्रीने विचार किया,—"अवश्यही इसी दुष्टने मेरे रूप पर मोहित होकर मेरे पति को मरवा डाला है। हो सकता है, कि यह मेरे ऊपर ज़ोर ज़बरदस्ती करके मेरा शील-भङ्ग करे, इसलिये इसे कुछ-न-कुछ इसे जवाब दे देना ही ठीक है। कालमें विलम्ब होनेसे सब मङ्गलही होगा। कहा भी है, कि—

> क्षणेन लभ्यते यामो, यामेन लभ्यते दिनम्।
> दिनेन लभ्यते कालः कालः कालो भविष्यति॥ १॥

*अर्थात्—"एक क्षणका समय मिल जानेसे पहर भरका समय मिल जाता है। एक पहरकी मुहलत मिलनेसे सारा दिन मिल जाता है। एक दिवसका समय मिल जाये, तो फिर बहुतसा समय मिल जाता है और उसका परिणाम दुष्टोंके लिये काल रूपही हो जाता है।"*

ऐसा विचार कर, उसने सार्थवाहसे कहा,—"हे सार्थपति! तुम मुझे अपने नगरमें ले चलो। वहाँके राजाकी आज्ञा लेकर मैं तुम्हारी स्त्री बन जाऊँगी। यह सुन, उसने सानन्द उसकी बात मान ली और मनमें विचार किया,— "मैं अपने नगरमें पहुँचकर राजाको धनादिसे सन्तुष्ट कर अपना मनोवाँछित पूरा कर लूँगा।"

इधर जब उस दुष्टने धनदको समुद्रमें गिरा दिया, तब उसे दैवयोगसे तत्काल ही एक पहलेके टूटे हुए जहाजका तख्ता हाथ लग गया। उसी तख़्तेको बड़ी मज़बूतीसे अपनी छातीसे लगाये हुए, वह तरङ्गोंमें बहता और उछलता हुआ पाँच दिन बाद अपने नगरके समीप आ पहुँचा। इससे उसके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उसने सिर ऊपर

उठा कर अपने नगरको देखना आरम्भ किया। इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तख्तेके साथही उसको निगल गयी। उस समय नरकके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,—"हे जीव ! यह सब तुम्हारे नसीबका खेल है। इसलिये तुम और न कुछ करो, केवल उसी गाथाको याद किया करो।" इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपत्ति निवारण करनेवाली मणिका स्मरण किया। उसके प्रभावसे मछुएने उसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया। इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट फाड़ डाला। पेट फटते ही मछुओंने उसके अन्दर एक पुरुषको देख, मनमें बड़ा आश्चर्य माना। तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे नहला कर, स्वस्थ कर, उन लोगोंने उस नगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया। राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने उसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,—"हे भद्र ! यह अचम्भा क्योंकर हुआ ? तुम कौन हो ? इस मत्स्यके उदरमें तुम कैसे चले गये? यह सब सच-सच कह सुनाओ; क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है।"

धनदने कहा"—महाराज ! मैं जातिका बनियाँ हूँ। जहाज़ टूट जानेपर मैं उसके एक तख्तेके सहारे किनारे आ लगा। इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी। मछुओंने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट फाड़ डाला और मुझे उसके अन्दर देख, विस्मित हो आपके पास ले आये। यही बात है।"

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे नहलवा कर शुद्ध बनाया और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया। उसी दिन उन्होंने उसका नाम मत्स्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, उसीकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने उसे अपना पानखवास बनाया। उसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, वहाँ बहुतसा समय बिता दिया।

एक दिन धनदका अनिष्ट करनेवाला सुदत्त नामका व्यापारी-

इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट फाड़ डाला। पेट फटते ही मछुओंने उसके अन्दर एक पुरुषको देख, मनमें बड़ा आश्चर्य माना
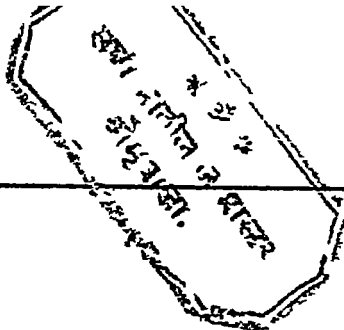
( पृष्ठ ५६ )

हवाके फेरसे अपना जहाज़ लिये हुए वहीं आ पहुँचा और द्वारपालके द्वारा राजाके पास ख़बर भिजवा कर भेंट लिये हुए उनके पास आया और प्रणाम कर बैठ गया। राजाने मीठे वचनोंसे उस वणिक्‌के साथ बातें कीं और उसका कुशल मङ्गल पूछा। बादमें राजाने अपने पान-ख़वासको उस बनियेको पान देनेका हुक्म दिया। धनद जब उसे पान देने आया, तब झट सार्थवाहको पहचान गया। सुदत्तको भी धनदकी सूरत देखतेही बड़ा अचम्भा हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"उस दिन मैंने जिसकी सोनेकी ईंटे और रत्नादि लेकर उस शून्य द्वीपके कुएँमें गिरवा दिया था, यह वही तो मालूम पड़ता है। पर वह यहाँ कैसे आ पहुँचा?" इस तरह मन-ही-मन विस्मय करता हुआ, वह राजाको प्रणाम कर ज्योंहीं उठा, त्योंहीं राजाने उस पर प्रसन्न हो उसका आधा कर माफ कर दिया। उसने तत्काल कहा,—'यह आपकी मेरे ऊपर अपार कृपा है!" यह कह, वह अपने स्थानपर चला गया।

सुदत्तने उसी नगरमें रहनेवाले एक आदमीको बुलाकर पूछा,—"भाई यह जो राजाका पान ख़वास है, वह बाप दादोंके वक्तसे ही इस पद पर है, या नया ही रखा गया है?"

यह सुन, उस मनुष्यने उसका यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर सुदत्तको अपनी पहचानका निश्चय हो गया। इन्हीं दिनोंमें एक बार उस नगरका गीतरति नामक चण्डाल गवैया अपने परिवार वालोंके साथ सुदत्तके यहाँ आया और गाने-बजाने लगा। उसकी गीत कलासे वह सार्थवाह बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ और उसे इनाम दे, संतुष्ट कर उसे एकान्तमें ले जाकर उससे कहा,—'हे गायक! यदि तू मेरा एक काम कर दे, तो मै तुझे खूब धन दूँगा।" उसने कहा,—"हे सार्थपति! जो कोई काम हो, झटपट कह डालिये, मैं सब कुछ कर सकता हूँ। जब राजा ही मेरे वशमें हैं, तब मेरे लिये क्या मुश्किल है?"

सार्थवाहने कहा,— "तू किसी दिन एकान्तमें राजासे जाकर कह दे, कि यह मत्स्योदर तो मेरा भाई है। यह सुन, उसने झटपट सार्थवाहकी बात स्वीकार कर ली। इस पर प्रसन्न होकर सार्थवाहने उस चण्डालको चार जोड़ी सोनेकी ईंटें लाकर दे दीं। उन्हें घर ले जाकर वह चण्डाल गायक सभामें बैठे हुए राजाके पास आकर गाना सुनाने लगा। उसके सङ्गीतसे प्रसन्न होकर राजाने पानख़वासको हुक्म दिया, कि इस उत्तम गायकको शीघ्रही पान खिलाओ। इस प्रकार राजाका हुक्म पाकर ज्योंही धनद उसे पान देने गया, त्योंही वह गीतरति नामक दुष्ट गायक धनदके गलेसे चिपट गया, और बोला,—"भाई! आज कितने दिन बाद मैंने तुमको देखा!" यह कह, वह अतिशय विलाप करने लगा। यह देख, राजाने उससे पूछा,—"मत्स्योदर! यह गायक क्या कह रहा है?" इस पर मन-ही-मन उपाय चिन्तनाकर धनदने कहा,—"महाराज! यह जो कुछ कह रहा है, वह सब ठीक है।" राजाने पूछा,- "क्योंकर ठीक है, बताओ।' इसके उत्तरमें धनदने राजाको एक मन गढन्त कथा कह सुनायी। उसने कहा,—"महाराज! पहले इस नगरमें मेरे पिता, जो चण्डाल थे और गीत कलामें बड़े ही निपुण थे, वे स्वामीके परम कृपापात्र थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। उनके हमी दोनों पुत्र थे। मेरी माताको पिता कम प्यार करते थे, इसलिये मैं भी उनका वैसा प्यारा नहीं था। इसकी माँ उनकी बड़ी प्यारी-दुलारी थी, इसलिये यह भी उनका बड़ा लाड़ला था। मेरे पिताने भविष्यत्का विचार कर मेरी जंघामें पाँच रत्न छिपाकर रख दिये, और जाँघके जख़मको झट मरहम पट्टी देकर अच्छा कर दिया। इसके बाद मेरे पिताने मुझसे कहा,—'हे वत्स! यदि कदाचित् तुम्हारे बुरे दिन आयें, तो इन रत्नोंको निकालकर इन्हींसे अपना काम चलाना" यही कहकर उन्होंने मुझे खुश कर दिया। तदनन्तर यह उनका अत्यन्त प्यारा था, इसलिये पिताने इसके सारे शरीरमें रत्न भर दिये।" यह कह, धनदने राजाके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके इरादेसे अपनी

जंघा विदीर्ण कर अपने छिपाये हुये पाँचों रत्नोंको निकाल कर राजाको दिखला दिया। उन महा मूल्यवान रत्नोंको देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय अपने सिपाहियोंसे कहा,—"तुम लोग इस गीतरतिका भी शरीर काट कर रत्नोंको निकाल कर मुझे दिखलाओ।" यह सुनते ही गीतरतिके देवता कूच कर गये और उसने डरके मारे कहा,—"हे स्वामिन्! न तो यह मेरा भाई है, न मैं इसे पहचानता हूँ, न मेरे शरीरमें रत्न भरे हुए हैं।" वह ऐसा कही रहा था, कि राजाके सेवक उसकी देहसे रत्न निकालनेके लिये तैयार हो गये। अबके वह फिर कहने लगा,—"महाराज! मैंने जो कुछ कहा हैं, वह सरासर झूठ है। सुदत्त सार्थवाहने मुझे सोनेकी ईंटें देकर मुझसे यह पाप-कर्म करवाया है। हे देव! यदि आपको मेरी बातका विश्वास न हो, तो मेरे घरसे उन ईंटोंको मँगवा कर दिलजमई कर लें।" यह सुन राजा मत्स्योदरका मुँह देखने लगे। यह देख, उसने कहा, —"प्रभो! इसकी यह बात ही ठीक है।" राजाने कहा, "मत्स्योदर! अब तुम मुझे सब सच्चा हाल कह सुनाओ।" मत्स्योदरने कहा,—"हे नरेश्वर! उस वणिक्‌के जहाजमें मेरी आठसौ जोड़ी सोनेकी ईंटें और पन्द्रह हज़ार निर्मल रत्न हैं। उन ईंटोंके अन्दर मेरे नामका चिह्न भी अङ्कित है।" यह कह उसने राजासे अपना नाम आदि बतलाते हुए अपना बहुत कुछ वृत्तान्त कह डाला। यह सुन, राजाने उस चण्डालके घरसे वे चारों जोड़ी सोनेकी ईंटें मँगवायीं और उनको तुड़वाकर धनदका नाम भी खुदा हुआ देख लिया। तत्काल राजाने उस वणिक् और चण्डालका वध करनेका हुक्म दे डाला. पर कृपालु मत्स्योदरने उसी समय उन दोनोंकी प्राणभिक्षा माँग ली। इसके बाद राजाने सोनेके जलसे उसे फिर स्नान करवा कर पवित्र करवाया और उस वणिक् तथा चाण्डालके पास उसका जो कुछ-धनरत्न था, वह सब मँगवाकर धनदको दे दिया। वणिक् तथा चण्डालको उचित शिक्षा मिली और धनद वह सारी लक्ष्मी पाकर धनद (कुबेर के समान हो गया)।

एक वार राजाने एकान्तमें धनदसे पूछा,— "हे मत्स्योदर! तुम अपना सारा वृत्तान्त मुझसे सच-सच कह डालो।" उसने भी राजा से अपना सारा कच्चा चिट्ठा इस प्रकार कह सुनाया, —"मैं इसी नगर के रईस सेठ रत्नसारका पुत्र हूँ। मैंने एक हज़ार सोनेकी मुहरें देकर एक गाथा मोल ली थी, इसीलिये मेरे पिताने मुझे घरसे निकाल दिया और मैं देशान्तरमें चला गया।" इसी प्रकार उसने अपनी और-और बातें भी राजाको बतलायीं। तदनन्तर कहा, कि—"स्वामी! अभी आप मेरा भण्डाफोड़ न करें; क्योंकि मेरी स्त्री और धनादिका हरण करनेवाला देवदत्त नामका सार्थवाह भी, सम्भव है, किसी दिन यहाँ आ पहुँचे, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा।" यह कह उसने राजाको प्रसन्न कर लिया और बड़े आनन्दसे उनके पास ही रहने लगा।

भाग्य योगसे एक दिन देवदत्त सार्थवाह भी वहाँ आ पहुँचा। वह भी भेंट लिये, तिलकसुन्दरीके साथ राजसभामें आया। राजाने भी उसे पहचान कर उसका भली भाँति आदर-सत्कार किया। मत्स्योदर भी उस सार्थवाह और अपनी स्त्रीको पहचान कर, उनका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे एक ओर छिप रहा। उसी समय राजाने बड़े आदर से सार्थवाहसे पूछा,— "हे भद्र! तुम कहाँसे आ रहे हो? और तुम्हारे साथ यह बालिका कौन है?" उसने कहा,— "हे राजन्! मैं कटाहद्वीपसे चला आरहा हूँ। मैंने इस बालिकाको एक द्वीपमें अकेली पड़ी पाया है। मैंने इसे श्रेष्ठ वस्त्र, अलङ्कार, आहार और ताम्बूल आदिसे परम सन्तुष्ट कर रखा है। अब यदि आपकी आज्ञा हो जाये, तो मैं इसे अपनी पत्नी बना लूँ।" यह सुन, राजाने उस बालिकासे पूछा,—"बालिके! तुम्हें यह वर पसन्द है या नहीं? कहीं यह तुम्हारे ऊपर बलात्कार तो नहीं करना चाहता?" यह सुन, वह बोली,— "इस पापीका तो मैं नाम भी लेना नहीं चाहती, क्योंकि इसने मेरे गुणरूपी रत्नोंकी निधिके समान स्वामीको समुद्रमें डाल दिया है। इस दुरात्माने मुझसे मिलनेकी कितनी इच्छा की, मेरी

कितनी प्रार्थना की, तब मैंने अपने शीलकी रक्षा करनेके विचारसे इसे यह उत्तर दिया, कि यदि राजाकी आज्ञा होगी, तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊँगी। इस तरह इसे धोखेमें रखकर मैंने इतने दिनों तक अपनी शीलकी रक्षा की। अब मैं अपने पतिसे वियोग हो जानेके कारण अग्निमें प्रवेश करना चाहती हूँ।" यह सुन, राजाने कहा,—'भद्रे! तुम मरनेका विचार छोड़ दो, मैं तुम्हे तुम्हारे स्वामीसे मिला दूँगा।" वह बोली,—"महाराज! आपको मेरे साथ हँसी नहीं करनी चाहिये। मेरे स्वामीको तो इस सार्थवाहने समुद्रमें फेंक दिया। अब वे कहाँसे मिलेंगे?" इसके बाद राजाने ताम्बूल देनेके लिये धनदको बुलवाकर सुन्दरीसे कहा,—"सुन्दरी! लो, अपनी आंखों अपने स्वामीको देख लो।" यह सुन, तिलकसुन्दरीने धनदकी ओर देखा और उसका यहाँ आना एकदम असम्भव समझ कर मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य माना इतनेमें धनदने कहा,—"हे स्वामी! इसका स्वामी वही है, जो न जाने कहाँसे अकस्मात् इसके महलमें आ पहुँचा और जिसे इसीने राक्षसका विनाश करनेके लिये खड्ग दिया था। फिर उसी खड्गसे उस राक्षस-को मारकर उसने स्नेहपूर्वक इसके साथ विवाह किया था।" इस प्रकार जब धनदने आदिसे अन्त तककी कुल बातें कह डालीं, तब वह बडी प्रसन्न हुई और राजाकी आज्ञासे मत्स्योदरकी पत्नी बनकर रहने लगी। पीछे राजाने सार्थवाहको कत्ल करनेका हुक्म दिया। परन्तु दयालुताके कारण धनदने उसको भी छुड़वा दिया। इसके बाद उस सार्थवाहने धनदके जो सब अलङ्कारादिक मनोहर वस्तुएँ ले ली थीं, वह राजाको दिखला दीं। राजाने वह सब चीज़ें धनदको दिलवा दीं।

इसके कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञा लेकर धनद अपने साथ बहुतसे आदमी लिये हुए अपने पिताके घर आया। उस समय सेठ रत्नसारने उस राजासे सम्मानित पुरुषको घर आया देख, उसे आसन आदि देकर उसका बड़ा आदर सत्कार किया। इसके बाद सेठने कहा,—

"मैं धन्य हूँ और धन्य है मेरा यह घर, कि तुम राजासे सम्मानित पुरुष होकर भी इस घरमें पधारे। मेरे योग्य जो कोई काम-काज हो, वह बतलाओ। मेरे घरमे जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है।" यह सुन, धनदने कहा,—"पिताजी! आपने जो कुछ कहा, वह सब सच है, परन्तु मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिये। सेठजी! आप यह तो कहिए कि आपका जो धनद नामका पुत्र था, वह कहाँ गया और आपको उसका कुछ समाचार मालूम है या नहीं? वह किसी निश्चित स्थानपर हैं या नहीं?" यह सुन, सेठने उसे अपनेही पुत्रकी सूरत-शकलका देख, मन-ही-मन विचार कर इस प्रकार अपने पुत्रका वृत्तान्त निवेदन किया,—"एक दिन मेरे पुत्रने हज़ार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली थी, इस पर मैंने क्रोधमें आकर उसे कुछ खरी-खोटी सुनायी, जिससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वह अभिमानके मारे मेरा घर-बार छोड, कहींको चल दिया। जबसे वह गया है, तबसे मुझे उसका कोई हालचाल नही मालूम। अब मैं आकृति और बोल-चालको मिलाता हूँ, तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि वही तुम्हीं तो नही हो; परन्तु तुमने अपने आपको ऐसा छिपा रखा है, कि मनमें संशय पैदा हो जाता है; क्योंकि दुनियाँमें एकसी सूरत शकलके बहुतसे आदमी होते हैं। इसीलिये मुझे यह ख़याल होता है, कि तुम मेरे पुत्रकेसे आकार-प्रकारवाले कोई दूसरे मनुष्य हो।"

सेठकी यह बात सुन, धनदने कहा,—"पिताजी! मैं ही आपका वह पुत्र हूँ।" यह सुन, सेठने उसके दाहिने पैरका निशान देख, उसे ठीक-ठीक पहचान लिया। धनदने भी विनयके साथ पिताके चरणोंमें सिर झुकाया। सेठने अत्यन्त प्रेमके वशमे हो, उसे गाढ़ालिङ्गन कर, हर्षके आँसू आँखोंमें भरे हुए गद्गद कंठसे कहा,—"पुत्र! तुम इसी नगरमें थे और अपनेको यों छिपाये हुए थे? क्या तुम्हें किसी दिन माँ-बापसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी? पुत्र! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे? परदेशमे रहकर तुमने क्या-क्या सुख-दुःख उठाये?

पिताके इस प्रकार पूछने पर धनदकी भी आँखें भर आयीं। उसने संक्षेपमें अपना सारा वृत्तान्त माता-पिताको कह सुनाया और उनसे क्षमा माँगी। इसके बाद फिर उसने अपने पितासे कहा,—"पिताजी! आप मुझे राजाके यहाँसे छुट्टी दिलवा दीजिये, जिसमें मैं आपकी पुत्र-वधूके साथ आपके घर आकर रहने लगूँ।" यह सुन, सेठ रत्नसारने बड़े हर्षके साथ राजसभामें जाकर पुत्रसहित राजाको भोजनका निमन्त्रण दिया। धनद अपनी प्रियाके साथ हाथी पर सवार हो, राजाके साथ-ही-साथ बड़ी धूमधामसे अपने घर आया। उस समय सेठने अपने देशान्तरसे लौटे हुए पुत्रके आने और राजाके अपने घर भोजन करनेके निमित्त पधारनेके कारण बड़ी ख़ुशी मनायी और ख़ूब धूमधाम की। राजाने भी बड़े आनन्दसे उसके घर भोजन किया। उस समय राजाका पुत्र, राजाकी गोदमें बैठा हुआ खेल रहा था। इसी समय एक मालीने आकर अपनी डालीसे एक उत्तम पुष्प लेकर राजाको भेंट किया। राजाकी गोदमें बैठे हुए कुमारने उस पुष्पको लेकर सूँघ लिया। उसी क्षण पुष्पके अन्दर बैठे हुए एक सूक्ष्म शरीरवाले राजसर्पने उसको नाकमें डँस दिया। राजकुमार बड़े ज़ोरसे रो-रो कर कहने लगा,— "न जाने मुझे किस कीड़ेने काट खाया।" यह सुन, राजाने जो फूलको मसलकर देखा, तो उसके भीतर नन्हाँसा राजसर्प बैठा दिखाई दिया। यह देख, अत्यन्त दुःखित हो, राजाने कहा,— "अरे! कोई जाकर सँपहरीको बुला लाओ।" तत्काल सँपेहरी भी आ पहुँचा। उसने उसका डंक वगैरह देखकर कहा,— "यह राजसर्प सब सर्पोंका शिरोमणि है। इसका विष बड़ा भयङ्कर होता है। यह जिसे काट खाता है, उसपर तन्त्र-मन्त्र कुछ भी असर नहीं करता।" यह सुन, राजा और भी चिन्तामें पड़े। इधर ख़ूब विष व्याप जानेसे राजकुमारकी चेतना लुप्त हो गयी। इसी समय धनदने आकर चक्रेश्वरी देवीकी दी हुई मणिका जल छिड़क कर राजकुमारको तत्काल विष-रहित कर दिया। इससे राजा बड़े ही हर्षित हुए, इसके बाद

राजाने धनदका खूब आदर-सत्कार किया और अपने महलोंमें आकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ बजवायीं, खूब उत्सव करवाया और दीन दुःखियोंको बहुतसा दान दिया।

इसके बाद राजकुमार क्रमश. बढ़ते-बढ़ते युवावस्थाको प्राप्त हुए। एक दिन वे हाथी पर सवार हो, राजवाटिकामें चले जारहे थे। रास्तेमें जाते-जाते नगरकी शोभा देखते हुए कुमारकी दृष्टि सूरराजकी पुत्री श्रीषेणा पर पड़ी और वे उसी समय कामदेवकी पीड़ासे व्याकुल हो गये। परन्तु उस कन्याके मनमें राजकुमारको देखकर कुछ भी प्रीति नहीं उत्पन्न हुई। काम-ज्वरसे पीड़ित कुमार घर आये, पर उनकी पीड़ा शान्त नहीं हुई। कुमारके मन्त्रियोंने उनका अभिप्राय राजापर प्रकट किया। राजाने एक चतुर मन्त्रीको सूरराजके पास उनकी कन्या श्रीषेणाकी याचना करनेके लिये भेजा। सूरराज मन्त्रीके मुँह से कन्याकी मँगनीकी बात सुन बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्रीकी बड़ी खातिर करने लगे। इतनेमें उस लड़कीने आकर कहा,—"यदि तुम मुझे कुमारके हाथों सौंप दोगे तो मैं निश्चय ही आत्महत्या कर लूँगी।" सूरराजको अपनी कन्याकी यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ उन्होंने मन्त्रीसे कहा,— "अभी तो आप जाइये, मैं पीछे अपनी कन्याको समझा-बुझाकर आपको ख़बर दूँगा।"

मन्त्रीने राजाके पास आकर यह सब हाल कह सुनाया। मन्त्रीके जाने बाद सूरराजने अपनी कन्याको बहुत तरहसे समझाया बुझाया; परन्तु वह किसी प्रकार राजकुमारको वरनेपर राजी नहीं हुई। लाचार, सूरराजने यही बात कहला भेजी। राजाने पुत्रको इसकी सूचना दे दी। यह सुन, राजकुमारको बड़ी निराशा और घोर दुःख हुआ। इसी समय धनदने राजाके पास आकर पूछा,— "स्वामी! आज आप इतने चिन्तित क्यों हैं?" राजाने उसको अपने पुत्रकी बात कह सुनायी। सब सुनकर धनदने कहा,— 'हे राजन्! आप इस बातकी ज़रा भी चिन्ता न करें। मैं अवश्य ही राजकुमारकी मनस्का-

मना पूरी करूंगा।" यह कह, वह घर आया और वहाँसे चक्रेश्वरी देवीका दिया हुआ एक रत्न ले जाकर राजकुमारके हवाले किया। तदनन्तर राजकुमारने धनदके बतलाये अनुसार उस रत्नकी विधिपूर्वक आराधना की, जिससे उस मणिका अधिनायक सन्तुष्ट हो गया। उसके प्रभावसे सूरराजकी पुत्रीके मनमें राजकुमारके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी और उसने अपनी एक सखीसे अपने मनकी बात कह डाली। उस सखीने यह बात उसके पितासे कही। उसके पिताने इसकी सूचना राजाको दी और राजाने अपने पुत्रसे सारा हाल कहा। इससे राजकुमारको बड़ा ही हर्ष हुआ। इसके बाद राजाने ज्योतिषीको बुलाकर विवाहका शुभ दिवस विचारनेको कहा। शुभ ग्रह-नक्षत्रमें दोनोंका विवाह हो गया। राजकुमार उसके साथ आनन्दपूर्वक विषय-सुख भोगने लगे।

एक दिन राजाके सिरमें बड़ी भयानक पीड़ा हुई। उसी समय धनदने देवीकी रोगापहारिणी मणिके प्रभावसे उनकी पीडा दूर कर दी। उस समय राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ,—"ओह! धनदके समान गुण-रत्नका सागर दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। बड़े भाग्यसे यह मेरा मित्र हो गया है।" ऐसा विचार कर, वे उस दिनसे उसे पुत्रसे भी बढ़कर मानने लगे।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें शीलन्धर नामक सूरि अपने चरण-रजसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए परिवार सहित आ पहुँचे। सारे नगर-निवासी बड़ी भक्तिके साथ उनके दर्शन और वन्दन करनेके लिये उद्यानमें आये। धनद भी रथमें बैठ कर वहाँ आया। गुरुकी वन्दना कर धनद इत्यादि सभी लोग यथायोग्य स्थानपर बैठ रहे। गुरुने उस समय इस प्रकार धर्मदेशना करनी आरम्भ की,—"इस संसारमें जीवोंको धर्मके बिना सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये, हे भव्य प्राणियों! तुम सदा धर्मकी आराधनाका प्रयत्न करते रहो। जो मनुष्य धर्म करते समय बीच-बीचमें मनमें अन्तर ले आता है, वह महणाकके

समान दुःखमिश्रित सुख पाता है।" यह सुन, धनदने सूरिसे पूछा,—
"हे भगवन्! वह महणाक कौन था, जो धर्म करते हुए बीच-बीचमें अन्तर डाल देता था? उसने किस प्रकार धर्मको कलङ्कित किया? कृपाकर उसका वृत्तान्त कह सुनाइये।" यह सुन, गुरुने कहा,—

"इसी भरतक्षेत्रमें रत्नपुर नामक एक नगर है। उसमें शुभदत्त नामका एक धनवान् सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा था। उनके महणाक नामका एक पुत्र था। उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। एक दिन वह महणाकके रथमें बैठकर बाग़ीचेमें सैर करनेके लिये गया। उसने बाग़ीचेमें बड़ा भारी मण्डप बनवाया था। उसी मण्डपमें वह अपने यार दोस्तोंके साथ बैठा हुआ मनोहर खाद्य, भोज्य, लेह्य और पेय—इन चारों प्रकारके आहारको इच्छानुसार वर्त्तने लगा। खाने-पीनेके बाद, पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त ताम्बूल भक्षण कर, थोड़ी देर नाटकका तमाशा देखनेके अनन्तर वह फलकी समृद्धसे मनोहर और घने वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानकी शोभा देखने लगा। इतनेमें उसने एक मुनिको देखा। उन्हें देखकर वह मित्रोंकी प्रेरणासे उनके पास आया। उनकी वन्दना करने पर उन्होंने ध्यान तोड़कर धर्म-लाभरूपी आशीर्वाद दिया। इसके बाद उनकी धर्मदेशना सुनकर उसको प्रतिबोध हुआ और उसने उन्हीं मुनिसे समकित सहित श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। इसके बाद वह फिर मुनिको प्रणाम कर अपने घर लौट आया। अपना द्रव्य लगाकर उसने एक बड़ा भारी जिन-मन्दिर बनवाया। इसके बाद वह अपने मनमें विचार करने लगा,—
"मैंने धर्मरसके आधिक्यके कारण इतना धन क्यों व्यय कर डाला? यह धन तो मैंने व्यर्थ ही गँवा दिया।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह कुछ दिनोंके लिये निरुत्साह हो गया। इसके बाद बहुतेरे मनुष्योंके आग्रह से उसने जिनप्रतिमा बनवायी और विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की। जीवहिंसाका त्यागकर यथायोग्य दान भी दिया। फिर उसके जीमें यह विचार उठा, कि—"ओह! मैंने

धर्मकार्यमें बेहिसाब धन लगा दिया। उपार्जन किये हुए धनका चौथाई हिस्सा ही धर्ममें लगाना चाहिये, अधिक नहीं। इसका फल मुझे कुछ मिलेगा या नहीं, इसमें भी संशय ही है। शास्त्रोंमें तो ऐसा लिखा पाया जाता है, कि अल्प व्ययका बहुत उत्तम फल मिलता है।" इस प्रकार चित्तमें संशय रखते हुए भी वह देवपूजादिक कार्य किया करता था। एक दिन उसके घर दो साधु आये। उसने उन्हें रोककर अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन कराये। मुनियोंके जाने बाद उसने अपने मनमें विचार किया,—"मैं भी धन्य हूँ, कि मेरे हाथों तपस्वियोंको मधुर आहार पहुँचा।" एक दिन रातको पिछले पहर सोते हुए उठकर उसने अपने मनमें विचारा,—"जिसका कोई प्रत्यक्ष फल देखनेमें न आये, वैसा पुण्य करनेसे क्या लाभ?" बादको एक दिन दो मलिन शरीरवाले तपस्वियोंको देखकर उसने विचार किया,—"ओह! इन मलिन शरीरवाले मुनियोंको धिक्कार है। यदि कदाचित् ये जैन-मुनि निर्मल वेष बनाये रखते, तो क्या जैनधर्ममें दूषण लग जाता?" इस प्रकार विचार कर उसने फिर सोचा,—"अरे! मेरा यह विचार बहुत बुरा है। मुनि तो ऐसे होते ही हैं। इनकी निर्मलता संयममें है, इनके शरीरकी निर्मलताकी ओर ध्यान देना ही उचित नहीं।" इसी प्रकार उसने शुभ भावोंके द्वारा शुभ कर्मोंका उपार्जन किया और बीच-बीचमें अशुभ भाव हो जानेसे उसने अशुभ कर्म भी उपार्जन कर लिया। अनन्तर आयु पूरी होजाने पर वह भवनपति देव हुआ। उसी स्थानसे च्युत होकर तुम इस समय धनद नामक सेठके पुत्र हुए हो। पूर्वभवमें तुमने धर्म करते हुए भी बीच-बीचमें उसे दूषित किया, इसीलिये तुम्हें इस भवमें दुःख मिश्रित सुख प्राप्त हो रहा है।"

इस प्रकार अपने पूर्वभवकी कथा सुनकर धनद, मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा और जातिस्मरण उत्पन्न होनेके कारण उसने अपना पूर्वभव स्पष्ट देख लिया। यह देख, उसने गुरुसे कहा,—"प्रभो! आपने जो कुछ कहा, वह बिलकुल सत्य है। अब तो मैं अपने बन्धुओं

की आज्ञा ले, आपसे ही व्रत ग्रहण करूंगा।" यह कह, उसने अपने घर आ, माता पितासे कहा,—"हे पिता! हे माता! तुम लोग मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे दो।" यह सुनकर उन लोगोंने उसे बहुत तरहसे समझाया; पर वह अपने विचारसे न डिगा। तब लाचार होकर उन्होंने कहा,—"हे पुत्र! यदि तुम दीक्षा लोगे, तो हमलोग भी तेरे साथ ही दीक्षा ले लेंगे।" उनकी ऐसी बात सुन, धनदने राजाके पास जाकर अपपा अभिप्राय, उनसे कह सुनाया। राजाने भी कहा,—"मैं भी तुम्हारे साथ ही व्रत ले लूंगा।" यह सुनकर धनदने कहा,—"हे नाथ! गृहस्थीमें तो आप मेरे स्वामी रहे ही; यदि यति होने पर भी आप ही मेरे स्वामी बने रहें, तो इससे बढ़कर और क्या चाहिये?"

इसके बाद राजाने कनकप्रभ नामक अपने पुत्रको राजगद्दी पर बिठाकर धनदके पुत्र धनवाहको सेठके पद पर स्थापित कर दिया। तदनन्तर राजा, माता-पिता और भार्याके साथ धनदने गुरुके पास आकर दीक्षा ले ली। कालक्रमसे वे लोग सब प्रकारके तप कर, शुद्ध व्रतोंका पालन कर, शुभ ध्यान करते-करते शरीर छोड़कर देव लोकमें चले गये। वहाँसे च्युत होनेपर वे लोग महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य भव पाकर, चारित्र ग्रहण कर, मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

मत्स्योदर कुमार-कथा समाप्त।

चारण मुनिने कहा,—"हे विद्याधरेन्द्र अमिततेज! धनदकी यह कथा सुनकर तुम्हें निरन्तर निष्कलङ्क धर्म करना चाहिये।"

ऐसा उपदेश पाकर अमिततेजने गुरुकी आज्ञा सिर पर चढ़ायी और दोनों मुनियोंको प्रणाम किया। इसके बाद वे चारण-श्रमण मुनि आकाशमें उड़कर अन्यत्र चले गये।

राजा श्रीविजय और अमिततेज धर्म-कर्ममें तत्पर रहते हुए काल-क्षेप करने लगे। दोनो पुण्यात्मा राजा प्रति वर्ष तीन-तीन यात्राएँ किया करते थे; जिनमें दो यात्राएँ शाश्वत तीर्थकी और एक अशा-श्वत तीर्थकी होती थी। एक चैत्र-मासमें और दूसरी आश्विनमास

में - इस प्रकार दो अष्टाह्निकाएँ शाश्वत हैं। देव और विद्याधर इन अष्टाह्निकाओंमें नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा करते हैं और दूसरे-दूसरे लोग अपने-अपने देशोंमें स्थित अशाश्वत तीर्थोंकी यात्रा करते हैं।

अमिततेज और श्रीविजय भूचरों तथा खेचरोंके स्वामी थे। वे नन्दीश्वर द्वीपकी दो-दो यात्राएँ किया करते थे। तीसरी यात्रा वे बलभद्रके केवलज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान सीमनग-पर्वतके ऊपर श्री आदिनाथके मन्दिरकी करते थे। इस प्रकार कई हजार वर्षों तक उन दोनोंने राज्य किया। एक दिन वे लोग मेरु पर्वतके ऊपर शाश्वत जिनबिम्बकी वन्दना करने गये। वहाँ जिनबिम्बकी वन्दना कर, वे दोनों नन्दन वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने विपुलमति और महामति नामक दो चारण-श्रमण मुनियोंको बैठे देखा। उनकी वन्दना कर, उनकी देशना श्रवण कर, उनसे श्रीविजय और अमिततेजने पूछा,—"हे भगवन्! हमारी अब कितनी आयु शेष है?" मुनियोंने कहा,—"अब तुम्हारी आयुके केवल २६ दिन बाकी हैं।" यह सुन, उन दोनोंने व्याकुल होकर कहा,—"हमने विषय लोलुपतामें पड़कर इतने दिनोंतक चारित्र नहीं ग्रहण किया। अब इतनी थोड़ी आयुमें हम क्या कर सकते हैं?" उनको इस प्रकार शोक करते देख, मुनियोंने कहा,—"अभी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है। आज भी तुम स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले चारित्रको ग्रहण कर, आत्मकार्यकी साधना कर सकते हो, इसलिये तुम ऐसा ही करो।" मुनियोंके इस प्रकार दिलासा देने पर दोनों अपने-अपने नगरको चले गये और अपने-अपने पुत्रोंको राज्य देकर अभिनन्दन नामक मुनिसे दीक्षा ले ली, तथा तत्काल पादपोपगम-अनशन करना आरम्भ किया। दुष्कर अनशन-व्रतका पालन करते हुए श्रीविजय मुनिको अपने पिता त्रिपृष्ठ वासुदेवके तेज-पराक्रमका स्मरण हो आया। इससे उन्होंने मन-ही मन निर्णय किया,— "इस दुष्कर तपके प्रभावसे मैं भी अपने पिताके ही तुल्य हो जाऊँगा। अमिततेज मुनिने ऐसा कोई निश्चय अपने मनमें नहीं किया। आयुष्यका

क्षय होने पर वे दोनों मृत्युको प्राप्त हुए और दसवें प्राणत कल्पमें महर्द्धिक देव हो गये । इनमें अमिततेजका जीव नन्दिकावर्त्त नामक विमानमें दिव्यचूल नामका देव हुआ और श्रीविजयका जीव स्वस्तिकावर्त्त नामक विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ । वहाँ रहते हुए वे दोनों देव इच्छानुसार दिव्य विषय-सुख भोगते, नन्दीश्वरादिक तीर्थोंमें यात्रा करते और देव पूजा, स्नात्र आदि धर्मक्रियामें तत्पर रहते हुए, शुभ भावसे अपने समकित-रत्नको अत्यन्त निर्मल बनाने लगे ।
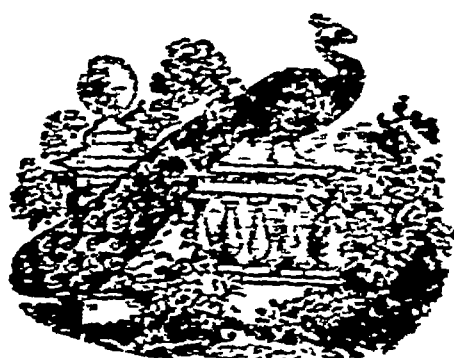
# तृतीय प्रस्ताव

इस जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेह-क्षेत्रके रमणीय नामक विजयमें सुभगा नामकी एक बड़ी भारी नगरी है। किसी समय वहाँपर गम्भीरता इत्यादि गुणोंसे युक्त और परम प्रतापी स्तिमितसागर नामके राजा राज्य करते थे। उनके शीलरूपी अलङ्कारसे सुशोभित और उत्तम गुणोंवाली दो स्त्रियाँ थीं, जिनके नाम वसुन्धरी और अनुद्धरी थे। वह जो दिव्यचूल नामक अमिततेजका जीव था, वह आयुष्यका क्षय होनेपर प्राणत कल्पसे च्युत होकर रानी वसुन्धरीकी कोखमें पुत्र-रूपसे अवतीर्ण हुआ। उस समय रानीने हस्ती, पद्मसरोवर, चन्द्र और वृषभ—ये चार स्वप्न बलभद्रके जन्मके सूचक देखे, इनके प्रभावसे समय पूरा होनेपर रानीने सोनेकी सी कान्तिवाला पुत्र प्रसव किया। पिताने पुत्र-जन्मके उपलक्षमें बड़ी धूमधाम की और उस पुत्रका नाम अपराजित रखा। इसके बाद मणिचूल नामका जो श्रीविजयका जीव था, वह भी आयुष्य पूरा होनेपर प्राणत कल्पसे च्युत होकर राजाकी दूसरी रानी अनुद्धरीकी कोखमें आया। उस समय रानी अनुद्धरीने वासुदेवके जन्मकी सूचना देनेवाले सिंह, सूर्य, पूर्णकुम्भ, समुद्र, श्रीदेवी, रत्न-समूह और निर्धूम अग्नि—ये सात स्वप्न मुखमें प्रवेश करते देखे। प्रातःकाल उसने बड़े हर्षसे अपने पतिको इन स्वप्नोंकी बात बतलायी। इन स्वप्नोंकी बात सुनकर राजाने स्वप्न-शास्त्रके विद्वानोंको बुलवाकर इस स्वप्नका विचार करवाया। उन लोगोंने कहा,—"हे राजन्! इन सात स्वप्नोंके प्रभावसे आपके पुत्र वासुदेव (त्रिखण्डाधिपति) होंगे और पहली रानीके पुत्र बलभद्र होंगे।" यह कह, वे स्वप्नशास्त्रके पण्डित राजाका दिया हुआ दान लेकर अपने अपने घर चले गये। राजा भी राज्यका पालन करने लगे।

क्रमशः समय पूरा होनेपर अनुद्धरी रानीके गर्भसे एक श्यामकान्ति पुत्रका जन्म हुआ। पिताने खूब धूमधामसे उत्सव किये और उसका नाम अनन्तवीर्य रखा। ये दोनों राजकुमार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते कलाभ्यास करने योग्य हो गये, इसलिये राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास कराया, धीरे-धीरे रूप और लावण्यसे शोभित वे दोनों कुमार युवावस्थाको प्राप्त हुए। तब राजाने उनका विवाह भी कर दिया।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें विशेष ज्ञानवाले स्वयंप्रभ नामके मुनि पधारे। उसी समय स्तिमितसागर राजा भी घुड़सवारी करके थके हुए, विश्राम करनेकी इच्छासे, उसी नन्दनके समान मनोहर उपवनमें आकर थोड़ी देर बैठे रहे। इसी समय राजाकी दृष्टि अशोक वृक्षके नीचे ध्यानमग्न मुनिपर पड़ी और उन्होंने शुद्ध भावसे उनके पास जा, उनकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, विधिपूर्वक उनको नमस्कार किया। इसके बाद विनयसे नम्र बने हुए उचित स्थानमें बैठकर उन्होंने मुनिके मुँहसे इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनी,—"कषाय कड़वे वृक्ष हैं, दुष्ट ध्यान इनके फूल हैं, इस लोकमें पाप-कर्म और परलोकमें दुर्गति ही इनके फल हैं। ऐसाही समझकर संसारसे विरक्त और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको इन अनर्थकारी कषायोंका अवश्यमेव त्याग करना चाहिये।" मुनिके ऐसे वचन सुन राजाने कहा,—"हे मुनिराज! आपने जो कहा, वह सब सत्य है, परन्तु यह तो कहिये, ये कषाय कितने प्रकारके हैं?" गुरुने कहा,—"हे नरेन्द्र! सुनो,—

"क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार प्रकारके कषाय हैं। इनमें से प्रत्येकके चार-चार भेद हैं। इनमें प्रथम अनन्तानुबन्धी, द्वितीय अप्रत्याख्यानी, तृतीय प्रत्याख्यानावरणी और चतुर्थ संज्वलन कहलाते हैं। पहला, अनन्तानुबन्धी क्रोध, पत्थरपर की हुई लकीरकी तरह अमिट और महादुःखदायी है। दूसरा, अप्रत्याख्यानी क्रोध, पृथ्वीकी रेखाकी तरह है। तीसरा, प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, धूलकी रेखाके समान है और चौथा, संज्वलन क्रोध, जलकी रेखाके तुल्य माना गया है।

मान और कषाय आदि भी इसी प्रकार चार-चार तरहके हैं। वे क्रमशः पत्थर, हड्डी, लकड़ी और तृणके स्तम्भके समान हैं। माया भी चार तरहकी है। यह बाँस, मेढ़ेके सींग, बैलके मूत्र और अवलेहिकाके * समान है। इसी तरह लोभ भी चार तरहका होता है। यह किरमिची रंग, या कीचड़, अञ्जन और हल्दीके रंगका सा होता है। अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषायोंके भेद अनुक्रमसे जन्मपर्यन्त, एक वर्ष तक, चार महीनेतक और एक पखवाड़ेतक रहनेवाले होते हैं और क्रमशः नरक-गति, तिर्यंच-गति, मनुष्य गति और देवगतिके देनेवाले होते हैं। हे राजन्! इन सोलह प्रकारके कषायोंको आदरपूर्वक पालते रहनेसे ये दीर्घकाल तक दुःख देते रहते हैं और स्वाभाविक रीतिसे करनेसे कुछ ही भव तक दुःख देते हैं। इसलिये हे राजन्! तुम तो इन कषायोंको एकदम त्याग दो, क्योंकि थोड़ेसे दुष्कृतसे भी पापका बहुत बड़ा फल मिल जाता है। जिस प्रकार मित्रानन्द आदिको इनका फल भोगना पड़ा था, वैसेही औरोंको भी भोगना पड़ेगा।

यह सुन, राजाने मुनिसे पूछा,—"पूज्य मुनिराज! वे मित्रानन्द आदि कौन थे? और उन्हें थोड़ेसे कषायका बहुत कड़वा फल किस प्रकार भोगना पड़ा? यह कृपाकर बतलाइये।" इसके उत्तरमें स्वयंप्रभ मुनिने कहा,—"हे राजन्! उस मित्रानन्दकी कथा तुम खूब जी लगाकर सुनो।" ऐसा कहकर मुनिने अपनी अमृत भरी वाणीमें वह कथा सुनानी आरम्भ की:——

## मित्रानन्द और अमरदत्तकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें अपनी अपार समृद्धिके कारण देवनगरीके समान बना हुआ और पृथ्वीपर परम प्रसिद्ध अमरतिलक नामका एक नगर है।

* बांस आदिके ऊपरकी छाल।

वहाँ पर किसी समय मकरध्वज नामके राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नीका नाम मदनसेना था। उसीके गर्भसे उत्पन्न और पद्मसरोवरके स्वप्न द्वारा सूचित पद्मकेसर नामका एक पुत्र भी राजाके था। एक दिन रानी मदनसेनाने राजाके सिरके बालोंपर कंघी फेरते-फेरते एक पका हुआ केश देखकर कहा,—"ए स्वामी दूत आ गया।" यह सुन, राजाने चकित होकर चारों तरफ़ देखा; पर कहीं कोई दूत नज़र नहीं आया। यह देख, उन्होंने रानीसे पूछा,—"प्रिये! वह दूत कहाँ है?" रानीने राजाको वह सफ़ेद बाल दिखलाकर कहा,—"धर्मराजने बुढ़ापेके आगमनकी सूचना देनेके लिये इसी पके हुए केशके बहाने आपके पास दूत भेजा है, इसलिये अब जहाँतक बन पड़े धर्म-कर्म कीजिये।" रानीकी यह बात सुन, राजा विस्मित होकर विचार करने लगे,—"मेरे पूर्वजोंने तो बाल पकनेके पहले ही धर्मका सेवन किया था। चारित्र ग्रहण किया था; पर मैं आजतक कुछ भी न कर सका। इसलिये मुझ राज्यके लोभी और बाप-दादोंकी रीति बिगाड़नेवालेको धिक्कार है। अभी मैं विषय-सुखमें ही लिपटा हूँ और इधर बुढ़ापा आ पहुँचा।" इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए पतिको देख, उनका अभिप्राय जाने बिनाही रानीने हँसते-हँसते कहा,—"हे नाथ! अगर बुढ़ापा आ जानेके कारण आपको लज्जा आ रही हो, तो कहिये, मैं नगरमें इस बातकी ढ्योंड़ी पिटवा दूँ, कि जो कोई राजाको वृद्ध बतलायेगा, वह अकालमें ही यमराजका घर देखेगा।" रानीकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"प्रिये! ऐसी बेसमझकी सी बातें क्यों करती हो? मेरे जैसे लोगोंके लिये तो बुढ़ापा मण्डन-स्वरूप है, फिर मैं इसके कारण लज्जित क्यों होने लगा?" राजाका यह कथन श्रवणकर रानीने कहा,—"नाथ! तो फिर अपना उजला बाल देखकर आपके चेहरेका रंग काला क्यों पड़ गया?" इसपर राजाने रानीको बतलाया, कि पका हुआ केश देखकर मेरे मनमें जो वैराग्य उत्पन्न हुआ है, उसीसे मेरा मुखड़ा उदास दीख रहा होगा। इसके बाद राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, आप अपनी स्त्रीके

साथ तापसी दीक्षा ग्रहण कर ली और वनमें जाकर रहने लगे। व्रत ग्रहण करते समय रानीके गर्भ था, यह बात किसीको मालूम नहीं थी। क्रमशः गर्भ वृद्धि पाने लगा। यह देख, राजाने एक दिन रानीसे पूछा,—"यह क्या?" यह सुन, रानीने राजा और कुलपतिको सारा हाल सच-सच बतला दिया। तपस्विनियोंकी सेवा-सहायतासे पूर्ण समय पर रानीके एक शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ।

दैवयोगसे प्रसूति-अवस्थामें अपथ्य आहार करनेके कारण रानीके शरीरमें भयङ्कर व्याधि उत्पन्न हो गयी। तपोवनमें औषध और पथ्य-का, जैसा चाहिये वैसा सुभीता नहीं था, इसलिये सब तपस्वियोंने मिल-कर विचार किया,—'माताके बिना गृहस्थोंके बालकोंका पालन-पोषण बड़ा ही कठिन है। ऐसी अवस्थामें यदि कहीं इस बालककी माता मर गयी, तो फिर हम तापसगण इसका कैसे पालन करेंगे?" वे लोग इसी तरह चिन्ता करही रहे थे, कि इसी समय उज्जयिनीका रईस, देव-धर नामक वणिक्, व्यापारके लिये घूमता-फिरता हुआ वहाँ आ पहुँचा। यह तपस्वियोंमें बड़ी भक्ति रखता था, इसीलिये उनकी वन्दना करने-के निमित्त तपोवनमें चला आया। उस समय उन सभी तपस्वियोंको चिन्तामें पड़े देखकर उसने उनसे इसका कारण पूछा। यह सुन, कुल-पतिने कहा,—"हे देवधर! यदि तुम्हें हमारे दुःखसे दुःख होता हो, तो इस बालकको तुम लेलो।" यह सुन, उसने कुलपतिकी आज्ञा स्वीकार कर ली। तपस्वियोंने बालकको उसके हवाले कर दिया। उसने वह बालक लेकर अपनी देवसेना नामक स्त्री, जो उसके साथ वहाँ आयी हुई थी उसे दे दिया। उस बेचारीके एक नन्हीसी दूधपीती बालिका थी, इसलिये बड़ी अनुकूलता हुई। इधर मदनसेना रानीने अपने पुत्रको सभी जगह ढूँढ़ा पर जब न मिला, तब मन मारकर रह गयी। क्रमश.उसका रोग बहुत बढ़ गया और उसीसे उसकी मृत्यु भी हो गयी। देवधरने उस लड़केको घर ले जाकर बड़ी धूमधाम की और उसका नाम अमरदत्त रखा तथा उसकी पुत्रीका नाम सुरसुन्दरी रखा,

लोगोंमें यही बात प्रसिद्ध हुई, कि देवधरकी स्त्रीके जुड़ैले बालक पैदा हुए हैं।

क्रमशः उज्जयिनी-नगरीके सागर सेठकी स्त्री मित्रश्रीके गर्भसे उत्पन्न मित्रानन्दके साथ अमरदत्तकी मित्रता हुई। उन दोनोंमें ऐसीही मित्रता थी, जैसी दोनों आँखोंमें होती है। एक दिन वर्षा-ऋतुमें दोनों मित्र क्षिप्रानदीके किनारे वटवृक्षके पास गिल्लीडंडा खेल रहे थे। एक बार अमरदत्तकी उछाली हुई गिल्ली दैवयोगसे वटवृक्षसे लटकते हुए किसी चोरके मृतक शरीरके मुखमें जा पड़ी। यह देख, मित्रानन्दने हँस कर कहा,—"अहा, मित्र! यह देखो, कैसे आश्चर्यकी बात है, कि तुम्हारी गिल्ली इस मृतकके मुँहमें चली गयी।" यह बात सुन, क्रोधितसा होकर वह मृतक बोल उठा,—"हे मित्रानन्द, सुन ले! तू भी इसी तरह इसी वटवृक्षसे लटकाया जायेगा और तेरे मुँहमें भी गिल्ली पड़ेगी।" उसके ऐसे वचन सुन, मृत्युके भयसे भीत होकर मित्रानन्दका उत्साह खेलमें न रह गया, इसलिये उसने कहा,—"यह गिल्ली मुर्देके मुँहमें पड़कर अपवित्र हो गयी, इसलिये जाने दो—अब यह खेलही बन्द कर दिया जाये।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"मेरे पास दूसरी गिल्ली है, उसीसे खेलो।" परन्तु इसपर भी मित्रानन्द खेलनेको राज़ी न हुआ और दोनों मित्र अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन मित्रानन्दको उदास और उसका चेहरा काला पड़ा हुआ देख, अमरदत्तने उससे पूछा,—"हे मित्रानन्द! तुम क्यों ऐसे दुःखित होरहे हो? तुम्हारे दुःखका कोई कारण भी है? यदि हो, तो मुझसे कह सुनाओ।" उसके इस प्रकार बड़ा आग्रह करके पूछनेपर मित्रानन्दने उस मृतककी कही हुई बातोंका ब्यौरा अपने मित्रको सुनाया। यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"हे मित्र! मुर्दा तो कभी बातें नहीं करता, इसलिये मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि अवश्यही यह बात किसी वैतालने कही होगी। पर हाँ, कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।" इसके बाद अमरदत्तने फिर उससे पूछा,—"अच्छा, मित्र! यह तो बत-

लाओ, कि तुम्हें उसकी बात सच्ची मालूम होती है या झूठी? अथवा तुम उसे दिल्लगी-मात्र समझते हो?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"मुझे तो वह बात सच्ची ही मालूम पड़ती है।" इसपर अमरदत्तने कहा,—"यदि सच्ची हो, तो भी क्या हुआ? मनुष्यको चाहिये, कि अपने भाग्यका लिखा हुआ मेट डालनेके लिये भी पुरुषार्थ करे।" मित्रानन्दने कहा,—"जो बात दैवाधीन है, उसमें पुरुषार्थ क्या करेगा?" अमरदत्तने कहा,—"मित्र! क्या तुमने नहीं सुना है, कि ज्ञानगर्भ मन्त्रीने पुरुषार्थके ही द्वारा दैवज्ञकी बतलायी हुई अपनी जीवन-नाशिनी आपत्तिसे छुटकारा पा लिया था।" मित्रानन्दने पूछा,—"वह ज्ञानगर्भ कौन था? और उसने किस प्रकार आपत्तिसे छुटकारा पाया था? यह सब हाल मुझे बतलाओ।" यह सुन, अमरदत्तने उसे यह कथा कह सुनायी,—

## ज्ञानगर्भ मन्त्री की कथा

इसी भरतक्षेत्रमें धन-धान्यसे परिपूर्ण चम्पानामकी नगरी है। उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे। उनके मन्त्रीका नाम ज्ञानगर्भ था, जिसपर वे सदा प्रसन्न रहते थे और जो राज्यकी सारी चिन्ता अपने सिरपर लिये हुए था। मन्त्रीकी स्त्रीका नाम गुणावली था। उसीकी कोखसे उसके सुबुद्धि नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही सुन्दर था। एक दिन राजा जितशत्रु सब मन्त्रियों और सामन्तोंके साथ सभामें बैठे हुए थे, उसी समय कोई अष्टाङ्ग ज्योतिषका जाननेवाला दैवज्ञ द्वारपाल द्वारा राजाकी आज्ञा मँगवाकर सभामें आया और राजाको आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आसनपर बैठ रहा। उस समय राजाने उससे पूछा,—"हे दैवज्ञ! तुमने कितना ज्ञान उपार्जन किया है?" उसने कहा,—"हे राजन्! मैं ज्योतिष-विद्याके प्रभावसे, लाभ-हानि, जीवन-मरण, गमन-आगमन और सुख-दुःखकी सभी बातें जान लेता हूँ।" तब

राजाने कहा,—“ मेरे इस, परिवारमें यदि किसीके ऊपर कोई अद्भुत बात वीतनेवाली हो, तो बतलाओ ।” यह सुन, दैवज्ञने कहा,—“मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि आपके इस ज्ञानगर्भ मन्त्रीपर पन्द्रह दिनके भीतर ही ऐसी विपत्ति आनेवाली है, जिससे वह अपने कुटुम्ब सहित मारा जायेगा ।” यह बात सुनकर राजा और समस्त राजकर्मचारियोंको बड़ा खेद हुआ । तदनन्तर दुःखित-हृदयसे मन्त्रीने उस दैवज्ञको अपने घर एकान्तमे ले जाकर पूछा, –“हे भद्र ! यह तो बतलाओ, कि मेरे ऊपर वह विपद् किस प्रकार आनेवाली है ?” उसने जवाब दिया,–“यह विपद् तुम्हारे ऊपर तुम्हारे बड़े बेटेके करते आयेगी, ऐसा मुझे मालूम होता है।” यह सुन, मन्त्रीने उसका सत्कार कर उसे विदा कर दिया ।

इसके बाद मन्त्रीने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—“हे पुत्र ! यदि तुम मेरी बात मानो, तो मेरे ऊपर आनेवाली प्राण-नाशिनी विपत्तिको अपनी ही विपत्ति मानो ।” यह सुन, पुत्रने अतिशय विनीत भावसे कहा,-“ पिताजी ! आप जो कहिये, वह करनेके लिये मै तैयार हूँ ।” इसके बाद मन्त्रीने एक आदमीके समा जाने लायक बड़ा सा सन्दूक मँगवाया और उसमें पानी तथा भोजनकी सामग्री सहित पुत्रको डालकर बाहरसे आठ ताले जड़ दिये । बादको वह सन्दूक राजाके हवाले कर उसने कहा,—“ हे राजन् ! यही मेरा सर्वस्व है । इसे आप खूब हिफ़ाज़तसे रखिये ।” यह सुन, राजाने कहा,—“ हे मन्त्री ! तुम इस सन्दूकमें रखे हुए धनको अपनी इच्छाके अनुसार धर्म-कार्यमें लगा दो—तुम्हारे बिना मैं इस धनको लेकर क्या करूँगा ?” मन्त्रीने कहा,—“स्वामिन् ! सेवकोंका यही धर्म है, कि चाहे जान भलेही चली जाये, पर अपने स्वामीके साथ धोखाधड़ी न करे ।” इस प्रकार उसके बहुत आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक एक गुप्त स्थानमें रखवा दिया । तब मन्त्रीने जिनमन्दिरोंमें अष्टाह्निका-उत्सव प्रारम्भ करवाये, श्रीसंघकी पूजा की, दीन-हीन मनुष्योंको दान दिया, अमारीकी आघोषणा करवायी और

आप अपने घरमें शान्ति-पाठ करने लगा। साथही शस्त्र तथा जिरह बख़्तरोंसे सजे हुए वीरों और हाथी-घोड़ोंको घरके चारों तरफ़ रख-वालीके लिये तैनात कर गृह-रक्षाका भी प्रबन्ध कर डाला। तदनन्तर वह घरके मन्दिरमें बैठकर धर्म-ध्यान करने लगा। इसी तरह करते हुए पन्द्रहवाँ दिन आ पहुँचा। उस दिन एकाएक राजाके अन्तःपुरसे यह आवाज़ आयी,—"हे लोगो! दौड़ो, दौड़ो, यह देखो मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि राजकुमारीका वेणीदण्ड काटकर भागा जा रहा है।" यह बात सुन, राजाने एक बारगी क्रोधमें आकर विचार किया,—"मैंने उस दुष्ट मन्त्री-पुत्रका इतना आदर किया और उसने मेरे साथ ऐसी बेजा हर-कत की?" ऐसा विचार मनमें आतेही राजाने सारी सभाके साम-नेही कोतवालको आज्ञा दी, कि मन्त्री-पुत्रके इस अपराधके दण्ड-स्वरूप तुम अभी मन्त्रीको सपरिवार मृत्युके घाट उतार दो। उसके किसी नौकरको भी जीता न छोड़ना, क्योंकि उसके पुत्रने बहुत बड़ा अप-राध कर डाला है। यह कह राजाने मन्त्रीके घर पर सेना भेजवायी। उस समय मन्त्रीके सैनिकोंने इनकी राह रोकी। यह सब समाचार ध्यानमें मग्न होकर बैठे हुए मन्त्रीको आपसे आप मालूम हो गया और उसने तत्काल बाहर आकर अपने आदमियोंको लड़नेसे मना करते हुए, राजाके सैनिकोंसे कहा,—"हे वीरो! तुमलोग एक बार मुझे राजाके पास ले चलो। उन लोगोंने ऐसाही किया। मन्त्री-को देख राजाका क्रोध कम हो गया। तब मन्त्रीने राजाके सामने जा, प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा,—"हे महाराज! मैंने जो सन्दूक आपके यहाँ रखवा दिया था, उसके भीतरकी चीज निकलवाइये। इसके बाद आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।" यह सुन राजाने कहा, क्या इतना बड़ा अपराध करके तुम मुझे धन देकर सन्तुष्ट करना चाहते हो?" मन्त्रीने कहा,—"महाराज! मेरे प्राण तो आपके अधीनही हैं, पहले एकबार उस सन्दूकको तो खोलकर देखिये।" उसके ऐसा आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक मँगवाकर उसके सब ताले तुड़वा

डाले। उसके अन्दर मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि बैठा हुआ था। उसके दाहिने हाथमें शस्त्र और बायें हाथमें वेणोदण्ड था, पर उसके दोनों पैर बँधे हुए थे। उसकी यह हालत देख, राजाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा,—"यह क्या मामला है?" मन्त्रीने कहा,—"महाराज! मैं क्या जानूं? शायद आप कुछ जानते हों।" सच्ची बात जाने बिना ही आप अपने इस जन्म भरके सेवकको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिये तैयार हो गये थे। यह सन्दूक मैंने आपके ही घर रख छोड़ा था। अब यदि उसके अन्दर यह करामात हो गयी, तो मेरा क्या अपराध है?" यह सुन राजाने लज्जित होकर कहा,—"हे मन्त्री! तुम मुझे इसका भेद बतलाओ।" मन्त्रीने कहा,—"स्वामिन्! हो सकता है, कि किसी भूत प्रेतने क्रोधित होकर मेरे इस निर्दोष पुत्र पर यह दोष लगानेके लिये यह काम किया हो। नहीं तो इस तरह सन्दूकमें बन्द करके रखे हुए आदमीकी ऐसी अवस्था क्योंकर हो सकती है?" यह सुन राजाने प्रसन्न होकर पुत्र सहित मन्त्रीका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने फिर पूछा,—"मन्त्री! तुमने यह बात क्योंकर जानी?" तब मन्त्रीने कहा,—"राजन्! मैंने उसी ज्योतिषीसे पूछा था, कि मेरे ऊपर कैसे विपद् आयेगी? उसने कहा, कि तुम्हारे पुत्रके करते तुम पर आफ़त आयेगी। इसीलिये मैंने उसके बतलाये अनुसार यह तरकीब की। श्री जिनधर्मके प्रभावसे सारे विघ्न टल गये।" इसके बाद राजा और मन्त्री दोनोंने अपने-अपने पुत्रोंको अपनी जगह पर बहाल कर दीक्षा ले ली और तपस्या करते हुए सद्गति पायी,

ज्ञानगर्भ मन्त्रीकी कथा समाप्त।

"हे मित्र! जैसे मन्त्रीने अपने पराक्रम और यत्नसे अपनी विपत्ति का नाश किया है, वैसाही तुम भी करो और इस खेदको त्याग दो।"

उसकी यह बात सुन, मित्रानन्दने कहा,—"मित्र! अब तुम्हीं कहो, कि मैं क्या करूँ?" अमरदत्तने कहा,—"चलो, हमलोग यह देश छोड़ कर कहीं और चले जायें।" यह सुन, मित्रानन्दने अपने मित्रके हृदय की

परीक्षा लेनेके विचारसे कहा,—"तुमसे बाहर जाना नहीं बन सकता, क्योंकि तुम्हारा शरीर बड़ाही कोमल है। शवने मेरी जिस विपदकी बात कही है, वह तो न जाने कब सिर पर आयेगी, पर सुकुमारताके कारण परदेशकी तकलीफोंके मारे तुम्हारा मरना तो बहुतही शीघ्र सम्भव है।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"मित्र! चाहे जो कुछ हो, पर मैं तो सुख या दुख तुम्हारे साथ ही भोग करूँगा।" उसकी ऐसी बात सुनकर मित्रानन्दके हृदयका विकार जाता रहा और दोनोंके दिल मिल गये। इसके बाद वे दोनों सलाह करके घरसे बाहर हुए और क्रमशः पाटलिपुत्र नगरमें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने नगरके बाहर एक नन्दन वनके समान मनोहर उद्यानमें ऊँची चहारदिवारीसे घिरा हुआ और ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एक सुन्दर प्रासाद देखा। उसे देखकर दोनों मित्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे पासवाली बावलीके जलमें हाथ, पैर और मुँह धोकर प्रासादके अन्दर चले गये और उसकी सुन्दरता देखने लगे। वहाँ अमरदत्तने एक पुतली देखी, जो रूपलावण्यमें ठीक देवाङ्गनासी मालूम होती थी। उसे देखकर अमरदत्त चित्रलिखितकी भाँति अचल सा हो रहा और भूख, प्यास तथा थकावट भी भूल गया। इतनेमें मध्याह्नका समय हो गया देखकर मित्रानन्दने कहा,— "भाई! चलो नगरमें चलें, बहुत विलम्ब हो रहा है।" यह सुन, उसने कहा,— "हे मित्र! क्षणभर और ठहर जाओ, जिसमें मैं इस पुतलीको अच्छी तरह देख लूँ।" उसकी यह बात मान, कुछ देर ठहरनेके बाद मित्रानन्दने फिर कहा,—"प्रिय मित्र! चलो, नगरमें चलकर कहीं ठहरनेका ठीक-ठिकाना करें, खायें-पीयें, फिर यहीं चले आयेंगे।" यह सुन अमरदत्तने कहा,—"यदि मैं यहाँसे टला, तो जरूर मर जाऊँगा।" यह सुन मित्रानन्दने कहा,—"मित्र! इस पत्थरकी पुतली पर तुम्हारा इतना अनुराग क्योंकर हो गया? यदि तुम्हें स्त्री-विलासकी ही इच्छा हो, तो नगरमें चलकर भोजन करके अपनी इच्छा पूरी कर लेना।"

इसी प्रकार बार-बार कहने परभी जब वह वहाँसे न टला, तब मित्रा-

नन्द क्रोधके मारे बड़े ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा। यह देख—अमरदत्त भी रोने लगा; पर वहाँसे हटनेका नाम नहीं लिया। इतनेमें उस प्रासादका स्वामी सेठ रत्नसार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने उन्हे देखकर कहा,—"अरे भाइयो! तुमलोग इस प्रकार स्त्रीकी नाईं क्यों रो रहे हो?" यह सुन, मित्रानन्दने पिताके समान उस सेठसे अपनी सारी रामकहानी आरम्भसेही कह सुनायी और मित्रकी वर्त्तमान स्थितिका हाल बतलाया। यह सुन, उस सेठने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया; पर उसका उस पुतली परसे अनुराग नही दूर हुआ। यह देख, सेठको भी बडा खेद हुआ। उसने अपने मनमे विचार किया,—"जब पत्थर की बनी हुई नारी इस तरह मन हर लेती है, तब साक्षात् स्त्रीकी बात तो कहना ही क्या? कहा भी है,—

> तावन्मौनी यतिर्ज्ञानी, सुतपस्वी जितेन्द्रियः।
> यावन्न योषितां दृष्टि-गोचरं याति पूरुषः॥ १॥

*अर्थात्— "पुरुष जबतक स्त्रीको नहीं देखता, तभीतक वह मौनी, यति, ज्ञानी, तपस्वी और जितेन्द्रिय बना रहता है।"*

वह सेठ यही बात सोच रहा था, कि इतनेमें मित्रानन्दने उससे पूछा,— "हे तात! इस विषम स्थितिमे मैं अब कौनसा उपाय करूँ? इस बातका क्या जवाब दूँ, यह न सूझ पड़नेके कारण वह सेठ चुप्पी साधे रहा। इतनेमें मित्रानन्दने फिर कहा,— "सेठजी! यदि मैं उस कारीगरका पता पा जाऊँ, जिसने यह पुतली गढ़ी है, तो मैं अपने मित्रकी इच्छा पूरी कर दूँ।" यह सुन, सेठने कहा,— "कोकण देशमें सोपारक नामक नगर है। वहींके शूर नामक कारीगरने यह पुतली गढ़ी है। यह प्रासाद और इसकी सारी चीज़ें मेरी बनवायी हुई हैं। इसीलिये मैं यह बात जानता हूँ।" यह कह उसने फिर कहा,—"यह हाल सुन कर, जो तुमने अपने मनमें विचारा हो सो मुझे कहो।" तब मित्रानन्दने कहा,—"सेठजी! अगर आप मेरे मित्रकी रखवालीका

भार ले ले, तो मैं सोपारक जाकर उस कारीगरसे पूछूँ, कि उसने यह मूर्त्ति अपनी बुद्धिसे बनायी है अथवा किसीके रूपको देखकर उसीके अनुरूप गढ़ डाली है? यह बात मालूम होनेपर यदि उसने किसीको देखकर यह मूर्त्ति गढ़ी होगी, तो मैं उसका पता लगाकर अपने मित्रकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा।" यह सुन, सेठने अमरदत्तकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। तब अमरदत्तने कहा,—"मित्र! मैं जिस समय यह बात जान जाऊँगा, कि तुम कष्टमें पड़े हो, उसी समय प्राण दे दूँगा।" मित्रानन्दने कहा,—"मित्र यदि मैं दो महीने तक न आऊँ, तो समझ लेना, कि मेरी मृत्यु हो गयी।"

इस प्रकार बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उसे समझा-बुझाकर, अमरदत्तको सेठके हाथोंमें सौंप, दिन रात चलता हुआ मित्रानन्द क्रमसे सोपारकपुर पहुँच गया। वहाँ अपनी अगूठी बेचकर उसने योग्यताके अनुरूप वस्त्रादि लेकर धारण किये और हाथमें ताम्बूलादिक लिये हुए उस कारीगरके घर गया। कारीगरने उसे धनवान समझकर उसकी बड़ी आवभगत की। इसके बाद उसे उत्तम आसन पर बैठा कर उससे आनेका कारण पूछा। तब मित्रानन्दने कहा,—"भाई! मुझे तुमसे एक महल बनवाना है। यदि तुम्हारे पास तुम्हारी कारीगरीका कोई नमूना हो, अथवा तुमने कहीं प्रासाद बनाया हो, तो मुझे दिखलाओ।" इसपर सूत्रधारने कहा,—"सेठजी! पाटलिपुत्र-नगरके बाहरवाले उद्यानमें जो प्रासाद है, वह मेरा ही तैयार किया हुआ है। आपने उसे देखा है या नहीं?" मित्रानन्दने कहा,—"हाँ उसे तो मैंने हालहीमें देखा है; परन्तु उस प्रासादमें जो एक जगह एक पुतली है, वह तुमने किसीका रूप देखकर गढ़ी है, या योंही अपनी कला-कुशलताका चमत्कार दिखलाया है।" कारीगरने कहा,—"अवन्ती नगरीके राजा महासेनकी पुत्री रत्नमञ्जरीका रूप देख करही मैंने वह पुतली गढ़ी है।" यह सुन, मित्रानन्दने कारीगरसे कहा,—"बहुत अच्छा। अब मैं चलता हूँ और एक अच्छा दिन देखकर तुम्हें महलके काममे

हाथ लगानेके लिये बुलवाऊँगा।" यह कह, वह बाज़ारमें चला आया। वहाँ उसने अपने लिये जो अच्छे-अच्छे वस्त्र खरीदे थे, उन्हें बेच डाला और सफ़रकी तैयारी कर, निरन्तर चलता हुआ क्रमसे एक दिन सन्ध्याके समय उज्जयिनी ( अवन्ती ) नगरीमें आ पहुँचा।

उज्जयिनीके नगर-द्वारपर बने हुए नगरदेवीके मन्दिरमें जाकर मित्रानन्द बैठाही था, कि उसने नगरमे इस प्रकार ड्योंडी पिटती हुई सुनी,—"जो कोई आज रातके चारों पहरोंमें इस शवकी रखवाली करेगा, उसे ईश्वर सेठ हज़ार मुहरें देंगे।" यह सुन, मित्रानन्दने पासके ही एक प्रतिहारसे पूछा,—"भाई! इस रातभरकी रखवालीके लिये यह सेठ इतना धन क्यों दे रहा है? इसका कारण क्या है?" यह सुन, द्वारपालने कहा,—"भाई! इस समय इस नगरीमें महामारी फैली हुई है। सेठके घरका कोई आदमी महामारीसे ही मर गया है। लाश उठते-न-उठते सूर्यास्त होगया और सब नगरद्वार बन्द हो गये। अब रातभर इस लाशपर पहरा देनेको कोई तैयार ही नहीं होता, क्योंकि यह महामारीसे मरा है। इसीलिये सेठ इसकी रखवालीके लिये इतना धन दे रहा है।" यह सुन, मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—"बिना धनके मनुष्यको किसी काममें सिद्धि नहीं मिलती, इसलिये मैं दिल कड़ा करके यह धन हथिया लूँ, तो ठीक है।" ऐसा विचार कर, मित्रानन्दने साहस धारण किया और धनके लोभसे उस लाशकी रात भर रखवाली करना स्वीकार कर लिया। ईश्वर सेठने उसे आधा धन देकर मुर्देको उसके हवाले किया और आधा सवेरे देनेको कह कर अपने घर चला गया।

मित्रानन्द उस लाशको लेकर रातके समय बड़ी सावधानीके साथ उसकी रखवाली करने लगा। मध्यरात्रिके समय शाकिनी, भूत, वैताल आदि प्रकट होकर तरह-तरहके उपद्रव करने लगे; परन्तु उसने धीरताके साथ सब कुछ सहन करते हुए रात बिता दी और शवकी भली भाँति रक्षा की। इसके बाद जब सवेरा हुआ, तब उस मृतकके स्वजनोंने

आकर उसे श्मसानमें ले जाकर उसका अग्निसंस्कार किया। मित्रानन्दने बाक़ीका धन माँगा, तो ईश्वर सेठ साफ़ .मना कर गया। तब मित्रानन्दने कहा,—"अच्छी बात है, यदि यहाँके राजा महासेन न्यायी होंगे, तो मुझे मेरा धन अवश्य ही मिल जायेगा।" यह कह, वह बाजारमें चला गया। वहाँ उसने सौ मुहरें ख़र्च कर उत्तमोत्तम वस्त्र ख़रीदे और बढ़िया वेश बनाये हुए वसन्ततिलका नामकी वेश्याके घर पहुँचा। उसे देखतेही वह उठ खड़ी हुई और उसका आदर-सत्कार करने लगी। उसी समय मित्रानन्दने उसे चार सौ मुहरें दे डालीं। उसकी ऐसी बढ़ी-चढ़ी उदारता देख, वसन्ततिलकाकी माँ बड़ीही हर्षित हुई और अपनी बेटीसे जाकर बोली,—"देखना, तू इस पुरुषको भली भाँति अपने वशमें करना। क्योंकि उसने एक मुश्त इतना धन दे डाला है अधिक क्या कहूँ? यह तो कल्पवृक्षही मालूम पड़ता है।" यह कह, उसने स्वयंही मित्रानन्दको नहलाया-धुलाया। इसके बाद सायंकालके समय उत्तमोत्तम शृङ्गारसे सजी हुई, रूप-लक्ष्मीके कारण देवाङ्गनाके समान बनी हुई, विषय-लालसासे मतवाली बनी हुई वसन्ततिलका मित्रानन्दके पास अपूर्व शय्याके ऊपर चली आयी और हाव-भाव दिखलाती हुई मधुर वचन बोलने लगी। उस समय मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—"विषय-भोगके लोभमें पड़े हुए प्राणियोंकी कार्य-सिद्धि नहीं होती, इसलिये मुझे इस लालचमें नहीं पड़ना चाहिये।" यही सोच कर उसने उस वेश्यासे कहा,—"सुन्दरी! मुझे थोड़ी देर ध्यान करना है, इस लिये एक चौकी ले आओ।" वह तत्काल एक सोनेकी चौकी ले आयी, जिसपर मित्रानन्द पद्मासन मारे, वस्त्रसे अपना सारा शरीर ढाके, ढोंग बनाये बैठ रहा। इसी तरह रातका पहला पहर बीत गया। यह देख, वेश्याने उससे विषय-भोगकी प्रार्थना की; परन्तु वह कुछ भी नहीं बोला, योगीकी तरह मौन साधे ध्यानमग्न हो, बैठा रहा। इसी प्रकार उसने ध्यानमें ही आधी रात बिता दी। प्रातःकाल होतेही वह उठकर शौचादिके लिये गया। वेश्याने रातकी यह सारी कथा अपनी

अम्मासे जाकर कह सुनायी। सुन कर, वह बोली,—"वह जैसा करे, वैसा करने दे और युक्तिपूर्वक उसकी सेवा बजा।" वेश्याने वैसा ही किया। दूसरी रात भी मित्रानन्दने इसी तरह चिता दी। यह सुन कर उस कुट्टिनीने क्रोधके साथ उसकी दिल्लगी उड़ाते हुए कहा,—"वाह साहब! मेरी यह लडकी राजकुमारोंके भी हाथ आनी मुश्किल है और तुम इस प्रकार इसकी उपेक्षा कर रहे हो, इसका क्या कारण है?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"माता! समय आनेपर मैं सब कुछ ठीक-ठिकानेके साथ कर दूँगा ; पर पहले यह तो बतलाओ, तुम्हारा राजमहलमें आना-जाना होता है या नहीं?" वह बोली,—"मेरी यह पुत्री राजाके यहाँ चँवर डुलानेपर नौकर है, इसीसे मैं भी जब चाहूँ, तभी—रात हो या दिन सब समय—राजमहलमें आ-जा सकती हूँ। मेरे जाने-आनेमें कोई रोक थाम नहीं होनेकी।" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"हे माता! तब तो तुम राजकुमारी रत्नमञ्जरीको अवश्यही पहचानती होगी?" वह बोली,—"वह तो मेरी पुत्रीकी सखा ही है।" मित्रानन्दने कहा,—"तब तो बुआ! तुम राजकुमारीसे जाकर यह कहो, कि हे सुन्दरी! लोगोंके मुँहसे जिस अमरदत्तके गुणोंका बखान सुनकर तुमने जिसपर प्रीति करनी आरम्भ की और जिसे पत्र लिख भेजा था, उसी अमरदत्तका मित्र यहाँ आया हुआ है।" वेश्याकी माँने यह बात स्वीकार कर ली और उसका सन्देसा लिये हुई राजकुमारीके पास आयी। राजकुमारीने कहा,—"बुआ! आओ, कोई नयी बात सुनाओ।" उसने कहा,—"हे राजकुमारी! आज मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्यारेका सँदेसा लेकर आयी हूँ।" यह सुन, आश्चर्यमें पड़कर राजकुमारीने कहा,—"मेरा प्यारा कौन है?" इसके उत्तरमें उस बुढ़ियाने मित्रानन्दकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर राजकुमारीने अपने मनमे विचार किया,—"आज-तक तो इस रूप-रंगका कोई पुरुष मेरा वल्लभ नहीं हुआ, न मैंने किसी-को कभी पत्र लिखा। मुझे अमरदत्तका नामतक नहीं मालूम। यह सब किसी धूर्त्तकी चालबाज़ी मालूम पडती है। तो भी चाहे जो कुछ

हो, जिस मनुष्यने यह फन्द-फरेब रचा है, उसे आँखों देख लेना जरूरी है।" ऐसा विचार कर, उसने उस बुढ़ियासे कहा,—"अच्छा, जो आदमी मेरे प्यारेका सँदेसा ले आया है, उसे आज खिडकीकी राह मेरे पास ले आओ।" यह सुन, बुढिया बडी प्रसन्न हुई और मित्रानन्दसे आकर सब हाल कह सुनाया। इससे मित्रानन्दको भी बडा आनन्द हुआ।

रातके समय बुढिया मित्रानन्दको राजमहलके पास ले जाकर बोली,—"भद्र! यह सात क़िलोंसे घिरा हुआ राजमहल है। इसीके अन्दर राजकुमारीका कमरा है। यदि तुममें ऐसी शक्ति हो, तो इसके भीतर चले जाओ।' यह सुन, मित्रानन्दने उस बुढ़ियाको चले जानेकी आज्ञा दे दी और आप बन्दरकी तरह उछल कर सातों क़िले तड़प कर राजमहलके भीतर प्रवेश किया। उसको इस प्रकार सात क़िले लाँघकर जाते देख, उस कुट्टिनीने अपने मनमें विचार किया,—"यह तो कोई बडा ही वीर पुरुष मालूम पड़ता है। इसके पराक्रमका तो कोई पार-घार ही नहीं है।" ऐसा ही विचार करती हुई वह अपने घर चली आयी। इधर ज्योंही मित्रानन्द राजमहलमें राजकुमारीके महलपर चढ़ा, त्योंही उसकी यह अनुपम वीरता देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई राजकुमारी नींदका बहाना किये पड़ रही। उस वीर पुरुषने उसे सोयी हुई देख, उसके हाथसे राजाके नामके चिह्नसे अङ्कित कडा निकाल लिया और उसकी दाहिनी जाँघमें छुरीसे त्रिशूलका निशान बनाकर झटपट राजमहलसे निकलकर, एक देवमन्दिरमें जा, सो रहा। उसके चले जानेपर राजकुमारीने सोचा,—"यह विचित्र चरित्र देखकर तो यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं मालूम पड़ता। यह मैंने बड़ी भारी मूर्खता की, जो उससे बोली तक नहीं।" इसी तरहके विचारमें डूबी हुई राजकुमारी रातके पिछले पहर निद्राकी गोदमें पड़ गयी।

प्रातःकाल होतेही वह वीर पुरुष ( मित्रानन्द ) राजमन्दिरके द्वारपर जाकर ज़ोर जोरसे पुकार कर कहने लगा,—"अरे बाबा! मेरे ऊपर बड़ा भारी अन्याय हो गया—बहुत बडा अन्याय!" राजाने जब यह

बात सुनी, तब एक द्वारपालके द्वारा उसे सभामें बुलवा मँगवाया। राजसभामें आतेही मित्रानन्दने राजाको प्रणाम कर फ़र्याद की,—"हे स्वामिन्! आप जैसा प्रचण्ड प्रतापशाली राजा होने हुए भी—ईश्वर सेठ-ने मुझ परदेशीको धोखा दे दिया।" राजाने पूछा,—"उसने तुम्हारे साथ कौनसा धोखा किया?" यह सुन मित्रानन्दने कहा,—"उसने मुझे सारी रात एक मुर्देकी रखवालीके लिये भाड़ेपर रखा, पर वह भाड़ेकी आधी रक़म देकरही रह गया। आधी देनेका नामही नहीं लेता।" यह सुन, राजाने क्रोधित होकर अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया,—"तुमलोग अभी जाकर उस दुष्ट वनियेको बाँध लाओ।" राजाके इस हुक्मकी बात सुनकर ईश्वर सेठ स्वयंही रुपया लिये हुए राजसभामें आया और उसने उस परदेशीको पाँचसौ सुनहरी मुँहरे गिनकर दे दीं। इसके बाद सेठने राजासे कहा,—"हे महाराज! उस समय शोकातुर होनेके कारण मैं इस परदेशीको प्रतिज्ञानुसार धन नहीं दे सका। इसके बाद तीन दिन लोकाचारमें ही बीत गये, इसी लिये रुपये अदा करनेमें और भी देर हो गयी।" यह कह राजाको प्रसन्न कर, वह घर चला गया। तब राजाने मित्रानन्दसे शवकी रखवालीका हाल सुनानेके लिये कहा, जिसके उत्तरमें उसने कहा,—"हे राजन्! यदि सचमुच आपको यह बात जाननेका कौतूहल हो, तो सावधान होकर सुनिये। धनके लोभसे शवकी रखवाली करना स्वीकार कर, मैं हाथमें छूरी लिये, रातभर उसी मुर्देके पास बिना सोये ही बैठा रहा। रातके पहले पहरमें बड़े भयङ्कर सियारोंकी बोली सुनाई दी और तत्काल ही मेरे चारों ओर पीले रोंगटेवाले सियार जमा हो गये, पर इससे मुझे ज़रा भी भय नहीं मालूम हुआ। इसके बाद दूसरे पहरमें काले-काले और अतिशय भयङ्कर राक्षस प्रकट होकर 'किल-किल' शब्द करने लगे। पर ये भी मेरे सत्त्वके प्रभावसे नष्ट हो गये। तीसरे पहरमें "अरे दास! तू कहाँ जायेगा?" यह पूछती और हाथमे शस्त्र लिये हुई शाकिनियाँ दिखलाई पड़ीं। वे भी मेरे धर्मके आगे नष्ट

होगयीं। इसके बाद, हे राजन्! रातके चौथे पहरमें, दिव्य वस्त्र धारण किये, विविध आभूषणोंसे सुशोभित, देवाङ्गनाके समान रूपवती, मुक्त-केशी, भयङ्कर मुखवाली, हाथमें कर्त्रिका (कत्ता) लिये भय उत्पन्न करती हुई एक स्त्री मेरे पास आकर बोली,—"ठहर जा, रे दुष्ट! मैं अभी तुझे जहन्नुम भेजे देती हूँ।" उसे देखकर मैंने अपने मनमें विचार किया,— "हो न हो, यही महामारी है।" महाराजा! यह विचार मन-में आते ही मैंने बायें हाथसे उसे पकड़ा और दाहिने हाथसे छुरी मारने-के लिये उठायी। इतनेमें वह मेरे हाथको मरोड़ कर भागने लगी। बस मैंने उसे भागते-न-भागते उसकी दाहिनी जाँघमें छूरीसे जख्म कर दिया और इसी खैंचातानीमें उसके हाथका कड़ा मेरे हाथमें चला आया। इसी समय सूर्योदय हो आया।" उसकी ऐसी आश्चर्य-भरी कहानी सुनकर राजाने कहा,—"हे वीर पुरुष! तुमने उस महामारीके हाथसे जो कड़ लिया, वह मुझे दिखलाओ।" यह सुनतेही उसने झटपट अपने दुपट्टे-के छोरमें बँधा हुआ वह कड निकाल कर राजाके हाथमें दे दिया। उस कड़े पर अपना नाम देख, राजाने सोचा,— "ऐं। तो क्या मेरी पुत्री ही महामारी है? यह गहना तो उसीका है।" ऐसा विचार मनमें आतेही राजा शौचादिकके बहाने उठे और कन्याके महलोंमें चले आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, कि उनकी कन्या सोयी हुई है। उसका दाहिना हाथ ख़ाली है,—उसमें कड़ा नहीं है। साथही उन्होंने उसकी जाँघमें जख़मपर पट्टी बँधी हुई भी देखी। यह सब देख-कर राजाको तो ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके सिरपर बिजली गिर पड़ी हो। उन्होंने सोचा,—"अहा! मेरे इस निर्मल कुलको इस दुष्टा कन्याने कलङ्कित कर दिया! चाहे जैसे हो इसका निग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो यह सारे नगरके लोगोंको मार डालेगी।" ऐसा विचार कर वे फिर सभामें लौट आये और मित्रानन्दसे बोले,— "भाई! यह तो बतलाओ, तुमने जो उस मुर्देकी रखवाली की, वह केवल साहसके ऊपर भरोसा करके की, अथवा तुम कोई मन्त्र भी

जानते हो ? उसने उत्तर दिया,— "हे महाराज ! बाप दादोंके समयसे ही मेरे घरमें तन्त्र-मन्त्र होता चला आया है। मै मन्त्र भी जानता हूँ।" यह सुन, राजाने सभासे सब लोगोंको हटाकर एकान्तमें मित्रानन्दसे पूछा,— "भाई ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि मेरी ही पुत्री महामारीका अवतार है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये तुम अपनी मन्त्र-शक्तिसे उसे दण्ड दो।" मित्रानन्दने कहा,—"महाराज ! यह बात तो अनहोनी मालूम पडती है। आपके कुलमे उत्पन्न कन्या, भला महामारी कैसे होगी ?" राजाने कहा,— "भाई इसमें अनहोनी कुछ भी नहीं है। क्या मेघसे पैदा हुई विजली प्राणोंका नाश नही कर देती ?" मित्रानन्दने फिर कहा,—"अच्छा, महाराज ! आप कृपाकर मुझे अपनी कन्याको दिखलाइये, जिसमे मैं देखकर इसबातकी जाँच कर लूँ, कि वह मेरे द्वारा साध्य है या नहीं ?" राजाने कहा,—"जाओ तुम वहीं जाकर देख आओ।" तदनन्तर राजाके हुक्मके मुताबिक वह राजकुमारीके महलमें गया, उस समय राजकुमारीकी नींद टूट गयी थी और वह जगी हुई थी। उसे आते देख, राजकुमारीने सोचा,— "यह तो वही मनुष्य मालूम पड़ता है, जिसने मेरा कड़ा छीन लिया था और छूरीसे मेरी जंघामें घाव कर दिया था। परन्तु यह वेधड़क यहाँ चला आ रहा है, इससे तो मालूम पडता है,कि इसे राजाकी आज्ञा प्राप्त हो चुकी है।" ऐसा विचार कर उसने उसको बैठनेके लिये आसन दिया। आसन पर बैठकर उसने कहा,—"राजकुमारी ! मैंने तुम्हारे ऊपर महामारी होनेका बड़ा भारी कलङ्क लगा दिया है, जिससे आज ही राजा तुमको मेरे हवाले करने वाले हैं। इसलिये यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हे अपने साथ ले चलूँ और अपने मित्र अमरदत्तसे मिला दूँ। यदि तुम्हें यह बात नहीं पसन्द हो, तो कहो, मैं इतना हो जानेपर भी तुम्हारे ऊपरसे कलङ्क दूर कर यहाँसे चला जाऊँ।" यह सुन, उसके गुणोंसे प्रसन्न बनी हुई राज-कन्याने सोचा,— "अहा ! यह मनुष्य मेरे ऊपर कितना प्रेम रखता

है? इसलिये मुझे तो कुछ दुःख उठाकर भी इसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। राज्यका लाभ तो सुलभ है, परन्तु ऐसा स्नेही मनुष्य मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।" ऐसा विचार कर उसने कहा,—"हे भाग्यवान्! मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हैं। मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ। क्या तुमने नहीं सुना है, कि,—

"अंधो नरिंदचित्तं, वरसाणं पाणिय च महिला य।
तत्तो गच्छंति फुड, जत्तो धुत्तेहिं निज्जंति।"

*अर्थात्—"अन्धा मनुष्य, राजाका मन, बरसातका पानी और स्त्री इन्हें जिधर धूर्त्त लोग ले जाते हैं.उधर ही ये चले जाते हैं।*

यह सुन, अपना मनोरथ सफल हुआ समझकर मित्रानन्दने राजकुमारीसे कहा,— "हे सुंदरी! जब मैं तुम्हारे सिरपर सरसोंके दाने छोड़ूँ, तब तुम उनको फूँक मारना।" राजकुमारीने यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद उसने राजाके पास आकर कहा,— "राजन्! मैं इस महामारीको वशमें ला सकता हूँ, पर आप एक तेज चालका घोड़ा मँगवाकर तैयार रखिये, जिसमें मैं उसी पर चढ़ाकर रातोंरात आपके देशसे बाहर ले जा सकूँ। अगर कहीं राहमें सूर्योदय हो गया, तो वह वहीं रह जायगी। यह सुन, डरे हुए राजाने एक हवाकी सी तेज चाल वाला मनोभिष्ट नामक अच्छी नसलका घोड़ा तैयार करवा कर उसके सुपुर्द किया। इसके बाद सन्ध्याके समय राजाके सेवक राजकुमारीको राजाके हुक्मसे बाल पकड़ कर ले आये और मित्रानन्दके हवाले कर दिया। उस समय उसने ज्योंही उसके ऊपर सरसोंके दाने छोड़े, त्योंही वह फुफकार सी छोड़ने लगी। इस पर मित्रानन्दने उसे बड़े ज़ोरसे ललकारा, जिससे वह शांत हो गयी। इसके बाद उसने राजकुमारीको घोड़े पर बैठा, आगे रवाना कर दिया और आप उसके पीछे-पीछे चला। राजा दरवाजे तक उसे पहुँचा कर महलोंमे लौट आये।

इसके बाद मार्गमे जाते-जाते राजकन्याने मित्रानन्दसे कहा,—

"हे सुन्दर ! तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ। ऐसी अच्छी सवारी रहते हुए भी तुम पाँव प्यादे क्यों चलते हो ?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,— "जबतक मैं इस राज्यकी सीमासे बाहर नहीं हो जाता, तबतक मैं पैदलही चलूँगा।" उसके ऐसा कहने पर कुछ देर ठहर कर राजकुमारीने फिर कहा,— "हे भद्र ! अब हमलोग अपने देशकी सीमासे बाहर हो गये, अब तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ।" मित्रानन्दने कहा,—"सुन्दरी ! मेरे नहीं बैठनेके कई कारण हैं।" उसने पूछा,—"कौनसा कारण है ?" वह बोला,—"सुन्दरी ! मैं तुम्हें अपने लिये नहीं ले जा रहा हूँ, बल्कि अपने मित्र अमरदत्तके लिये।" ऐसा कह उसने अपने मित्रकी सारी कथा उसे सुनाते हुए फिरसे कहा,— "हे भद्रे ! इसीलिये मेरा तुम्हारे साथ एक आसन वा शय्या पर बैठना उचित नहीं है।" मित्रानन्दकी ये बातें सुन, विस्मित होकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,—"ओह ! इस मनुष्यका चरित्र तो बड़ा ही अलौकिक है। भला जिसके लिये लोग अपने बाप, मा, भाई और मित्रके साथ धोखाधड़ी किये बिना नहीं रहते, वैसी सुन्दर रूपवाली स्त्री पाकर भी यह अपने मनमें उसकी अभिलाषा नहीं करता, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। यह अवश्य ही कोई महात्मा है। अपने कार्यकी सिद्धिके लिये तो सब लोग दुःख उठानेको तैयार रहते हैं; पर दूसरेके लिये दुःख उठाना किसी विरले ही पुरुषका काम है।" ऐसा विचार करती हुई राजकुमारी उसके गुणोंपर लट्टू हो गयी। क्रमशः वे दोनों पाटलिपुत्र नगरके पास आ पहुँचे।

इधर दो महीनेकी अवधि बीत जाने पर भी जब मित्रानन्द नहीं आया, तब अमरदत्तने रत्नसार सेठसे कहा,— "हे तात ! मेरा मित्र तो आजतक नहीं आया, इसलिये आप कृपाकर मेरे लिये लकड़ियोंकी एक चिता तैयार कराइये, जिसमें दुःखसे जलता हुआ मैं प्रवेश कर जाऊँ।" यह सुन, सेठको बड़ा दुःख हुआ, परन्तु लाचार उसका बड़ा आग्रह देख, उसने वहाँके कुछ लोगोंके साथ नगरके बाहर जाकर एक चिता तैयार

करायी। इसके बाद उसमें आग लगायी गयी। अमरदत्त चिताके पास आकर खडा हो रहा। उस समय सेठने उसे रोकते हुए कहा,—"भाई! आज भर ठहर जाओ, क्योंकि आजही अवधिका अन्तिम दिन है।" सेठकी यह बात सुन, और-और लोगोंने भी उसे चितामें कूदनेसे रोका और सबके सब वहीं रह गये। इतनेमें दिनके पिछले पहर मित्रानन्द रत्नमञ्जरीको लिये हुए वहाँ आ पहुँचा। उसे आते हुए देख, अमरदत्त बेतहाशा दौड़ा हुआ उसके गले आ लगा। उस समय एक दूसरेसे मिलकर उन दोनों मित्रोंको जो आनन्द हुआ, उसे वे ही दोनों जान सकते हैं, दूसरा कोई कहनेको समर्थ नहीं है। इसके बाद मित्रानन्दने कहा,—"हे मित्र! लो, मैं बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर तुम्हारे लिये तुम्हारी इस मनमोहिनीको लेता आया हूँ।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"तुमने अपना नाम सार्थक कर दिया, क्योंकि तुमने अपने मित्रको सचमुच आनन्द दिया। इसके बाद वहाँपर ईंधन और चिताको दूर कर पाँच लोकपालोंको साक्षी बनाकर उसी अग्निके सामने शुभ समयमें मित्रानन्दने उन दोनोंका ब्याह करा दिया। दोनोंकी योग्य जोड़ी मिल गयी, यह देख, पुरजनोंको भी बडा आनन्द हुआ। रत्नमंजरीका रूप देख, कुछ लोगोंने कहा,—"इस स्त्रीकी पुतली देखकर यदि यह मनुष्य मोहित हुआ, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।" इस प्रकार उन दोनोंका विवाह हो जानेके बाद उसी स्थान पर अमरदत्तको भाग्यसंयोगसे जो प्राप्त हुआ सो हे सभासदो! तुम लोग ध्यान देकर सुनो—

उसी समय पाटलिपुत्रके राजाकी मृत्यु हो गयी। उनके कोई पुत्र नहीं होनेके कारण राजपुरुषोंने पाँच दिव्योंको अधिवासित किया। प्रातःकाल वे पाँचों दिव्य नगरके सभी तिराहों, चौराहो और चौक वगैरह स्थानोंमें घूमते हुए वहाँ आये, जहाँ अमरदत्त था। उस समय घोड़े आपसे आप हिनहिना उठे, हाथी चिंघाडने लगे, छत्र आपसे आप खुल गया, चँवर स्वयं ही ढुलने लगे और जलसे भरा हुआ सुवर्ण-

कलश लेकर हाथीने आपही आप आकर उसके मस्तक पर राज्याभिषेक किया और उसे सूँड़से उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया। इसके वाद वहुतसे मनुष्योंसे घिरा हुआ, पाँच प्रकारके वाजोंके शब्दसे मन-ही-मन परम आनन्द अनुभव करता हुआ अमरदत्त नगरमें आया। उस समय पुर-नारियाँ उसे देखनेके लिये घिर आयीं और दम्पतिकी सुन्दरता देख आपसमें कहने लगीं,—“अहा! इस राजाका रूप कैसा अपूर्व है!” दूसरी स्त्री वोली,—“इस सुन्दरीका सा रूप तो शायद देवलोकमें भी नहीं होता होगा!” तीसरी वोली,—“यह स्त्री वड़ी ही भाग्यवती है, क्योंकि इसने ऐसा गुण और रूपसे सुशोभित स्वामी पाया है।” चौथी वोली,—“यह पुरुष वडाही पुण्यात्मा है, जो इसने परदेशमें आकर भी देवाङ्गनाकी सी अनुपम स्त्री प्राप्त की।” और कोई दूसरी स्त्री वोली,—“इसके मित्रकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है; क्योंकि उसने जी-तोड परिश्रम करके अपने मित्रके लिये ऐसी सुन्दरी और मृग-लोचनी स्त्री ढूँढ़ निकाली।” फिर दूसरी वोली,—“यह सेठ भी कम वड़ाईके योग्य नहीं है, क्योंकि इस भाग्यवान्‌ने कुल और शील जाने विना ही इसे अ पुत्रकी तरह रखा।” इसी प्रकारकी पुर-स्त्रियोंकी वातें सुनता हु अमरदत्त राजमहलके द्वार पर आया और हाथीसे नीचे उतर, राज मण्डलसे सेवित होकर राजसभामें जा, सिंहासन पर वैठ रहा। रानी रत्नमञ्जरी और मित्र मित्रानन्द उसके सामनेही वैठे। और-और लोग भी अपने-अपने योग्य स्थानोंपर वैठ गये। इसके वाद मन्त्री और सामन्तोंने मिल जुलकर उसका राज्याभिषेक करके प्रणाम किया। राजा होने पर उसने रत्नमञ्जरीको पटरानी वनाया, वुद्धिमान् मित्रानन्दको सारे राज्यकी मुद्राओंका अधिकारी वनाया और सेठ रत्नसारको पिताकी जगह पर माना। इस प्रकार उचित व्यवस्था कर कृतज्ञोंमें शिरोमणि अमरदत्त राजा न्याय-पूर्वक अपने अखण्डित राज्यका पालन करने लगा।

मित्रानन्द राजकाजमें फँसे रहने पर भी अपनी मृत्युकी सूचना देनेवाली उस लाशकी वातको नहीं भूलता था। इसीसे वह मन-ही-मन

सुख-चैन नहीं पाता था। एक दिन उसने राजा अमरदत्तसे निवेदान किया,—“ हे राजन्! उस शवकी वह बात, जो उसने मेरी मृत्युके विषयमें कही थी, मुझे कभी नहीं भूलती। उसीके लिये तो मैंने अपना देश छोड़ रखा है।” यह सुन, राजाने कहा,—“ हे मित्र! तुम खेद न करो; वह सब भूतलीला मात्र थी।” मित्रानन्दने कहा,—“निकटताके कारण यहाँ रहनेपर भी मेरा मन दुःखित होता रहता है, इसलिये मुझे कुछ दूर भेज दो।” यह सुन, राजाने कुछ विचार करनेके बाद कहा,—“हे मित्र! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है,तो तुम कुछ विश्वासी मनुष्योंके साथ वसन्तपुर चले जाओ।” इसके बाद मित्रानन्द तैयार होकर वसन्तपुरको ओर चला। राजाने अपने आदमियोंको भी उसके साथ रवाना कर दिया। साथ ही उन्हें जाते समय यह भी कहा, कि “तुममेंसे कोई एक आदमी वसन्तपुर पहुँचनेके बाद यहाँ आकर मित्रानन्दका कुशल-समाचार मुझे सुना जाना।” उन आदमियोंने “बहुत अच्छा” कहकर राजाकी आज्ञा स्वीकार कर ली।

इधर राजा अमरदत्त मित्रके वियोगसे विह्वल होते हुए भी पुण्योंके प्रभावसे प्राप्त राजलक्ष्मीको रानीके साथ भोगते रहे। बहुत दिन बीत जानेपर भी राजाके भेजे हुए आदमियोंमें से कोई लौटकर नहीं आया, इसलिये राजाने कुछ अन्य मनुष्योंको उधरकी ओर भेजा। कुछ दिन बाद वे लौट आये और राजासे बोले,—“हे स्वामिन्! हम लोग वसन्तपुर तक जाकर लौट आये, पर कहीं मित्रानन्द नहीं नज़र आये, न उनका कुछ समाचार कहीं सुननेमें आया।” यह सुन, अपने मनमें परम व्याकुल होकर अपनी रानीसे कहा,—“ प्रिये! अब मैं क्या करूँ? मित्रका तो कुछ पताही नहीं लगता।” रानी बोली,—“हे स्वामी! यदि कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ आ जाये, तो संशय दूर हो, और तो कोई उपाय इस संशयके दूर होनेका नहीं मालूम पड़ता।” वे दोनों इस तरहकी बातें करही रहे थे, कि अकस्मात् बाग़के मालीने आकर कहा,—“हे राजन्! चार प्रकारके ज्ञानको धारण करनेवाले श्रीधर्मघोष नामक सूरि,

श्रीमान्‌के नगरसे वाहरवाले उद्यानमें, जिसका नाम अशोकतिलक है, पधारे हैं और लोगोंको धर्मका उपदेश कर रहे हैं।" यह सुनतेही राजाने उस मालीको पाँचों अंगोंके आभूषण इनाममें दिये। वे जिनकी राह देख रहे थे, उन्हीं गुरुके आगमनकी वात सुन उनके चित्तमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। इसके वाद वे वहुनसी सामग्रियाँ साथ लिये, पटरानी समेत गुरुकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुच राजाने खड्ग, छत्र, आदि राज्यके चिह्नोंको दूर फेंक, गुरुकी तीन वार प्रदक्षिणा और उत्तरासङ्ग कर, विधि-पूर्वक उनकी वन्दना की। इसके वाद वे परिवार सहित उचित स्थान पर वैठे। गुरु महाराजने कहा,—"हे राजन् वुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये, कि सव दु:खोंका नाश करनेवाले और सब सुखोंके देनेवाले धर्मकी सेवा करें।"

इसी समय अशोकदत्त नामक एक वड़े भारी सेठने गुरुसे पूछा,—"हे पूजनीय! मेरे अशोकश्री नामकी एक पुत्री है। वह न मालूम किस कर्मके दोषसे शरीरसे वहुत ही दु खी होरही है? कृपाकर वतलाइये, कि वड़े-वड़े उपचार करनेपर भी उसका रोग तनिक भी कम क्यों नहीं होता?" सूरिने कहा,—"सेठजी! तुम्हारी यह पुत्री पूर्व भवमें भूतशाल नामक नगरके भूतदेव नामक सेठकी कुसुमवती नामक स्त्री थी। एक दिन उसके घरमें रखा हुआ दूध विल्ली पी गयी। यह देख, कुसुमवतीने क्रोधमें आकर अपनी देवमती नामक पुत्रवधूसे कहा,—"अरी, क्या तेरे सिर डाकिनी सवार हो गयी है, जो तू इस प्रकार दूधसे वेखवर हो रही?" यह सुन, वह वेचारी वालिका डर गयी और थर-थर काँपने लगी। यह हाल देख, उसी समय उसीके घरके पास खड़ी एक चंडालकी स्त्रीने, जो डाकिनीका मन्त्र जानती थी, वहाना पाकर उस वहूके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट करदी, जिससे वह वड़ा दुःख पाने लगी। वहुतेरे वैद्योंने उसकी चिकित्सा की, पर वह किसीसे अच्छी नहीं हुई। एक दिन एक योगी वहाँ आ पहुँचा। उसने मंत्रके वलसे अग्निमें अपना यन्त्र तपाया। वस तत्कालही वेदनाके मारे तड़पती हुई वह चण्डा-

लिनी चाल खोले वहाँ आ पहुँची। योगीने पूछा,—"तूने इस बेचारी बहूके शरीरमें क्यों डाकिनी प्रविष्ट कर दी?" वह बोली,—"इसकी सासने ऐसीही बात इसे कही थी, जिसे सुनकर यह बेचारी डरके मारे थर-थर काँपने लगी थी। बस यही मौक़ा देखकर मैंने इसके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट कर दी।" यह सुनकर, योगीने अपने मन्त्रके बलसे उस डाकिनीको बहूके शरीरसे बाहर निकाल डाला। यह समाचार पाकर उस नगरके राजाने उस चण्डालकी स्त्रीको देश-निकाला दे दिया और लोग कुसुमावतीकी सासको काल-जिह्वा कहने लगे। इस तरह बुरा नाम धराकर वह बेचारी संसारसे विरक्त हो गयी और एक साध्वीसे दीक्षा ग्रहण कर, शुभ-भाव-युक्त हो, चारित्र पालन करती हुई मरकर स्वर्ग चली गयी। वहींसे च्युत होकर वह तुम्हारी पुत्री हुई है। उसने पूर्व भवमें जो दुष्ट वचन कहा था, उसको उसने गुरुसे नहीं विचरवाया, इसीसे वह इस समय आकाशदेवीके दोषसे दूषित हो रही है। इसलिये सेठजी! तुम अपनी पुत्रीको यहाँ ले आओ। मेरा वचन सुनकर उसे जातिस्मरण उत्पन्न होगा, जिससे उसे पूर्व भवकी बातें स्पष्ट दिखायी देने लगेंगी और वह तत्काल दोषसे मुक्त हो जायेगी। सूरिके ऐसे वचन सुन, सेठ तुरत ही अपनी पुत्रीको गुरुके पास ले आया। उसी समय गुरुके प्रभावसे आकाशदेवी जाती रहीं, अपना चरित्र सुनकर उसे जातिस्मरण हो आया और पूर्व भवकी बातें मालूम कर बोली,—"हे प्रभु! आपने जो कुछ कहा, वह ठीक है। अब मुझे इस संसारमें रहनेको जी नहीं चाहता, इसलिये मुझे दीक्षा दे दीजिये।" इसपर गुरुने कहा,—"हे सुन्दरी! अभी तुम्हें अपने कर्मोंके फल भोगने बाक़ी हैं, इसीलिये तुम उन्हें भोग लेनेके बाद चारित्र ग्रहण करना।"

यह सुनकर उस सेठने गुरुकी वन्दना कर, कुछ धर्मकी बातें करनी अङ्गीकार कर, पुत्रीके साथ घरकी राह ली।

यह सब हाल सुनकर राजाने सोचा,—"देखता हूँ, कि इस

संसारमें हमारे इन गुरु महाराजका ज्ञान वडा ही अद्भुत है। इन्होंने इस सेठकी लड़कीके पूर्व जन्मकी धात आँखों देखी बातकी तरह साफ-साफ बतला दी। ऐसा विचार कर राजाने गुरुसे पूछा, "हे भगवन्! कृपाकर मेरे प्राणप्रिय मित्र मित्रानन्दका समाचार मुझे सुनाइये।" यह सुन, गुरुने कहा,—

"हे राजन्! तुम्हारा वह मित्र तुम्हारे पाससे चलकर क्रमशः जल-दुर्गका उलङ्घन कर, स्थल दुर्गमें गया। वहीं अरण्यमें किसी पर्वतसे जहाँ नदी झरती थी, वहीं तुम्हारा मित्र अपने सब साथियों समेत भोजन करने बैठा। सब सेवक भी भोजन करने लगे। इसी समय अकस्मात् भीलोंने उन पर धावा कर दिया और उन प्रचण्ड भीलोंके सामने सब वीर परास्त हो गये। यह हाल देख, डरके मारे मित्रानन्द अकेला भाग गया। उसके सेवकोंमेंसे भी कुछ लोग भाग गये और कुछ मरकर वहीं खेत रहे। जो भागे, वे शर्मके मारे फिर नहीं लौटे और जो मरे, वे वहीं पड़े रहे। उधर तुम्हारा मित्र भागता-भागता जङ्गलमें एक जगह सरोवर देख, उसका जल पी, एक बड़के पेड़के नीचे सो रहा, इतनेमें उस पेड़के कोटरमेंसे निकलकर एक काले नागने उसे काट खाया। थोड़ी ही देरमें कोई तपस्वी वहाँ आया। उसने तुम्हारे मित्रकी वह अवस्था देख, जलको मन्त्रित करके उसके अंगोंपर छिड़क दिया। इससे उसकी जान लौट आयी। तब योगीने पूछा,—"हे भाई! तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?" इस पर उसने अपनी राम-कहानी ज्योंकी त्यों कह सुनायी। सुनकर तपस्वी अपने स्थानको चले गये। मित्रानन्दने सोचा,—"यह देखो, मैं मृत्युका कारण उपस्थित हो जानेपर भी नहीं मरा और झूठमूठ हठ करके मित्रका भी साथ छोड़ आया। अच्छा, चलो, मित्रके ही पास चलूँ।" ऐसा विचार कर वह तुम्हारे पास आने लगा। रास्तेमें उसे चोरोंने पकड़ लिया और उसको अपने गाँवमें ले गये। इसके बाद उन्होंने उसको गुलामों-का व्यापार करने वालोंके हाथ बेच दिया। वे व्यापारी पारसकुल नामक

परदेशको चले जा रहे थे। जाते-जाते वे उज्जयिनी नगरके बाहर बग़ीचेमें रातको टिक रहे। आधी रातके समय बन्धन कुछ शिथिल होनेके कारण मित्रानन्दने उससे शीघ्र छुटकारा पा लिया और भागते-भागते नगर की मोरीकी राहसे नगरमें प्रवेश किया। उस समय उस नगरीमें चोरोंका बड़ा उपद्रव जारी था, इसलिये चोरोंका दमन करनेके निमित्त राजाने कोतवाल पर कड़ी ताकीद कर रखी थी। दैवयोगसे स्वयं कोतवाल-ने ही मित्रानन्दको इस प्रकार चोरोंकी तरह शहरमें घुसते देख लिया। अतएव उसने तुम्हारे मित्रकी मुश्कें कसवा कर, बेंतों और घूँसोंसे उसकी पूरी तरह मरम्मत करा, अपने सेवकोंके हाथमें वध करनेके लिये सौंप दिया और कहा,—"इसे क्षिप्रा-नदीके तीरपर ले जाकर बड़के पेड़से लटकाकर मार डालो, जिसमें औरोंकी आँखें खुल जायें।" सेवकोंके साथ जाते हुए तुम्हारे मित्रने विचार किया,—"उस दिन मुर्देने जो बात कही थी, वह आज सच निकली। शास्त्रमें कहा है, कि

> यत्र वा तत्र वा यातु, यद्वा तद्वा करोत्वसौ।
> तथापि मुच्यते प्राणी, न पूर्वकृतकर्मणा ॥ १ ॥
>
> विभवो निर्धनत्वं च, बन्धनं मरणं तथा।
> येन यत्र यदा लभ्यं, तस्य तत्तत्तदा भवेत् ॥ २ ॥
>
> याति दूरमसौ जीवोऽपायस्थानाद्भयद्रुतः।
> तत्रैवानीयते भूयोऽभिनवप्रौढकर्मणा ॥ ३ ॥

*अर्थात्—"प्राणी चाहे जहाँ जाये या जो कुछ करे, परन्तु पूर्वमें किये हुए कर्मसे उसका छुटकारा होना असम्भव है। वैभव, निर्धनता, बन्धन और मरण—ये चारों चीजें जिस प्राणीको, जिस स्थान पर और जिस समय मिलने वाली होती हैं, उसको, उसी स्थान पर और उसी समय प्राप्त हुआ करती हैं। दुःखके स्थानसे डरकर प्राणी चाहे जितनी दूर भागजाये ; परन्तु उदित कर्मोंके प्रभावसे वह फिर वहीं आ जाता है।"*

इस प्रकार विचार करते हुए मित्रानन्दको कोतवालके सेवकोंने निरपराधही वड़के पेड़में लटका कर फाँसी दे दी, जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया। तदनन्तर एक दिन ग्वालोंके लड़के गिल्ली-डण्डा खेलते हुए वहाँ आ पहुंचे और पूर्व कर्मके योगसे उनकी गिल्ली तुम्हारे मित्रके मुखमें चली गयी।"

इस प्रकार गुरु महाराजके मुखसे मित्रका वृत्तान्त श्रवण कर, उसके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा अमरदत्त बड़े ज़ोर-ज़ोरसे सिसकने लगे और रत्नमञ्जरी देवी भी उसके गुणोंको याद करके बड़ी दुःखित हुई। उन दोनोंको विलाप करते देखकर गुरुने कहा,—"दुःख छोड़ कर ससारके स्वरूपकी चिन्ता करो। इस चार प्रकारकी गतिवाले ससारमें प्राणियोंको वास्तविक सुख तो लेशमात्र नहीं होता और दुःख वरावर ही मिलता रहता है। संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिसे मरणकी वेदना न सहन करनी पड़ी हो। चक्रवर्त्ती और वासुदेवके से महापुरुषोंको भी मृत्युने नहीं छोड़ा। इसलिये हे राजन्! शोक छोड़ो और धर्म-कर्ममें लग जाओ, जिसमें फिर इस तरहका दुःख न हो।" राजाने फिर पूछा—"हे भगवन्! मैं धर्म करूँगा; पर आप यह तो वतलाइये, कि मित्रानन्द मरकर कहाँ पैदा हुआ है।" सूरिने कहा,—"हे राजन्! तुम्हारी इस रानीकी कोखमें मित्रानन्दका जीव पुत्ररूपसे आया है, क्योंकि उसने मरते समय इसी तरहकी चिन्ता की थी। समय पूरा होने पर वह पुत्र संसारमें उत्पन्न होगा। उसका नाम कमलगुप्त रखना। वह पहले कुमार-पदवी पाकर फिर राजा होगा।"

यह सुन, राजाने पूछा,—"हे महात्मा! मित्रानन्दकी विना किसी अपराधके ही चोरकी तरह मृत्यु क्यों हुई? रत्नमञ्जरी रानीको महामारी कलङ्क क्यों लगा? मुझे वाल्यावस्थासे ही वन्धु-वियोग क्यों अनुभव करना पड़ा? और हम दोनोंमें इतना अधिक स्नेह होनेका क्या कारण है?"

राजाके ये प्रश्न सुन, मुनिने अपने ज्ञानके द्वारा उन वातोंको

मालूम कर कहा,— "हे राजन्! सुनो—इस भवसे तीन भव पहले तुम क्षेमङ्कर नामके एक कृषक थे। तुम्हारी पत्नीका नाम सत्यश्री था। तुम्हारे यहाँ चण्डसेन नामका एक नौकर था। वह नौकर अपने स्वामी पर बड़ी भक्ति तथा प्रीति रखता और साथही बड़ा विनयी था। एक दिन उस नौकरने अपने खेतमे काम करते हुए पास वाले किसी खेतमें एक मुसाफ़िरको अनाजकी बाले तोडते देखा। यह देख तुम्हारे उस नौकरने कहा,—"रहो, मैं इसी चोरको पकड़ कर वृक्षसे लटकाये देता हूँ।" यह सुनकर भी उस क्षेत्रके स्वामीने उसे कुछ नहीं कहा। यह देख, उस मुसाफ़िरने, उस नौकरकी बातोंसे मन-ही-मन दुःखित होकर विचार किया,—"खेतका मालिक तो कुछ बोलता ही नहीं और यह पापी दूसरे खेतमें रहता हुआ भी कैसे कठोर वचन बोल रहा है?" ऐसा विचार करता हुआ वह अपने घर चला गया। इस प्रकार उस कर्मकरने कठोर वचन बोलकर दुःखदायी कर्मका उपार्जन किया।

एक दिन भोजन करते समय जल्दबाजीके मारे उस कृषककी पुत्र-बधूके गलेमें कौर अटक गया। इसपर उस कृषककी पत्नी सत्यश्रीने कहा,—"अरी, राक्षसी! तू छोटे-छोटे कौर क्यों नहीं खाती, जिससे गलेमें न अँटके?" इसके बाद एक दिन उस कृषकने नौकरसे कहा,—"हे भृत्य! आज तुम्हें एक गाँवमें एक जरूरी कामके लिये जाना है, इस लिये तुम वहीं जाओ।" इसपर उस नौकरने कहा,—"आज तो मैं अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये जाना चाहता हूँ, इसलिये आज तो नहीं जाऊँगा।" यह सुन, कृषकने बिगड कर कहा,—"आज तो तुम्हे अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये नहीं जाना होगा।" यह सुनकर उस नौकरको दुःख तो ज़रूर हुआ; पर लाचार अपने स्वजनोंसे मिलने न जाकर वही रह गया। दूसरे किसी दिन उस कृषकके घरपर दो मुनि भिक्षा करने आये। कृषकने अपनी स्त्रीसे कहा,—"इन मुनियोंको दान दो।" यह सुन, वह मन-ही-मन बड़ी हर्षित हुई और भाग्य-योगसे ऐसे सुपात्रोंका आना हुआ,

यही सोचकर शुभ भावनाओंसे युक्त हो, सुन्दर अन्न-जलसे उनको सन्तुष्ट किया। यह देख, पास ही खड़े उस नौकरने सोचा,—"ये स्त्री-पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपने घर आये हुए महामुनियोंका इस प्रकार भक्ति-पूर्वक आदर-सत्कार किया।" इसी समय एकाएक उन तीनोंके सिर पर बिजली गिर पड़ी, जिससे वे तीनों एकही साथ मर गये और सौ-धर्म नामक पहले देव-लोकमें अत्यन्त प्रीतियुक्त देव हुए। वहांसे च्युत होकर क्षेमङ्करका जीव तो तुम्हारे शरीरमें आया, सत्यश्री रानी रत्न-मंजरी हुई और वह नौकरही तुम्हारा मित्र मित्रानन्द था, जो जीव पूर्व भवमें जैसा कर्म बाँधता है, उसको इस भवमें वैसाही प्राप्त होता है। पूर्व भवमें जो कर्म हँस-हँस कर बाँधा जाता है, उसका फल इस भवमें रो-रोकर भोगना पड़ता है।" इस प्रकार अपने पूर्व भवकी कथा सुन कर राजा और रानी तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इसी समय उन्हें जाति-स्मरण हो आया और वे अपने पूर्व भवका सारा हाल प्रत्यक्ष देखने लगे। इसके बाद होशमें आनेपर राजाने कहा,—"हे भगवन्! ज्ञानरूपी सूर्यके समान आपने जो कुछ कहा, वह मैंने भी प्रत्यक्ष देख लिया। अब कृपाकर मुझे वह धर्म बतलाइये, जिससे धर्ममें मेरी योग्यता बढ़े।"

गुरुने कहा,—"हे राजन्! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, तब तुम चारित्र ग्रहण कर लेना। अभी तुमको श्रावक-धर्म ग्रहण करना चाहिये।" यह सुनकर राजाने रानीके साथ-ही-साथ बारह प्रकारका श्रावक धर्म ग्रहण किया। इसके बाद राजाने गुरुसे पूछा,—"उस समय जिस मुर्देने मित्रानन्दको वह बात कही थी, वह कहनेवाला कौन था?" सूरिने कहा,—"वह अनाजकी बालोंका चोर मुसाफ़िर क्रमशः मृत्यु होनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ उस वट-वृक्षपर जाकर प्रेत हो गया। उसने जब उस दिन मित्रानन्दको देखा तब पूर्वजन्मका वैर याद हो जानेके कारण उस मुर्देके मुखमें उतर कर वैसा वचन बोल गया।" यह सुन, राजा अमरदत्तके सारे सन्देह दूर हो गये और वे रानी सहित सूरिको प्रणाम कर घर चले गये। गुरु भी अन्यत्र विहार कर गये।

इसके बाद् समय पूरा होनेपर रानी रत्नमञ्जरीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम वही रखा गया, जो गुरुने बतलाया था। धात्रीसे पालित होता हुआ यह राजकुमार क्रमशः बाल्यावस्था बिताकर, बहुत्तर कलाओंका अभ्यास कर, राज्यका भार सँभालने योग्य हो गया। इसी समय एक दिन वही गुरु फिर वहाँ पधारे। मालीने आकर राजासे गुरुके आगमनकी बात कही। बस उसी समय राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, रानीके साथ ही वैराग्यकी दीक्षा ग्रहण कर ली। धर्मघोष सूरिने राजा और रानीको प्रव्रज्या देकर प्रतिबोधके निमित्त सभाके समक्ष इस प्रकारकी शिक्षा दी,—"इस संसार-रूपी समुद्रको तरनेके लिये यह दीक्षा नौकाके समान है और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसे प्राप्त कर जो जीव विषयोंके लोभमें पड़ता है, वह जिनरक्षितकी तरह घोर संसार-सागरमें पड़ता और जो प्राणी प्रार्थना करने पर भी विषय-से विमुख रहता है, वह जिनपालितके समान सुखी होता है।" यह सुन, राजर्षि अमरदत्तने गुरुसे पूछा,—"जिनरक्षित और जिन पालितने किस प्रकार सुख और दुःख पाया, इसका हाल कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, गुरुने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें कही हुई उनकी कथा इस प्रकार कह सुनायी:—

## जिनरक्षित और जिनपालितकी कथा

चम्पापुरीमें जितशत्रु नामके राजा थे। उनकी रानीका नाम धारिणी था। उसी नगरमें माकन्दी नामका एक धनी सेठ रहता था। वह शान्त, सरल-हृदय, और उदार बुद्धिवाला मनुष्य था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा था। उसके दो लड़के थे, जिनमें एकका नाम जिनरक्षित और दूसरेका जिनपालित था। वे जब युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब जहाज़ पर चढ़कर परदेश जाने और धन कमाने लगे। इस प्रकार उन्होंने ग्यारह बार समुद्र-यात्रा सानन्द सम्पन्न की और धन भी खूब कमाया।

इसके बाद जब वे बारहवी बार धन कमानेके लिये जलके मार्गसे जानेको तैयार हुए, तब उनके पिताने कहा,—"पुत्रो ! अपने घरमें धनकी कोई कमी नहीं है। तुम लोग जैसे चाहो, इस धनको दान और भोगमें ख़र्च करो। ग्यारह बार तो तुम लोग क्षेम-कुशलसे यात्रा कर आये, पर कहीं इस बार विघ्न हुआ, तो ठीक नहीं होगा, इसलिये बहुत लोभ करना उचित नहीं। यदि मेरी बात मानो, तो तुम लोग घरही रहो।" पिताकी यह बात सुन, उन दोनोने कहा,—"पिताजी ! ऐसी बात न कहिये। इस बारकी यात्रा भी आपकी कृपासे सकुशलही बीतेगी।" यह कह कर उन दोनोंने किरानेका बहुतसा माल जहाज़ पर लादा और जल, ईंधन इत्यादि सामग्रियोंके साथ जहाज़ पर सवार हो, समुद्रकी राह चल पड़े। क्रमशः वे मध्य समुद्रमें आ पहुँचे। इतनेमें मेघ घिर आनेसे अन्धकार होने लगा, आकाशमें बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बड़े ज़ोरकी आँधी चलने लगी। दैव-योगसे वह जहाज़ क्षण भरमें टूट गया। जहाज़ पर जितने लोग सवार थे, वे सबके सब डूब गये। उस समय जहाज़के स्वामी जिनपालित और जिनरक्षितको एक तख्ता हाथ लग गया, जिसे उन्होंने बड़ी मज़बूतीसे पकड़ लिया। उसेही पकड़े हुए वे तीसरे दिन रत्नद्वीपमें आ निकले। वहाँ पहुँच कर वे नारियलके फल खा-खाकर जीवन-निर्वाह करने लगे और नारियलका तेल शरीरमें लगाकर सुन्दर देहवाले होकर वहीं रहने लगे।

एक दिन कठोर, निर्दय और तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिये, उस द्वीपकी अधिष्ठात्री देवीने उनके पास आकर कहा,—"यदि तुम मेरे साथ विषय-भोग करो, तब तो तुम यहाँ कुशलसे रह सकोगे,नही तो मैं इसी खड्गसे तुम्हारे सिर काट डालूँगी।" यह सुन, उन्होंने भयभीत होकर कहा,—"हे देवी ! अपने जहाज़के टूट जानेसे हम यहाँ तुम्हारी शरणमें आ पहुँचे हैं। अब जो कुछ तुम्हारी आज्ञा होगी, वह करनेके लिये हम तैयार हैं।" यह सुन, प्रसन्न होकर वह देवी उनको अपने घर ले

गयी और उनके शरीरसे अशुभ पुद्गल निकाल कर, शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप कर, उन दोनोंके साथ मनमाने तौरसे विषय-सुख भोगने लगी। वह उन दोनोंको सदा अमृत-फल खानेको देती थी। इसी तरह वे कुछ दिनों तक वहाँ बड़े सुखसे रहे। एक दिन देवीने उनसे आकर कहा,— 'लवण-समुद्रके अधिष्ठाता सुस्थित नामक देवने मुझे आज्ञा दी है, कि तुम इस समुद्रको इक्कीस बार इसके अन्दरसे कूड़ा-कचरा निकाल कर शुद्ध करदो। समुद्रमें जो कुछ तृण, काष्ठ और अन्य अपवित्र पदार्थ हो, उन सबको निकाल कर किसी एकान्त स्थानमें फेंक दो।' उनका यह हुक्म पाकर मैं अब वहीं जा रही हूँ। तुम दोनों सानन्द यहीं पड़े रहो। यही सुन्दर फल खाकर तुम अपना पेट भरना। कदाचित यहाँ अकेले रहते-रहते तुम्हारा जी उचट जाये, तो तुम क्रीड़ा करनेके निमित्त पूर्व दिशामें जो वन है, उसीमें चले जाना। उस वनमें निरन्तर ग्रीष्म और वर्षा—ये दो ऋतुएँ छायी रहती हैं। वहाँ दो ऋतुएँ होनेके कारण तुम्हारा जी खूब लगेगा। पर यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे, तो मैं आज्ञा देती हूँ, कि तुम उत्तर दिशावाले वनमें चला जाना, जहाँ शरद् और हेमन्त, ये दो ऋतुएँ सदा बनी रहती हैं और अगर वहाँ भी मनको तुष्टि न प्राप्त हो, तो पश्चिम दिशावाले वनमें चले जाना, वहाँ शिशिर और वसन्त—ये दो ऋतुएँ निरन्तर वर्त्तमान रहती हैं'। वहीं जाकर मनमानी मौज करना; परन्तु दक्षिण दिशावाले वनमें तो हर्गिज़ न जाना; क्योंकि वहाँ बड़ा भारी दृष्टिविष नामका एक काला सर्प रहता है।"

यह कह, वह देवी चली गयी। उसके जाने बाद वे दोनों सेठके बेटे देवीके बतलाये हुए तीनों वनोंमें आनन्दसे विहार करने लगे। एक दिन उन दोनोंने सोचा,— "देवीने हमें दक्षिण-दिशाके वनमें नहीं जानेके लिये इतना ज़ोर देकर क्यों कहा? इसका कारण क्या है?" इसलिये चलो, एक बार चलकर देखें तो सही, कि वहाँ क्या है?" ऐसा विचार कर वे सशङ्कित-चित्तसे उस वनमें गये। वहाँ पहुँचते ही

उनकी नाकमें कड़ी दुर्गन्ध पहुँची। वे दुपट्टेसे नाक बन्द किये आगे बढ़े। वहाँ पहुंचकर उन्होंने मनुष्यकी हड्डियोंका ढेर देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा डर हुआ। तो भी वे आगे आकर जङ्गलकी सैर करने लगे। इतनेमें एक आदमी फाँसीसे लटका हुआ विलाप करता दिखाई दिया। उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—"हे भाई! तुम कौन हो? तुम्हारी ऐसी दशा किसने की? यहाँ जो चारों ओर मनुष्योंके मुर्दे दिखाई देते हैं, उसका क्या कारण है?" यह सुन, वह सूलीपर लटका हुआ मनुष्य बोला,—"मैं काकन्दी-नगरका रहनेवाला, जातिका बनियाँ हूँ। दैवयोगसे मार्गमें जहाज़ टूट जानेसे मैं एक तख्ता पकड़े हुए रत्नद्वीपमें आ निकला। वहाँकी विषय-भोगके लिये मतवाली बनी हुई देवीने मुझे विषय-भोगके लिये रख छोड़ा। कुछ दिन बीतने पर उसने थोड़ेसे अपराधके कारण मुझे इस प्रकार शूली पर लटका दिया। ये सब मुर्दे भी उसीके मारे हुए हैं। मालूम होता है तुम भी उसी दुष्टा देवीके चक्करमें आ फँसे हो। भला यह तो बतलाओ, तुम यहाँ कैसे आये?" इसके उत्तरमें उन दोनोंने भी अपनी सारी राम-कहानी उसे सुना कर पूछा,—"भाई! अब यह तो बताओ, कि हम यहाँसे किसी प्रकार जीते-जागते निकल भी सकते हैं या नहीं?" उसने कहा,—"हाँ एक उपाय है। यहाँसे पूर्वकी ओर एक वन है, जिसमें शैलक नामक एक यक्ष रहता है। वह पर्वके दिन अश्वका रूप बनाकर पूछता है, कि मैं किसकी रक्षा करूँ? किसे विपद्के मुँहसे बचाऊँ? तुम दोनों उसी यक्षकी भक्ति पूर्वक आराधना करो। जिस दिन वह तुमसे आकर पूछे, कि किसकी रक्षा करूँ? उस दिन तुम उससे कहना, कि हमारी रक्षा करो। इस प्रकार वह तुम्हारी रक्षा करनेको प्रस्तुत हो जायेगा।" यह कह, वह उलटा टँगा हुआ मनुष्य मर गया।

तदनन्तर वे दोनों भाई उस मनुष्यके बतलाये हुए वनमें आकर मनोहर पुष्पोंसे उस यक्षकी पूजा-अर्चा करने लगे। इसी प्रकार करते

हुए पर्वका दिन आ पहुँचा। उस दिन यक्षने आकर पूछा,—"बोलो, मैं किसकी रक्षा करूँ? किसे आपत्तिसे बचादूँ?" इतनेमें उन दोनोंने झटपट कहा,— "हे यक्षराज! हमें दुःख-सागरमें डूबनेसे बचाओ।" यह सुन, शैलकने कहा,— "मैं तुम्हें दुःखसे जरूर उबारूँगा पर तुम सावधान होकर मेरी एक बात सुनो। मैं जब तुम्हें यहाँसे ले चलूँगा, तब वह देवी भी तुम्हारे पीछे पीछे आयेगी और मीठे-मीठे वचन सुनायेगी। उस समय यदि तुम उसकी चिकनी-चुपड़ीबातोंसे मनमें पसीज उठोगे, तो वह जरूर ही तुम्हें उठाकर समुद्रमें फेंक देगी और यदि उसकी ज़रा भी परवा न किये हुए, राग-रहित होकर मेरे पीछे-पीछे चलते रहोगे, तो मैं तुम्हें निश्चय ही निर्विघ्न चम्पानगरीमें पहुँचा दूँगा और क्या कहूँ? यदि वह देवी आये, तो तुम उसके साथ चार आँखे भी न करना। वह डराने-धमकानेके लिये कुछ भी कहे, तो उसे सुन कर डरना नहीं। यदि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो सको, तो आओ, अभी मेरी पीठ पर सवार हो जाओ।"

यक्षकी इस बातको दोनों भाइयोंने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे दोनों उस अश्वरूपी यक्षकी पीठपर सवार हो गये। वह अश्वरूपी यक्ष उन्हें समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर आकाशमें ले उड़ा।

इधर देवी अपने हाथका काम पूरा कर अपने स्थानपर आयी और अपने मन्दिरमें उन दोनोंको न देखकर उपर्युक्त सब वनोंमें उन्हें ढूँढ़ने लगी; पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये। इसके बाद अपने ज्ञानसे यह मालूम कर, कि वे चम्पापुरीकी ओर चले जा रहे हैं, वह क्रोधके साथ खड्ग हाथमें लिये दौड़ पड़ी। जब वह दौड़ते-दौड़ते उन लोगोंके पास पहुँच गयी, तब उन्हें घोड़ेकी पीठपर चढ़कर जाते देख, बोली,— "अरे! तुम लोग क्यों मुझे इस तरह छोडकर भागे जा रहे हो? अगर तुम्हें जानेकी इच्छा ही हो, तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं इसी खड्गसे तुम्हारे सिर उतार लूँगी।" देवीकी यह बात सुन, यक्षने उन दोनोंसे कहा, "जब तक तुम दोनों मेरी पीठपर हो तब तक तुम्हें कोई भय

नहीं है।" यह धैर्य-वचन सुन, दोनों भाइयोंके चित्तमें बड़ी शान्ति आयी। तब देवी अनुकूल वचन बोलने लगी,—"मेरे प्राण-प्यारों! तुम लोग मुझे इस तरह अकेली छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो?" इस दीन-वचनसे भी उनके चित्त चंचल नहीं हुए। तब उसने अकेले जिनरक्षितसे कहा,—"जिन-रक्षित! तुम मेरे परम प्रिय हो। तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह निश्चल है। अब मैं तुम्हारे न रहने पर किसके साथ विषय-सुख भोगूँगी? तुम्हारे वियोगमें मैं ज़रूर मर जाऊँगी। खैर एक बार मेरी ओर देख तो लो, जिसमें मैं मरते समय भी तो थोड़ी शान्ति पा जाऊँ।" उसके इन माया-युक्त वचनोंको सुनकर जिनरक्षित-को बड़ा दुःख हुआ और उसने देवीके साथ आँखें चार कीं। बस शैलक यक्षने उसे तत्काल अपनी पीठ परसे उतारकर नीचे फेंक दिया। देवीने उसे समुद्रके जलमें फेंक डालनेके पहले त्रिशूलसे बींधकर कहा;—"रे पापी! ले, मेरे साथ धोखेबाज़ी करनेका फल भोग।" यह कह, उसने उसे खड्गसे चीर डाला। इसके बाद वह माया-जाल फैलाकर जिन-पालितको फँसाने आयी। यह देख, यक्षने कहा,—"यदि तूने इसकी बातों पर ज़रा भी ध्यान दिया, तो तेरी गति भी जिनरक्षितके ही समान होगी।" यक्षकी यह बात सुन, वह और भी दृढ़ हो गया और उसकी कपट-रचनाकी उपेक्षा कर, यक्षकी सहायतासे सकुशल चम्पापुरी पहुँच गया। वह भूतनी निराश होकर पीछे लौट गयी। यक्ष भी उसे उसके घर पहुँचाकर पीछे लौट गया। उस समय जिनपालितने उससे अपने अपराधोंकी क्षमा माँगी और विनय-पूर्ण वचनोंसे उसकी प्रशंसा की।

अपने घर पहुँच कर जिनपालित अपने स्वजनोंसे मिला और बड़े शोक भरे स्वरमें अपने भाईके मरनेका हाल उन्हें कह सुनाया। सेठ माकन्दी अपने पुत्र की मरण क्रिया कर, एकही पुत्र और अन्य स्वजनों-के साथ गृहधर्मका पालन करने लगा। एक दिन श्रीमहावीरस्वामी-ने उस पुरीके उद्यानमें पदार्पण किया। माकन्दी और जिनपालित आदि प्रभुकी वन्दना करनेके लिये आये और भगवान्‌की देशना श्रवण

कर, ज्ञान लाभकर, संयम ग्रहण करनेकी इच्छासे दोनोंने ही श्रीजिनेश्वरको प्रणाम किया। इसके बाद वे घर चले आये। तदनन्तर सेठ माकन्दीने पुत्रको घरका कारबार सौंपकर जिनपालितके साथ श्रीवीर प्रभुके पास आकर दीक्षा ग्रहण की। जिनपालित साधु पिताके साथ कठिन तपस्या करते हुए आत्मकार्यका साधन करने लगा।

जिनपालित—जिनरक्षित कथा समाप्त।

यह कथा सुनकर राजर्षि अमरदत्तने श्रीधर्मघोष सूरिसे इस कथा का उपनय पूछा। इसके उत्तरमें गुरुने कहा,— "उस सेठके दोनों पुत्रोंके स्थानमें इस संसारके समस्त जीवोंको जानो। रत्नद्वीपकी उस देवीको अविरति ( माया ) जानो। इसी अविरतिके कारण मनुष्योंको दुःख होता है, वे भव-भ्रमण करते रहते हैं। वह मृतकोंका समूह उसीकी करनीका फल था। शूली पर लटकाए हुए मनुष्यके स्थानमें हितकी बात बतलानेवाले गुरुको जानना। जिसप्रकार उस शूलीपर चढ़े हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार बतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होनेवाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा, वैसा बतला देते हैं। जिस तरह उस शूली पर टँगे हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार बतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होने वाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा वैसा बतला देते हैं। जिस तरह उस शूली पर टँगे हुये मनुष्यने दोनों सेठ-सुतोंको यह बतलाया था, कि शैलक यक्ष तुम्हें इस दुःखसे उबारेगा, उसी तरह गुरु भी संयमको उद्धारकर्त्ता बतलाते हैं। समुद्रके स्थानमें इसी संसारको समझना। जिसप्रकार रत्नद्वीपकी उस देवीके फेरमें पड़ा हुआ जिनरक्षित नाशको प्राप्त हुआ, उसी प्रकार अविरतिके वशमें पड़कर मनुष्य नाशको प्राप्त हो जाता है, ऐसा समझना। जैसे देवीकी बातकी परवा न कर, यक्षके आज्ञा-

धीन रहता हुआ जिनपालित क्रमशः अपनी नगरीमें आ पहुँचा, उसी प्रकार जीव अविरतिका त्याग कर, पवित्र चारित्रमें निश्चल हो रहता है और समस्त कर्मोंका क्षय कर थोड़ेही कालमें मोक्ष सुखका अधिकारी होता है। इसलिये हे राजर्षि ! चारित्र अङ्गीकार करने बाद लोकमें मनको प्रवृत्त नहीं होने देना चाहिये।"

गुरुके ऐसे वचन सुन, राजर्षि बड़े आदरसे अतिचारसे रहित संयमका पालन करने लगे। गुरुने रत्नमञ्जरीको साध्वी प्रवर्त्तिनीको सौंपा वह वहाँ रहकर निरन्तर तप और संयमका पालन करने लगी। क्रमशः वे दोनों निर्मल तपस्या कर, मनोहर चारित्रका पालन कर, मोक्षपदको प्राप्त हुए।

अमरदत्त—मित्रानन्द-कथा समाप्त।

इस प्रकार स्वयंप्रभ मुनिके मुंहसे धर्मदेशना श्रवणकर स्तिमितसागर राजाको बड़ा बोध प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होने अपने पुत्र अनन्तवीर्यको राज्यपर स्थापित कर, कुमार अपराजितको युवराजकी पदवी प्रदान की और आप उन्हीं मुनीश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होंने दृढ़तासे दीक्षाका पालन तो किया, परन्तु अन्तमें मन-ही-मन संयममे कुछ विराधना कर दी, इसलिये वे मरकर अधोलोकमें भवनपति—जातिमें चमरेन्द्र नामक असुरोंके अधिपति हुए।

कुमार अपराजित और राजा अनन्तवीर्य राज्य करने लगे। इसी समय किसी विद्याधरसे उनकी मैत्री हो गयी। उस विद्याधरने उन्हें आकाशगामिनी आदि विद्याएँ सिखलायीं और उनकी साधनाकी विधि भी बतला दी। राजाके बर्वरी और चिलाती नामकी दो दासियाँ थी। वे गीत और नाट्यकलामें बड़ी निपुण थीं। इसलिये उनके गीत नाट्यसे प्रसन्न रहनेवाले अपराजित और अनन्तवीर्य निरन्तर नाच-गानकेही रङ्गमें डूबे रहते थे। एक दिन वे दोनों भाई जिस समय गीत-नाट्यके रसमें डूबे हुए थे, उसी समय स्वेच्छाचारी नारद वहाँ आ पहुँचे। उस समय नाचने-गानेकी धुनमें पड़े हुए उन दोनों भाइयोने खड़े होकर

था और तरहसे नारदके प्रति सम्मान नहीं प्रकट किया। इससे क्रोधित होकर नारदने विचार किया,—"ऐं! इन दोनों भाइयोंका मन दासियोंके नाचने-गानेमें इतना मोहित हो गया है, कि मेरा यहाँ आना भी इन्हें नहीं मालूम हुआ? अच्छा, रहो, मैं किसी बलवान् राजासे इन नृत्य-गीत-कलामें होशियार दासियोंका हरण करवाये देता हूँ।" ऐसा विचार कर, तीनों लोकमें स्वेच्छापूर्वक विचरण करने वाले और लड़ाई-झगड़ा करनेमें बड़ी प्रीति रखनेवाले नारद ऋषि विद्याधरोंके राजा और तीन खण्डोंके स्वामी दमितारि नामक प्रतिवासुदेवके पास गये। मुनिको देखते ही राजा तत्काल उठ खड़े हुए और उनके सामने जा, सत्कार-पूर्वक उन्हें आसन पर बैठाकर पूछा,—"हे मुनि! पृथ्वी पर आपने कोई आश्चर्य-जनक बात देखी हो, तो कहिये।" नारदने कहा,—"हे राजेन्द्र! सुनो। मैं सुभगा नगरीमें राजा अनन्तवीर्यके पास गया हुआ था। उनके यहाँ बर्बरी और चिलाती नामकी दो दासियोंका नाट्य मैंने देखा, जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। हे राजन्! यदि तुम्हारे यहाँ वैसी गीत-नाट्यमें कुशल स्त्रियाँ नहीं रहीं, तो तुम्हारा विद्याबल किस कामका? और तुम्हारा यह इतना बड़ा राज्य ही किस कामका है? तुम्हारी यह सारी समृद्धि व्यर्थ ही है।" यह कह, मुनि अन्यत्र चले गये।

इसके बाद प्रतिवासुदेव राजा दमितारिने अभिमानके मारे तत्काल ही राजा अनन्तवीर्यकी राजधानीमें एक दूत भेज कर कहलवाया, कि—"सब प्रकारके रत्न राजाधिराजोंके ही आश्रयमें रहते हैं। इसलिये तुम्हारे यहाँ गीत-नाट्यमें जो दो कुशल दासियाँ हैं, उन्हें शीघ्र ही मेरे पास भेज दो। इस विषयमें तनिक भी विलम्ब न करो।" दूतकी यह बात सुन, अपराजित और अनन्तवीर्यने कहा,—"हे दूत! तुमने जो कुछ कहा, सो ठीक है; परन्तु हम लोग इन दासियोंके भेजनेके बारेमें पीछे विचार कर जैसा उचित समझेंगे, करेंगे। अभी तो तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ।" यह कह, उन्होंने उस दूतको

रवानः कर दिया और दोनों भाइयोंने परस्पर विचार किया,—"यह राजा दमितारि विद्याके बलसे कहीं हमलोगोंको हरा न देवे, इसलिये हमलोगोंको चाहिये, कि उसके पहलेही विद्याका साधन कर उसका गर्व चूर-चूर कर डालें।" वे दोनों भाई इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि उनके पूर्व भवकी विद्याएँ उन्हें आपसे आप याद हो आयीं और उनके पास आकर बोलीं,—"तुम लोग तो हमें सिद्ध कर ही चुके हो, अब हमारे लिये नये सिरेसे साधना करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है।" यह कह, वे सब उन दोनोंके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। उस समय वे दोनों भी विद्याओंके प्रभावसे बड़े बलवान् विद्याधर हो गये। इसके बाद उन्होंने चन्दन, पुष्प इत्यादिसे उन विद्याओंका पूजन किया।

इसी समय राजा दमितारिके दूतने उनके पास लौट आकर कहा,—"अरे, क्या तुझे मौत सवार है, जो तुमने अभी तक प्रभुके पास उन दासियोंको नहीं भेजा?"

यह सुन, दोनों भाइयोंने कहा,—"भला स्वामीका काम कैसे बाक़ी रह जाता! हमलोग उन्हें भेज चुके।"

यह कह, उन्होंने दूतको शान्त कर दिया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने राजा दमितारिकी पुत्री स्वर्णश्रीके साथ विवाह करनेके लोभसे स्वयं दासियोंके रूप धारण कर, तत्काल राजा दमितारिके पास आ पहुँचे। तदनन्तर अपनी कला-कुशलता दिखलाकर उन्होंने राजाको प्रसन्न कर दिया। राजाने उनसे कहा,—"दासियों! तुम दोनों मेरी कनकश्री नामक कन्याके पास रहो और उसका दिल बहलाया करो।" यह सुन, उन दोनोंने बहुत अच्छा, कह कर अपने मनमें विचार किया,—"जैसे कोई बिल्लीको दूधकी रखवाली सौंप दे, वैसेही इस राजाने अपनी कन्याको हमारे हवाले कर दिया है।" यही सोचते-विचारते हुए वे दोनों दासीका रूप धारण किये अद्वितीय रूपवती राजकुमारी कनकश्रीके पास आये। उसका रूप देखकर उन्होंने

सोचा,—"अहा! विधाताने सारी सुन्दरता और समस्त उपमान-द्रव्योंको एकत्र करके ही इस कन्याका रूप बनाया है, ऐसा मालूम पड़ता है। इसका सा रूप तो शायद दुनियाँमें दूसरा नहीं है।" ऐसा विचार कर उन्होंने मधुरता तथा हास्य-रससे भरे हुए मनोहर वचन और देशी भाषाओंसे मिले-जुले वाक्योंका प्रयोग कर उस कन्याको पुकारा। उस समय राजकन्या कनकश्रीने उनके वचनोंकी चतुराई देख, उनका अत्यन्त आदर किया और उन्हें आसन आदि देकर उनका भली भाँति सत्कार किया। इसके बाद उसने पूछा,—"अनन्त-वीर्यका रूप कैसा है?" यह सुन, दासीका वेश बनाये हुए अपराजित-ने अनन्तवीर्यके गुणोंका इस प्रकार बखान करना आरम्भ किया,—"हे राजकुमारी! अनन्तवीर्यके चातुर्य, रूप, सौन्दर्य, गाम्भीर्य, औदार्य और धैर्य आदि गुणोंका वर्णन एक जिह्वासे हो नहीं सकता। तीनों लोकमें राजा अनन्तवीर्यका सा गुणवान और रूपवान् पुरुष दूसरा नहीं है। बिना भाग्य अच्छा हुए उनका नाम तो सुनाई ही नहीं देता, फिर उनके रूप-लावण्यका दर्शन करना तो कहाँसे हो सकता है?" उनके गुणोंका ऐसा वर्णन सुनकर राजकुमारी कनकश्रीके रोंगटे खड़े हो गये। उनके गुण-वर्णनसे मुग्ध बनी हुई राजकुमारीको देख कर दासीका रूप धारण किये हुए अपराजितने कहा,—"हे राजकुमारी! यदि तुम्हें उनका दर्शन करनेकी अभिलाषा हो, तो मैं अभी दिखला दे सकती हूँ।"

यह सुन, उसने कहा,—"यदि ऐसा हो, तो फिर क्या बात है? यदि एक बार मैं उनका रूप देख पाऊँ, तो फिर मेरा जीवन सफल हो जाये।" उसकी यह बात सुन, उन दोनोंने अपना असली रूप प्रकट कर राजकुमारीको दिखलाया, जिसे देख, हर्षित हो राजकुमारीने कहा,—"अब मैं तुम्हारी आज्ञाके अधीन हूँ।" यह सुन, अनन्तवीर्यने कहा,—"यदि ऐसी बात है, तो चलो, हम अपनी नगरीमें चलें।" राजकुमारी-ने कहा,—"तुमने बहुत ही ठीक कहा; परन्तु मेरे पिता बड़े बलवान्

हैं, वे तुम्हें अवश्य ही हरा देंगे।” इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—“इसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। वे हमारे सामने युद्धमें क्षणभर भी न ठहर सकेंगे।” उनके ऐसे वचन सुनकर उनके स्नेह-पाशमें बँधी हुई तथा उनके रूप-सौन्दर्यसे मोहित राजकुमारी कनकश्री उनके साथ जानेको तैयार हो गयी।

इसके बाद राजा अनन्तवीर्यने अपनी विद्याके प्रभावसे विमान रच कर, उसी पर आरूढ़ हो, आकाशमार्गसे जाते-जाते सभामें बैठे हुए राजा दमितारि और उनके सब सभासदोंको सुना-सुना कर कहा,—“हे मन्त्रियो! सेनापतियो! और सामन्तो! सुनो—देखो, मैं तुम्हारे स्वामीकी पुत्री कनकश्रीको हरणकर अपने साथ लिये जा रहा हूँ। कहीं तुम पीछे यह न कह देना, कि हमें पहलेसे ख़बर नहीं थी।” ऐसा कहते हुए राजा अनन्तवीर्य अपने भाईके साथ उस कन्यारत्नको लिये हुए आकाशकी राह चले गये। राजा दमितारिने उनकी बात सुन, अत्यन्त क्रोधित हो, आक्रोशके साथ कहा,—“हे वीरो! इस दुष्टको जल्दी गिरफ्तार कर लो। अभी पकड लो।” इसप्रकार अपने स्वामीकी बात सुन, विद्याधरोंने बड़े जोरसे ललकारा,—“अरे दुरात्मा! ठहर जा। तू हमारे स्वामीकी पुत्रीको कहाँ लिये जा रहा है?” यह कहते हुए वे शस्त्र धारण किये उनके पीछे दौड़े। उनको इसप्रकार अपने पीछे-पीछे आते देख, राजा अनन्तवीर्यने उन्हें उसी तरह क्षण भरमे तितर-वितर कर डाला, जैसे हवा तृणोंके समूहको बात-की-बातमें उडा ले जाती है। अपने सैनिकोंको हारकर लौटा हुआ जानकर राजा दमितारि स्वयं राजा अनन्तवीर्यकी ओर चले। मार्गमें जाते-जाते जब राजा अनन्तवीर्यकी दृष्टि राजा दमितारि पर पडी, तब वे थोड़ी देरके लिये विमानको खड़ा करके उनकी सेनाको देखने लगे। उन्होंने देखा, कि उस सैन्यके समूहमें कल्पान्तकालके समुद्रकी तरह फैले हुए हाथी, घोड़े और पैदल सिपाहियोंकी क़तारें लगी हैं और उनका विकट शब्द आकाशको गुंजा रहा है। वह सैन्य देखकर ज्योंही अनन्तवीर्य युद्ध

करनेको तैयार हुए, त्योंही उस सैन्य-सागर पर निगाह पडते ही कनकश्री बेतरह व्याकुल हो गयी। उसने अनन्तवीर्यको आश्वासन देकर तत्काल अपने सैनिकोंको इकट्ठा किया। इसके बाद राजा दमितारि और अनन्तवीर्यके सैनिक परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओरके सिपाही खूब जी होमकर लडे। अन्तमें राजा दमितारिके सिपाहियोंने अनन्तवीर्यके सैनिकोंको पराजित कर दिया। यह देखकर अनन्तवीर्य कुछ चिन्तामें पड़ गये। इतनेमें उनके सौभाग्यसे तत्काल देवाधिष्ठित वनमाला, गदा, खड्ग, कौस्तुभमणि, पाँचजन्य शंख और शार्ङ्ग-धनुष—ये छ रत्न उत्पन्न हुए। यह देख, राजा अनन्तवीर्यने उत्साहित हो, पाँचजन्य शंखको मुँहके पास ले जाकर पूरी ताकत लगाकर बजाया, जिसकी प्रचण्ड ध्वनि श्रवण कर तत्काल ही शत्रुसेना मूर्च्छित हो गयी और उनकी अपनी सेनाका बल बढ़ गया। यह देख, राजा दमितारि स्वयं युद्ध करनेको तैयार हुए। राजा अनन्तवीर्य भी अपराजितके साथ बख्तर पहन कर, रथारूढ़ हो, शस्त्र हाथमें ले, उनसे लड़नेको अग्रसर हुए। दोनो ओरसे घमासान लडाई हुई—बहुतेरे वीर मारे गये। मरे हुए हाथी-घोड़ोंकी तो गिनती ही नहीं रही। लहूकी नदीसी बह चली। राजा दमितारिके छोड़े हुए सभी अस्त्रोंको अनन्तवीर्य काट डालते थे। इसलिये प्रतिवासुदेवने महातीक्ष्ण और देदीप्यमान चक्र अनन्तवीर्य पर चलाया। वह चक्र वासुदेवके हृदयमें तुम्बड़ीकी तरह हलका चोट करके रह गया और उन्हींके हाथमें आकर स्थित हो गया। तब विष्णुने वह चक्र हाथमें ले, प्रतिवासुदेवसे कहा,—"हे राजा दमितारि! तुम युद्धसे हाथ खींच; मेरी सेवा करना स्वीकार करो और सुखसे जाकर राज्य करो, व्यर्थ ही अपनी जान न गँवाओ। तुम कनकश्रीके पिता हो, इसीलिये मैं तुम्हें छोडे देता हूँ।" यह सुन राजा दमितारिने कहा,—"इन विचारोंको दिलसे दूर कर तुम खुशीसे चक्र चलाओ, नहीं तो मैं इसी खड्गसे चक्र और तुम दोनोका सफाया कर डालूँगा।" यह कह, वे खड्ग उठाये हुए उन्हें मारने दौड़े। इसी

समय खड्ग और ढाल हाथमें धारण किये हुए अनन्तवीर्यने अपने सामने चले आते हुए दमितारिके ऊपर चक्र चलाकर उन्हें मार गिराया। उसी समय देव-यक्षादिकोंने अनन्तवीर्यके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए सबको सुना-सुनाकर ऊँचे स्वरसे कहा,—"यह अनन्तवीर्य अर्धविजयके स्वामी वासुदेव और इनके भाई अपराजित वलदेव हुए हैं। इसलिये इनकी चिरकाल जय हो।" इसके वाद सब विद्याधर-वीरोंने वासुदेवको प्रणाम कर, उनकी अधीनता स्वीकार ली और वासुदेवने भी उनका भली भाँति सत्कार किया।

तदनन्तर राजा अनन्तवीर्य और अपराजित सब विद्याधरोंके साथ मनोहर विमानपर चढ़कर अपने नगरकी ओर चले। मार्गमें जाते-जाते जब वे कनकाचल-पर्वतके समीप (मार्गमें मेरु-पर्वत किस तरह आया?) आये, तव विद्याधरोंने उनसे कहा,— "हे स्वामी इस महागिरिके ऊपर जिनेश्वरके चैत्य हैं। इसलिये वहाँ चलकर भगवान्‌को प्रणाम कर आगे बढ़ना चाहिये। कारण, तीर्थका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। यह सुन, तत्काल ही अपराजित और अनन्तवीर्य विमानसे उतरकर हर्ष और भक्तिके साथ तीर्थकी वन्दना करनेके वाद चारो ओर दृष्टि दौड़ाने लगे। इसी समय उन्होंने चैत्यके मध्यमें कीर्त्तिधर नामक महामुनिको देखा। उस समय विद्याधरोंने कहा,—"हे स्वामी! ये महामुनि साल भरका उपवास लेकर कर्मोंका क्षय कर केवल-ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, इसलिये आप इनके चरणोंकी वन्दना कीजिये।" यह सुनतेही उन्होंने परिवार सहित बड़े आनन्दके साथ उन केवलीकी वन्दना की और शुद्ध पृथ्वीपर बैठकर केवलीकी मनोहर वाणी श्रवण करने लगे। केवली ने कहा,—

मिथ्यात्वमविरतिश्च, कषाया दु:खदायिन.।
प्रमादा दुष्टयोगाश्च, पञ्चैते बन्धकारणम्॥ १॥

*अर्थात्— "मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और दुष्ट योग ये पाँचों बन्धनके कारण और परिणाममें दुःख देनेवाले हैं।"*

"हे भव्य प्राणियो! ये पाँचों सांसारिक जीवोंके कर्मबन्धके कारण

हैं। पहला कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वका अर्थ सत्य-देव, सत्य-गुरु और सत्य-धर्मके ऊपर श्रद्धा न होना है। दूसरा कारण अविरतिका तनिक भी त्याग नहीं करना है। तीसरा कारण कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ करना है। चौथा कारण प्रमाद, जिसके चार भेद हैं। इनमें पहला प्रमाद, काष्ठ तथा अन्नसे उत्पन्न दोनों प्रकार के मद्योंका सेवन करना है। दूसरा प्रमाद है,—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पाँच इन्द्रियोंके विषय। तीसरा प्रमाद है,- निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि—ये पाँच प्रकारकी निद्राएँ। चौथा प्रमाद है,—राज कथा, देश-कथा, स्त्री कथा और भक्त (भोजन) कथा—ये चार प्रकारकी विकथाएं। ये चारों प्रकारके प्रमाद चौथे बन्धके कारण होते हैं। दुष्ट योगका अर्थ है—मन, वचन और कायाके अशुभ व्यापार। ये पाँचवें बन्धके कारण होते हैं। इन सब पाप-बन्धोंके कारणोंका त्यागकर, मोक्षके सुख देनेवाले धर्ममें मति करनी चाहिये।"

इस प्रकारकी देशना श्रवणकर, राजा दमितारिकी पुत्री कनकश्रीने विनय-पूर्वक कीर्त्तिधर मुनिसे पूछा,—"हे मुने! मेरा अपने भाई-बन्धोंसे जो वियोग हुआ और मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। इसका क्या कारण है? कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, मुनिने कहा,—"हे भद्रे! तुम अपने बन्धु-वियोग और पिताकी मृत्यु आदिके कारण सुनो,—

"धातकीखण्ड नामक द्वीपमें जो पूर्व भरतक्षेत्रमें, शङ्खपुर नामका नगर है, वह बड़ी समृद्धिवाला है। उस नगरमें श्रीदत्ता नामकी एक निर्धन स्त्री रहती थी, जिसके कोई सन्तान नहीं थी। वह दूसरोंके घर काम-धन्धा करके अपना पेट पालती थी। एक बार उसने दरिद्रतासे पीड़ित होनेपर भी मुनिसे धर्म श्रवणकर धर्मचक्रवाल नामक तप किया। उस तपमें पहले और पीछे "अट्ठम" करना होता है और मध्य-में सेंतीस उपवास करने होते हैं। इसके बाद तप सम्पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार देव और गुरुकी भक्ति करनी होती है। उस बेचारीने ठीक विधिके अनुसार तप कर, पारणाके दिन सब किसीको मनोहर

भोजन आदि दिया। जिन-जिन गृहस्थोंके यहाँ वह काम किया करती थी, उन लोगोंने भी उसकी तपस्या देखकर, उसे वे जितना भोजन-वस्त्र सदा देते थे, उससे दुगुना दे डाला। इससे उसके पास कुछ धन जुड़ गया। एक दिन उसके घरकी एक दीवार गिर पड़ी, जिसमेंसे बहुत धन निकला। उस धनको लेकर उसने उद्यापन उजमना) प्रारम्भ किया तथा जिनचैत्योंकी विशेष पूजा की। अन्तमें उसने साधर्मिकवात्सल्य किया। उसी दिन उसके घर पर महीने भरसे उपवास किये हुए सुव्रत नामक महामुनि पधारे। श्रीदत्ताने तत्काल उन्हें बड़ी भक्तिके साथ शुद्ध भोजन कराया और पीछे भक्तिपूर्वक मुनिकी वन्दना की। इस प्रकार धर्मका प्रत्यक्ष फल देखकर उसने मन-ही-मन हर्षित होते हुए मुनिसे धर्मका रहस्य पूछा। मुनिने कहा,—"हे भद्रे! इस समय यहाँ पर धर्मका विचार करनेका नहीं है। यदि तुम्हें धर्मका रहस्य जानना हो, तो अवसरके समय उपाश्रयमें आकर विस्तारपूर्वक धर्मदेशना श्रवण करो।" यह कह, अपने स्थानपर जाकर, मुनिने विधिपूर्वक पारणा किया। इसके बाद जिस समय मुनि स्वाध्याय-ध्यान कर बैठे हुए थे, उसी समय मौक़ा देखकर नगरवासी लोगोंके साथ-ही-साथ श्रीदत्ता भी उपाश्रयमें आ पहुँची और मुनिको प्रणाम कर, उचित स्थानमें बैठ रही। मुनिने उसे धर्मलाभरूपी आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्रीदत्ता और नगर-निवासियोंके प्रतिबोधके लिये उन्होंने धर्म-देशना आरंभ की। उसमें उन्होंने कहा,—

"अयमर्थो परोऽनर्थ-इति निश्चयशालिना।
भावनीया अस्थिमज्जा, धर्मेणैव विवेकिना॥ १॥"

*अर्थात्—"यही अर्थ है और सब अनर्थ है—इस प्रकारके निश्चयसे शोभित विवेकी पुरुष धर्मसे ही अपनी अस्थिमज्जाको भावित कर रखते हैं, अर्थात् यही सोच रखते हैं, कि अस्थिमज्जा-पर्यन्त धर्मका प्रचार करने योग्य है।"*

"विवेकी पुरुषोंको अपने मनमें यह विचार करना चाहिये, कि परमार्थ-वृत्ति करके ( यदि ठीक-ठीक देखिये तो ) धर्मका आराधन करना ही आत्मकार्य है। इसके सिवा और सब सांसारिक व्यापार अनर्थके

मूल साक्षात् अनर्थके रूप ही हैं। ऐसा निश्चय करके उत्तम जीवोंको अपनी अस्थि-मज्जाको भी धर्मसे ही वासित करना चाहिये।"

यह सुन श्रीदत्ताने पूछा,—"हे भगवन्! धर्म तो अरूपी है, उससे अस्थि-मज्जा कैसे वासित की जा सकती है?" यह सुन, सुव्रत मुनिने श्रीदत्ता तथा अन्य पुरजनोंको वाञ्छित अर्थको सिद्ध करनेवाली यह कथा कह सुनायी,—

## नरसिंह राजर्षि की कथा

"उज्जियनी-नगरीमें जितशत्रु नामके राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम धारिणी था। उनके पुत्रका नाम नरसिंह था। जब वह राजकुमार क्रमशः सब कलाओंका अभ्यास कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसका विवाह बत्तीस मनोहर रूपवती कन्याओंके साथ कर दिया। एक समयकी बात है, कि जाड़ेके दिनोंमें एक जंगली हाथी नगरमें आकर उपद्रव करने लगा। वह हाथी मदके मारे मतवाला हो रहा था, उसका रङ्ग शंखकी तरह सफेद था, उसका शरीर पर्वतकी तरह बड़े भारी डील-डौलवाला था। वह यमराजकी तरह लोगोंको दुःख दे रहा था। उस हाथीको देखकर डरे हुए लोगोंने राजाके पास जाकर फ़र्याद की। यह सुनकर राजाने उसका उपद्रव दूर करनेके लिये स्वयं अपनी सेना भेजी; पर जब वह बलवती सेना भी उस जंगली हाथीका उपद्रव न रोक सकी, तब राजा स्वयं तैयार हुए और वीरोंकी सेना साथ ले, उस हाथीकी तरफ जाने लगे। इसी समय राजकुमार नरसिंहने उन्हें रोका और आपही सैन्य समेत उस हाथीको मर्दन करनेके लिये चल पड़े। पास पहुँचकर राजकुमारने उस नौ हाथ लम्बे, सात हाथ ऊँचे, तीन हाथ चौड़े, लम्बे दाँत और लम्बी सूँड़वाले, छोटी पूँछवाले, मधुकी भाँति पीले-पीले लोचनोंवाले और सारे शरीरमें एक सौ चालीस लक्षणोंसे युक्त हाथीको देखा। तदनन्तर

गजकी विद्यामें निपुण कुमारने कभी सामने जाकर, कभी पीछे हट-कर और कभी उछलकर उस हाथीको हैरान कर मारा और अन्तमें उसे वशमें कर लिया। तदनन्तर उस ऐरावत जैसे हाथी पर सवार हो नरसिंहकुमार इन्द्रकी शोभा धारण किये हुए उसे फ़ीलखानेमें ले आये और उसे आलान-स्तम्भमें बाँध दिया। उसके बाद हाथीसे नीचे उतर कर उन्होंने उस हाथीकी आरती उतारी और विनयसे नम्र बने हुए पिताके पास आये। पिताने हर्षपूर्वक उनको आलिंगन कर अपने मनमें विचार किया,—"मेरा यह पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हो गया है, इसलिये इसीके ऊपर राज्यका भार सौंप कर मुझे संयमका ही राज्य स्वीकार करना चाहिये।" ऐसा विचार कर राजाने सब मन्त्रियों, सामन्तों और पुरजनोंके सामने शुभमुहूर्त्तमें नरसिंहकुमारको अपनी गद्दी पर बैठा दिया और आपने जयन्धर गुरुसे दीक्षा ले ली।

राज्य पाकर राजा नरसिंह बड़े न्यायके साथ प्रजाका पालन करने लगे। एक समयकी बात है, कि एक बड़ा भारी मायावी चोर, जो किसीको दिखलाई नहीं देता था और किसीसे पकड़ा नहीं जाता था, उस नगरमें आया और उसने कितनेही घरोंमें कई बार चोरी की। नगरके महाजनोंने यह बात राजाके कान तक पहुँचायी। राजाने उस चोरको पकड़ कर दण्ड देनेके लिये कोतवालको हुक्म दिया, पर वह चोर कोतवालसे नहीं पकड़ा गया। उलटा और भी नगरवालोंको तंग करने लगा। इस पर महाजनोंने फिर राजाके पास फ़र्याद की,—"हे देव! इस दुष्ट चोरने आपके समस्त नगरमें हलचलसी मचा रखी है। वह रातको ज़बरदस्ती जवान और ख़ूबसूरत औरतोंको पकड़ ले जाता है। इसलिये आप कृपाकर हमें ऐसी कोई जगह बत-लाइये जहाँ हम इस उपद्रवसे बचे रहें।" उनकी ऐसी बातें सुन, क्रोधसे थर-थर काँपते हुए राजाने कोतवालको बुलाकर कहा,—"रे दुष्ट! तू बैठा-बैठा मनमानी तनख़्वाह खाया करता है और नगरकी रक्षा

नहीं करता ? इसका क्या कारण है ?" इसपर महाजनोंने कहा,—"हे नाथ! इसमें इस बेचारेका क्या दोष है ? वह चोर तो एक पूरी "पल्टनके गिरफ़्तार करने पर भी गिरफ़्तार होनेवाला नहीं है।" यह सुन, राजाने महाजनोंसे कहा,—"अच्छा, देखो, मैं इसका उचित उपाय करता हूँ।" यह कह, राजाने महाजनोंको विदा कर दिया ।

इसके बाद राजा भिखारीका रूप बनाये, उस चोरकी तलाशमें महलसे बाहर निकले और अनेक शंकास्थानों और गुप्तस्थानोंमें घूमने लगे। पहले दिन वे नगरके बाहर बहुत घूमा किये, पर किसी जगह वह चोर न दिखाई दिया। दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, इसी समय उन्होंने एक गेरुआ वस्त्र पहने तथा रास्तेकी धूल सारे अङ्गमें लपेटे हुए त्रिदण्डीको आते देखा। उसके पास आनेपर राजाने उसको प्रणाम किया। त्रिदण्डीने पूछा,—"अरे! तू कहाँसे आ रहा है और कहाँ जायेगा ? तेरा मतलब क्या है ?" यह सुन, भिखारीका वेश बनाये हुए राजाने कहा,—"भगवन्! मैं द्रव्यके लिये बहुतसे देश घूम आया ; पर मुझे कहीं धन नहीं मिला। इससे मैं बहुत ही चिन्ताग्रस्त हो रहा हूँ।" यह सुन, उस त्रिदण्डीने कहा,—"बटोही भाई। यह तो कहो, तुमने धनकी खोजमें किन-किन देशोंकी सैर की ?" राजाने कहा,—"यों तो मैं बहुतसे देशोंमें घूमा हूँ, तो भी जो थोड़े-बहुत नाम मुझे याद हैं, वे तुम्हें बतलाये देता हूँ। हे त्रिदण्डी! मैंने वह लाट-देश भी देखा है, जहाँकी स्त्रियाँ एकही वस्त्र पहनती हैं। उस देशके प्रायः सभी लोग मधुर-भाषी हैं और केशको 'बाल' कहते हैं। मैंने सौराष्ट्र-देश भी देखा है। वहाँ लम्बे केशोंवाली, मधुर स्वरवाली तथा कम्बल पहननेवाली अहीरोंकी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। इसके सिवा मैंने कङ्कण-देश भी देखा है। वहाँ शालि-धानही विशेष कर खाया जाता है। नागर-बेलके पान और केलोंसे सारा देश भरा हुआ है। इसी तरह मैंने गुजरात, मेदपाट और मालव इत्यादि बहुतसे देशोंमें भ्रमण किया, वहाँके

आचार देखे, पर कहीं भी मुझे धन नहीं मिला। यह सुनकर उस त्रिदण्डीने अपने मनमें विचार किया,—"यह आदमी सचमुच कोई परदेशी और धनका इच्छुक मालूम पड़ता है।" ऐसा विचार कर उस त्रिदण्डीने कहा,—"हे पथिक! यदि तू मेरी बात मानकर चले तो थोड़े ही दिनमें मनवाञ्छित फल पा जाये।" इसपर राजाने कहा,—"हे त्रिदण्डी! जो कोई अपना वाञ्छित फल देता है, उसकी आज्ञामें तो मनुष्य रहता ही है।" यह सुनकर त्रिदण्डीने कहा,—"मुसाफ़िर! देख, रातका समय हो गया है, जिसमें परस्त्री-गमन करनेवालों और चोरोंको अपना मतलब पूरा करनेका ख़ूब मौक़ा मिलता है। इन लोगोंको यह समय बहुत पसन्द है। अतएव तू यहीं हाथमें खड्ग लिये खड़ा रह। मैं नगरमें जाकर किसी धनी मनुष्यके घरसे बहुत सा धन लिये आता हूँ।"

उसकी यह बात सुन, राजाने अपने मनमें सोचा,—"हो न हो, यही वह चोर है। तो फिर क्यों नहीं मैं इसी खड्गसे इसका सिर उतार लूँ। अथवा देखूँ तो सही, यह क्या करता है?" ऐसा विचार कर राजाने खड्ग बाहर निकाला, जिसे देखकर योगीने अपने मनमें विचार किया,—"इस खड्गसे तो यह राजा मालूम पड़ता है, तब तो जैसे हो वैसे, मुझे इसे मार ही गिराना चाहिये।" ऐसा विचार कर, वह कुछ दूर आगे बढ़कर फिर पीछे लौट आया। तब राजाने कहा,—"अब क्यों देर कर रहे हो?" उसने जवाब दिया,—"अभी नगरके लोग जागते होंगे, इसलिये थोड़ी देर यहीं विश्राम करता हूँ।" यह कह, कुछ देर विचार कर उसने कहा,—"हे पथिक! यहीं पत्तोंकी सेज बिछाओ।" यह सुन, राजाने उसके लिये तत्काल ही पत्तोंकी सेज बिछायी और दूसरी अपने लिये तैयार की। उन्हीं सेजोंपर दोनों सो रहे। उस समय त्रिदण्डीने सोचा,—"जबतक मैं जागता रहूँगा, तबतक यह कभी न सोयेगा।" इसलिये वह चोर नींदका बहाना कर सो रहा। तब राजाने धीरे-धीरे उठकर अपनी जगह पर काठका

एक कुन्दा रखकर उसपर कपडा फैला दिया और आप एक झाड़में जाकर छिप रहे तथा हाथमें खड्ग लिये रहे। थोड़ी देर बाद उस चोरने उठकर राजाके भ्रममें उस लकडीके कुन्देपर खड्गका प्रहार किया, जिससे लकडी दो टुकड़े हो गयी। प्रहारके शब्दसे उसे कुछ खुटका हुआ, इसलिये उसने उसके ऊपरसे कपड़ा हटाकर जो देखा, तो महज़ लकडीका कुन्दा दिखाई दिया। कोई आदमी नज़र नहीं आया। यह देख, उसने सोचा,—"अरे! उस धूर्त्तने तो मुझे खूब छकाया!" वह इसी तरह बैठा हुआ हाथ मल-मल कर पछता रहा था, कि इतनेमें राजाने उससे कहा,—"रे दुष्ट! आज तेरा अन्त-समय आ पहुँचा है। इसलिये यदि तुझमें तनिक भी पुरुषार्थ हो, तो मेरे सामने आ जा। यह सुन बहुत अच्छा, आता हूँ, कहता हुआ वह चोर राजाके पास आकर युद्ध करने लगा। दोनों खूब जमकर लड़े। दोनों एकसे बलवान् और युद्ध-कलामें कुशल थे, इसलिये बड़ी देर तक लड़ाई होती रही। अन्तमें राजाने उस त्रिदण्डीके मर्मस्थानमें चोट पहुँचाकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। उस प्रहारसे व्याकुल होकर तस्करने राजासे कहा,—"हे वीर योद्धा! मैं ही वह चोर हूं, जिसकी चोरियोंसे यह सारा नगर आरी आ गया था। आज मेरी मृत्यु आ गयी। परन्तु हे वीर! मेरी एक बात सुनो। इस देव-मन्दिरके पीछे एक बड़ा सा पाताल मन्दिर है। उसमें बहुतसा धन पड़ा हुआ है। वहीं पर मेरी बहन धनदेवी तथा इस नगरकी वे सब स्त्रियाँ भी हैं। जिन्हें मैं चुरा लाया हूँ। हे वीरवर! तुम मेरी तलवार लिये वहीं चले आओ। शिलाके विवरकी राह तुम मेरी बहनको मेरी तलवार दिखाकर मेरे मरनेकी खबर सुना देना। बस, वह तुम्हें भीतर ले जायेगी। उस समय तुम वह सब धनादि ले लेना और जो कुछ जिसका हो, उसे दे देना।" यह कह कर वह चोर मर गया।

उसके बाद रातको ही राजा उस पाताल-मन्दिरमें जाकर उसकी बहनसे मिले। उसने बड़े मीठे वचनोंसे राजाका स्वागत किया।

और साथही बोली,—"तुम थोड़ी देर इसी पलङ्ग पर बैठो। यहाँका सब कुछ तुम्हारा ही है। मेरा पापी भाई अपने पापोंके फलसे ही इस तरह मारा गया।" यह कह, उस चोरकी बहनने उस भूगर्भ-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया। उस समय राजाने चोरकी बहनको बार-बार अपनी ओर कनखियोंसे देख, सशङ्कित होकर सोचा,—"इस दुष्टाका विश्वास करना ठीक नहीं। विना विचारे एकदम इसके पलङ्ग पर बैठना तो और भी अनुचित है। हो सकता है, कि इसमें भी कोई कपट हो।" ऐसा विचार कर वे शय्याके ऊपर तकिया रखकर दीवेकी ऊँजियालीसे हट कर अँधेरेमें खड़े हो रहे। इतनेमें यह कल-काँटोंपर खड़ी हुई शय्या रस्सी खींचतेही टूट गयी और उसपर रखा हुआ तकिया शय्याके नीचेवाले गहरे अन्धकूपमें गिर पड़ा। राजा सारी कपट-रचना समझ गये। चोरकी बहनने तकियेके कुएँमें गिरनेकी आवाज़ सुन कर अपने मनमें यही समझा, कि शय्यापर बैठा हुआ पुरुष कुएँमें गिर पड़ा। यही सोचकर उसने हँसते और ताली पीटते हुए कहा,—"बहुत ठीक हुआ। अपने भाईकी जान लेनेवालेको मैंने भी जहन्नुम भेज दिया।" यह सुन, राजाने उसके पीछेसे आकर उसके बाल पकड़ लिये और कहा,—"अरी राँड़! ले इस करनीका मज़ा तू भी देख और अपने भाईके पास जा।" यह सुनते ही वह रोने-गिड़-गिड़ाने लगी। राजाको दया आ गयी। उन्होंने उसे छोड़ दिया। इसके बाद उस पातालगृहका द्वार खोल कर राजा अपने घर चले आये।

प्रातःकाल राजाने नगर भरके लोगोंको वहाँ ले जाकर जो-जो चीज़ें जिसकी थीं, उसे दे डालीं और उस पाताल-गृहको एकदम ढहा दिया। जिन स्त्रियोंको वह चोर हरण करके वहाँ ले गया था, उन्हें भी लोग राजाके हुक्मसे अपने-अपने घर ले गये। परन्तु उन स्त्रियों पर उस चोरने जादू कर रखा था, इसलिये उनका मन अपने घर पर नहीं लगता था और वे चंचल हो-होकर उसी स्थानपर चली जाया करती थीं।

लोगोंने जब यह बात राजासे कही, तब उन्होंने एक जादू-टोनेके जानने-वाले वैद्यको बुलाकर इसका उपाय पूछा। यह सुन, वैद्यने कहा,—"हे राजन्! उस चोरने इन स्त्रियोंको कोई ऐसा चूर्ण खिला दिया है, जिससे ये परवश हो गयी हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी इन्हें कोई चूर्ण खिला दूँ, जिससे ये फिर अपनी असली हालतमें आ जायें।" राजाने हुक्म दे दिया। वैद्यने उन स्त्रियोंको अपना चूर्ण खिलाकर उनपरसे जादूका असर उतार डाला ; परन्तु उनमेंसे एक स्त्री ज्यों-की त्यों रही। इसपर राजाने फिर उसी वैद्यको बुलाकर इसका कारण पूछा। वैद्यने कहा,—"हे राजन्! उस चोरके दिये हुए चूर्णका प्रभाव किसी-किसी स्त्रीकी त्वचा तक और किसी-किसीके मांस-रुधिर तक ही पहुँचा था, पर इस स्त्रीकी अस्थि-मज्जामें भी वह प्रवेश कर गया है, इसीलिये उन पर तो मेरी दवा कारगर हुई, परन्तु इसपर उसका कुछ असर नहीं हो सकता।" यह सुन, राजाने पूछा,—"तो क्या इसके लिये कोई और उपाय नहीं है?" वैद्यने कहा,—"यदि उसी चोरकी हड्डी घिसकर इसे पिला दी जाये, तो यह भी अपने स्वभावको प्राप्त हो जायेगी, अन्यथा नहीं।" यह सुन, राजाने वैसाही किया। वह स्त्री भी जादूके प्रभावसे छुटकारा पा गयी। सब लोग सुखी हो गये, राजा नरसिंह भी बड़े सुखसे राज्य करने लगे।

इसके बाद फिर वही जयन्धर आचार्य वहाँ पधारे। इन्हींसे राजा-के पिता जितशत्रुने दीक्षा ली थी। उनके आगमनका समाचार सुनकर राजा नरसिंह उनकी वन्दना करने गये और उनसे धर्म-कथा श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्त कर, अपने पुत्र गुणसागरको राज्यपर बैठाया और वैराग्य-युक्त होकर चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद उग्र तपस्या कर, कर्मका क्षय करनेके अनन्तर राजर्षि नरसिंहने मोक्ष-पदवी प्राप्त कर ली।

नरसिंह राजर्षि-कथा समाप्त।

---

इस प्रकारकी कथा सुनाकर साधु सुव्रतने श्रीदत्तासे कहा,—"हे भद्रे! जिस प्रकार उस योगी-वेश-धारी चोरके चूर्णके प्रभावसे उस स्त्रीकी अस्थि-मज्जा भी वासित हो गयी थी, उसी प्रकार तुम भी कल्प-वृक्ष तथा चिन्तामणिकी भाँति वाञ्छित फलके देनेवाले तथा जिसका फल तुमने साक्षात् देख लिया है, उसी धर्मसे अपनी आत्माको वासित कर लो और अपने चित्तमें धर्मके ऊपर निश्चल प्रीति उत्पन्न कर लो।" यह सुन, श्रीदत्ताने उन्हीं मुनिवरसे शुद्ध समकित सहित श्रावक-धर्म ले लिया। मुनि अन्यत्र विहार करने चले गये। श्रीदत्ता घर जाकर विधि-पूर्वक धर्मका पालन करने लगी।

एक दिन कर्म-परिणामके प्रभावसे श्रीदत्ताके मनमें यह सन्देह हुआ, कि मैं इतने प्रयत्नसे जिनधर्मका पालन कर रही हूँ, पर न मालूम, इसका कोई फल होगा या नहीं? इसी प्रकार सन्देह करती हुई एक दिन श्रीदत्ता आयु पूरी होनेपर मृत्युको प्राप्त हुई। इसके बाद वह कहाँ उत्पन्न हुई, उसका हाल सुनो,——

"इसी विजयमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर सुरमन्दिर नामक नगरमें कनक पूज्य नामके राजा राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम वायुवेगा था। उनके कीर्त्तिधर नामका एक पुत्र भी था। वही मैं हूँ। मेरी स्त्रीका नाम अनल-वेगा था। उसने हस्ती, कुम्भ और वृषभ—ये तीन स्वप्न देखकर दमितारि नामक पुत्र प्रसव किया। वह प्रतिवासुदेव हुआ। जब दमितारि युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब मैंने उसका विवाह कितनीही कन्याओंके साथ कर दिया। इसके बाद मैंने उसे राज्यपर बैठा-कर चारित्र ग्रहण किया। दमितारिकी एक स्त्रीका नाम मदिरा था। उसीके गर्भसे श्रीदत्ताके जीवका अवतार हुआ। वही तुम कनकश्री कहला रही हो। पूर्व भवमें तुमने एक बार धर्मके विषयमें सन्देह किया था। इसीलिये तुम्हें बन्धु-वियोगादिक दुःख प्राप्त हुए।"

इस प्रकार कनकश्रीने जब अपने पितामह मुनिके मुँहसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त सुना, तब उसे संसारसे वैराग्य हो गया और उसने हाथ

जोड़कर अपराजित तथा अनन्तवीर्यसे कहा,—"हे श्रेष्ठ पुरुषो! यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं चारित्र ग्रहण कर लूँ।" उन्होंने कहा,—"एक बार सुभगापुरीमें चलो। वहाँ जानेपर स्वयंप्रभ नामक जिनेश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर लेना।" यह सुनकर कनकश्री सन्तुष्ट हो गयी। बलदेव और वासुदेव भी उन कीर्त्तिधर मुनिको प्रणाम कर, विमानपर बैठे हुए उस कन्याके सहित अपनी पुरीमें चले आये

एक बार श्रीस्वयंप्रभ तीर्थङ्कर पृथ्वीपर विहार करते हुए सुभगापुरीमें आये। उसी समय बलदेव और केशवने वहाँ जाकर, प्रभुकी वन्दना कर, कनकश्री सहित धर्म श्रवण किया। कनकश्री पहलेसे तो विरक्त थी ही, जिनेश्वरकी वाणी श्रवणकर उसे और भी वैराग्य हो आया और उसे व्रत ग्रहण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। बलदेव और वासुदेवने बड़े हर्षके साथ उसका दीक्षा-महोत्सव किया। दीक्षा ग्रहण कर, कनकश्री, एकावली आदि उत्कृष्ट तप करने लगी। तदनन्तर शुक्ल-ध्यान करती, चार घाती कर्मोंका क्षयकर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर उसने मोक्ष पा लिया।

अपराजित नामक बलदेवकी स्त्रीका नाम विरता था। उसीके गर्भसे उसके सुमति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। वह बचपनसे ही जीवाजीवादिक तत्वोंके जाननेमें निपुण, तप-कर्मोंमें उद्यमशील और श्रीजिनधर्ममें प्रीति रखनेवाली थी। एक दिन उपवास और पारणामें समता रखनेवाले इन्द्रियोंके दमन करनेवाले और क्षमा गुणसे शोभित वरदत्त नामक मुनि उसके घर आये। उस समय वह उपवासके अन्तमें पारणा करनेके लिये थालमें मनोहर भोजन परोसे हुए थी। उसीमें से उसने शुभ-भावनासे युक्त होकर मुनिको भोजन कराया। उसी समय उत्तम मुनिको दान करनेके प्रभावसे उसे तत्काल उसकी भक्तिसे रञ्जित देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये। मुनि अपने स्थानको चले गये। यह आश्चर्य देख, बलदेव और वासुदेव विचार करने लगे,—"यह कन्या बड़ी पुण्यशालिनी है, इसलिये धन्य है।" ऐसा विचार कर, उन्होंने कन्याको विवाह

योग्य हुई देख, मन्त्रियोंके साथ विचार कर, बड़े आनन्दके साथ स्वयं-वर-मण्डप रचाया। इसके बाद चारों दिशाओंमें पत्र भेज कर उन्होंने सब राजाओंको बुलवाया। स्वयंवरके समय सब लोग आकर मण्डपमे बैठ रहे। इसके बाद कन्या भी सब श्रृङ्गार किये, हाथमें वर-माला लिये शुभमुहूर्त्तमें मण्डपमें आयी। इतनेमें उसके पूर्व भवकी बहन-देवता, जिसको उसने पूर्व भवमें अपनेको प्रतिबोध देनेका संकेत किया था, आ पहुँची और उसको व्रत लेनेके लिये प्रतिबोध देने लगी। इससे वह प्रतिबोध प्राप्त कर, दृढ वैराग्यवती हो गयी। बस, स्वयंवरमें आये हुए सब राजा लोगोंसे विदा माँगकर,वह बलदेव और केशवकी सम्मति ले, पाँच सौ कन्याओं सहित संयम अङ्गीकार कर, सुव्रता नामक अपनी गुरुआनीके पास आकर रहने लगी। तदनन्तर निर्मल तपस्या कर, क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, भव्य प्राणियोंको प्रति-बोध देकर सुमति साध्वी होकर मोक्षको प्राप्त हुई।

अनन्तवीर्य वासुदेव, चौरासी लाख पूर्वका आयुष्य पूर्ण कर, मरणको प्राप्त हो, निकाचित कर्मके योगसे, बयालीस हज़ार वर्षके आयुष्यवाले नरकमें जाकर नारकी हुए। राजा अपराजित बहुत दिनों तक बन्धुसे वियोग हो जानेके कारण अत्यन्त शोकाकुल रहे। उस समय धर्ममें निपुण एक मन्त्रीने उनसे कहा,—"हे स्वामिन्! जब आप जैसे महापुरुष भी मोहरूपी पिशाचसे छले जाते हैं, तब धैर्य-गुण किसके पास जाकर रहेगा?" यह सुन, बलदेवका दुःख बहुत कुछ दूर हुआ। एक दिन यशोधर नामक गुणधर महाराज वहाँ आ पधारे। उनके आग-मनका वृत्तान्त श्रवण कर, राजा अपराजित सोलह हज़ार राजाओंके साथ उनकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच, गणधरकी वन्दना कर, वे लोग हाथ जोड़े हुए, उचित स्थानों पर बैठ गये। उस समय गणधर महाराजने इस प्रकार देशना दी,—"इष्ट जनोंके वियोगसे उत्पन्न होने-वाले शोकको सत्पुरुषगणोंको चाहिये, कि त्याग दें; क्योंकि पूर्वा-चार्योंने इसको पिशाचकी उपमा दी है। इष्ट-वियोग-रूपी महारोगसे

पीड़ित प्राणियोंको सुश्रुतमें* बतलाये हुए श्रेष्ठ धर्मौषधका सेवन करना चाहिये ।" इस प्रकार गणधरकी देशना श्रवण कर, अपराजित बलदेव, शोक त्याग कर, गणधरकी वन्दना कर, घर आये और अपने पुत्रको राजगद्दी पर बैठा कर राजाओंके समूहके साथ उन्हीं गणधरसे दीक्षा ले ली। इसके बाद बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करनेके पश्चात् अनशन-व्रतका अवलम्बन कर, शुभ ध्यान करते हुए, मृत्युको प्राप्त होकर अच्युत-देवलोकमें जा देवेन्द्र हुए।

इस जम्बुद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर उसकी दक्षिण श्रेणीमें गगन-वल्लभ नामका नगर है। उसमें किसी समय मेघवाहन नामक विद्याधरोंके राजा राज्य करते थे। उनकी रूप-लावण्यमयी भार्याका नाम मेघमालिनी था। अनन्तवीर्यका जीव ऊपर कहे हुए नरकमेंसे निकलकर उसी रानीकी कोखमें आया और समय आनेपर वही मेघनादके नामसे उनका पुत्र प्रसिद्ध हुआ। क्रमशः वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसके पिताने उसकी शादी बहुतसी राजकन्याओंके साथ कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर राजाने उसीको अपना राज्य देकर आप दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा मेघनाद, दोनों श्रेणियोंके स्वामी हुए। उन्होंने वैताढ्य-पर्वत पर बसे हुए एक सौ दस नगरोंको अपने पुत्रोंके बीच बाँट दिया। एक दिन राजा मेघनादने मेरु-पर्वतके ऊपर जाकर शाश्वती जिन-प्रतिमाओं और प्रज्ञप्ति-विद्याकी पूजा की। इतनेमें वहाँ स्वर्गवासी देवगण आ पहुँचे। वहीं अपराजितका जो जीव अच्युतेन्द्र हो गया था, वह भी आया। अच्युतेन्द्रने मेघनादको देख, स्नेहसे अपने पास बुला, उनको पूर्व भवका सारा वृत्तान्त सुनाकर धर्मका प्रतिबोध दिया। इसके बाद वे (अच्युतेन्द्र) अपने स्थानको चले गये। परन्तु मेघनाद खेचरेन्द्रने

* इसी नामका एक वैद्यक ग्रन्थ है। दूसरे पक्षमें सु अर्थात् उत्तम श्रुत अर्थात सुना हुआ—आगम।

उनके उपदेशसे वैराग्य-लाभ कर, अमरसूरि नामक गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली और नन्दन-वनमें जाकर उग्रतप करने लगे ।

अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवके पुत्र असुरकुमारमें उत्पन्न हुआ था। उसने मुनि मेघनादको देख, पूर्व भवका वैर याद कर, एक रातको प्रतिमाके पास रहनेवाले मुनिके प्रति बड़े-बड़े उपद्रव किये ; पर तो भी मुनि अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए । प्रातःकाल वे प्रतिमाको प्रणामकर, पृथ्वी-तलपर विहार करने चले गये। अन्तमें उन्होंने समाधि-मरण पाया और अच्युत-देवलोकमें जाकर देवता हुए ।

# चौथा प्रस्ताव

इसी जम्बुद्वीपके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, शीतोदा नदीके किनारे, मङ्गलावती नामक विजयमें, सिद्धान्त ग्रन्थोंमें वर्णित रत्न-सञ्चया नामकी शाश्वती नगरी वर्त्तमान है। वहींपर प्रजाका क्षेम करनेवाले क्षेमङ्कर नामके राजा राज्य करते थे। वे छद्मवेशमें रहनेवाले तीर्थङ्कर थे। उनके रत्नमाला नामकी रानी थी। एक समयकी बात है, कि अपराजितका जीव बाईस सागरोपमका आयुष्य सम्पूर्णकर, अच्युत देवलोकके इन्द्रपदसे चूकर रत्नमालाकी कोखमें पुत्र-रूपमें आ उत्पन्न हुआ। उस समय सुख-पूर्वक शय्यापर सोयी हुई रानीने रातको हाथीसे आरम्भ कर, निर्धूम अग्निपर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे। पन्द्रहवींबार उसने वज्रका दर्शन किया। उस स्वप्नकी बातको हृदयमें धारण किये हुए उसने प्रातः काल अपने स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तब राजा क्षेमङ्करने उन स्वप्नोंकी बातपर मन-ही-मन विचार कर कहा,—"हे प्रिये! इन स्वप्नोंके प्रभावसे तुम्हें बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा।" यह सुनकर रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद समय पूरा होनेपर रानीने शुभ ग्रह-लग्नके समय पुत्र रत्न प्रसव किया। तत्काल दासियोंने राजाके पास जाकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ दीं। राजाने हर्षकी अधिकतासे दासियोंको इतना धन दान कर दिया, जिससे उनकी जीवन-पर्यन्त जीविकाका निर्वाह होता रहे। तदनन्तर राजाने पुत्र-जन्मका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया। रानीने पन्द्रहवाँ स्वप्न वज्रका देखा

था, इसलिये राजाने कुमारका नाम वज्रायुध रखा । क्रमशः धात्रियों से लालित-पालित होते हुए राजकुमार आठ वर्षके हुए, तब राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास करनेके लिये कलाचार्यके पास भेज दिया। धीरे-धीरे कुमारने सब कलाएँ सीख लीं और युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने अनुपम रूपवती लक्ष्मीवती नामक राजकुमारीके साथ उनका व्याह बड़ी धूमधामसे कर दिया।

इसके बाद कितनाही समय बीत गया। तब अनन्तवीर्यका जीव अच्युत-देवलोकसे च्युत होकर कुमार वज्रायुधकी पत्नी लक्ष्मीवतीकी कोखमें पुत्र-रूपसे उत्पन्न हुआ। समय पूरा होनेपर उसका जन्म हुआ। उसका नाम सहस्रायुध रखा गया। क्रमशः कलाओंका अभ्यास करते हुए वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसका विवाह राजकन्या कनकश्री के साथ हुआ। उसीके साथ रहकर भोग-विलास करते हुए उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शतबल रखा गया।

एक दिन राजा क्षेमङ्कर अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके साथ सभा-मण्डपमें श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए थे। इसी समय वहाँ ईशान-कल्प-वासी मिथ्यात्वके कारण मोह-प्राप्त चित्रचूड़ नामका कोई देव आया। उसने राजा क्षेमङ्करके पास आकर कहा,—"हे राजन्! जगत्में न कोई देव है, न गुरु है, न पुण्य है, न पाप है, न जीव है और न परलोक ही है।" उसकी यह नास्तिकता भरी बात सुन, कुमार वज्रायुधने उससे कहा,—"देव! तुम्हारी यह नास्तिकताकी बातें उचित नहीं, क्योंकि इसके तुम्हीं स्वयं प्रमाण हो। यदि तुमने पूर्व भवमें कोई पुण्य नहीं किया होता, तो देवत्वको नहीं प्राप्त होते। पहले तुम मनुष्य थे, अब देव हो। इससे यह सिद्ध होता है, कि जीव है। यदि जीव न होता, तो शुभाशुभ कर्मोंका उपार्जन कौन करता? और उन कर्मोंका भोग किसे होता?" इस प्रकार वज्रायुधकुमारने उसको जीवका अस्तित्व सिद्ध करके दिखलाया और उसके अन्य संशयोंको भी हेतु, युक्ति और दृष्टान्तोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे उसे बोध हो

गया। तब देवताने प्रसन्न होकर कहा,— "हे कुमार! आपने मेरा बहुत बडा उपकार किया, जो मुझे नास्तिकताके कारण भवसागरमें डूबनेसे बचा लिया।" यह कह, उसने कुमारसे समकित 'सहित श्री-जिनधर्म अङ्गीकार कर कहा,— "हे धर्मके उपकारक! मैं आपकी कुछ भलाई करना चाहता हूँ। इसलिये कहिये, मैं क्या करूँ? देवका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।" उसके ऐसा कहने पर भी जब कुमारने पूरी निस्पृहता दिखलायी, तब देवने स्वयं बहुत आग्रह करके उनको एक आभूषण दिया और उन्हें प्रणाम कर स्वर्गमें चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने ईशानेन्द्रसे यह सब हाल कह सुनाया। यह सुन, वज्रायुधके गुणोंसे प्रसन्न होकर ईशानेन्द्रने यह जान लिया, कि कुमार भरतक्षेत्रके सोलहवें तीर्थङ्कर होनेवाले हैं और अपने स्थानपर बैठे हुएही उन्होंने कुमार वज्रायुधकी पूजा की।

एक दिन वसन्त-ऋतुके ज़मानेमे सुदर्शना नामकी एक दासीने श्री वज्रायुधकुमारको फूल देकर कहा,—"हे देव! लक्ष्मीवती देवी आपके साथ सुरनिपात नामक उद्यानमें क्रीडा करनेकी इच्छा कर रही हैं।" यह सुन, कुमार वज्रायुधने प्रेमपूर्ण हो, तत्काल अपनी सातसौ रानि-योंके साथ उसी उद्यान की यात्रा कर दी। वहाँ अनेक प्रजा-जनोंको तरह-तरहकी क्रीड़ाओंमें लगे हुए देखकर वे स्वयं भी रानियोंके साथ-साथ क्रीडा वापीमें प्रवेश कर जल-क्रीडा करने लगे। इसी समय एक नवीन घटना घटी।

पहले अपराजितके भवमें वज्रायुध कुमारने जिस दमितारि नामक प्रतिवासुदेवको हराया था, वह संसारमें परिभ्रमण करते हुए, बहुत दिनों तक तपस्याका अनुष्ठान करनेके पश्चात् व्यन्तर जातिका देव हो गया था। उसने वज्रायुधकुमारको जलक्रीडा करते देख, पूर्व भवके द्वेषसे प्रेरित हो, उनका विनाश करनेकी इच्छासे एक बडा सा पर्वत उखाड़ कर उसी वावलीमें फेंका और उसके नीचे पडे हुए कुमारको बडी मज़बूतीसे नागपाशमें बाँध लिया। कुमार वज्रायुध चक्रवर्त्ती

होनेवाले थे, इसलिये उनमें वड़ा वल था। वे दो हज़ार यक्षों द्वारा अधिष्ठित थे। इसलिये वे तत्काल उस नागपाशको काट, पर्वतको चूर-चूर कर, वेदाग शरीर लिये हुए वापीसे वाहर निकले और सव रानियोंके साथ वनमें क्रीड़ा करने लगे। इसी समय इन्द्र, महाविदेह में तीर्थङ्करकी वन्दना कर, शाश्वत तीर्थकी यात्रा करनेके लिये नन्दीश्वर-द्वीपकी ओर चले जा रहे थे। उन्होने वज्रायुधको पर्वत तोड, नागपाश काटकर वावलीसे वाहर निकलते देख लिया। यह देख, आश्चर्यमें आ, इन्द्रने अपने ज्ञानका उपयोग कर यह जान लिया, कि वे भावीतीर्थङ्कर हैं। यह जान, उन्होंने भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की,—“हे कुमारेन्द्र! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम्हीं इस भरतक्षेत्रमें कल्याण और शान्तिके देनेवाले श्रीशान्तिनाथके नामसे सोलहवें तीर्थङ्कर होनेवाले हो।” इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र नन्दीश्वर-द्वीप चले गये। इसके वाद कुमार भी क्रीड़ा कर अपने परिवार सहित घर आये।

एक दिन पंचम देवलोक-वासी लोकान्तिक देवने आकर राजा क्षेमङ्करसे कहा,—“स्वामिन्! अव आप धर्मतीर्थका अवलम्बन करें।' यह सुन, अपना दीक्षा-काल निकट जान, क्षेमङ्कर राजाने वज्रायुध कुमारको राजगद्दी पर वैठाकर सांवत्सरिक दान किया। वर्षके अन्तमें चारित्र ग्रहण कर, कुछ समय तक छद्मवेशमें विहार करते हुए घाती कर्मोंका क्षय कर, वे केवल-ज्ञानको प्राप्त हुए। इसके वाद उन्होंने देवताओंका समवसरण रचाया। उसमें वैठकर जिनेश्वर क्षेमङ्करने इसप्रकार देशना दी,—“हे भव्य प्राणियों! चिन्तामणि, कल्पवृक्ष और कामधेनुकी तरह धर्मकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। साथ ही इस धर्म की श्रुत, शील और दया आदिसे भली भाँति परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि विना परीक्षा के यह आदर-योग्य नही। जैसे कि वैद्यकमें दूध पीना वहुत गुणकारक वतलाया गया है, यह सुन कर यदि कोई मूर्ख आकका दूध पी जाये, तो उसकी आँते सड़ जायेंगी

और बहुत ख़राब बीमारी पैदा हो जायेगी। इधर यदि कोई बुद्धिमान विचार कर गायका दूध पीये, तो वह उसके बलको बढ़ायेगा और उससे उसकी पुष्टि होगी। इसी प्रकार मनुष्यको विचारके साथ धर्म का आदर करना चाहिये। यदि बिना विचारे दूसरी तरहका कार्य किया जाये, तो अमृताम्रका विनाश करनेवाले राजादिककी भाँति वह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न करता है। अर्थात् जैसे अमृत फलवाले आम्रवृक्ष का विनाश करनेवाले राजा आदिको पश्चाताप हुआ, उसीतरह उसको भी पश्चाताप होता है। यह सुन, सभाके सब लोगोंने जिनेश्वरसे पूछा, "हे प्रभु! बिना विचारे काम करनेके कारण उन लोगोंको कैसे दोष हुआ, सो कृपाकर कहिये।" यह सुन, तीर्थङ्करने कहा,—"हे भव्य-जनो! उनकी कथा इस प्रकार है, सुनोः—

"मालव-देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। वह सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है। उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम विजयश्री था। अपनी उस पटरानीके साथ विषय-सुख भोगते हुए राजा सुखसे राज्य कर रहे थे। एक दिन राजा सभामें बैठे हुए थे। इसी समय द्वारपालने आकर विनय-पूर्वक कहा,—"हे स्वामिन्! आपके मन्दिरके द्वारपर देखनेमें राजकुमारोंकी तरह रूप—रंगवाले चार पुरुष आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे प्रतिहार! उन्हें शीघ्रही अन्दर ले आओ" इसके बाद द्वारपाल उन चारों पुरुषोंको राजसभामें ले आया। वे राजा को प्रणाम कर विनयसे नम्र बने हुए खड़े रहे। राजाने उन्हें बैठनेके लिये आसन आदि देकर सम्मानित किया और उन्हें देखकर मन-ही-मन यह सोचकर, कि ये तो मेरे ही वंशके मालूम पडते हैं, उन्हें पान आदि देकर उनका और भी आदर किया तथा पूछा,—"तुम लोग कहाँसे आ रहे हो और क्या चाहते हो?" यह सुन, उनमें जो सबसे छोटा था, वह बोला,—"हे देव! उत्तर-प्रदेशमें सुवर्ण-तिलक नामक एक श्रेष्ठ नगर है। उसमें वैरी मर्दन नामके राजा थे, जिनकी स्त्रीका

नाम चारुरूपवती था। उनकी कोखसे क्रमशः चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम क्रमसे देवराज, वत्सराज, दुर्लभराज और कीर्त्तिराज थे। पिताने चारों पुत्रोंको कलाभ्यास कराया और जब वे जवान हुए, तब उनकी शादी उनके अनुरूप कन्याओंके साथ कर दी। अन्तमें राजाको बड़ी भारी व्याधि हो गयी और उन्होंने अपने बड़े बेटे देवराजको गद्दी पर बैठा, उन्हें हित-शिक्षा दे, स्वर्ग-लोककी यात्रा की। देवराजने कुछ ही दिनों तक राज्यका पालन किया था, कि इसी बीच उसके बलवान् चाचाओंने इकट्ठा होकर बल-पूर्वक देवराजका राज्य छीन लिया और उसे तथा उसके छोटे भाइयोंको देश-निकाला दे दिया। हे देव! वही देवराज, अपने भाइयोंके साथ आपकी सेवामें आया हुआ है।" यह सुनकर हर्षित होते हुए राजाने कहा,—"तुमलोगोंने मेरे पास आकर बहुत ही अच्छा काम किया; क्योंकि सत्पुरुषोंको सत्पुरुषोंकाही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।" यह कह, राजाने प्रतिहारीको आज्ञा देकर उनके लिये सब सामग्रियों सहित बड़े भारी महल की व्यवस्था कर दी। इसके बाद स्वामीकी भक्ति करनेमें कुशल उन चारों सेवकोंको राजाने प्रसन्नता-पूर्वक अपना अङ्ग-रक्षक बनाया। वे भी क्रमसे रातको एक एक पहरकी बारीसे शस्त्र-बद्ध होकर सोये हुए राजाके शरीरकी रक्षा करने लगे। एक दिन गरमीके दिनोंमें देवराज, राजाकी आज्ञा लेकर, पासही के एक गाँवमें किसी कामके लिये गया। वहाँका काम पूरा कर, जब वह पीछे लौटने लगा, तब आधी रात ते करते-न-करते बड़ी भयंकर आँधी आयी, प्रचण्ड वायुसे धूल उड़ने लगी, बड़ी बालू उड़-उड़कर आँखोंमें पड़ने लगी, पत्तों और तृणोंसे सारा आसमान भर गया, साथही बूँदे पड़ने लगीं, बादल गरजने लगे और नेत्रोंको सन्ताप देनेवाली बिजली चमकने लगी। उस समय अन्धड़-पानीसे डरकर देवराजने एक वट-वृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया और वहीं खड़ा हो रहा। इतनेमें उस वृक्षपर कुछ शब्द होने लगा। उसने सोचा,—"इस वृक्ष पर कौन है और वह क्या बोल रहा है? यह सुनना चाहिये।"

ऐसा विचार कर वह विविध भाषाओंका जाननेवाला देवराज बड़ी सावधानीके साथ सुनने लगा। उसने किसी पिशाचको इस प्रकार कहते सुना—

"फो फो जाणसि किंचि, सो भणइ नो कहहि मह किं तं।
जंपइ इमोऽवि अज्जं, मरिहीए सो नरिंद त्ति॥ १॥"

*अर्थात्—"अरे भाई! कुछ जानते भी हो? उसने कहा,—"नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं जानता; तुम कुछ जानते हो, तो मुझे कह सुनाओ।" इस पर बूढ़े पिशाचने कहा,—"आजही उज्जयिनीके राजाकी मृत्यु होनेवाली है।"*

"बीएण तओ पुट्ठो, केण निमित्तेण कीइ वेलाए।
सो जंपइ मप्पाओ, पढमे पहरम्मि रत्तीए॥ २॥"

*अर्थात्—"इसपर दूसरेने पूछा,—"किस तरहसे और कब राजाकी मृत्यु होगी?" इसके उत्तरमें उस वृद्ध पिशाचने कहा,—"रातके पहले ही प्रहरमें सांपके काटनेसे राजाकी मृत्यु होगी।"*

पिशाचकी यह बात सुन, उसे सच समझकर देवराजने मन-ही-मन बड़ा दुःखित होते हुए विचार किया,—"हाय! दैवने यह क्या किया? अच्छा, रहो, मैं अब ऐसी कोई तरकीब लड़ाता हूँ, जिससे राजाका संकट टले।" ऐसा विचार करता हुआ, वह शीघ्र ही राजाके पास आया। इसके बाद रातके समय राजा सब सभासदोंको विदा कर, अपने शयन-मन्दिरमें जा, रानीके साथ सुख-शय्या पर सो रहे। रातके पहले पहरमें देवराजका पहरा था। इसलिये वह उस शयन-मन्दिरके मध्यमें, ऊपर, नीचे और अग़ल-बग़ल—सब ओर बड़ी शंका और सतर्कता-भरी दृष्टिसे देखता हुआ, तलवार खींचे हुए, गुप्त रीतिसे दीवेकी ओटमें खड़ा रहा। इसी समय छतके एक छिद्रमेंसे एक काला सांप निकल कर लटक आया। यह देख, उसने तत्काल एक हाथसे उसका मुँह पकड़, दूसरे हाथकी तलवारसे उसे दो टुकड़े कर दिया

और उन दोनों टुकड़ोंको एक स्थानपर छिपाकर रख दिया। इसके बाद वह फिर अपने स्थानपर आकर सावधानीके साथ पहरा देने लगा। इसी समय उसने देखा, कि रानीकी छाती पर साँपके रुधिरकी बूँदें पड़ी हैं। यह देख, यह सोचकर कि कहीं इससे रानीके शरीरमें विष-का प्रवेश न हो जाय, उसने हाथसे उन बूँदोंको पोंछ दिया। इसी समय एकाएक राजाकी नींद टूट गयी और उन्होंने देवराजको रानीके स्तनोंपर हाथ फेरते देखा। इससे क्रोधमें आकर उन्होंने विचार किया,—"इस दुरात्माको मार ही डालना चाहिये।" फिर विचारा,—"वह बलवान् है, इसलिये मैं इसे अकेला ही नहीं मार सकूँगा। अतएव और ही किसी उपायसे इस विश्वास-घातकको मार डालना चाहिये।" शास्त्रमें भी कहा हुआ है,—

"आयुषो राज-चित्तस्य, धनस्य च घनस्य च।
तथा स्नेहस्य देहस्य, नास्तिकालो विकुर्वताम्॥ १॥"

*अर्थात्—"आयु, राजाके चित्त, धन, मेघ, स्नेह और देह—इन चीजोंमें विकार होते देर नहीं लगती।"*

क्रोधित राजा सोयेही हुए थे, कि इसी समय घड़ियालने रातके पहले पहरकी घंटी बजायी। बस, देवराजने अपनी जगह पर अपने छोटे भाई वत्सराजको बैठा दिया और आप अपने स्थानको चला गया। उस समय राजाने पूछा,—"इस समय पहरे पर कौन है?" उसने कहा,—"मैं हूँ—आपका सेवक, वत्सराज।" राजाने कहा,—"हे वत्सराज! क्या तुम मेरी एक आज्ञाका पालन करोगे?" उसने कहा,—"स्वामिन्! आपको जो कुछ आज्ञा होगी, उसका मैं अवश्य पालन करूँगा—शीघ्र आज्ञा दीजिये।" राजाने कहा,—"यदि ऐसी बात है तो जाओ, अपने भाई देवराजका सिर काट लाओ।" उसने कहा,—"बहुत अच्छा" और यह कहनेके साथही राजमन्दिरसे बाहर निकलकर अपने मनमें विचार करने लगा,—"अवश्यही आज देवराजने ऐसा कोई काम किया होगा, जिससे राजा इतने नाराज़ हैं और वह काम अवश्यही शरीर,
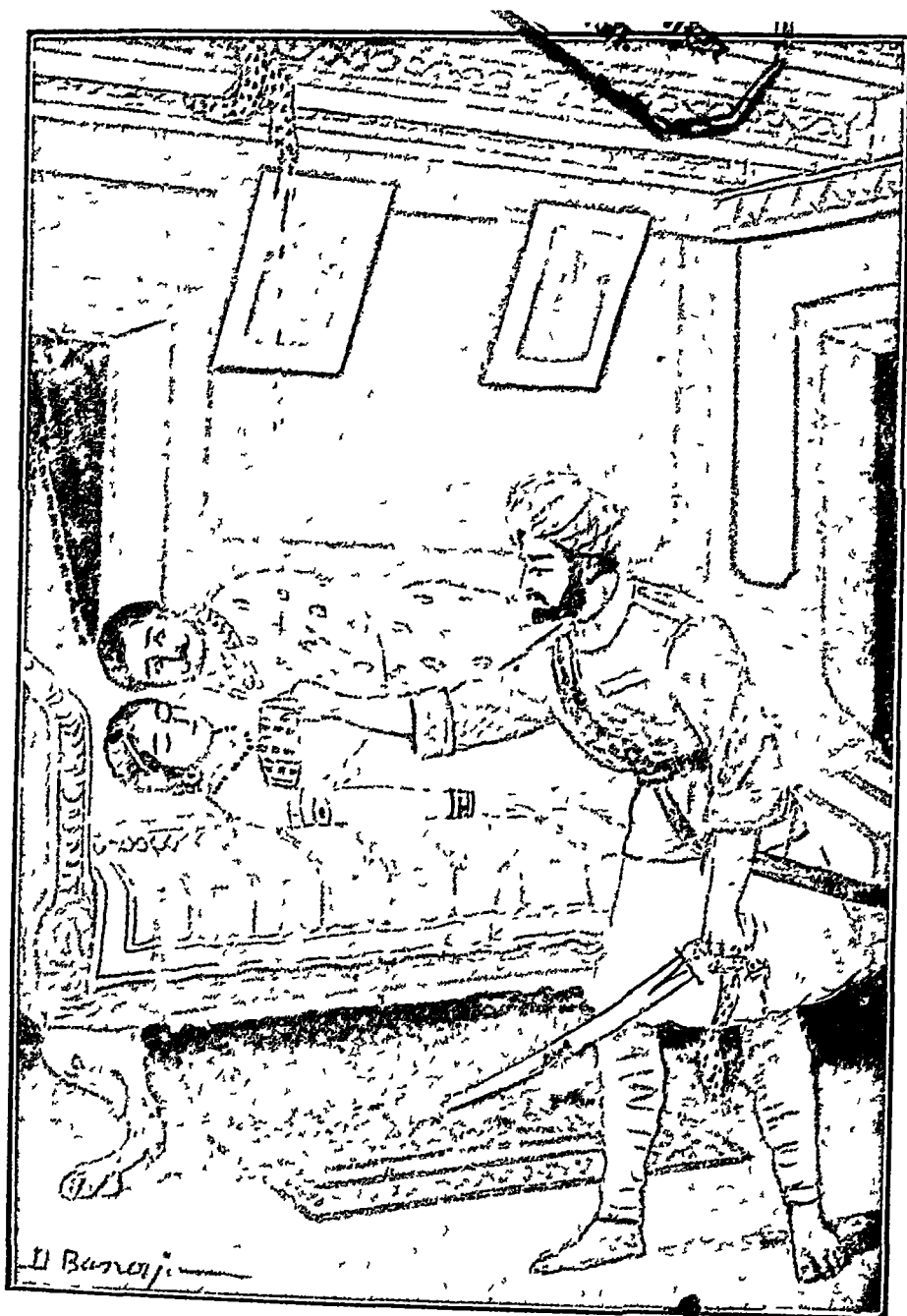
उसने हाथसे उन बूँदोंको पोंछ दिया। इसी समय एकाएक राजाकी नींद टूट गयी और उन्होंने देवराजको रानीके स्तनोंपर हाथ फेरते देखा। पृष्ठ १३८

स्त्री अथवा धनके द्रोहका होगा, नहीं तो इनको इतना क्रोध हरगिज़ नहीं होता, परन्तु मेरे बड़े भाई ऐसा कोई काम करेंगे, यह तो बिलकुल अनहोनीसी बात मालूम पड़ती है। कहा भी है,—

"ये भवन्त्युत्तमा लोके, स्वप्रकृत्यैव ते ध्रुवम्।
अप्यंगीकुर्वते मृत्युं, प्रपद्यन्ते न चोत्पथम्॥ १ ॥
भीता जनापवादस्य, ये भवन्ति जितेन्द्रिया।
अकार्यं नैव कुर्वन्ति, ते महामुनयो यथा ॥ २ ॥

*अर्थात्—"इस लोकमें जो लोग स्वभावसे ही उत्तम हैं, वे मृत्युका भले ही आलिंगन कर लें; पर कुमार्गका अवलम्बन कभी नहीं करते। जो जितेन्द्रिय पुरुष लोकापवादसे डरते हैं, वे महानुभावोंकी भाँति कुकर्म नहीं करते।"*

यही विचार कर वत्सराजने सोचा,—"राजाने तो आज्ञा दे डाली; परन्तु मैं कुकृत्य क्यों करूँ? पर उनकी आज्ञा भी तो टालने लायक नहीं। इसलिये कुछ देर कर दूं, तो ठीक है; क्योंकि काल-विलम्ब करनेसे अशुभका निवारण हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।" इसी प्रकार सोच विचार कर उसने राजाके पास आकर कहा,—"स्वामिन्! अभीतक तो देवराज जगाही हुआ है। उसे जागतेमे कोई नहीं मार सकता। इसलिये जब वह सो जायगा, तब मैं उसे मार डालूंगा।" यह सुन, राजाने उसकी बात सच मान ली। फिर वत्सराजने कहा,—"प्रभो। अच्छा हो, यदि समय बितानेके लिये आप कोई कहानी कह सुनाइये अथवा मैं कहूँ और आप चित्त देकर सुनें। राजाने कहा,—"भाई! तुम्हीं कथा कह सुनाओ।" राजाकी यह आज्ञा पाकर वत्सराजने उन्हें यह कथा सुनायी,—

"इसी भरत-क्षेत्रमें पाटलिपुत्र नामका नगर है। वहाँ प्रतापी, विनयादि गुणोंसे विभूषित पृथ्वीराज नामका राजा राज्य करता था। उसकी प्राणप्रिया पत्नीका नाम सुभगा था। उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जो बड़ेही निर्मल आचारवाला, सद्विचारयुक्त

और कृपाका आधारभूत था। उसकी स्त्रीका नाम ऋजुका था, उसके गर्भसे उत्पन्न धनदत्त नामक एक पुत्र उस सेठके था, जो बड़ाही पवित्र-चरित्र था। सेठका वह बालक कलाओंका अभ्यास करता हुआ बालक-पनसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ। एक दिन वह बढ़िया पोशाक पहन मित्रों और बन्धुओंको साथ ले अपने घरसे बाहर हुआ और किसी कामके लिये कहीं चला जा रहा था। इसी समय किसीने उसे रास्तेमें जाते देख, कहा,—"यह सेठका बालक धन्य है, जो इस प्रकार मनमानी मौज़ें उड़ा रहा है।" यह सुन, किसी दूसरेने कहा,—"अरे मूर्ख! मुफ्तमें इतनी तारीफ़ क्यों कर रहा है? जो अपने बापके धनपर मौज़ करते हैं, वे तो कुपुरुष कहे जाते हैं। जो अपनी भुजाओंके प्रतापसे उपार्जन की हुई लक्ष्मीका उपभोग करता है और दान भी देता है, वही प्रशंसाके योग्य है। कहा भी है, कि—

"मातु. स्तन्यं पितुर्वित्तं, परेभ्य. क्रीडयार्थनम् ।
पातुं भोक्तु च लातुं च, बाल्य एवोचितं यतः ॥ १ ॥

*अर्थात्—"माताका स्तन-पान करना, पिताके द्रव्यका उपभोग करना अथवा दूसरोंसे क्रीड़ाके लिये कोई चीज़ लेना, यह बालकोंको ही शोभा देता है।"*

उसकी यह बात सुन, उस सेठके लड़केने सोचा,—"यद्यपि ये लोग यह बातें डाहके मारे कह रहे हैं; तथापि बाते मेरे हितकी हैं। अतएव अब मैं देशान्तरको जाकर धन कमाऊँ। तभी सत्पुरुष कह-लाऊँगा, अन्यथा नहीं।" ऐसा विचार कर, उसने अपना विचार अपने मित्रोंपर प्रकट किया। मित्रोंने भी उसके विचारकी प्रशंसा की। सबके पीछे उसने अपने घर जाकर, पिताके चरणोंमें प्रणाम कर, बड़े आग्रहके साथ कहा,—"पिताजी! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं धन कमानेके लिये परदेश जाऊँ।" यह बात सुन, वह सेठ ऐसा दुखी हुआ, मानों उसे वज्र मार गया हो और बोला,—"बेटा! मेरे घरमें आपही काफ़ी धन है उसे मज़ेसे खाओ-खर्चो और दान भी दो। तुम्हें

उपार्जन करनेकी क्या फ़िक्र पड़ी है? परदेशमें समय पर खानेको नहीं मिलता, कभी-कभी तो पानी भी मयस्सर नहीं होता। आराम से सोने बैठनेका सुभीता नहीं होता। इधर तुम्हारा शरीर बड़ा कोमल है। इसलिये परदेश जाना ठीक नहीं।" पिताकी यह बात सुन, पुत्रने फिर कहा,—"पिताजी! तुम्हारी उपार्जन की हुई लक्ष्मी मेरी माताके समान है। अतएव लड़कपनके सिवा और किसी अवस्थामें वह मेरे भोगने योग्य नहीं।"

इसी तरहकी बड़ी आग्रह-भरी बातें कहकर उसने पिताकी आज्ञा प्राप्त कर ली और वाहन आदि सारी सामग्रियाँ तैयार कर, काम लायक़ किरानेकी चीजें ले, खाने-पीनेकी भी चीजें साथ ले, पिताकी दी हुई शिक्षाओंको चित्तमें भली भाँति धारण कर, एक शुभ दिवसको सारे क़ाफ़िलेके साथ, यात्रा कर दी। इसके बाद निरन्तर चलता हुआ वह सेठका पुत्र अपने काफ़िलेके साथ कितनेही दिन बाद श्रीपुर नामक नगरमें पहुँचा। वहाँ किसी सरोवरके पास क़ाफ़िलेका पड़ाव पड़ा। काफ़िलेका सरदार एक ख़ूबसूरत तम्बूके अन्दर डेरा डालकर रहा। इसी समय एक मनुष्य, जिसकी देह काँप रही थी और आँखें डरके मारे काम नहीं देती थीं, सेठके पुत्रकी शरणमें आया।

धनदत्तने उससे कहा,—"भाई! तुम डरो मत। केवल यही कह दो, कि तुम कौनसा अपराध करके मेरे पास आये हो।" उसने ऐसा पूछाही था कि इतनेमें 'मारो-मारो'की आवाज करते, शस्त्रधारी रक्षक वहाँ आ पहुँचे और क़ाफ़िलेके सरदारसे बोले,—"सेठजी! यह मनुष्य यहाँके राजाका नौकर है और उसका एक बढ़िया सा गहना लेकर जूएमें हार आया है। उस गहनेकी खोज करते हुए हमलोगोंने पता लग जानेपर राजासे आकर कहा, तब उन्होंने जुआरीसे वह गहना लेकर हुक्म दिया, कि इस चोरको पूरी सजा दो, यह राजद्रोही है, इसे हरगिज न छोड़ो। उस समय दयालु मन्त्रियोंने राजासे कहा, कि "इस गहनेके चोरको सम्प्रति कारागृहमें डाल दो।" यह सुन, राजाने भी उसे

क़ैदख़ाने भिजवा दिया। एक दिन रातके पिछले पहरमें क़ैदख़ाना तोड़, वहाँके पहरेदारको मार, यह चोर वहाँसे निकल भागा। हम लोग यह ख़बर पातेही उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। इसी समय यह चोर इस सरोवरके पास घने जङ्गलमें जा दबका। अब यह वहाँसे निकलकर आपकी शरणमें आया है, इसलिये आप इस राज-द्रोहीको कदापि अपनी शरणमें न रखिये।" पहरेदारोंकी यह बात सुन, क़ाफ़िला-सरदारने कहा,—"हे राजपुरुषो! तुम लोगोंने जो बात कही, वह तो ठीक है; पर अच्छे मनुष्य कभी शरणमें आये हुए मनुष्यको नहीं त्यागते।" सिपाहियोंने कहा,—"आप चाहे जो कहें; पर हमलोग तो राजाकी आज्ञाके अनुसार काम करते हैं, हमें दूसरा कुछ नही मालूम।" तब सार्थपतिने कहा,—"अच्छा, तो मैं राजाके पास चलकर अपनी बातें कह सुनाता हूँ।" यह कह, वह राजाके पास गया और एक अमूल्य रत्नोंका हार, राजाकी भेंट कर उनके निकट बैठ रहा। राजाने उसका बड़ा आदर-मान कर, पूछा,—"हे सार्थपति! तुम कहाँसे चले आ रहे हो?" इसपर उसने उन्हें अपना सारा हाल सुनाकर कहा,—"हे महा-राज! यदि आपका गहना आपको मिल गया हो, तो मेरी शरणमें आये हुए इस चोरको आप माफ़ कर दें।" राजाने कहा,—"गहना मिल जाने पर भी यह वध करनेही योग्य था। तो भी मैं तुम्हारी प्रार्थना सुनकर, इसे छोड़े देता हूँ।" यह सुन, राजाको प्रणामकर, यह कहते हुए, कि आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की, वह उस चोरको साथ लिये हुए अपने स्थानको चला गया। राजाके आदमियोंके कहे अनुसार सिपाही अपने-अपने स्थानपर चले गये। इसके बाद उस सेठके बेटेने उस चोरको भोजन आदि करानेके बाद कहा,—"देखो, अब आजसे तुम किसी दिन चोरी न करना।" यह सुन, चोरी न करनेका निश्चय कर, उसने सेठसे कहा,—"सेठजी! अब आजसे मैं आपकी कृपासे कभी चोरी न करूंगा और परलोकमें हित करनेवाले व्रतको ग्रहण करूँगा; परन्तु मेरे पास एक साधुका दिया हुआ, बड़े विकट प्रभावशाली भूतोंका

निग्रह करनेवाला एक मन्त्र है, उसे आप ले लें। मेरी यह प्रार्थना अवश्य ही मान लें।" यह सुन, परोपकारके साधन-रूप उस मन्त्रको उसने ग्रहण कर लिया। उसे मन्त्र देकर, वह चोर भी अपने घर चला गया।

इसके बाद धनदत्त सार्थवाह वहाँसे चलकर क्रमसे कादम्बरी नामकी अटवीमें पहुँचा। वहाँ एक बड़ी भारी नदीके किनारे क़ाफ़िलेका पड़ाव डाला गया। जब सब मनुष्य भोजनादि तैयार करनेमें लग गये, तब एक स्थानपर बैठे हुए सार्थपतिने एक शिकारीको देखा। उसके शरीरका रंग काला, आँखें लाल-लाल और हाथमें धनुष-बाण थे। उसके साथ बहुतसे कुत्ते भी थे। तो भी न जाने वह किस दुःखके कारण रो रहा था। उसे देख, आश्चर्यमें पड़े हुए सार्थपतिने सोचा,—"यह कैसी बात है?" ऐसा मनमें आते ही उसने बड़े आग्रहसे उस शिकारीसे पूछा,—"तुम क्यों रो रहे हो? इसका कारण बतलाओ।" उसने कहा,—"हे भद्र! मेरे दुःखका कारण सुनिये। इसी पर्वतके ऊपर गिरिकुण्डिका नामका एक गाँव है। उसमें सिंहचण्ड नामके शूरवीर ग्राम्याधिपति रहते हैं। उनकी पत्नीका नाम सिंहवती है। इस समय वह भूतकी सतायी हुई बेतरह दुःख पा रही है। उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है और यदि वह मरी, तो हमारे स्वामी भी निश्चयही उसके वियोगमें प्राण-त्याग कर देंगे। उन्होंने उसके लिये लाखों उपाय किये; पर तो भी उसको अपने शरीरकी सुध नहीं होती। हे सार्थपति! मैं इसी अफ़सोसके मारे रो रहा हूँ।" यह सुन, सार्थपतिने कहा,—"हे व्याध! यदि मैं उस स्त्रीको एक बार देख पाऊँ, तो मेरे पास जो मन्त्र है, उसका प्रयोग देखूँ। कदाचित् मन्त्र चल गया, तो चल ही गया।" यह सुन, उस भीलने उसी दम अपने मालिकके पास जाकर यह बात कही। इसके बादही वह गाँवका मालिक अपनी स्त्रीको लिये हुए उसके पास आ पहुँचा। सार्थपतिने उसी समय उस स्त्रीसे आँखें मिला, मन्त्रका जाप कर, उसका दोष दूर कर दिया। इस प्रकार उसके द्वारा अपनी स्त्रीको जीवन-दान मिलते देख, ग्राम-पतिको बड़ा आनन्द

हुआ और वह सार्थपतिसे विदा माँग कर अपने घर चला गया। इसके बाद धनदत्त भी अपने क़ाफ़िलेके साथ वहाँसे कूचकर, धीरे-धीरे चलता हुआ समुद्रके पास ही 'गम्भीर' नामके बन्दरगाहमें पहुँचा। वहाँ वह कुछ दिनोंतक रहा भी, परन्तु इच्छानुसार लाभ नहीं हुआ, इसलिये उसने एक जहाज़ ख़रीदा और उसे तैयार कर, समुद्रको पूज, देशान्तरके योग्य सब तरहके किरानेका सामान उसपर लादकर समुद्रमें ज्वार आनेपर उस जहाज़पर सवार हो गया। इसके बाद अनुकूल वायु पाकर वह जहाज़ बड़े वेगसे चलता हुआ बीच समुद्रमें आ पहुँचा। इतनेमें उस सेठ-पुत्रने आकाश-मार्गसे आते हुए एक अच्छेसे तोतेको देखा। उसके मुँहमें आम्र-फल था। उसीको ढोते-ढोते वह इतना हैरान हो गया था, कि समुद्रमें गिराही चाहता था। यह देख, सेठने जहाज़के ख़लासियोंको एक लम्बा चौड़ा कपड़ा फैलाकर उसी पर उस तोतेको ले लेनेका हुक्म दिया। ख़लासी जब उस तोतेको इसी प्रकार पकड़कर ले आये, तब उसे हवा-पानीसे स्वस्थकर उसने उसे बुलवानेकी चेष्टा की, तब वह तोता, अपने मुँहका फल नीचे गिरा, मनुष्यकी सी बोलीमें बोला,—"हे सार्थनाथ! आपने आजतक जितने उपकारके काम किये हैं, उन सबमें मेरा यह जीवन-दान सबसे बढ़कर है। मुझे जिलाकर आपने मेरे बूढ़े और अन्धे मा-बापको भी जिला लिया है। इस महान् उपकारका मैं आपको क्या बदला दूँ? अच्छा, तो इस समय मेरा लाया हुआ यह आम्र-फल ही स्वीकार कीजिये।" सार्थवाहने कहा,—"हे शुक-राज! मैं इस आम्र-फलको लेकर क्या करूँगा? तुम्हीं इसे खा लो और इसके सिवा मैं तुम्हें ईख और अंगूर वग़ैरह और भी चीज़ें खानेको देता हूँ, उन्हें भी खा डालो।" यह सुन, तोतेने कहा,—"हे सार्थपति! यह फल बड़ा ही गुणकारी और दुर्लभ है। इस फलका वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिये,—

"इसी भरतक्षेत्रमें विन्ध्य नामक एक बड़ा भारी पर्वत है। उसीके पास विन्ध्याटवी नामक एक प्रसिद्ध जंगल है। उसी जंगलमें एक

पेड़पर एक तोतेका जोडा रहता था। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। क्रमसे मेरे माँ-बाप बहुत बूढ़े हो गये और अब उनकी आँखोंसे ज़रा भी नहीं दीखता। इसलिये मैं ही उनके लिये आहार ला दिया करता हूँ। एक दिन मैं उस जंगलके एक आमके पेड़पर बैठा हुआ था, कि इतनेमें दो मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने चारों ओर देख, सन्नाटा पाकर आपसमें बातें करनी शुरू कीं। उनकी बातोंका सार यह था, कि—समुद्रके मध्यमें कपिशैल नामक पर्वतके शिखरपर एक निरन्तर फलनेवाला आम्र-वृक्ष है। उसका एक फल एक बार कोई खाले, तो उसके शरीर-की सारी व्याधियाँ नष्ट हो जायें और उसे अकाल-मृत्यु या बुढ़ापेका डर न रहे। साथही उसे उत्तम सौभाग्य, श्रेष्ठ रूप और देदीप्यमान कान्तिकी भी प्राप्ति हो।.उन मुनियोंकी यह बातें सुन, मैंने अपने मनमें विचार किया, कि मुनियोंकी बात कदापि झूठी नहीं हो सकती, इस-लिये मैं चलकर यदि वह फल ले आऊँ, तो मेरे बापकी गयी जवानी फिर लौट आये और उनकी आँखें भी पहलेकी सी अच्छी हो जायें। हे सार्थेश! मैं इसी विचारसे इस फलको लेता आया हूँ। अब तो इसे आपही ले लीजिये, मैं दूसरा फल लाकर अपने माँ-बापको दूँगा।"

तोतेकी यह बात सुन, सेठने बड़े आग्रहसे उस फलको ले लिया। तोता फिर आसमानमें उड़ गया। इसके बाद सेठने अपने मनमें विचार किया,—"मैं यह फल क्यों खाऊँ? अच्छा हो, यदि मैं इसे किसी राजाको दे डालूँ, जिससे बहुतसे मनुष्योंका उपकार हो। पर यदि मैं इसे नहीं खाऊँ तो फिर क्या करूँ?" इसी तरह सोच विचार कर उसने उस आम्र-फलको अपने पास छिपाकर रख लिया।

कुछ ही दिनोंमें वह जहाज सामने वाले तटपर आ लगा। सेठका बालक जहाज़से नीचे उतरा और भेंट लिये हुए राजाके पास गया। और-और चीजोंके साथ-साथ उसने वह आम्र-फलभी राजाको भेंट किया। उसे देख, आश्चर्यके साथ राजाने पूछा,—"सेठजी! यह फल कैसा है?" यह सुन, उसने उस फलका पूरा-पूरा हाल कह सुनाया। सब कुछ

सुनकर राजाने सन्तुष्ट होकर उसका सारा कर माफ़ कर दिया। 'श्रीमानकी मेरे ऊपर अपार दया है', कहता हुआ सेठ अपने जहाज़ पर चला आया। इसके बाद अपने जहाज़के कुल सामान बेंच, नये सामानोंसे जहाज़ भर वह फिर समुद्रकी राह उसी गम्भीर नगरमें आ पहुँचा, जो कादम्बरी नामकी अटवीमें बसा हुआ था। वहीं वह सेठ सब लोगोंके साथ ठहर गया। रातके समय क़ाफ़िलेवाले व्यापारी मालको चारों ओरसे घेरकर सोये और एक-एक पहरकी बारीसे जागते हुए पहरा देने लगे। रातके पिछले पहर 'मारो-मारो' की आवाज़ लगाते हुए भीलोंने उनपर अकस्मात् धावा बोल दिया। उस समय सार्थवाह भी बख़्तर पहने वीरोंको साथ लिये हुए, उनसे लड़नेको तैयार हो गया। इसी समय सार्थेशके भाटने कहा,--"हे स्थिरचित्तवाले धनदत्त! तुम्हारी जय हो।" इसी समय भीलोंके सरदारने भाटके मुँहसे अपने पूर्वके उपकारी धनदत्तका नाम सुन, मन-ही-मन शङ्कित होकर, सब भीलोंको लड़ाई करनेसे रोक दिया और अपने हथियार नीचे डाल कर सार्थवाहसे मिलने आया। धनदत्तने भी उसे पहचानकर बड़ी ख़ातिरके साथ कहा,—"हे कृतज्ञ-शिरोमणि! कहो, कुशलसे हो न?" अब तो दोनों एक दूसरेके गले-गले मिले और एक साथ एकही आसन पर बैठ रहे। सार्थवाहने उसे पान वग़ैरह देकर सम्मानित किया। इसके बाद जब सार्थेशने उससे क्षेम-कुशल पूँछा, तब वह बार-बार अपनेको धिक्कार देता हुआ बोला,—"ओह! मैं अनजानतेमें कैसा बुरा काम करने जा रहा था! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और कृपाकर मेरे गाँवको चलिये।" यह कह, वह बड़े आग्रहके साथ सार्थवाहको सारे क़ाफ़िलेके साथ अपने गाँवमें ले आया। अनन्तर उसे अपने घरमें ले जाकर उसने सबको नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया और वस्त्रादिसे सम्मानितकर, मोती और हाथी-दाँतकी बनी अच्छी-अच्छी चीज़ोंको भेंट देकर सेठका भली भाँति सत्कार किया। सेठने भी उसे प्रेमभरे वचनोंसे सन्तुष्ट कर, उसकी दी हुई चीज़ें ले, उससे विदा माँगकर प्रस्थान किया

और सकुशल अपने नगरमें आ पहुँचा। इसके बाद उसने बड़ी धूमधामके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया और अपने उपार्जन किये हुए धनमेंसे सत्पात्रोंको दानकर बहुतसे दीनोंका उद्धार किया। बहुतसे पुण्य-स्थानोंकी मरम्मत करा, जिन-चैत्य बनवा, उनमें प्रतिमाओंकी स्थापना कर, तथा ऐसे ही अन्यान्य सैकड़ों सत्कर्म करके उसने अपने मनोवाञ्छित समस्त सुखोंको भोगना आरम्भ किया। एक दिन वहाँ क्रमशः विहार करते हुए कोई सूरि महाराज आ पधारे। उसी समय सेठ धनदत्त उनके पास जा पहुँचा और उनसे धर्मकी बातें सुन, वैराग्य पाकर, चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद उग्र तपस्या करके अपने समस्त कर्मोंका क्षय कर, उसने क्रमशः आपत्तिरहित मोक्ष-पद प्राप्त किया।

इधर उपर्युक्त राजाने आम्रफलको हाथमें लेकर विचार किया,—"इस एक ही आमके फलमें भला क्या गुण होगा? इस लिये यदि मैं इसके बहुतसे फल पैदा कराऊँ, तो बहुतोंका उपकार भी हो और बहुतसा गुण भी हो।" ऐसा विचार कर राजाने अपने सेवकोंसे कहा,—"इस आमको किसी अच्छे स्थानमें ले जाकर बोओ। जिसमें ख़ूब बड़ा आमका पेड़ लगे, ऐसा करो।" सेवकोंने उस फलको मनोरम नामक बाग़में ले जाकर बो दिया और उसके चारों तरफ़ आल-वाल बना कर नित्य उसे पानीसे सींचने लगे। कुछ दिनों बाद उसका अङ्कुर निकला। यह समाचार सुनकर राजाको बड़ी ख़ुशी हुई। समय पाकर उस वृक्षमें मोजरें लगीं और फल भी फले। तब राजाने रखवालोंको इनाम देकर कहा, कि तुम लोग उस वृक्षकी ख़ूब यत्नके साथ रक्षा करो। रखवाले रात-दिन वहीं रहते हुए उस पेड़की रखवाली करने लगे एक दिन दैवयोगसे उसका एक फल रातके समय आपसे आप टूट कर गिर पड़ा। रक्षकोंने सवेरा होतेही वह पका हुआ फल गिरा देखा और तत्काल उसे लिये हुए राजाके पास पहुँचे। राजाने उसे देखकर सोचा,—"यह नया फल किसी अच्छे सुपात्रको देना चाहिये।" ऐसा विचार कर, उसने चारों वेदोंके जाननेवाले देवशर्मा नामके एक ब्राह्मण-

को बुलवाकर बड़ीभक्तिके साथ वह अमृतफल उसे दिया। उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ वह आम्रफल घर ले जाकर देवताको चढ़ाकर खा लिया और तत्काल मर गया। जब राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ। उन्होंने कहा,—"ओह! मैं तो धर्म करने जाकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया। अवश्यही वह जहरीला फल मेरे किसी शत्रुने ही मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह धोखाधड़ीसे पहुँचवा दिया होगा। इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको आपही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जल्द हो सके, कटवा डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें।" बस, फिर क्या था? तुरतही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी। तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको जड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उस समय कोढ़ वग़ैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस विष-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीवनसे ऊबे हुए होनेके कारण सोचा, कि चलो उसी विषफलको खाकर ख़ुशी ख़ुशी इस संसारसे कूच कर जायें। यही सोचकर वे लोग वहाँ आये। उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अधपका फल—जोही जिसके हाथ आया, वही खा गया। किसीने पत्तेही चबाये, किसीके मोजरें ही मयस्सर हुईं। इसका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और अद्वितीय स्वरूपवाले हो गये। इस प्रकार उन कुष्ठादि रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके दिव्यरूपवाले हो जानेका हाल सुन,राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सोचा,—"ऐं! यह तो बड़ेही अचम्भेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, तो इसके फल खाकर लाभान्वित हुए और बेचारा वेद-वेदाङ्गमें निपुण ब्राह्मण मुफ्तही मारा गया।"

ऐसा विचार कर राजाने रखवालोंको बुलाकर पूछा,—"तुम लोग उस दिन वह फल पेडपरसे तोड़ लाये थे या ज़मीनपर गिरा देखकर उठा लाये थे?" उन्होंने सच-सच बयान कर दिया। यह सुन, राजाने

ने विचार किया,—"अवश्यही उस फलमें साँप या किसी और ज़हरीले जानवरका जहर असर कर गया होगा। इसीसे वह ब्राह्मण मर गया, नहीं तो यह अवश्यही अमृतफल था। मैंने बड़ी भारी बेवकूफ़ी की, जो बिना जाँचे-पूछे क्रोधमें आकर इस उत्तम वृक्षको कटवा डाला। शास्त्रमें ठीक ही कहा है, कि——

सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातं,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥ १॥"

*अर्थात्—"काम चाहे गुणका हो वा दुर्गुणका; पर पण्डितगण उसे करनेके पहले ख़ूब अच्छी तरहसे उसके परिणामका विचार कर लेते हैं; क्योंकि जल्दबाज़ीमें पड़कर जो काम किया जाता है, उसका पछतावा छातीमें छिदे हुए शूलकी तरह मरण-पर्यन्त हृदयमें दाह उत्पन्न करता रहता है।"*

यही सोच-सोचकर राजा जन्मभर पछताया किये। जैसा उन्होंने बिना सोचे-विचारे काम किया, वैसा कभी किसीको नहीं करना चाहिये।"

इसी तरह कहानी सुनाते-सुनाते उसने रातका दूसरा पहर बिता दिया और वत्सराजका पहरा ख़तम हो गया। उसके जानेपर उसका छोटा भाई फुल्लभराज आया। राजाने सोचा,—"वत्सराजने कथा तो बड़ीही मनोहर सुनायी, पर मेरा काम कुछ भी नहीं किया।"

अबके राजाने फुल्लभराजको पहरेपर आया देखकर उससे कहा,—"हे फुल्लभराज! क्या तुम मेरा एक काम कर दोगे?" उसने कहा,—"हाँ, ज़रूर करूँगा।" राजाने कहा,—"अच्छा, तो जाओ, अपने भाई देवराजका सिर काटकर मेरे पास ले आओ।" यह सुन, उसे भी बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। बाहर जा, कुछ देर विचार करनेके अनन्तर वह तुरतही लौट आया और राजासे बोला,—"अभी तो मेरे दोनों

भाई जगे हुए हैं, इसलिये मैं थोड़ी देर बाद आपका काम कर दूँगा। हे स्वामी! तबतक समय बितानेके लिये या तो आपही कोई कहानी सुनाइये, या मैं कहूँ और आप सुनें।" राजाने कहा,—"तुम्हीं कहो।" दुर्लभराजने कहा,—

"इसी भरतक्षेत्रमें एक पर्वतके ऊपर बसा हुआ राजपुर नामका नगर है। किसी ज़मानेमें वहाँ शत्रुदमन नामका राजा था। उनकी पटरानीका नाम रत्नमाला था। एक समय राजा अपनी सभामें बैठे हुए थे, कि इतनेमें प्रतिहारीने आकर ख़बर दी, कि द्वारपर एक बटुक (ब्राह्मण-बालक) आकर खड़ा है। राजाने उसे तुरत अपने पास बुलवा लिया। पहरेदार उस बालकको दरबारमें ले आया; पर चूंकि राजा राजकाजमें लगे हुए थे, इसलिए बटुक चुपचाप एक आसन पर बैठा रहा। इसके बाद राजा, दरबार बर्खास्त कर, श्रम दूर करनेके लिये अभ्यङ्ग-स्नान आदि कर, देवपूजा करनेके लिये एक सुन्दर स्थानमें आ बैठे। उस समय बटुकने देवपूजाके लिये राजाको फूल दिये। राजाने पूछा,—"हे भद्र! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?" उसने जवाब दिया,—"हे महाराज! मेरा हाल यों है, सुनिये। मैं अरिष्ट नामक नगरके यज्ञदत्त नामक ब्राह्मणका पुत्र हूँ। मेरा नाम शुभङ्कर है। मैं देश देशके कौतुक देखनेके लिये घरसे बाहर हुआ हूँ। घूमता-फिरता आज आपके पास आ पहुँचा हूँ।" यह सुन, राजाने उसे स्वभावका विनयी, मधुर-भाषी और सच्चरित्र समझकर अपने पास रख लिया। वह भी मजेसे वहाँ रहने लगा। कहा भी है —

> "शूरस्त्यागी प्रियालापी, कृतज्ञो दृढसौहृदः।
> विज्ञानी स्वामिभक्तश्च, स सर्वगुणमन्दिरम्॥"

*अर्थात्—"जो शूरवीर, त्यागी, मधुर-भाषी, कृतज्ञ, दृढ़ मित्रतावाला, विज्ञानी और स्वामीभक्त होता है, वह मानों सभी गुणोंसे भरा-पूरा होता है।"*

इसके बाद वह शुभङ्कर, राजाकी उदारताके कारण, अन्तःपुर आदि स्थानोंमें भी आने-जाने लगा। एक दिन उस नगरके पास एक सिंह कहींसे चला आया, एक व्याधने आकर इसकी सूचना राजाको दी।

यह सुनते ही राजाने उसी समय चतुरंगिणी सेना, और शुभङ्कर बटुकको साथ ले, उसी समय उस सिंहको मार गिरानेके लिये नगरसे प्रस्थान किया। व्याधके बतलाये हुए रास्तेसे चलकर राजा उसी उद्यानमें चले आये, जहाँ वह सिंह मौजूद था। वनके बाहरही सारी सेनाको छोड़कर, राजा एक हाथी पर सवार हो, शुभङ्करको अपने आगे बैठाये हुए सिंहके पास आये। यह देख, वह सिंह, मुँह बाये, उछलकर राजाके पास पहुँचनेके इरादेसे आसमानमें उड़ा। उस समय यह सोचकर, कि कहीं यह सिंह मेरे स्वामीपर हमला न कर बैठे, शुभङ्करने उस सिंहके पास पहुँचते-न-पहुँचते उसके मुँहमें बर्छा डालकर उसे मार गिराया। यह देख, राजाने कहा,—"शुभङ्कर! तुमने यह बड़ा बुरा काम किया। यह सिंह मेरा शिकार था, तुमने जल्दबाजी के मारे इसे बीचमें ही मार डाला। बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है, कि तुमने इस सिंहको मार गिराया है, बल्कि सब राजाओंके बीच मेरा जो यश छाया हुआ था, उसे भी तुमने छीन लिया।" यह सुन, बटुकने कहा,—"हे देव! मैंने यही सोचकर इस सिंहको मार डाला, कि कहीं आपके शरीरको इसके द्वारा पीड़ा न पहुँचे। मैंने कुछ अपनी बड़ाईके लिये आपके हाथसे शिकारको नहीं छीना। मैंने जो इसे मारा है, वह भी आपके ही प्रतापसे, नहीं तो महज बर्छेकी चोटसे कहीं सिंह मारा जाता है? लीजिये, मैं सब सैनिकोंसे यही कहूँगा, कि राजाने इस मृगेन्द्रको मारा है। हे स्वामी! आप इस मामलेमें मेरे ऊपर क्रोध न करें। इस बातको सिर्फ़ हमीं दोनों जानते हैं, तीसरे किसीको इसकी ख़बर नहीं है। चार कानोंकी बातका भण्डा नहीं फूटता। कहा भी है,—

"षट्कर्णो भिद्यते मंत्र-श्चतुष्कर्णो न भिद्यते।
द्विकर्णस्य च मन्त्रस्य, ब्रह्माऽप्यन्तं न गच्छति॥ १॥"

अर्थात्---"छः कानोंमें पड़े हुए मन्त्रका भेद खुल जाता है; पर चार कानोंवाली बातका भेद छिपा रहता है और दो कानोंवाले मन्त्रका भेद तो ब्रह्मा भी नहीं जान पाते।"

यह सुन, राजाने कहा,—"हे शुभङ्कर! यदि इस बातका भण्डा फूटा तो मै संसारमें झूठा कहलाऊँगा और मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी।" शुभङ्करने कहा,—"हे प्रभु! क्या आपने यह नहीं सुना है, कि सत्पुरुषोंके पेटकी बात उनके साथ ही चितापर जल जाती है।" यह सुनकर राजाको दिलजमई हुई और वे शुभङ्करके साथ अपनी सेनामें चले आये। वहाँ पहुँचकर शुभङ्करने इस प्रकार अपने प्रभुका प्रताप वर्णन करना आरम्भ किया,—"ओह! जिसके नादसे मदोन्मत्त हाथीका भी मद उतर जाता है, उस सिंहको मेरे स्वामीने किस तरह खिलौनेके समान मार गिराया।" यह सुनकर, सामन्तों और माण्डलिक राजाओंको आश्चर्यके साथ-साथ आनन्द भी हुआ। इसके बाद खूब बाजे-गाजेके साथ, बड़ी धूम-धामसे राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया। जहाँ-तहाँ लोग इकट्ठे होकर राजाके बल-विक्रमकी बड़ाई करने लगे। वह महोत्सवमय-दिवस क्षणकी तरह देखते-देखते बीत गया। जब राजा सभा-विसर्जन कर, रानीके महलमें आये, तब उन्होंने पूछा,—"स्वामी! आज नगरमें ऐसी चहल-पहल किस लिये है? क्योंकि बार-बार बाजे बजनेका शब्द सुनाई दे रहा है।" इसपर राजाने कहा,—"आज मैंने एक सिंहका शिकार किया है, उसीकी बधाईमें नगरके लोग उत्सव कर रहे हैं।" यह सुन, रानीने फिर कहा,—"हे नाथ! उत्तम वंशमें जन्म ग्रहण करके भी अपनी झूठी प्रशंसा कराते हुए आपको लज्जा नहीं आती?" राजाने कहा,—"झूठी प्रशंसा कैसे है?" रानीने कहा,—"सिंह तो मारा शुभङ्करने और आपको बधाई मिल रही है। यह कैसी बात है?" यह सुन, मन-ही-मन क्रोधित होकर राजाने सोचा,—

"उस दुरात्माने मुझसे तो ऐसा कहा, कि मैं यह गुप्त बात किसीसे न कहूँगा और इधर आजके आजही रानीके पास आकर अपनी बड़ाई हाँक गया। इसलिये इस रहस्यका भेद कहनेवाले इस बटुकको किसी तरह गुप्त रीतिसे मरवा डालनाही ठीक है।" यही सोचकर राजाने एक सिपाहीको हुक्म दिया, कि इस बटुकको गुप्त रीतिसे मार डालो। राजाके आज्ञानुसार उसने बटुकको तत्काल मार डाला और राजासे आकर कहा, कि मैंने आपके हुक्मकी तामील कर डाली। यह सुन, राजा बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन रानीने राजासे पूछा,—"स्वामिन्! आज वह बटुक आपके साथ नहीं दिखाई देता। वह कहाँ गया?" राजाने कहा,—"प्रिये! तुम उस दुष्टका नाम भी न लो।" रानीने कहा,—"स्वामी! उसने आपका क्या बिगाड़ा है? वह तो बड़ाही गुणी और कौतुकी है।" तब राजाने उसका सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। सब सुनकर रानीने कहा,—"नाथ! सिंहके मारनेकी बात उस बेचारेने मुझसे नहीं कही थी। मैंने तो स्वयंही अपने महलके सातवें खण्ड-पर बैठकर तमाशा देखते-देखते वह हाल अपनी आँखों देखा था। इस मामलेमें उस बेचारेका कुछ भी अपराध नहीं है।" इतना कह रानीने फिर पूछा,—"स्वामी! सच कहिये वह जीता है या मर गया?" यह सुन, राजाने बड़े अफसोसके साथ कहा,—"रानी! मुझसे तो बड़ा भारी पाप हो गया। मैंने तो उस गुण-रत्नोंके समुद्रको मरवा डाला।" इस प्रकार राजाने बड़ी देरतक उसके लिये शोक मनाया और मन-ही-मन दुःखी हुए; पर अब क्या हो सकता था? बेचारा बटुक तो चल बसा! इसलिये जो कोई बिना विचारे काम करता है, वह बड़े पाप बटोरता है, और दुनियांमें उसकी बदनामी भी खूब होती है।"

दुर्लभराजके कथा सुनाते-सुनाते रातका तीसरा पहर बीत गया वह वहाँसे उठकर अपने डेरेपर चला आया और उसकी जगहपर उसका चौथा भाई कीर्त्तिराज आ पहुँचा। राजाने उससे भी कहा,—"हे कीर्त्तिराज! क्या तुमसे मेरा एक काम हो सकेगा?" उसने कहा,—

"स्वामी! यदि मैं आपका कामही न कर सका, तो फिर आपका सेवक किसलिये कहलाया?" तब राजाने कहा,—"हे कीर्त्तिराज! यदि तुम मेरे सच्चे सेवक हो, तो अपने भाई देवराजका सिर उतार लाओ। यह सुन, "बहुत अच्छा," कह कर वह राजमन्दिरसे बाहर हुआ और कुछ देर तक टालमटोल कर, लौट आया। तदनन्तर उस धीर पुरुषने राजासे कहा "हे नाथ! रात बीत चली है, इसलिये सभी पहरेदारोंके साथ-साथ मेरे-तीनों भाई भी जगे हुए हैं। इसलिये मैं मौक़ा पाकर किसी और समय आपका काम कर दूँगा।" यह कह उसने भी समय बितानेके इरादेसे राजाको एक कथा सुनायी। वह इस प्रकार है,—

"इसी भरतक्षेत्रमें महापुर नामक नगरमें शत्रुञ्जय नामके एक राजा रहते थे। उनकी रानीका नाम प्रियङ्गु था। एक बार किसी विदेशीने राजाको एक अच्छी नसलका घोड़ा भेंटमें दिया। उस घोड़ेको देखकर राजाने विचार किया,—"रूपसे तो यह घोड़ा बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है; परन्तु इसकी चाल कैसी है, यह भी देखना चाहिये। कहा है, कि—

"जवोश्वशक्तेः परमं विभूषणं त्रपांगनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्यैव मुनेरपि क्षमा, पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनाम्॥ १॥"

*अर्थात्—"अश्वकी शक्तिका श्रेष्ठ भूषण उसकी चाल है, स्त्रीका भूषण लज्जा है। तपस्वीका भूषण कृशता (दुर्बलता) है, ब्राह्मणका भूषण विद्या है। मुनिका भूषण क्षमा है। शस्त्रके बलसे जीविका-उपार्जन करनेवालोंका भूषण पराक्रम है।"*

ऐसा विचार कर, राजाने उस घोड़ेकी पीठपर ज़ीन कसवाया और उस पर सवार हो, उसकी चाल देखनेकी इच्छासे उसे चलाया। तुरतही वह घोड़ा हवासे बातें करता हुआ ऐसा दौड़ा, कि सारी सेना पीछे रह गयी। घोड़े पर सवार राजा सबकी आँखोंके परे हो गये। उस समय उस घोड़ेके व्यापारीने सामन्तोंसे कहा,— "मैं उस समय यह कहना भूल गया था, कि इस घोड़ेको विपरीत शिक्षा दी गयी है।"

यह सुन, राजाके सेवक तेज़ घोड़ोंपर सवार हो, भोजन और पानी साथ लिये हुए, राजाके पीछे-पीछे दौड़े। इधर राजा, उस घोड़ेकी चालको अच्छी तरह मालूम कर, उसे रोकनेके लिये ज्यों-ज्यों लगाम खींचने लगे, त्यों-त्यों वह और भी अधिक वेगसे चलने लगा। इस तरह उलटी शिक्षा पाये हुए उस घोढेने बड़ी दूरकी मंज़िल मारी। लगाम खींचते-खींचते राजाके हाथसे खून निकल पड़ा, पर वह खड़ा नहीं हुआ। इसके बाद जब राजाने थक कर उसकी लगाम ढीली कर दी, तब वह आपसे आप खड़ा हो गया। अब राजाको मालूम हो गया, कि इस घोड़ेको उलटी शिक्षा मिली है। इसके बाद राजाने घोड़े से नीचे उतर, उसके ज़ीन-साज़ उतार दिये। इतनेमें आँतें निकल पड़नेके कारण वह घोड़ा तत्काल पृथ्वी पर गिरकर मर गया। तद्नन्तर उस भयंकर वनमें, जो दावाग्निसे जल रहा था, वे राजा भूख और प्यासके मारे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगे। इतनेमें राजाने उस जंगलमें एक लम्बी-लम्बी शाखाओंवाले बढे भारी वट-वृक्षको देखा। थके-मांदे होनेके कारण राजा उस बडके नीचे जाकर छायामें बैठ रहे। इसके बाद पानीकी तलाशमें चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए उन्होंने देखा, कि उसी वृक्षकी एक शाखापरसे पानीकी बूँदे टपक रही हैं। यह देखकर राजाने अपने मनमें विचार किया—"इस वृक्षके खखोडरमें बरसातका जल जमा है। वही इस समय गिर रहा है।" ऐसा विचार कर, खदिर-वृक्षके पत्तोंका प्यालासा बनाकर, प्याससे मरे जाते हुए राजाने उस पानीको नीचे गिराना शुरू किया। क्रमशः वह पत्तोंका प्याला श्याम-जलसे लबालब भर गया। उसे हाथमें लिये हुए राजाने ज्योंही उसका जल पीना चाहा, त्योंही एक पक्षीने वृक्षसे नीचे आकर उनके हाथसे वह प्याला नीचे गिरा दिया और फिर वृक्षकी डालपर जा बैठा। यह देख, मन-ही-मन क्रोधित हो, राजाने फिर उसी तरह एक पात्रमें जल भर कर उसे पीना चाहा। इतनेमें फिर उस पक्षीने आकर वह पात्र उसी तरह नीचे गिरा दिया। तब बड़े क्रोधित होकर

राजाने अपने मनमें विचार किया,— "अबकी बार यदि वह दुष्ट पक्षी फिर आया, तो मैं उसे मारकर ढेर कर दूंगा।" इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा। यह देख, उस पक्षीने सोचा,— "यह राजा क्रोधमें आ गया है। इसलिये यदि मैं इस बार इसके हाथसे जल नीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा। और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा। अतएव मैं भले ही मर जाऊँ; पर इस राजाको तो जिला ही देना अच्छा है।" ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पत्र-पुट नीचे गिरा दिया। राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली। इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चित्तसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया। इसबार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा। यह देख, विस्मित हो, राजाने उचक कर पेड़ पर चढ़कर देखा, कि उस पेड़के खखोडरमें एक अजगर सोया हुआ है। यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,— "अरे! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए अजगरके मुँहसे निकलता हुआ विष है। इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता। ओह! उस पक्षीने मुझे बार-बार मने किया; पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा। हा! मेरीही मूर्खतासे वह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया।" राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद राजा भोजन कर, जलपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें चले आये। वहाँ नगरके बाहरही एक बग़ीचेमें उस पक्षीका चन्दनकी लकड़ियोंसे शव-संस्कार करा, राजाने उसे जलांजलि दी और अपने घर आकर शोक मनाने लगे। यह देख, सब मन्त्रियों और सामन्तों आदिने उनसे पूछा,—"हे नाथ! आपने इस पक्षीका मरण संस्कार किस लिये किया?" यह सुन, राजाने सारा हाल अपने आदमियों

अरे ! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए अजगरके मुँहसे निकलता हुआ विष है। इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता। (पृष्ठ १५६)

को सुना दिया। सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने कहा,—मैं उस पक्षीको इस ज़िन्दगीमें कभी न भूलूँगा।" यह सुन, सचिवों और सामन्तोंने कहा,— "हे स्वामिन्! जो मर गया, उसके लिये शोक करना ठीक नहीं।" पर उनके लाख समझाने पर भी राजाका खेद दूर नहीं हुआ। जैसे बिना विचारे काम करनेसे पछतावा उस राजाको हुआ, वैसे ही सहसा, बिना परिणामका विचार किये, कार्य करनेसे औरोंको भी इस लोक तथा परलोकमें पराभव प्राप्त होता है। अतएव श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये, कि विचार कर ही कोई कार्य करें।"

ज्योंही कीर्त्तिराजकी यह कहानी पूरी हुई, त्योंही बाजेवाले भैरवी की तानें छेड़ने लगे। बन्दीजन मङ्गल-पाठ पढ़ने लगे। कीर्त्तिराज भी वहाँसे उठकर अपने स्थानपर चला गया। राजाने सोचा,—"ये सब भाई एक दिल मालूम होते हैं। इनसे मेरा काम नहीं बननेका।" ऐसा विचार कर, उन्होंने दासीके लाये हुए जलसे मुँह धोया, अच्छे वस्त्र बदले और राज सभामें आकर बैठ रहे। इसी समय देव राजाने वहाँ आ, हाथ जोड़े हुए हँसते-हँसते कहा,— "मैं इस समय श्रीमान्‌से एक ऐसी बात कहना चाहता हूँ, जिसकी आपको बिलकुल खबर नहीं है। यह सुन, क्रोधमें आये हुए राजाने भौंहोंके इशारेसे उसे वह बात कह सुनानेकी आज्ञा दी। तदनुसार देवराजने पिशाचकी बाते सुननेसे शुरूसे लेकर अन्ततककी सारी बातें, जो भय और आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थीं, कह सुनायीं। इसके बाद उसने विश्वासके लिये राजाके शयन-मन्दिरसे टुकड़े किये हुए साँपको मंगवाकर उनको प्रत्यक्ष दिखला दिया। यह देख, देवराजके ऊपरसे राजाका क्रोध उतर गया और वे मन-ही-मन सोचने लगे, "ओह! इस महात्माने तो मेरे प्राण बचानेके लिये ऐसा जान-जोखिमका काम कर डाला और मैं ऐसा पापी हूँ, कि ऐसे परोपकारी और पुरुष-श्रेष्ठ देवराजको बिना विचारे मार डालनेकी धुनमें था। इस लिये कहानियाँ कहनेमें कुशल वत्सराज आदिने

जो इसे नहीं मारा, वह बहुत ही अच्छा काम किया।" इसके बाद आनन्दित होकर राजाने सारी सभाके सामने ही कहा,—"इन चारों भाइयोंमें सब गुण भरे हुए हैं। मुझ निपूतेको मेरे कुलदेवताने मानों चार पुत्र ही दे दिये हैं। इस लिये मैं देवराजको गद्दीपर बैठाकर वत्सराजको युवराज बनाये देता हूँ और आप दीक्षा लेने जाता हूँ।" यह सुन, राजाके परिवारवालोंने कहा,—"महाराज! कुछ दिन और ठहर जाइये, फिर जैसी इच्छाहो, वैसा कीजियेगा।" राजाने कहा,—"मेरे पूर्वजोंने भी बाल पकनेके पहले ही व्रत अंगीकार कर तपस्या करते हुए सद्गति पायी है; परन्तु राज्यधुराको धारण करनेवाला कोई न होनेके कारण मैं अबतक संसारमें फँसा रह गया, इस लिये अब तो मैं अपना यह मनोरथ अवश्य ही पूरा करूँगा।" यह कह, राजाने ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्त्तमें देवराजको राज्यका भार सौंप दिया और वत्सराजको युवराजकी पदवी प्रदान की।

इसके बाद एक दिन नगरके बाहर नन्दन नामक उद्यानमें श्रीदत्त नामके सूरि बहुतसे परिवार साथ लिये हुए आ पहुँचे। उसी समय उद्यानके रक्षकोंने राजाके पास आकर उन्हें गुरुके आगमनका समाचार कह सुनाया। यह सुनते ही राजा बड़ी भक्तिके साथ वहाँ गये और गुरुको प्रणाम कर यथा स्थान बैठकर सद्धर्म-देशना सुनने लगे। इसके बाद उन्होंने अवसर पाकर दोनों हाथ जोड़े हुए पूछा,—"हे प्रभो! पिशाचने जिस प्रकार मेरी मृत्यु होना बतलाया था, उस प्रकार मेरी मृत्यु क्यों नहीं हुई? देवकी कही हुई बात क्यों झूठी हो गयी?" यह सुन, सूरि महाराजने कहा,—"हे राजन्! वह कथा सुनो:—

"वैश्य-वंशमें उत्पन्न गौरी नामकी जो तुम्हारी सुन्दरी स्त्री थी, वह दुर्भाग्यवश किसी कर्मके दोषसे दूषित हो गयी और तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं सुहाने लगी। उसे देखते ही तुम्हें कुढ़न पैदा होती थी, इसीलिये वह उदास होकर पीहर चली गयी और वहीं रहने लगी। वहाँ अज्ञान-तपसे अपने शरीरको घुला-घुलाकर वह मर गयी और

व्यंतरी ( प्रेतिनी ) हो गयी। इसके बाद अपना पुराना वैर यादकर वह सर्पके शरीरमें पैठी और तुम्हारे शयन-मन्दिरमें चली आयी। तुम्हारी कुलदेवीने पिशाचका रुप धारण कर तुम्हारे कल्याणके लिये यह सारा वृत्तान्त देवराजको सुना दिया। यद्यपि देवशक्तिका मनुष्यको पता नहीं लगता, तथापि भाग्यवान् पुरुषोंका तेज (पराक्रम) उस शक्तिका उल्लंघन कर सकता है। इसी लिये क्रूर प्रेतिनीका आश्रय बने हुए उस साँपको भी बलवान् देवराजने बडी आसानीसे मार डाला।"

यह सारा वृत्तान्त सुन, राजाने फिर सूरिको प्रणामकर कहा,—"हे प्रभो! चूँकि मैंने बड़े भाग्यसे इस कष्टसे छुटकारा पाया है, इस लिये मुझे अब पुण्य-कार्य करने चाहिये।" यह कह, उन्होंने बड़ी धुम धामसे सूरि-महाराजसे चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद उन्होंने प्रति बोधके निमित्त श्री संघके समान ही उन्हीं गुरुके मुँहसे ज्ञाता-धर्म कथा नामक सिद्धान्तमें कहा हुआ मनोहर भावी कथानक सुनाया, जो इस प्रकार है:—

"मागध देशकी राजगृह नामकी नगरीमें धन नामका एक सेठ रहता था। जिसकी समृद्धि कुबेरके ही समान थी। उसकी पत्नीका नाम धरणी था। उसके गर्भसे उसके क्रमशः चार पुत्र हुए, जिनके नाम धनपाल, धनदेव, धनपति और धनरक्षित थे। उनकी शादी क्रमसे ऊज्झिका, भोगिका, धन्निका और रोहिणी नामकी चार स्त्रियोंसे हुई थी। एक दिन सेठने रातके पिछले पहर सोकर उठने पर विचार किया,—"इन चारों बहुओंमें से कौन घरका काम काज चलानेमें समर्थ है, उसे ढूँढ़ निकालना चाहिये। बड़े-बड़े शास्त्रवेत्ता कह गये हैं, कि पुरुष चाहे लाख गुणोंका आधार हो; पर गृहिणीकी ही बदौलत घर चलता है। कहा भी है, कि—

"भुंक्ते गृहजने भुंक्ते, सुप्ते स्वपिति तत्र या।
जागर्ति प्रथमं चास्मात्, सा गृहश्री र्न गेहिनी ॥१॥"

*अर्थात्—"जो घरवालोंके खा-पी चुकने पर खाती है, उनके*

*सो जाने पर सोती है, उनके सोकर उठनेके पहलेही जग जाती है, वह गृहिणी नहीं, गृह-लक्ष्मी है।*

इसीलिये सेठने विचार किया, कि इन चारों बहुओंमें कौन घरका भार सम्हालने योग्य है, इसकी परीक्षा लूँ, तो ठीक समझमें आ जाये। इसके बाद सवेरा होते ही सेठने रसोयोंको हुक्म दिया, कि आज सबसे बढ़िया रसोई बनाओ। यह कह, उसने अपने सभी स्वजनों और पुरजनोंको न्योता देकर अपने घर जिमाया। इसके बाद उसने सब स्वजनादिकको वस्त्र, ताम्बूल आदिसे सम्मानित कर उन लोगोंके सामने ही पाँच शालि-कण लेकर बड़ी बहूको देते हुए कहा,—"बेटी! मैं तुझे ये पाँच शालि-कण देता हूँ। जब मैं माँगू, तब फिर मुझे दे देना।" यह कह उसने बहूको बिदा कर दिया। उसने बाहर आतेही विचार किया,—"मेरे ससुरका सिर बुढ़ापेके कारण फिर गया मालूम पडता है, तभी तो इसने इतने आदमियोंको इकट्ठा कर मुझे पाँच चाँवलके दाने दिये। अब मैं इन्हें कहाँ छिपा रखूँ? अच्छा, जब वह माँगेगा, तब मैं दूसरे पाँच चावल लेकर दे दूँगी।" यही सोचकर उसने वे पाँचों दाने फेंक दिये। इसके बाद सेठने दूसरी बहूको भी इसी तरह बुलवा कर पाँच दाने शालि-धानके दिये। उसने भी अपने मनमें विचार किया,—"अब मैं इन चाँवलोंको कहाँ उठा रखूँ। जब वे माँगेंगे, तब दूसरे चाँवलके दाने दे दूँगी। पर इन्हें भी क्यों फेकूं?" यह सोचकर उसने मुँह खोल कर उन दानोंको चबा लिया। इसी प्रकार सेठने तीसरी और चौथी बहूको भी चावलके दाने दिये। तीसरीने तो उन्हें एक अच्छे से वस्त्रमें बाँधकर जवाहरातके डब्बेमें रख दिया और चौथीने अपने भाइयोंको बुलाकर दे दिया। उसके भाइयोंने उसके कहे अनुसार उन दानोंको बरसातके दिनोंमें बो दिया। क्रमसे उन दानोंके बहुतसे दाने हुए। दूसरे वर्ष वे फिर बोये गये। अबके पहले से भी अधिक चाँवल उपजे। इसी तरह क्रमसे पाँच वर्षतक बोये जानेपर उन्हीं पाँच कणोंके हज़ारों

मन धान हुए। पाँचवें साल उस सेठने फिर अपने बन्धुओंको न्योता देकर बुलाया और खिलाया-पिलाया। इसके बाद उसने फिर सबके सामने ही अपनी बड़ी बहूको बुलाकर अपने दिये हुए वे पाँचों दाने वापिस माँगे। इसपर उसने दूसरे पाँच दाने लाकर सेठके हवाले किये। सेठने कहा,—"ये तो मेरे दिये हुए दाने नहीं हैं।" यह कह, उसने जब बड़े आग्रहसे सौगन्द देकर पूछा, तब उसने सच सच बयान कर दिया। यह सुन, सेठने बड़े गुस्सेके साथ कहा,—"चूँकि तुमने मेरे दिये हुए धान फेंक दिये हैं, इस लिये गोबर, राख और कूड़ा-कतवार फेंकना ही तुम्हारे लिये उचित कर्म है। इसलिये तुम आजसे यही काम किया करो।" इसके बाद उसने दूसरीको बुलाकर उससे भी दाने माँगे, उसने भी दूसरे ही दाने लाकर दिये। जब उसने बदले हुए दाने देखकर उससे बहुत खोद-विनोद कर पूछा, तब उसने भी सच-सच कह दिया, कि मैं तो उन्हें खा गयी। यह सुन, सेठने उसे रसोई बनानेका भार सौंपा। इसके बाद जब तीसरीकी बारी आयी, तब वह अपने गहनोंके डब्बेमेंसे वही पुराने चाँवल निकाल लायी। यह बात मालूम होनेपर सेठने उसे सर्व-सारभूत वस्तुओंके भण्डारका अधिकार दे डाला। अबके चौथीका नम्बर आया। उसने शालिकी खेतीके द्वारा बेहिसाब बढ़ा दिया था, इसलिये उससे जब दाने माँगे गये, तब उसने गाड़ियाँ मँगवानेको कहा। उसकी ऐसी बुद्धिमानी तथा चतुराई देख, सेठने उसीको घरकी मालिकिन बनाया। इस प्रकार चारों बहुओंको उनकी योग्यतानुसार कार्योंमें नियुक्त कर वह सेठ निश्चिन्त हो गया और धर्म-कार्यमें तत्पर हो गया।

"इस कथाको अपने अन्तरङ्ग पर इस तरह घटाना चाहिये। उस सेठके स्थानपर अपने गुरुको जानना, दीक्षित साधुओंको बहुओंके स्थानपर जानना, पाँच दानोंके स्थानपर पाँचों महाव्रतोंको समझना और चतुर्विध संघको स्वजनोंका एकत्र होना मान लेना। गुरुने श्री-संघके सामने शिष्योंको पाँच महाव्रत दिये। उनमें कितने शिष्योंने तो

पहली बहूकी तरह व्रतको त्याग दिया और इस लोक तथा परलोकमें बड़े-बड़े दुःख उठाये । कितनोंहीने जीविकाके लिये वेश बना लिया। इन्हें दूसरी बहूकी तरह समझना । कितनोंने स्वयं तो व्रतका पालन किया, पर औरोंको उपदेश देकर उसी तरह धर्ममें प्रवृत्त नहीं किया। इन्हें तीसरी बहूके समान जानना । और कितनेहीव्रत ग्रहण कर उनका स्वयं पालन करते हैं और अन्य अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध देकर उनसे भी व्रत-पालन कराते हैं । इन्हें चौथी बहूके समान जानना । इस लिये हे राजर्षि ! तुम भी चौथी बहूकी तरह व्रतका विस्तार करनेवाले बनो । यह कथानक श्रीमहावीर स्वामीके शासनमें हुआ है । ”

इस प्रकार कथा सुनाकर श्रीदत्त गुरुने राजर्षिको संयममें विशेष निश्चल कर दिया। इसके बाद राजर्षि संयमका पालन करते हुए क्रमशः सद्गतिको प्राप्त हुए ।

श्रीक्षेमङ्कर जिनेन्द्रके कहे हुए अहिंसादिक धर्मको परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये । इनमें धर्मका पहला लक्षण है प्राणि-दया, दूसरा सत्यवादिता, तीसरा अदत्तका त्याग, चौथा ब्रह्मचर्यका पालन और पाँचवाँ नौ प्रकारके परिग्रहका परित्याग । इन पाँचों धर्म-लक्षणोंको जानकर हे भव्यजीवो ! तुम निरन्तर धर्म-कर्ममें अपनी चेष्टा रखो । ” श्रीक्षेमङ्कर जिनेन्द्रकी यह देशना सुनकर बहुतसे भव्य प्राणियोंने प्रतिबोध प्राप्त किया । श्रीजिनेश्वरने पहले गणधरों तथा चतुर्विध संघकी स्थापना की और इसके बाद वज्रायुध राजाने श्रावक-धर्म अङ्गीकार कर, प्रभुको प्रणाम कर, अपनी पुरीकी राहली ।

एक दिन वज्रायुध राजाके पुण्यके प्रभावसे हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित अति निर्मल चक्ररत्न उनकी अस्त्रशालामें उत्पन्न हुआ । राजाने अष्टाह्निका-महोत्सव करके उसकी पूजा और आराधना की । तब वह अस्त्रशालासे निकल कर आसमानमें उड़ चला । उसके पीछे-पीछे वज्रायुध भी अपनी सेना सहित चल पड़े और उन्होंने क्रमशः मङ्गलावती-विजयके छः खण्ड जीत लिये । इसके बाद वे अपनी नगरीमें आकर

अपनेको चक्रवर्ती कहने लगे। इसके सिवा उन्होंने सहस्रायुध नामक पुत्रको युवराजकी पदवी प्रदान की।

एक दिन चक्रवर्ती राजा वज्रायुध राजाओं, मन्त्रियों और सामंतों आदिके साथ सभामें बैठे हुए थे, इतनेमें एक युवा विद्याधर काँपता हुआ आसमानसे नीचे उतरा और वज्रायुधकी शरणमें आया। उसके बादही ढाल-तलवार हाथमें लिये हुई एक विद्याधरी और गदा हाथमें लिये हुए एक विद्याधर भी आ पहुँचा। ज्योंही इस पीछेवाले विद्याधरने पहलेवाले विद्याधरको देखा, त्योंही चक्रवर्त्तीसे निवेदन किया,—"हे महाराज! अपनी शरणमें आये हुए इस पापीका हाल सुनिये। सुकच्छ नामक विजयमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर शुक्रा नामकी पुरी है। उसमें शुक्रदत्त नामके राजा राज्य करते थे। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। मेरा नाम पवनवेग है। मेरी स्त्रीका नाम सुकान्ता है। उसीके गर्भसे उत्पन्न यह मेरी लड़की है, जिसका नाम शान्तिमती है। एक बार मैंने अपनी लड़कीको प्रज्ञप्ति नामकी विद्या प्रदान की। उसी विद्याको सिद्ध करनेके लिये यह मणि-सागर नामक पर्वतके ऊपर गयी हुई थी। वहीं पर विद्याकी साधनामें लगी हुई मेरी इस पुत्रीको इस विद्याधरने उड़ा लिया। इसी बीच इसकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर वह विद्या इसको सिद्ध हो गयी थी, उसीके भयसे यह दुष्ट भागा हुआ आपकी शरणमें आया है। जब मैं उस पर्वतपर अपनी पुत्रीका हाल-चाल लेनेके लिये गया, तब इसे वहाँ न देखकर मैं भी इन दोनोंका पीछा करता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। इसलिये हे राजन्! आप इस दुष्टको, जो मेरी पुत्रीका शील भङ्ग करना चाहता है, छोड़ दीजिये, तो मैं इसे एक ही गदामें साफ़ कर डालूँ।" यह सुन, वज्रायुध राजाने अवधि-ज्ञानके द्वारा उसके पूर्व भवका वृत्तान्त मालूम कर, उसको समझानेके लिये कहा,—"हे पवनवेग! जिस कारणसे इस विद्याधरने तुम्हारी पुत्रीका हरण किया है, उसे सुनो।" यह कह चक्रवर्त्तीने कहना शुरू किया और सभी सभासद अपने स्वामीके इस ज्ञान-माहात्म्यको देख,

आश्चर्यमें आकर बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनने लगे। चक्रवर्तीने कहा,—

"इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत-क्षेत्रमे वन्ध्यपुर नामका एक नगर है। उसमें वन्ध्यदत्त नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम सुलक्षणा था, जिसके गर्भसे उत्पन्न नलिनीकेतु नामका एक पुत्र भी था। उसी नगरमें धर्म-मित्र नामका एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और उसीके गर्भसे उत्पन्न दत्त नामका एक पुत्र भी उसके था। उस लड़केकी स्त्री प्रभङ्करा बड़ी ही मनोहर रूपवती थी। एक दिन वसन्त-ऋतुमें वही दत्त नामका वणिक्-पुत्र अपनी भार्याके साथ क्रीड़ा करनेके इरादेसे बग़ीचेमें गया। वहीं राजकुमार नलिनीकेतु भी क्रीड़ा करनेके लिये आ पहुँचे। राजकुमार उस परमा सुन्दरी प्रभङ्कराको देखतेही कामातुर हो गये। फिर क्या था? ऐश्वर्य और यौवनके मदसे चूर राजकुमारने अपने कुल और शीलमें कलङ्क लगानेका कुछ भी विचार न कर, उस स्त्रीका हरण किया और उसके साथ मनमानी मौज उड़ाने लगे। एक दिन दत्त अपनी स्त्रीके विरहसे व्याकुल होकर उद्यानमें आया। वहाँ उसने सुमन नामके एक साधुको देखा। उसको तत्काल केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था, इसलिये बहुतसे देव, दानव और मनुष्य उनकी वन्दना करनेके निमित्त आये हुए थे। केवलीको देखकर दत्तने भी शुद्ध भावसे उनकी वन्दना की। उस समय केवलीने दत्तको धर्मदेशना सुनायी। सुनकर उसे प्रतिबोध हुआ और उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह दान-पुण्य आदि करता हुआ, आयु पूरी होनेपर, मृत्युको प्राप्त हुआ और सुकच्छ-विजयके वैताढ्य-पर्वत पर महेन्द्रविक्रम नामक विद्याधरोंके राजाका पुत्र अजितसेन हुआ। उसकी स्त्रीका नाम कमला था। इधर राजकुमार नलिनीकेतु पिताका राज्य पाकर प्रभंकराके साथ गृहधर्मका पालन करने लगे। एक दिन अपने महलकी सातवीं मंजिल पर बैठे हुए उन्होंने आसमानको पँच रंगे बादलोंसे घिरता हुआ पाया। थोड़ीही देर

बाद ज़ोरकी हवा चली और सारे बादल टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गये। यह देख, उन्हें तत्काल वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने विचार किया,— "इस संसारमें धन, यौवन आदि सभी वस्तुएँ इन्ही बादलों की तरह चंचल हैं। मैंने अज्ञानतासे परायी स्त्रीका हरणकर, क्षण भर के सुख के लिये, बहुत बड़ा पाप कमाया। अतएव अब मैं प्रव्रज्या अङ्गीकारकरूँ और तप-नियम रूपी जलसे पापरूपी मैलको धोकर अपनी आत्माको निर्मल कर लूँ, तो ठीक हो।" इस प्रकार विचार कर राजा नलिनीकेतुने अपने पुत्रको राज्य पर बैठाकर राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और क्षेमङ्कर जिनेश्वरके पास जाकर प्रव्रज्या अङ्गीकार करली। इसके बाद निरतिचारके साथ उसका पालन करते हुए, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, समस्त कर्म मलका प्रक्षालन कर, उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया। वही प्रभङ्करा सुव्रता नामकी गुरुआनीके पास जा, चान्द्रायण-तप कर, आयु पूरी होने पर मर कर तुम्हारी पुत्री शान्तिमती हुई है। इसके पूर्व जन्मके पति इस विद्याधरने इसे विद्याकी साधना करते देखा और पिछली प्रीतिके कारण इसे हर लाया। इसलिये हे पवनवेग! तुम इस पर नाराज़ मत हो और हे शान्तिमती! तूभी अपना क्रोध त्याग कर।"

वज्रायुध चक्रवर्त्तीकी यह बात सुन, दोनों विद्याधर और बालिका शान्तिमतीने परस्पर एक दूसरेसे अपराध क्षमा कराया और चित्तको शान्त किया। तदनन्तर चक्रवर्त्तीने सभासदोंकी ओर देखकर कहा,— "मैंने इन तीनोंके पूर्व भवकी बात कही, अब इनके भावी स्वरूपकी बात कहता हूँ, सुनो। इन दोनों विद्याधरोंके साथ यह शान्तिमती दीक्षा-ग्रहण करेगी और रत्नावली तप कर अन्तमें अनशन द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर दोसे अधिक सागरोपमकी आयुवला और वृषभ वाहन इशानेन्द्र होगी। पवनवेग और अजितसेन साधु इसी भवमें घाती-कर्मोंका नाश कर, उत्तम केवल-ज्ञानको प्राप्त करेंगे। उस समय ईशानेन्द्र वहाँ आकर उनके केवल-ज्ञानकी महिमा बखानेंगे और अपने शरीरकी पूजाकर, अपने स्थानको चले जायेंगे। वे ईशानेन्द्र भी आयुष्य क्षय होनेपर वहाँसे

च्युत होकर मनुष्य-भव प्राप्त करेंगे और दीक्षा लेकर, कर्मका क्षय कर, मोक्ष-सुख लाभ करेंगे।"

यह भावी वृत्तान्त श्रवणकर सब सभासदोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले,— "अहा! हमारे स्वामीका ज्ञान तो पदार्थोंके भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान रूप बतलानेके लिये दीपकके समान है।" इसके बाद शान्तिमती, पवनवेग और अजितसेन, तीनोंही चक्रवर्त्तीको प्रणाम कर; अपने अपने स्थानको चले गये।

सहस्रायुध कुमारको जयसेनाके गर्भसे कनक शक्ति नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसकी शादी कनकमाला और वसन्तसेना नामकी दो अच्छे कुलकी राजकुमारियोंके साथ कर दी। एक बार कुमार क्रीड़ा करनेके लिये एक घने जंगलमें चला गया। वहाँ कुमारने एक मनुष्यको कुछ ऊँचे उड़कर नीचेकी ओर गिरते देख कर उसके पास आकर इसका कारण पूछा। उसने कहा, "मै वैताढ्य-पर्वत पर रहनेवाला विद्याधर हूँ। मैं चाहे जहाँ आऊँ—जाऊँ; पर मेरे गिरने पड़नेका ड़र नहीं रहता। आज यहाँ आकर मैं बड़ी देर तक रुका रह गया। मै पीछे लौट रहा था, कि इतनेमें मैं आकाश-गामिनी विद्याका एक पद भूल गया, इसीलिये ऊपर नहीं उड़ पाता और इस प्रकार बार-बार चेष्टा कर रहा हूँ।" यह सुन, कुमारने उससे कहा,— "हे विद्याधर! तुम मुझे यह विद्या बतला दो।" विद्याधरने उसे भला आदमी जानकर उसको वह विद्या बतला दी। उसी समय कुमारने पदानुसारी लब्धिके-प्रभावसे उसका भूला हुआ पद उसे बतला दिया। इससे सन्तुष्ट होकर आकाशचारीने अपनी सारी विद्या कुमारको बतला दी। कुमारने उसके कहे अनुसार विधिपूर्वक उस विद्याकी साधना की। इसके बाद वह खेचर (आकाशचारी) अपने स्थानको चला गया। एक दिन कुमार, इसी विद्याके प्रभावसे, अपनी दोनों प्रियाओंके साथ, स्वेच्छा पूर्वक विहार करते हुए, हिमाद्रि-पर्वत पर आ पहुँचा। वहाँ विपुलमति नामक विद्याधर मुनिको देख,

उनके चरणोंमें प्रणाम कर, कुमार अपनी प्रियतमाओंके साथ उचित स्थानपर बैठ रहा। इसके बाद उसने मुनिसे इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनी.—

"कुलं रूप कलाभ्यासं, विद्यालक्ष्मीर्वरांगना।
ऐश्वर्यं सप्रभुत्वं च, धर्मेणैव प्रजायते॥ १॥"

अर्थात्— "कुल, रूप, कलाओंका अभ्यास, विद्या, लक्ष्मी, सुन्दरी नारी, ऐश्वर्य और प्रभुता-ये सब वस्तुएँ धर्मसेही प्राप्त होती हैं।"

"जिस मनुष्यने पूर्व जन्ममें दानादि चार प्रकारके धर्मोंकी आराधना की है, वही पुण्यसारकी भाँति समस्त मनोवाँछित सुखोंको प्राप्त करता है। जैसे पुण्यसारके सारे मनोरथ पूरे हुए, वैसे ही औरोंके भी मनोरथ पूरे होंगे।" यह सुन दोनों प्रियतमाओंके साथ कनकशक्ति कुमारने पूछा,— "हे प्रभो! वह पुण्यसार कौन था?" यह सुन, मुनिने उसे प्रबोध देनेके निमित्त इसप्रकार कथा कह सुनायीः—

## पुण्य-सारकी कथा।
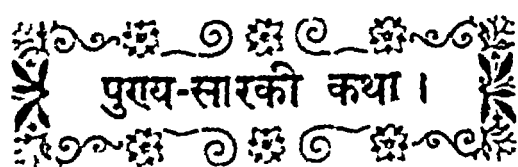
इसी भरत-क्षेत्रमें बड़े-बड़े आश्चर्य-जनक पदार्थोंसे भरा हुआ गोपालन नामका एक नगर है। वहाँ धर्मका अर्थी, राजासे सम्मानित और महाजनोंमें मुख्य, पुरन्दर नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री पुण्यश्री मानों सबश्रेष्ठगुणोंका आश्रय थी। वह पतिकी प्यारी, सौभाग्यवती, भाग्यशालिनी और सुन्दर रूपवती थी। परन्तु उसमें एक ही दोष था और वह यह, कि उसकी गोद भरी पूरी नहीं थी। सेठको पुत्रकी बड़ी लालसा थी और उसके आत्मीय-स्वजन उससे दूसरा विवाह कर लेनेको बार-बार कहा करते थे, तो भी उसने पुण्यश्री पर गाढ़ा स्नेह होनेके कारण दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं

किया। एक समयकी बात है, कि उस सेठने पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ ही कुलदेवीकी पूजा की और उनसे इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन किया,—"हे कुलदेवी! मेरे पूर्वजोंने और मैंने भी बराबर इस लोकके सुखके निमित्त तुम्हारी आराधना की है। अब यदि मैं निपुत्र ही मर जाऊँगा, तो फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा? अतएव तुम कृपाकर अपने अवधि-ज्ञानसे बतलाओ, कि मेरे सन्तान होगी या नहीं!" यह सुन, कुलदेवीने उपयोग देकर कहा,—"सेठजी! पुण्य-कार्य करते हुए कुछ दिन बीत जाने पर तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा।" कुलदेवीकी यह बात सुन, हर्षित होते हुए सेठने कुल-पर्यायसे चले आते हुए धर्मोंका विशेष रूपसे पालन करना शुरू किया।

कुछ दिन बाद एक बड़ा ही पुण्यात्मा जीव पुण्यश्रीकी कोखमें आया। उस समय उसने स्वप्नमें चन्द्रमा देखा। सवेरे ही उसने अपने पतिको इस स्वप्नकी बात कह सुनायी। सेठने अपनी बुद्धिसे इस स्वप्नका विचार करके अपनी स्त्रीसे कहा,—"तुम्हें बड़ा ही उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।" यह सुन, वह बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ दिन—नक्षत्रको उसके गर्भसे एक उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी पैदायशकी खुशीमें पिताने बड़ी धूमधाम की और दीन-हीन जनोंको तथा याचकोंको सोना, चाँदी और वस्त्रादिका दान किया। इसके बाद पुण्यसे प्राप्त होनेके कारण सेठने अपने समस्त स्वजनोंके सम्मुख, उस पुत्रका नाम पुण्य-सार रखा। वह पुत्र क्रमशः धात्रियोंसे पाला-पोसा जाता हुआ पाँच वर्षका हुआ। तब पिताने बड़ी धूमधामका उत्सव कर उसे एक बड़े अच्छे पण्डितके पास कलाभ्यास करनेके लिये पाठशालामें भेज दिया।

उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जिसके एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम रत्नसुन्दरी था। वह भी उन्हीं पण्डितजीसे पुण्यसारके साथ-ही-साथ कलाभ्यास करती थी। कभी-कभी स्त्री-स्वभाववश चंचलताके कारण रत्नसुन्दरी पुण्यसारके

साथ विवाद कर बैठती थी। एक दिन इसी तरहका विवाद होते-होते पुण्य-सारने क्रोधमें आकर उससे कहा,—"अरी बालिके! यदि तू अपनेको बड़ी पण्डिता और कलावती मानती हो, तो भी तुझे मेरे साथ विवाद नहीं करना चाहिये; क्योंकि तू किसी पुरुषके घर दासी होकर ही जानेवाली है।" इसपर उसने कहा,—"यदि मैं दासी भी हूँगी, तो किसी बड़े भारी भाग्यशाली पुरुषकी हूँगी, तुम्हारी तो न हूँगी!" यह सुन, पुण्यसारने कहा,—"अरी वृथा अभिमान करनेवाली! यदि मैंने तुझे ज़बरदस्ती अपनी दासी नहीं बनाया, तो मैं पुरुष ही नहीं।" यह सुन, वह फिर बोली,—"रे मूर्ख! जबरदस्तीसे भी कहीं किसीका स्नेह प्राप्त होता है?" फिर दम्पतीको इस तरह स्नेह कैसे हो सकता है।" इस प्रकार परस्पर विवाद कर पुण्यसार पाठशालासे अपने घर चला आया और उदास मुँह बनाये, क्रोध सूचक शय्यापर जाकर सो रहा। इतनेमें पुरन्दर सेठ, भोजनका समय हो जानेके कारण, खानेके लिये घर आया। पुत्रकी हालत सुनकर वह उसके पास आया और उससे पूछा,—"बेटा! आज तेरा चेहरा ऐसा उदास क्यों हो रहा है? इस असमयमें ही तू क्यों सोया पड़ा है? इसका कारण बतला।" जब सेठने इस प्रकार आग्रहसे पूछा, तब उसने कहा,—"पिताजी! यदि आप मेरा विवाह सेठ रत्नसारकी पुत्री रत्नसुन्दरीके साथ कर दें, तब तो मुझे चैन आयेगा, नहीं तो मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलने की।" यह सुन, सेठने कहा,—"बेटा! अभी तेरी कच्ची उमर है। अभी पाठशालामें रह कर विद्याका अभ्यास कर, पीछे जब ब्याहका समय आयेगा, तब ब्याह कर दिया जायेगा।" यह सुन, पुत्रने फिर कहा,—"पिताजी! यदि आप उसके पितासे मेरे लिये उसकी मंगनी करा लें, तब तो मैं भोजन करूँगा, नहीं तो हरगिज नहीं खाऊँगा।" यह सुन, सेठने उसकी बात मान ली और उसे समझाबुझा कर भोजन कराया। इसके बाद वह स्वयं अपने स्वजनोंके साथ रत्नसार सेठके घर गया। उसे आते देख, रत्नसार सेठ उठ खड़ा हुआ, उसे बैठनेके

लिये आसन दिया और स्वागत-प्रश्नके साथ बड़ी नम्रतासे बोला,—"भला यह तो कहिये, आज आपने किस लिये मेरे घर आनेकी कृपा की ?" पुरन्दर सेठने कहा,—"सेठजी ! मैं आज अपने पुत्रके लिये आपकी पुत्री रत्नसुन्दरीकी मँगनी करने आया हूँ।" यह सुन, रत्नसारने कहा,—"यह बात तो मेरे मनकी सी ही है। यह कन्या मैं आपके ही पुत्रको सौंपूँगा, इसमें कहनेकी क्या बात है ? आपका इशारा ही काफ़ी है। कन्या तो आख़िर किसी-न-किसीको देनी है, फिर जब स्वयं ही आप उसकी मँगनीके लिये आये हैं, तब और क्या चाहिये ? मैं आपकी बात मानता हूँ।" जब रत्नसार सेठने इतना कह डाला, तब उसके पासही बैठी हुई वह बालिका चटपट बोल उठी,—"पिताजी ! मैं कदापि पुण्यसारकी पत्नी न बनूँगी।" उसकी यह बात सुन, पुरन्दर सेठने अपने मनमें विचार किया,—"ओह ! मेरे पुत्रने व्यर्थ ही इस कन्याके साथ ब्याह करनेकी इच्छा की। बचपनमें ही जिसकी वाणी इतनी कठोर है, वह जब जवानीकी मस्तीमें आयेगी, तब भला पतिको कौनसा सुख देगी ?" वह ऐसा सोच ही रहा था, कि रत्नसार सेठने कहा,—"मेरी लड़की अभी निरी नादान बच्ची है। क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये, इसकी समझ इसको नहीं है। इसलिये आप इसके कहेका कुछ ख़याल मनमें न आने दें। सेठजी ! मैं इसे समझा-बुझा कर आपके ही पुत्रके साथ विवाह करनेको राजी कर लूँगा।" यह सुन, पुरन्दर सेठ अपने स्वजनोंके साथ वहाँसे उठ कर अपने घर आया और पुत्रसे सारा हाल सुनाकर कहा,—"बेटा ! वह लड़की तेरे लायक नहीं है, क्योंकि—

'कुदेहां विगतस्नेहां, लज्जाशीलकुलोज्झिताम् ।
अतिप्रचण्डां दुस्तुण्डां, गृहिणीं परिवर्जयेत् ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'कुरूपा, स्नेह-रहिता, लज्जा, शील और कुलसे हीना अतिप्रचण्डा और दुर्भाषिणी भार्याका सदा त्याग करना चाहिये।'*

"ऐसा शास्त्रमें कहा हुआ है।" यह सुन, पुण्यसारने कहा,—

"पिताजी! आप जो कहते हैं, वह ठीक है; पर यदि मैं उसके साथ ब्याह करूँगा, तभी तो मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी, नहीं तो झूठी पड़ जायेगी।" पिताको यह उत्तर देकर पुण्यसार उसकी प्राप्तिके लिये दूसरा उपाय सोचने लगा।

एक दिन पिताकी बातसे उसे मालूम हुआ, कि उसकी कुलदेवी बड़ी जागती देवी हैं। इसलिये उसने एक शुभ दिवसको पुष्प, नैवेद्य, धूप और विलेपन आदि उत्तमोत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजाकर, उसने प्रार्थना की,—"हे कुलदेवी! जैसे तुमने सन्तुष्ट होकर मेरे पिताको मुझे पुत्र-रूपमें दान किया है, वैसेही मेरे स्त्री-सम्बन्धी मनोरथको भी पूरा कर दो। हे देवी! यदि तुमने मेरा मनोरथ ही पूर्ण नहीं किया, तो फिर जन्म काहेको दिया? हे देवी! अब जबतक तुम मेरा मनोरथ नहीं पूरा करोगी, तबतक मैं बिना खाये-पिये यहीं खड़ा रहूँगा।" यह कह, वह देवीके सामने धरना देकर बैठ रहा। एकही दिनके उपवाससे देवी उसपर प्रसन्न हो गयीं और बोलीं,—"बेटा! जाओ—धीरे-धीरे सबकुछ तुम्हारे मनके मुआफ़िक़ ही हो जायेगा। चिन्ता न करो।" यह सुन, पुण्यसारको बड़ा आनन्द हुआ और उसने पारणा कर, पिताकी आज्ञा ले, पाठशालाकी शेष शिक्षा पूरी करनी शुरू की। क्रमशः कलाभ्यास सम्पूर्ण होनेपर वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसे जुएका चसका लग गया। स्नेहके कारण उसके माता-पिताने उसे कितनीही बार रोका-टोका, तोभी वह जुएकी चाट नहीं छोड़ सका। एक दिन पुण्यसार लाख रुपया जुएमें हार गया। उसने घर आकर लाख रुपये क़ीमतका एक गहना, जो राजाका था और सेठके घर रखा हुआ था, लेकर जीते हुए जुआड़ियोंको दे दिया। कुछ दिनों बाद जब राजाने अपना वह गहना सेठसे फिरता माँगा, तब सेठने उसे उस स्थानमें नहीं पाया, जहाँ उसने रख छोड़ा था। तब उसने अपने मनमें सोचा,—"ज़रूर ही पुण्यसार वह गहना ले गया है। गुप्त स्थानमें रखी हुई चीज़का दूसरेको क्या पता है?" इस तरह सोच कर वह समझ गया। कि

अब तो वह गहना हाथसे गया ! यह देखकर उसके जीमें यह बात आयी, कि——

"यदर्थं खिद्यते लोकै-र्यत्नश्च क्रियते महान्।
तेऽपि सन्तापदा एवं, दुष्पुत्रा हा भवन्त्यहो ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"ओह ! जिनके न होनेसे लोग सदा खिन्न रहा करते हैं और जिनकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े यत्न किया करते हैं, वे पुत्र भी कुपूत हो कर इस प्रकार दुःख देते हैं।"*

फिर सेठने सोचा,—"इस दुष्टने राजाका गहना जुएमें गँवा दिया, इसलिये ऐसे पुत्रको तो घरसे निकाल देनाही ठीक है, क्योंकि यह पुत्रके रूपमें मेरा दुश्मन् टिका है।" ऐसा विचार कर वह दूकानपर चला गया। जब पुत्र वहाँ आया, तब उसने उससे गहनेकी बाबत पूँछ-ताँछ की। इसपर बेटेने बापसे सच्चा-सच्चा हाल बयान कर दिया। यह सुन, सेठने क्रोधमें आकर कहा,—"रे दुष्ट ! जा, तू वह गहना ले आ। बिना लाये मेरे घर न आना।" यह कह, उसने उसको खूब फटकारा और गलेमें हाथ डाल झुँझलाते हुए, उसे अपने घरसे निकाल दिया।

उस समय साँझ हो गयी थी। इसलिये वह कहीं और तो नहीं जा सकता था, इसीसे गाँवके बाहर आ, एक बड़के पेड़के खखोडलमें घुस पड़ा। सेठ जब घर आया, तब उसकी स्त्रीने पूछा,—"आज पुण्यसार अभीतक घर क्यों नहीं आया ?" यह सुन, पुरन्दर सेठने कहा,—"वह कुपूत राजाका गहना जुएमें हार आया, इसी लिये मैंने उसे सीख देनेके लिये क्रोधमें आकर घरसे निकाल दिया है। इसीसे वह घर नहीं आया है।" यह सुन, सेठानीने कहा,—"जब तुमने इतनी रातको पुत्रको घरसे बाहर निकाल दिया, तब कैसे मेरे पास अपना मुँह दिखाने आये हो ? स्वामी ! इस अँधेरी रातमें उस बालकको घरसे निकालते तुम्हें लज्जा नहीं आयी ? इसलिये जाओ, अब पुत्रको लेकर ही मेरे घरमें आना।" सेठानीकी यह फटकार सुन, बेटेकी याद कर, सेठ बहुत

ही दुःखी हुआ और सारे शहरमें उसकी खोज कराने लगा। इधर सेठके चले जानेपर सेठानीने यह देखकर, कि घरमें कोई मर्द-मानस नहीं है, अपने मनमें विचार किया,—"ओह, मैंने क्रोधमें आकर पतिको घरसे दुतकार दिया, यह अच्छा नहीं किया। पहले तो सेठजीने ही मूर्खता की—पीछे मैं भी मूर्खता कर बैठी!" इस प्रकार सोचती हुई सेठानी रोते-रोते पति-पुत्रकी राह देखती हुई, अपने घरके दरवाजेपर बैठ रही।

इधर रातके समय वट-वृक्षके खखोडलमें बैठे हुए पुण्यसारने दो देवियोंको, जिनके शरीरकी कान्तिसे चारों ओर उँजेला फैलाहुआ था, इस प्रकार बातचीत करते सुना। पहलीने कहा,—"चलो बहन! इस समय मनमाने ढंगसे पृथ्वीकी सैर की जाये। रातका समय है। यह अपने लिये और भी अच्छा है।" इसपर दूसरी बोली,—"सखी! व्यर्थ ही इधरसे उधर चक्कर लगाकर आत्माको कष्ट किस लिये देना? इस लिये अगर कहीं कोई कौतुक हो रहा हो, तो उसे चलकर देखना चाहिये।" अबके फिर पहलीने कहा,—"अगर कौतुक देखना हो, तो वल्लभी नामक नगरमें चलो। वहाँ धन नामका सेठ रहता है। उसकी स्त्रीका नाम धनवती है, जिसके गर्भसे उसे सात लड़कियाँ पैदा हुई हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—"पहलीका नाम धर्मसुन्दरी, दूसरीका धनसुन्दरी, तीसरीका कामसुन्दरी, चौथीका मुक्तिसुन्दरी, पाँचवींका भाग्यसुन्दरी, छठीका सौभाग्यसुन्दरी और सातवींका गुणसुन्दरी है। इन कन्याओंके लिये अच्छे वर मिलनेके लिये उस धना सेठने लड्डू वगै-रह प्रसाद चढ़ाकर लम्बोदर-देवकी पूजा की। देवताने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा,—"सेठजी! आजके सातवें दिन रातके समय बड़ा ही शुभ लग्न है। उस समय तुम विवाहकी कुल सामग्रियाँ तैयार रखना। उस दिन उस समय दो सुन्दर वेशवाली स्त्रियोंके पीछे-पीछे जो कोई पुरुष आयेगा, वही तुम्हारी कन्याओंका पति होगा।" यह कह, लम्बोदरदेव अन्तर्द्धान हो गये। आज ही वह सातवीं रात

है। इसलिये चलो, वहाँका तमाशा देखा जाये और अपने निवास-रूप इस वृक्षको भी साथ ले चलो।"

देवियोंकी यह बात सुन,वृक्षके कोटरमें बैठे हुए पुण्यसारने सोचा,-"चलो, इसी सिलसिलेमें मैं भी यह तमाशा देख लूँगा।" वह यह सोचही रहा था,कि उन देवियोंने हुकार कर,झटपट उस वृक्षको उखाड डाला और क्षणभरमें उसे लिये हुई वल्लभीपुरके बाग़में उतर पड़ीं। इसके बाद दोनों देवियाँ,साधारण स्त्रीका वेश बना,गाँवमें घुस पड़ीं। वृक्षके कोटरसे निकलकर पुण्यसार भी उनके पीछे-पीछे चला। इधर लम्बोदरके मन्दिरके द्वारपर विवाह-मण्डप तैयार कर, उसके अन्दर वेदिका बनवाये और सब आत्मीय-स्वजनोंको इकट्ठा किये हुए वह सेठ अपनी सातों कन्याओंके साथ बैठा हुआ था। इतनेमें वे देवियाँ उस सेठके घर रसोई जीमने आयीं। सेठने उनके पीछे-पीछे पुण्यसारको जाते देखा। देखते ही उसका हाथ पकड़, उसे श्रेष्ठ आसन पर बैठाते हुए सेठने कहा;—"हे भद्र! लम्बोदरने तुम्हें आज यहाँ मेरा जमाई होनेके लिये भेजा है, इसलिये तुम मेरी इन सातों कन्याओंका पाणि-ग्रहण करो।" यह कह, सेठने उसे वरके कपड़े पहनाये और लाख रुपये मूल्यके गहनोंसे अलङ्कृत कर दिया। इसके बाद धवल-मङ्गलके साथ अग्निको साक्षी देकर शुभ-मुहूर्त्तमें पुरन्दरपुत्र पुण्यसारने उन सातों कन्याओंका पाणिग्रहण किया। उस समय उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! पिताने जो मुझे घरसे निकाल बाहर कर दिया, वह बहुत ही अच्छा किया, नहीं तो मेरे पुण्यका प्रभाव कैसे प्रकट होता?" इसके बाद विवाहकी सब रस्में पूरी होजाने पर सेठ, बड़ी धूमधामके साथ अपनी कन्याओंके साथ-साथ पुण्यसारको भी अपने घर ले आया और अपने मकान की सबसे ऊपर-वाली मँज़िलपर उनका डेरा डाला।

उन सातों कन्याओंने पुण्य-सारको पलङ्ग पर बिठा, आप नीचे रखे हुए आसनोंपर बैठकर पूछा,—"हेनाथ! आपने कितना कलाभ्यास

किया है ?" उसने कहा,—"मुग्धाओ! मुझे कलाओंसे प्रेम नहीं, क्योंकि—

'अत्यन्तविदुषां नैव, सुख मूर्खनृणां न च
अर्जनीया कलाविद्भिः, सर्वथा मध्यमाः कला ॥ १ ॥

*अर्थात्—"अत्यन्त विद्वान् मनुष्योंको सुख नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त मूर्ख मनुष्य भी सुख नहीं पाते। इसलिये कलाओंके जानने-वलोंको चाहिये, कि सदा सब प्रकारसे मध्यम कलाओंका ही उपाजन करें।*

वे बिचारी इस श्लोकका अर्थ नहीं समझ सकीं, इसलिये सोच-विचारमें पड़ गयीं। तब पुण्यसारने अपने मनमें सोचा,—"यदि वह वृक्ष यहाँसे चला जायेगा, तो मैं यहीं पड़ा रह जाऊँगा, इसलिये अब यहाँ विलम्ब नहीं करना चाहिये।" इस विचारके उत्पन्न होतेही वह चारों तरफ़ देखने लगा। यह देख, सबसे छोटी गुण सुन्दरीने पूछा,—"हे नाथ। क्या आप शौचको जाया चाहते हैं?" उसने उत्तर दिया,—"हाँ" यह सुन, गुण सुन्दरी उसका हाथ पकड़े हुई नीचे ले आयी। वहाँ पहुँच कर उसने अपना परिचय देनेके लिये खड़ियासे यह श्लोक चौकठ पर लिख दिया,—

"गोपालपुरादागां, वल्लभ्या दैवयोगतः।
परिणीय वधू सह, पुनस्तत्र गतो स्म्यहम्॥ १ ॥

*अर्थात्—"मैं दैवयोग से गोपालपुर से वल्लभीनगरी में आ पहूँचा था और सात बहुओं से ब्याह कर फिर वहीं लौटा जा रहा हूँ।*

यह लिखकर वह उस घरके द्वारके पास पहुँचा, जिसमें उसकी सब स्त्रियाँ पहले श्लोकका अर्थ समझमें नहीं आनेके कारण शर्मायी हुई सोचमें पड़ी बैठी हुई थीं। वहाँ आकर उसने गुणसुन्दरीसे कहा,—"तुम भीतर चली जाओ, जिसमें मैं निश्चिन्त होकर शौचसे निवृत्त हो जाऊँ।" यह सुनकर वह भी स्वामीको निश्चिन्ततासे शौचादिसे निवृत्त हो जानेके लिये छोड़कर घरके अन्दर चली आयी। इतनेमें पुण्यसार उस घरसे बाहर हो, नगरके बाहर हो गया और पूर्वोक्तवट-वृक्षके कोट-

रमें जा बैठा। इतनेमें वे देवियाँ आयीं और भर-पूर ज़ोर लगा, उस वृक्षको उखाड़ कर फिर पुराने स्थान पर रख गयीं।

इधर पुरन्दर सेठने सारा शहर छान डाला पर पुत्रका कहीं पता न लगा। इसी तरह घूमते-घामते वह प्रातःकालके समय उसी वट वृक्षके पास आ पहुँचा। इतनेमें रात बीत गयी और सवेरा हो गया, यह जानकर पुण्यसार उस पेड़के खखोडलसे बाहर निकला और इधर-उधर घूमने लगा। सेठने उसको इस तरह मनोहर वेश और अलङ्कारादिसे अलङ्कृत होकर घूमते हुए देख लिया। उसे इस प्रकार अद्भुत शोभासे युक्त देख, विस्मित होता हुआ सेठ, "हे वत्स! हे वत्स!" कहता हुआ उसकी देहसे चिपट गया और कह सुनकर उसे घर ले आया। पति और पुत्रको एक साथ घर आते देख, सेठानी बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद माता-पिताने उसे बड़े प्यारसे गोदमें बिठाते और आलिङ्गन करते हुए पूछा,—"पुत्र! तुम्हारा ऐसा ठाट बाट कहाँसे हो गया?" इसके उत्तरमें पुण्यसारने माँ बापको आश्चर्यमें डालने वाली अपनी रामकहानी कह सुनायी। उसे सुन, आश्चर्यमें पड़कर, उसके माता-पिताने कहा,—"अहा! हमारे पुत्रका भाग्य कैसा अच्छा है, कि इसने एकही रातमें इतनी ऋद्धि प्राप्त कर ली!" इसके बाद पिताने कहा,—"पुत्र! तुम्हें भली सीख देनेके लिये मैंने क्रोधमें आकर जो कुछ कटु वाक्य तुम्हें कहे, उनका कुछ ख़याल न करना।" पुण्यसारने कहा, "पिताजी! आपकी शिक्षा मेरे लिये बड़ी हितकारक हुई। कहा भी है, कि—

"अमीय रसायण अग्गली, माय ताय गुरु सीख।
जे उ न मन्नइ बप्पड़ा, ते रूलीया निसदीस॥ १॥"

*अर्थात्—"माँ बाप और गुरुकी शिक्षा अमृत और रसायनसे भी बढ़कर है, इसलिए जो अभागा इसे नहीं मानता, वह रात-दिन रोया करता है—अर्थात् संसार में कभी सुखी नहीं होता।*

पुत्रका यह जवाब सुनकर माँ-बापको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद पुत्रने वल्लभीपुरमें मिले हुए लाख रुपयेके अलङ्कारोंको देकर जुआ-

ड़ियोंसे राजाका वह अलङ्कार माँग लिया और लाकर पिताके हवाले किया। वह उसे ले जाकर राजाको दे आया। इसके बाद पुण्यसारने सब गुणोंको धूल मिला देनेवाले जुएको एक दम तिलांजलि दे दी और अपनी दूकान पर बैठकर ठीक-ठिकानेसे व्यापार चलाने लगा।

इधर स्वामीको नहीं आया देख, गुणसुन्दरीने ऊपर जाकर अपनी बड़ी बहनोंसे कहा,—"बहुत देर हो गयी, पर वे अभीतक लौटकर नहीं आये, इसलिये मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि वे शौचके बहाने कहींको चल दिये।" यह सुन, सब स्त्रियाँ दुःखित होकर रोने लगीं। इनका रोना सुन, पिताने उनके पास आकर उनके रोनेका कारण पूछा। उन्होंने कहा—"पिताजी। हमारे स्वामी हमें छोड़कर न जाने कहाँ चले गये!" यह सुन, पिताने कहा,—तुम इतनी जनी यहाँ इकट्ठी थीं, तो भी उसे पकड़ कर न रख सकीं और बिना कुल-परम्परादिका हाल पूछे ही जाने दिया! मनोहर स्त्रियोंको पाकर भला कौन पुरुष मुग्ध नहीं होता? फिर तुम्हें पाकर भी वह कैसे यहाँसे चला गया? वह अपने शरीर परके कुल अलङ्कार लिये हुये चल दिया है। इससे तो मुझे मालूम पड़ता है, कि उसे किसी व्यसनका चस्का ज़रूर है। ख़ैर, जब यह देवताका भेजा हुआ तुम्हारा स्वामी होकर यहाँ आया था, तब यह भी कुछ पूर्व जन्मके कर्मोंका ही दोष होगा। परन्तु तुम लोगोंने उससे बातें कर, उसका नाम ग्राम क्यों नहीं पूछ लिया?" पिताकी यह बात सुन, गुणसुन्दरीने कहा,—"उन्होंने जाती दफ़े दीवेके उजेलेमें चौकठके ऊपर न जाने क्या लिख दिया है—मैंने उसे पढ़ा नहीं है।" इसी तरह बाते करते-करते प्रातःकाल हो गया। उस समय उसकी लिखावटको पढ़कर गुणसुन्दरीने पितासे कहा,—"पिताजी! हमारे वे स्वामी गोपालकपुरके रहने वाले हैं। दैवयोगसे रातको यहाँ आ पहुचे थे और हमारे साथ ब्याह कर फिर वहीं चले गये हैं। इसलिये आप अपने हाथों मुझे पुरुषकी पोशाक पहना दीजिये। मैं अपने साथ पूरा क़ाफ़िला लेकर गोपालकपुर जाऊँगी और उन्हें पहचानकर छः महीनेके अन्दर उन्हें

ढूंढ़ निकालूंगी। यदि ऐसा न कर सकी, तो आगमें जल मरूंगी।" अपनी बेटीकी यह बात सुन, पिताने उसको उसी समय मर्दका बाना पहना दिया। मर्दका जामा पहन, बहुतसे आदमियोंको अपने साथ लिये हुए, गुणसुन्दरी कुछ दिनोंमें गोपालकपुरमें आ पहुँची।

उस नगरमें पहुँच कर उसने अपनेको गुणसुन्दर नामसे प्रसिद्ध किया। जहाँ-तहाँ लोग आपसमें कहने लगे, कि "गुणसुन्दर नामका एक सौदागरका लड़का यहाँ आया हुआ है।" इसके बाद वह सेठकी लड़की उसी पुरुष वेशमें भेंटके लिये तरह-तरहकी अद्भुत वस्तुएँ लिये हुई राजसभामें आयी। राजाने भी उसकी बड़ी ख़ातिर की। इसके बाद वह वहीं रह कर मालकी ख़रीद-बिक्री करने लगी।

धीरे-धीरे उसने पुण्यसारसे भी मैत्री कर ली। इससे सारे नगरमें उसकी प्रसिद्धि हो गयी और लोग जहाँ-तहाँ कहने लगे,—"वल्लभीपुरसे जो गुणसुन्दर नामका नौजवान सौदागर यहाँ आया है, वह बड़ा ही विद्वान्, रूपवान् और गुणवान् है। उसके समान रूप और गुणमें विलक्षण पुरुष दूसरा कोई नहीं दिखाई देता।" उसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर रत्नसार सेठकी पुत्री रत्नसुन्दरीने अपने पितासे कहा,—"पिता जी! आप मेरा ब्याह इसी गुणसुन्दर कुमारके साथ कर दीजिये।" अपनी बेटीका यह अभिप्राय मालूम होतेही सेठने गुणसुन्दरीके पास आकर कहा,—"हे कुमार! मेरी पुत्री रत्नसुन्दरी तुम्हें ही अपना स्वामी बनाया चाहती है।" यह सुन, उसने अपने मनमें विचार किया,—"उसकी यह इच्छा बिलकुलव्यर्थ है, क्योंकि भला स्त्रीके साथ स्त्रीका विवाह कैसे हो सकता है? इनकी गृहस्थी कैसे चलेगी? इसलिये इसे कुछ जवाब देकर टाल दूं, नहीं तो उस बेचारीकी भी मेरीही सी हालत होगी।" ऐसा विचार कर, उसने सेठसे कहा,—"ऐसी अवस्थामें कुलीन मनुष्योंको अपने माता-पिताकी आज्ञा ले लेनी परम आवश्यक है, और मेरे माँ-बाप यहाँसे बहुत दूरपर हैं, इसलिये आप तो अपनी पुत्रीका विवाह यहीं यहीं पासमें रहनेवाले किसी वरके साथ कर दीजिये।

मुग्ध परदेशीके साथ उसका व्याह करना ठीक नहीं। यह सुन, सेठने फिर कहा,—"कुमार! तुम मुझे ऐसा टकासा जवाब क्यों दे रहे हो? मेरी पुत्रीकी तुम्हारे ही ऊपर प्रीति हो गयी है, इसलिये अब मैं उसे दूसरे पुरुषको क्योंकर सौंपूंगा? कहा भी है कि,—

"शत्रुभिर्बन्धुरूपै सा, प्रक्षिप्ता दु.खसागरे।
या दत्ता हृदयानिष्ट-रमणाय कुलांगना ॥ १ ॥

*अर्थात्—"भले घरकी लडकीका व्याह जो लोग उसके मनके मुताबिक वरसे नहीं करते अथवा नापसन्द वरके हाथमें उसे सौंप देते हैं, वे उसके बन्धु होकर भी शत्रु हैं और उसे मानों दुःखसागरमें डुबो देते हैं।"*

इस तरह जब उस सेठने बड़ा आग्रह किया तब उसने भी विवाह करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद अच्छेसे लग्न नक्षत्रमें सेठने उन दोनोंका व्याह कर दिया। यह समाचार सुन, पुण्यसार अपनी कुलदेवीके पास आ, हथियारसे अपना सिर काटने लगा। उसी समय देवीने प्रकट होकर उससे कहा,—"बेटा! यह दुःस्साहस तुम किस लिये कर रहे हो?" उसने कहा,—"मेरी चहेती लडकीसे दूसरेने शादी कर ली। अब मैं जी कर क्या करूँगा?" यह सुन, कुल-देवीने कहा,—"बेटा! जिस कन्याको मैं तुम्हें दे चुकी हूँ, वह तुम्हारी ही होकर रहेगी। व्यर्थ ही मरनेको न ठानो।" पुण्यसारने कहा,—"परस्त्रीका सङ्ग करना मेरे लिये उचित नहीं। फिर जब इसका व्याह हो गया, तब मेरे किस काम की?" देवीने फिर कहा,—"बेटा! आज यह भलेही किसीकी वहू कहलाती हो, लेकिन यह न्यायसे तुम्हारी ही स्त्री होगी।" यह कह, देवी अपने स्थानको चली गयीं। पुण्य-सारको उनकी बातोंसे बड़ा आश्चर्य हुआ, तो भी उसने मनसे शङ्का दूर कर, देवताके वचनको सत्य ही मान लिया।

यहाँ रहते हुए भी गुणसुंदरीका पतिसे मिलना नहीं हुआ, इस-लिये वह बड़ी दुखी हुई। कहीं उसे अपने स्वामीका पता नहीं मिला

और न ऐसा कोई हितू मिला, जिससे अपने जीका दुखड़ा कहे। इस तरह छः महीने बीत गये। अब तो वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये पूरी तरह तैयार हो गयी, क्योंकि उसकी अवधि बीती जाती थी, उसके आदमियोने उसे लाख रोका, तो भी उसने न माना और नगरके बाहर जा, उत्तमोत्तम लकडियोंकि चिता रचा, उसीमें प्रवेश करने चली। उसी समय सारे नगरमें यह बात फैल गयी, कि वह नौजवान सौदागर किसी तरहकी उदासीमें पड़कर आज अग्निमें प्रवेश करने जा रहा है। कानोंकान फैलती हुई यह बात राजाके कानों तक पहुँची। सुनते ही राजा, पुरन्दर सेठ, रत्नसार, पुण्यासार आदिके साथ-ही-साथ नगरके बाहर उस स्थान पर आ पहुँचे और उससे बोले,—"हे सौदागरके बेटे! तुम्हें कौनसा दुःख है, जिसके लिये तुम आगमें जलने जा रहे हो? क्या किसने तुम्हारी आज्ञा टाली है? किसीने तुम्हारा कुछ बड़ा-भारी नुकसान कर दिया!" तदनन्तर सेठ रत्नसारने कहा,— "बेटा! यदि मेरा या मेरी पुत्रीका कोई अपराध हो, तो मुझे बतला दो।" यह सुन उसने कहा,—"किसीका कुछ अपराध नहीं है। न तो किसीने मेरी आज्ञा उलट दी है, न मेरा कुछ चुरा लिया है; परन्तु अपने प्यारेसे बिछुड़ा देनेवाले दैवने ही मुझे दण्ड दिया है, अतएव मुझे इस दुःखसे जलते हुए शरीरको अग्निकी शरणमें दे देना पड़ता है।" यह कहती और लम्बी उसाँसे' लेती हुई, वह ज्योंही उस चिताके पास पहुँची, त्यों ही राजाने कहा,—"जो कोई इस सौदागर-बच्चेका परम प्यारा मित्र हो, वह इसे समझा-बुझाकर यों जान देनेसे रोक ले।" इस पर नगरके लोगोंने कहा,—"इसकी पुण्यसारके साथ बड़ी दोस्ती है।" यह सुन, राजाने पुण्यसारको हुक्म दिया, कि उसे मरनेसे रोको। राजाकी आज्ञानुसार आगे बढ़कर पुण्यसारने कहा,—"हे मित्र! तुम युवा और धनवान हो, तो तुम्हें कौनसा दुःख है, यह मुझसे कहे बिनाही तुम्हारा यों प्राण दे देना ठीक नहीं।" यह सुन, उसने कहा,—"मुझे तो यहाँ ऐसा कोई दिलदार यार नहीं दिखाई

देता, जिससे अपने जीका दुखड़ा कह सुनाऊँ?" पुण्यसारने कहा,—"मित्र! तुम्हारी इस हरकतसे सब लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे।" यह सुनकर उसने जो पुण्यसारको भलीभाँति पहचाना तो वही उसका पति मालूम पड़ा। इसपर उसने मुसकरा कर उसका लिखा हुआ श्लोक उसे सुनाया और पूछा यह श्लोक तुम्हाराही लिखा हुआ है या नहीं? यह सुन उसने सिर हिलाकर हामी भर दी। तब वह बोली "मैं तुम्हारी वही प्रियतमा स्त्री हूँ, जिसे तुम घरके दरवाजेके पास छोड़कर भाग आये थे। मेरा नाम गुणसुन्दरी है। हे स्वामी! यह सारा प्रपंच मैंने तुम्हारे लियेही रचा था। अब तुम कृपाकर जल्दीसे मेरे लिये स्त्रीका पहनावा मंगवा दो।" यह सुन पुण्यसारको बड़ा अचम्भा हुआ। इसके बाद उसने अपने घरसे स्त्रियोंके पहनने योग्य बढ़िया-बढ़िया पोशाक वगैरह मँगवा कर उसे दे दिया। वह उन सब चीज़ोंको पहनकर ख़ासी स्त्री बन गयी।

अबके पुण्यसारने राजा आदि गुरुजनोंसे कहा,—"आपकी बहू आपलोगोंको प्रणाम करती है।" उसके इतना कहते ही गुणसुन्दरीने राजा और अपने श्वशुरको प्रणाम किया। यह देख, राजाने पूछा,—"पुण्यसार! यह क्या मामला है।" इस पर उसने राजा तथा समस्त नगर-निवासियोंके समक्ष अपनी आश्चर्य-पूर्ण कथा आदिसे अन्त तक कह सुनायी। सब सुन कर लोग बड़े अचम्भेमें आये और पुण्यसारके पुण्योंकी प्रशंसा करने लगे। इसके बाद सेठ रत्नसारने राजासे फ़र्याद की,—"हे स्वामी! मेरी पुत्रीने जिसके साथ विवाह किया था, वह तो स्वयं स्त्री निकली उसकी क्या गति होगी?" यह सुन, राजाने कहा,—"सेठजी! इसमें पूछनेकी कौन सी बात है? वह भी इसी पुण्यसारकी स्त्री होगी।" राजाकी इस आज्ञाके अनुसार रत्नसुन्दरी भी पुण्यसारकी ही स्त्री बन गयी। इसके बाद पुण्यसारने वल्लभीपुरसे बाक़ी छः स्त्रियोंको भी अच्छा दिन देखकर, बुलवा लिया। इस प्रकार उसके आठ स्त्रियाँ हुईं। लोग उसके पुण्योंकी बार-बार बड़ाई करने लगे।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें धर्मदेशना द्वारा भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध देनेके निमित्त श्री ज्ञानसागर नामक गुरु आ पहुँचे। पुरन्दर सेठ उनकी वन्दना करनेके लिये बड़ी भक्तिके साथ अपने पुत्र पुण्यसार को संग लिये हुए उद्यानमें आ पहुँचा। और-और नगर-निवासी भी आये। देशनाके अन्तमें अवसर पाकर पुरन्दर सेठने गुरुको नमस्कार कर पूछा, —“हे प्रभो! मेरे पुत्र पुण्यसारने पूर्व जन्ममें कौनसा पुण्य किया था?” यह सुन, सूरीश्वरने अवधि-ज्ञानके सहारे उसके पूर्व भवका वृत्तान्त जानकर कहा,—‘सेठजी! खूब मन लगाकर सुनो।

“नीतिपुर नामक नगरमें एक कुलपुत्र रहते थे। उन्होंने वैराग्य के कारण सुधर्म नामक मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरुकी दी हुई शिक्षाको सदा स्मरण किया करते थे। एक वार गुरुने उनसे कहा,—“हे साधु! तुम आवश्यक क्रियाका खण्डन क्यों करते हो? व्रतमें अतिचार लानेसे बड़ा दोष होता है।” यह सुन, भयभीत होकर वे मुनि कायगुप्ति पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण मुनियोंकी तरह वैयावच्च करने लगे। क्रमशः समाधि-मरण प्राप्तकर, वे मुनि सौधर्म नामक देवलोकमें जाकर देवता हुए। आयुक्षय होनेपर वे ही वहाँसे च्युत होकर तुम्हारे पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। पाँच समितियों और दो गुप्तियोंकी—अर्थात् सातों प्रवचन-माताओंको इन्होंने भली भाँति आराधना की थी, इसी लिये इन्हें सात नारियाँ अनायास ही मिल गयीं और आठवीं कायगुप्तिकी आराधना इन्होंने बड़ी मुश्किलसे की थी, इसीलिये आठवीं स्त्री ज़रा तरद्दुदसे मिली। इसी लिये बुद्धिमानोंको भी धर्मके कामोंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये।” इस प्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुन, विवेकी पुण्यसारने श्रावक-धर्म अङ्गीकार कर लिया और पुरन्दर सेठने वैराग्यके मारे चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद क्रमशः पुण्यसारको कितने ही बालबच्चे हुए। वृद्धावस्थामें पुण्यसारने भी दीक्षा ले ली और मरनेपर सद्गतिको प्राप्त हुआ।

पुण्यसार-कथा समाप्त।

इस प्रकार पुण्यसारकी कथा सुन, कनकशक्ति राजाने वैराग्यके मारे राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और चारित्र ग्रहण कर लिया। उनकी दोनों स्त्रियोंने भी विमलमति नामक साध्वीसे संयम ले लिया और तपस्याकी साधनामें तत्पर हो गयीं। एक समयकी बात है, कि महामुनि कनकशक्ति पृथ्वीपर विहार करते हुए क्रमशः 'सिद्धि' नामक पर्वत पर रातभरके लिये रहे। उस समय उनके पूर्व भवके वैरी हिमचूल नामक देवने वहाँ आकर बड़े उपद्रव मचाये। यह देख, खेचरोंने उस देवको रोका। इसके बाद प्रातःकाल कायोत्सर्ग करके मुनि रत्नसञ्चया नगरीमें आकर सूरनिपात नामक उद्यानमें प्रतिमा करके रहे। वहाँ शुक्लध्यान करते हुए उनके चारों घाती कर्मोंका क्षय हो गया और विश्व के दीपकके समान केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय देवों, विद्याधरों और असुरोंने आकर उनके केवल ज्ञान प्राप्त होनेके उपलक्षमें बड़ी धूमधामसे उत्सव किया। वज्रायुध चक्रवर्त्ती और अन्य मनुष्योंने भी उनकी बड़ी आदर-भक्ति की।

एक समय क्षेमंकर जिनेश्वर विहार करते हुए उस नगरीमें आये और ईशान-दिशामें उनका समवसरण बनाया गया। उस समय सेवकोंने चक्रवर्त्तीके पास आकर जिनेश्वरके आगमनपर उन्हें बधाई दी। उन्हें इस बधाईके उपलक्षमें इनाम देकर, वज्रायुध चक्रवर्त्ती बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजेके साथ अपने परिवारको लिये हुए श्रीजिनेन्द्रको प्रणाम करने गये। वहाँ पहुँच, स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए उनकी वन्दना कर, वे धर्मदेशना श्रवण करनेके लिये उचित स्थानमें बैठ गये। देशनाके अन्तमें चक्रवर्त्तीके पुत्र सहस्रायुधने दोनों हाथ जोड़, जिनेश्वरको प्रणाम कर पूछा,—"हे भगवन्! पवनवेग आदिके पूर्व भवकी बात मेरे पिताने कैसे जान ली? मुझे यह जाननेके लिये बड़ा कौतुहल हो रहा है। इस लिये कृपाकर इसका मुझे भेद बतलाइये।" यह सुन, भगवान्‌ने कहा,—"तुम्हारे पिता वज्रायुधने अवधि-ज्ञान द्वारा यह बात जान ली थी।" तब सहस्रायुध कुमारने पूछा,—"हे प्रभु! ज्ञान कितने प्रकारका है?"

भगवानने कहा,—"ज्ञान पाँच प्रकारका है—( १ ) मतिज्ञान, ( २ ) श्रुत-ज्ञान, ( ३ ) अवधि-ज्ञान, ( ४ ) मनः पर्यवज्ञान और ( ५ ) केवल-ज्ञान। इनमें मतिज्ञानके भेद इस प्रकार हैं:—बुद्धि, स्मृति, प्रज्ञा और मति। ये सब एकही अर्थवाले पर्यायवाची शब्द हैं। तो भी बुद्धि-मान् मनुष्योंने इनमें भेद रखे हैं, जैसे, कि भविष्य-कालके ज्ञानको मति कहते हैं, वर्त्तमान ज्ञानको बुद्धि कहते हैं, भूतकालके ज्ञानको स्मृति कहते हैं और तीनों कालकी बातें जाननेवाला ज्ञान ही प्रज्ञा कहलाता है। प्राणीके मत्यावरण-कर्मका क्षय होनेपर मति उत्पन्न होती है। उसके चार प्रकार हैं—(१) औत्पातिकी, (२) वैनयिकी, (३) कार्मणकी और ( ४ ) परिणामकी। यही चार भेद बुद्धिके हैं; पाँचवाँ भेद नहीं है। इनमें, जो वस्तु न पहले कभी देखी हो न सुनी, उसके विषयमें भी तत्काल जो बुद्धि उत्पन्न होती है, उसीको पण्डितोंने औत्पातिकी कहा है।

इसी औत्पातिकी बुद्धिके विषयमें श्रीक्षेमङ्कर जिनेश्वरने रोहककी कथा कह सुनायी। वह कथा इस प्रकार है :—

## रोहककी कथा।

उज्जयिनी-नामक एक बड़ी भारी नगरी है। उसमें अरिकेसरी नामके राजा रहते थे। उस नगरीके पासही एक बड़ी भारी शिला रखी हुई थी, जिसके निकट ही नटग्राम नामका एक छोटासा गाँव बसा हुआ था। उसमें रंगशूर नामका एक नट रहता था। उसके पुत्रका नाम रोहक था। वह बचपनसेही बहुतसी कलाओंमें निपुण हो गया था और बुद्धिमें बृहस्पतिके ही समान था। जब वह लड़का ही था, तभी उसकी माँ मर गयी थी, इसलिये उसके पिताने रुक्मिणी नामकी एक दूसरी स्त्रीसे विवाहकर लिया था। यह स्त्री यौवनके मदसे उन्मत्त

और स्वामीके सम्मानसे गर्वीली हो रही थी, इसलिये रोहककी वैसी सेवा-सम्हाल नहीं करती थी। इसपर नाराज होकर एक दिन रोहकने कहा,—"माता! तुम मेरे शरीरकी कुछ भी शुश्रूषा नहीं करती",इसलिये तुम्हारी कभी भलाई नहीं होगी।" यह सुन, रुक्मिणीने कहा,—"रे नाशन! तू गुस्सा क्यों करता है? तेरे रंज या खुशीकी मुझे परवा ही क्या है? तू मेरा क्या बिगाड़ लेगा?" उसकी ये अभिमान-पूर्ण बातें सुन, रोहकने अपने मनमें सोचा,—"मैं इसको ऐसी कोई पेच ढूंढ़ निकालूं, जिससे यह मेरे पिताके चित्तसे उतर जाये।" यही विचार कर, उसने एक दिन आधी रातके समय, एकाएक उठकर आवाज़ लगायी,—"पिताजी! पिताजी! अभी-अभी एक आदमी आपके घरसे बाहर निकल कर गया है।" यह सुनतेही घरके आँगनमें सोया हुआ उसका पिता जग पड़ा और पुत्रसे बोला,—"बेटा! तुम अभी उस दुष्ट मनुष्यको मुझे दिखला दो।" रोहकने कहा,—"पिताजी! वह तो एकबारगी छलांग मार, तड़पकर भाग गया।" यह सुनतेही रंगशूरका मन अपनी स्त्रीसे फिर गया और वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"क्या मेरी स्त्री पराये पुरुषसे फँसी हुई है? नहीं तो यह मामला क्या है? स्त्रियोंके यही ढंग हैं। कहा भी है, कि—

"रूवोहम्मियमयरधय पि पुहवीसर पि परिहरिउ।
इयरनरेऽवि पमिज्जइ, ही ही महिलाण अहमत्तं॥ १॥"

*अर्थात्— 'अपने रूपसे कामदेवको भी लजानेवाले पृथ्वीपतिको भी त्यागकर स्त्रियां पराये पुरुष पर अनुरक्त हो जाती हैं। ओह! इन स्त्रियोंकी यह कैसी नीचता है?'*

इस प्रकार विचार कर, रंगशूरने उस दिनसे अपनी स्त्रीसे बातें करनी भी बन्द कर दीं। इस बातसे बड़ी ही दुःखित होकर रुक्मिणीने अपने मनमें सोचा,—"मेरे स्वामी मुझसे नाराज क्यों हो गये? मैंने तो कभी इनकी कोई आज्ञा नहीं भङ्ग की! किसी पराये पुरुषसे कभी हँसकर बोली भी नहीं, फिर ये बिना किसी अपराधके ही मेरे ऊपर

क्यों नाराज हो गये?" इसी सोच-विचारमें तीन दिन बीत गये। इतनेमें उसे यह बात सूझ गयी, कि अवश्यही इसी लड़केने मेरे पतिका मन मेरी तरफ़से फेर दिया होगा, इसलिये अब मैं इसीकी ख़ुशामद करूँ,- जिससे मेरे पति मुझपर फिर प्रसन्न हो जायें। ऐसा विचारकर उसने एक दिन रोहकसे बड़ी मुहब्बत दिखलाते हुए कहा,—"बेटा! तुम अपने पिताको मेरे ऊपरसे क्रोध हटा देनेको कहो। मैं तुम्हारी दासी होकर रहूँगी, जो कहोगे, वही करूँगी।" यह सुनकर बुद्धिमान् रोहक राज़ी होगया। इसके बाद फिर एक दिन चाँदनी रातको रोहकने पितासे कहा,—"पिताजी! उठिये, उठिये, देखिये आज फिर वही पुरुष जाता नजर आता है।" यह सुन, पिताने कहा,—"कहाँ है, बेटा! मुझे दिखाओ, तो सही।" यह सुन, रोहकने उसे अपने शरीरकी छाया दिखला दी। यह देख, उसके पिताने कहा,—"अरे, यह तो आदमी नहीं, शरीरकी छाया है।" रोहकने कहा,—"पिताजी! मैंने तो उस दिन भी ऐसा ही पुरुष देखा था!" यह सुनकर, रंगशूरने मनमें सोचा,—"ओह! मैं नाहक़ एक लड़केकी बातमें आकर अपनी स्त्रीके विषयमें शङ्का रखने लगा और व्यर्थमें उसका अपमान किया!" यह विचार मनमें उत्पन्न होते ही उसका क्रोध शान्त हो गया और वह फिर पहलेकी तरह रुक्मिणीके साथ प्रीतिका वर्त्ताव करने लगा।

रोहक सदा अपने पिताके साथही भोजन किया करता था। यद्यपि उसकी माता उसपर भक्ति रखती थी, तथापि वह उसका विश्वास नहीं करता था।

एक दिन रंगशूर उज्जयिनी-नगरीको चला गया। उसके साथ ही रोहकने भी वहाँ जाकर सारी नगरीकी सैर की। जब वे दोनों शहरके बाहर चले आये, तब कोई काम याद आजानेसे रङ्गशूर फ़िर नगरमें चला गया। रोहक नगरीके बाहरही क्षिप्रानदीके तीरपर बैठ रहा। बैठे-बैठे उसने नदीकी रेतमें देव-मन्दिर आदिके सहित सारे नगरका चित्र अङ्कित कर डाला। इसके बाद राजमन्दिरकी रक्षा करनेकेलिये

आप द्वारपालकी तरह दरवाज़े पर खड़ा हो रहा। इतनेमें कुछ आद्मियोंको साथ लिये हुए उस नगरीका राजा घोड़ेपर सवार हो, उसी रास्तेसे गुजरने लगा। उसे देख, रोहकने बड़ी धृष्टताके साथ कहा,--"हे राजकुमार! क्या आप इस प्रासाद-श्रेणीसे सुशोभित नगरीको ध्वंस कर देना चाहते हैं, जो इधरसे घोड़ा हटाकर नहीं ले जाते?" यह सुन, उसको अङ्कित की हुई नगरीको देख, उसकी बुद्धिमानीसे आश्चर्यमें आकर राजाने कहा,—"यह लड़का कौन है?" उनके पास खड़े सेवकोंने कहा,—"महाराज! यह रङ्गशूर नटका बेटा रोहक है। है तो ज़रासा लड़का ही, पर बड़ा ही होशियार है।" यह सुन, राजाने अपने मनमें विचार किया,-"अच्छा, मै इस बालककी बुद्धिमानीकी परीक्षा करूँगा।" तदनन्तर पिताके आनेपर रोहक उसके साथही अपने घर चला आया।

एक दिन राजाने अपने सेवकोंको नट-ग्राममें भेजकर वहाँके लोगोंपर यह फ़र्मान जारी किया, कि चाहे जितना खर्च हो जाय, लेकिन मेरे रहनेके लिये एकही चीज़का एक महल तैयार कर डालो। यह हुक्मनामा सुन, रङ्गशूर वगैरह सभी बड़े-बूढ़े लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे और यह कार्य करनेमें असमर्थ होकर बड़ी देरतक विचार ही करते रहे। इतनेमें भोजनका समय होजानेके कारण रोता हुआ रोहक आकर बोला,--"पिताजी! चलो, मुझे भूख लगी है। मैं तुम्हारे बिना भोजन नहीं करूँगा।" यह सुन, रङ्गशूरने कहा,—"बेटा! थोड़ी देर ठहरो। राजाका बड़ा विकट हुक्मनामा आया है। इस समय उसीका विचार चल रहा है।" रोहकने पूछा,—"कैसा हुक्मनामा आया है?" लोगोंने कहा,—"उन्होंने कहला भेजा है, कि मेरे लिये एकही चीजका एक महल तैयार कराओ। इसलिये उनकी हुक्मकी तामील तो करनीही होगी।" यह सुन, रोहकने कहा 'अभी चलकर आप सबलोग खायें-पियें, पीछे मैं आप लोगोंको इसका जवाब दूंगा। इसके लिये इतनी चिंता की क्या आवश्यकता है।" यह सुन, गाँवके सबलोग खाने चले गये। खा-पीकर जब सब लोग फिर इकट्ठे हुए, तब उन्होंने रोहक-

को बुलवाया। रोहकने राजाके सेवकोके सामनेही कहा,—"हे राजपुरुष! तुम लोग अपने राजासे जाकर कहो, कि हमारे गाँवके पासही एक बड़ी ऊँची और लम्बी-चौड़ी शिला है। उस एकही शिलाका मैं राजमन्दिर तैयार करा दूँगा, पर इसके लिये आपको अक्षय धन भण्डार यहाँ भेज देना होगा। उसे भेज दीजिये, तो काम शुरू कर दिया जाय।" उसकी इस चतुराई-भरी बातको सुनकर, सबलोग उसकी बुद्धिमानी देख, बड़े हर्षित हुए। इसके बाद राजपुरुषोंने जाकर राजासे कहा,—"हे महाराज! एक बालकने आपकी बातका ऐसा जवाब दिया है।" वह जवाब सुनकर राजा भी बड़े विस्मित हुए।

एक दिन राजाने अपने एक नौकरके साथ एक बकरा भेजकर गाँववालोंको कहला भेजा, कि इसे हमेशा चारा-पानी देकर पालन करना होगा, पर देखना, यह नतो दुबला हो न मोटा, हमेशा जैसाका तैसाही बना रहे। जब मैं मागु, तब यह इसी दशामें मेरे पास लौटाया जाय। यह सुनकर लोगोंने फिर रोहकको बुलाकर पूछा, कि अब राजाके इस हुक्मकी तामील कैसे की जाये? रोहकने कहा,—"इसे यहीं रखो और हमेशा खिला-पिलाकर इसे भेड़ियेकी सूरत दिखला दिया करो।' इससे यह न तो बहुत मोटा होगा, न दुबला, इसी तरह राजाके इस हुक्मकीभी पूरी तामील हो गयी।

इसके बाद राजाने एक मुर्गा भेजकर हुक्म दिया, कि इसे अकेला ही लड़ाओ। यह सुन, सब लोग विचार करने लगे, कि यह अकेला भला कैसे लड़ेगा? तब रोहकने कहा,—"इस महज मामूली बातके लिये तुम लोग क्यों चिन्ता करते हो?" उन्होंने कहा,—"तब तुम्हीं इस कामको पूरा करो।" रोहकने कहा,—"इसके सामने एक बड़ा सा आइना लाकर रख दो। यह उसमें अपनी परछाँई देख, उसे दूसरा मुर्गा समझ कर आपही लड़ पड़ेगा। यह सुन, उन लोगोंने ऐसाही किया और राजाकी इस आज्ञाका भी पालन हो ही गया।

इसके बाद राजाने एक गाड़ीमें भर कर तिल भिजवाकर कहलाया,

कि इन तिलोंको जिस मापसे भरना, उसी मापसे तेल भरकर देना होगा। यह सुनकर लोगोंने छोटा होनेपर भी रोहकको बुलवाया और उससे यह हाल कह सुनाया। उसने कहा,—"एक बहुत दिनोंका पुराना तेलका बर्तन मँगवाकर उसीमें इन तिलोंको भरो और फिर उसी मापसे तेल भरकर दे देना।" लोगोंने ऐसा ही किया। इससे राजा बड़ेही खुश हुए।

इसके बाद राजाने एक दिन हुक्म दिया,—"अपने गाँवकी नदीकी रेतकीरस्सी बटकर धानका बोझा बाँधनेके लिये भेज दो।" इसके जवाब में रोहकने कहला भेजा,—"हमें तो राजाका जो कुछ हुक्म हो उसका पालन करना ही चाहिये, पर वह रस्सी कितनी बड़ी होनी चाहिये, यह मालूम करनेके लिये आप वैसेही एक पुरानी रस्सीका नमूना भेज दीजिये, तो नयी रस्सियाँ बटकर भेज दी जायगी।" यह जवाब पाकर राजा बड़ेही खुश हुए।

तदनन्तर एक दिन राजाने एक बहुत बूढ़ा और बीमार हाथी भिजवाकर कहला भेजा कि इस हाथीको खूब जतनसे रखो और मुझे इसका समाचार बराबर भेजते रहो, लेकिन यदि यह किसीदिन मर जाये, तो भी मुझसे यह आकर न कहना कि यह मरगया।" यह सुनकर लोगोंने उस हाथीको रख लिया। बड़ी हिफाजतसे रखनेपर भी वह हाथी मर गया। तब रोहकने गाँवके लोगोंसे कहला भेजा,—"हे स्वामी! आज वह हाथी न तो चारा खाता है, न पानी पीता है, न करवट बदलता है, न आँखे खोलता है, न साँसे लेता है।" यह सुन राजाने पूछा,—तो क्या वह मर गया!" गाँववालोंने कहा,—"यह तो हुजूर जानें, हमलोग नहीं जानते।" यह जवाब पाकर राजा चुप हो गये।

एक दिन राजाने फिर आज्ञा जारी की, कि तुम्हारे गाँवमे जो मीठे जलवाला कुआँ है, उसे यहाँ ले आओ। इसपर रोहकने निवेदन किया,—"महाराज! यह गवई-गाँवका कुआँ बड़ाही डरपोक है, इसलिये आप वहाँसे एक शहरी कुआँ यहाँ भेज दे, तो उसीके साथ हम

लोग इस कुऐंको रवाना कर देंगे ।" यह सुनकर, राजाने सोचा, कि इसकी बुद्धितो बड़ी ही तीव्र है । यह कोई मामूली बुद्धिमान नहीं है ।

तदनन्तर एक दिन राजाने कहला भेजा,—"हेग्रामवासियो ! तुम्हारे गाँवकी उत्तर दिशामें जो वन है, उसे गाँवके दक्खिन कर दो ।" इसपर रोहकने जवाब दिया, कि गाँवको वनके उत्तर बसा दीजिये, बस वह वन गाँवके दक्खिनमें आ जायगा ।" यह सुन, राजाने विचार किया, कि यह तो बड़ाही होशियार है ।

फिर एक दिन राजाने हुक्म दिया, कि विना आगके सहारे खीर पकाकर मेरे पास भेज दो । यह सुन, रोहकने जङ्गलके कण्डोंके बीचमें बड़े-यत्नसे खीरका बर्तन रख दिया । उन कण्डोंकी गरमीसे खीर पककर तैयार हो गयी । रोहकने उसे ही राजाके पास भिजवा दिया । इस तरह राजाके इस हुक्मकी भी तामिल हो गयी ।

इसके बाद राजाने गाँवके लोगोंको कहला भेजा,—"तुम्हारे गाँवमें जो ऐसा बुद्धिमान मनुष्य है, उसे इस प्रकार परस्पर विरुद्ध व्यवस्था करके मेरे पास आनेको कहो । वह व्यवस्था इस प्रकार है:— वह स्नान करके नहीं आये ; पर साथही शरीरको मलिन बनाये हुए भी नहीं आये । वह नतो किसी वाहन पर चढ़ा हुआ आये, न पैदल आये ; न टेढ़ी राह आये, न सीधी राह , न रातको न आये; न दिनको न कृष्ण पक्षमें आये, न शुक्ल-पक्षमें ; न छायामें आये, न धूपमें ; न कुछ भेटके लिये ले आये न खाली हाथ आये ।" इस प्रकारकी आज्ञा पाकर रोहकने जलसे शरीरको धोया सही; पर खूब देह मलकर स्नान नहीं किया । वह एक बकरे पर सवार होकर चला, जिससे उसके पैर ज़मीनसे छू जाते थे । अमावास्याके उपरान्त प्रतिपदाके दिन, सन्ध्याके समय सिरपर चलनी रखे, गाड़ीको लीकके बीचसे चलता हुआ वह हाथमें एक मिट्टीकापिण्ड लिये हुए राजसभामें आ पहुँचा । राजाको प्रणाम कर वह उनके सामने बैठ गया और मिट्टीका वह पिण्ड उनके पास रख दिया । राजाने यह पूछा,—"यह क्या ? उसनेकहा, यह इस जगत्की जननी

मृत्तिका है!" राजाने फिर पूछा,—"तुम यहाँ कैसे आये?" उसने कहा,—"आपने जिस तरह आनेका हुक्म दिया था, वैसेही आया।" यह कह उसने राजासे सब कुछ विस्तारके साथ कह सुनाया। उसने कहा,—महाराज! मैंने शरीरको नहलाया तो सही; पर उसका मैल नहीं धोया, इसलिये नहाया भी और मलीन भी बना रहा। एक नन्हेसे बकरे पर सवार होकर आया इसलिये मेरे पैर ज़मीनको छू रहे थे, अतएव मैं नतो सवारी पर था, न पैदल था। अमावस्याके ही दिन, शामको प्रतिपदा लगती थी, इसीलिये मैं आज आया; क्योंकि यह न तो शुक्ल-पक्ष हुआ न कृष्णपक्ष। साँझको आया इसलिये न तो यह दिन हुआ, न रात हुई। गाड़ीकी लीकके बीचो बीच आया, इसलिये न सीधी राह आया, न टेढ़ी राह। हाथमें मिट्टीका पिण्ड लेकर आया, इसलिये न ख़ाली हाथ हूँ, न भेंट लिये साथ हूँ। सिरपर चलनी रखे आया हूँ। इसलिये न धूपमें रहा, न छाया में।" यह सुनकर राजाको मालूम हो गया, कि इसने मेरे हुक्मकी पूरी-पूरी तामील कर डाली। तब राजाने उसे ख़ुशीसे इनाम दिया और उसका आदर करते हुए सभामें उसकी इस प्रकार बड़ाई की,—"अहा! इस महात्माका बुद्धि-वैभव देखकर तो चित्तमें यही विचार उत्पन्न होता है, कि यह सुभाषित बहुत ही ठीक है,

'वाजिवारण लोहानां, काष्ट-पाषाण-वाससाम्।
नारी-पुरुष-तोयानां, दृश्यते महदन्तरम्॥ १॥

*अर्थात्—घोड़े-घोड़ेमें, हाथी-हाथीमें, लोहे-लोहेमें, लकड़ी-लकड़ीमें, पत्थर-पत्थरमें, वस्त्र-वस्त्रमें, नारी-नारीमें, पुरुष-पुरुषमें, और जल-जलमें, भी बड़ा फर्क दिखाइ देता है।*

इसके बाद राजाने उस दिनके लिये रोहकको पहरे पर नियुक्त किया और आप सोने चले गये। रातका पहला पहर बीत जानेपर राजाकी नींद टूटी और उन्होंने देखा, कि रोहक सोया हुआ है। यह देख, उन्होंने पूछा,—"क्यों रोहक! तुम सोये हो, या जागे हुए हो?" यह सुन,

नींदसे जगकर रोहकने झटपट जवाब दिया,—"महाराज ! मैं जगा हुं, पर ज़रा एक बातके विचारमें पड़गया हूँ ।" राजाने पूछा,—"तुम किस विचारमें पड़े हुए थे ?" उसने कहा,—"बकरियोंकी लेड़ीको इस तरह गोल-गोल कौन बनाता है ? राजाने पूछा,—"तुम्हारे विचारसे इसका क्या निर्णय हुआ ?" उसने कहा,—"बकरीके पेटमें वायु (संवर्त्त वायु) की कुछ ऐसी ही प्रबलता है, जिससे लेंड़ियाँ गोल हो जाती हैं ।" इसके बाद दूसरे पहर नींद टूटने पर भी राजाने रोहकसे पूछा,—"अरे! क्या तुम्हें नींद आ गयी ?" यह सुन, उसने सावधान होकर कहा,—"स्वामी ! मुझे नींद तो आती ही नहीं ।" राजाने पूछा,—"तब मेरे पुकारनेके इतनी देर बाद तुम क्यों बोले ?" उसने कहा,—"महाराज ! मैं कुछ सोच-विचारमें पड़ा हुआ था " राजाने पूछा,—"क्या सोच रहे थे ? उसने कहा,—"महाराज मैं यही सोच रहा था, कि पीपलके पत्तेका नीचे वाला हिस्सा मोटा होता है या ऊपरवाला !" राजाने पूछा,—तुमने इसका क्या यिर्णय किया । उसने कहा,—"मेरे विचारसे ये दोनों ही भाग एकसे होते हैं ।" यह सुन, राजा फिर सो गये । तीसरे पहरमें फिर उन्होंने जागते ही पूछा,—"क्यों जी ! जगे हो या ऊँघ रहे हो ?" उसने कहा,—"जगा हूँ, पर कुछ विचारमें पड़ा हुआ हूं ।" राजाने पूछा,—"क्या विचार कर रहे हो ?" उसने कहा,—"मैं यही सोच रहा था, कि गिलहरीका शरीर बड़ा होता है या पूँछ बड़ी होती है ? और उसके शरीर पर श्यामता अधिक है या श्वेतता ?" राजाने पूछा, आखिरकार, तुमने क्या निर्णय किया ?" उसने कहा मैंने यही निश्चय किया है, कि उसका शरीर और पूँछ, दोनों बराबर होते हैं और उसकी स्याही सफ़ेदी भी एकसी है ।" इसके बाद राजा फिर सो रहे । चौथे पहरके अन्तमें उनकी नींद टूटी । उस समय रोहक नींदमें बेसुध पड़ा था । यह देख, राजाने उसे एक काँटेसे गोंद दिया । तुरत ही उसकी नींद खुल गयी । राजा ने कहा,—"क्यों ? खूब नींद आयी थी न ?" उसने कहा,—"हे स्वामी !

चिन्तातुर मनुष्योंको नींद कहांसे आ सकती है? मैं विचारमें मग्न हो रहा था।" राजाने कहा,—"अबके तुम किस विचारमें थे?" उसने कहा,-"हे स्वामी! मैं यही सोच रहा था, कि राजाके कितने बाप हैं?" राजा ने कहा"अरे! तू क्या बकता है?" उसने कहा,—"राजन्! मैं सच कहता हूँ, आपके पाँच पिता हैं।" यह सुन, क्रोध और आश्चर्यके साथ राजाने कहा,—"रे बकवादी! बोल, मेरे पाँचों बाप कौन-कौन हैं?" उसने कहा—-"एक तो राजा, दूसरा कुबेर, तीसरा धोबी, चौथा बीछूं, पाँचवाँ चाण्डाल। ये ही पाँचों आपके पिता हैं।" यह सुन राजाने पूछा,—"अच्छा, रोहक! तू यह बता, कि यह बात तुझे कैसे मालूम हुई, कि मेरे पाँच पिता हैं?" उसने कहा,—"आपके गुणोंसे ही जाना।" राजा ने पूछा, मेरे किन-किन गुणोंसे तुझे मालूम हुआ, उसने कहा—"महाराज! आप नीतिके साथ राज्यका पालन कर रहे हैं, इससे तो मालूम होता है, कि आप राजाके पुत्र हैं। जिस पर आप प्रसन्न होते हैं, उसे बहुतसा धन दे डालते हैं। इसलिये मालूम होता है, कि आपके पिता कुबेर हैं। आप जिस पर नाराज होते हैं, उसका सर्वस्व छीन लेते हैं, इसलिये तो मालूम होता है, कि आपके पिता धोबी रहे होंगे। आपने जब मुझे काँटेसे गोदा, तब मैंने सोचा, कि आपके पिता बिच्छू हों तो आश्चर्य नहीं और आप अत्यन्त कोप करते हैं, इसलिये आपके पिताका चाण्डाल होना भी सम्भव है।" यह सुन, राजाने इस बातका निश्चय करनेके लिये अपनी मातासे पूछा, तब उन्होंने कहा,—"हे पुत्र! ऋतु-स्नान करनेके बाद मैंने एक समय धोबी, चाण्डाल और बिच्छू देखा था।" यह सुन, रोहककी बात सच समझ कर राजाने आश्चर्यान्वित हो, उसकी बुद्धिकी बड़ी प्रशंसा की और उसे बड़े आदरके साथ अपने पाँच सौ मन्त्रियोंमें मुख्य बना लिया। इसके बाद उसकी बुद्धिके प्रभाव से बड़े-बड़े बलवान् राजा भी अरिकेसरी राजा के वशमें हो गये।

रोहक—कथा समाप्त।

"दूसरी वैनयिकी बुद्धि है। यह गुरुकी विनय करनेसे प्राप्त होती है। निमित्तादिक शास्त्रोंमें जो सुन्दर विचार उत्पन्न होते हैं, उनमें गुरुकी विनयही प्रमाणभूत है। घट आदि पदार्थ बनाने और चित्र अङ्कित करने आदिके शिल्प-ज्ञानको तीसरी कार्मिकी बुद्धि कहते हैं। परिणामके वश-वयके परिपाकसे-वस्तुका निश्चय करानेवाली जो बुद्धि होती है, वही चौथी परिणामिकी बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धिके बहुतसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें पाये जाते हैं; पर ग्रन्थ बड़ा हो जानेके ही भयसे, हमने उन्हें यहाँ नहीं लिखा। इन चार प्रकारकी बुद्धियोंको अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान कहा जाता है। इस मतिज्ञानसे प्राणी समग्र श्रुतज्ञानका अभ्यास कर सकते हैं और श्रुत-ज्ञानसे तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होता है। इस विषयमें आगममें कहा हुआ है, कि—

"उड्ढमहतिरियलोए, जोइसवेमाणिया य सिद्धा य।
सव्वो लोगालोगो, सि ( स ) ज्झायविंउस्स पच्चक्खो ॥ १ ॥"

*अर्थात्— "उर्द्ध-लोक, अधोलोक, तिर्छलोक, ज्योतिषी, वैमानिक, सिद्ध और सर्व लोकालोक—यह सब स्वाध्याय ( श्रुतज्ञान ) जाननेवालेको प्रत्यक्ष होजाता है। यह दूसरा श्रुतज्ञान कहलाता है।"*

"जिसके द्वारा प्राणीको कितनेही जन्मोंका ज्ञान प्राप्त हो जाता है और जिससे वह सब दिशाओंकी अमुक अवधि-पर्यन्त जानता और देखता है, वह तीसरा अवधि-ज्ञान कहलाता है। जिसके द्वारा संज्ञी-जीवोंके मनोगत परिणामका ज्ञान होता है, वह चौथा मनः पर्यवज्ञान कहा जाता है। और जिस ज्ञानसे किसी स्थानपर किसी तरहकी ठोकर नहीं लगती—किसी तरहकी भूल-चूक नहीं होती, वही सिद्धि-सुखका देनेवाला केवलज्ञान कहलाता है।"

इस प्रकार पाँच प्रकारके ज्ञानकी व्याख्यासुन, जिनेश्वरको नमस्कार कर, अपने घर आकर वज्रायुध चक्रवर्त्तीने अपने सहस्रायुध नामक पुत्र-को राज्यपर बैठा दिया और स्वयं चार हज़ार राजाओं और सात सौ पुत्रोंके साथ क्षेमङ्कर तीर्थङ्करसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद

गीतार्थ हो, पृथ्वीपर अकेले विहार करते हुए वे वज्रायुधमुनि सिद्धि-पर्वत नामक श्रेष्ठ गिरिके ऊपर आये। वहाँ रमणीय शिलातलयुक्त वैरोचन-स्तम्भके ऊपर वे एक वर्षतक मेरुकी तरह निश्चल प्रतिमामें रहे। इसी समय अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवके दोनों पुत्र, मणिकुम्भ और मणिध्वज, जो संसारमें परिभ्रमण कर, उस समय देवत्वको प्राप्त हो गये थे, उसी स्थानपर आये। पूज्य महर्षि वज्रायुधको देख, उन्हें दाह पैदा हुआ, इस लिये वे तरह-तरहके उपद्रव करने लगे। पहले तो उन्होंने तीखे दाँत-वाले भयंकर और मोटी पूँछवाले सिंह तथा बाघका रूप बनाकर महर्षि-को डराया। इसके बाद हाथीका रूप बना उन्होंने मुनिपर दाँतसे भी चोट की और फन फैलाये हुए भयंकर साँप और साँपिनका रूप धारण कर उन्हें कई बार काट भी खाया। अन्तमें पिशाच-पिशाचिनीका भया-वना रूप बना, उन दुष्ट देवोंने मुनीश्वरको तरह-तरह उपद्रव करके सताया; परन्तु उनकी किसी हरकतसे मुनिको तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ।

इसी समय देवेन्द्रकी अग्रमहिषियाँ, रम्भा और तिलोत्तमा, वज्रायुध मुनिको प्रणाम करने आयीं। उन्हें आते देखकरही वे दुष्ट देव भाग गये। उन्हें भागते देख, इन्द्रकी उन पत्नियोंने उन्हें डरानेके लिये खूब डाँट-फटकार बतायी। इसके बाद परिवार सहित देवाङ्गना रम्भा, मुनिके निकट, बड़े भक्तिभावसे हाव-भावादि विलासके साथ मनोहर नृत्य करने लगी और तिलोत्तमा अपने परिवारके साथ सातों सरों और तीनों ग्रामोंसे युक्त उत्तम सङ्गीत गाने लगी। इसके बाद वे दोनों देवियाँ परिवार-सहित मुनिको प्रणाम कर, अपने-अपने स्थान को चली गईं। वज्रायुध मुनीश्वर अति दुष्कर ऐसी वार्षिक प्रतिमाको अङ्गीकार कर चारों ओर घूमते हुए पृथ्वी-मण्डलपर विहार करने लगे। एक दिन क्षेमङ्कर जिनेश्वरके मोक्षको प्राप्त हो जानेके बाद वे मुनि, राजा सहस्रायुधके नगरमें आये। वज्रायुध मुनिके आगमन-का वृत्तान्त श्रवण कर, सहस्रायुध राजा बड़ी धूमधामके साथ उनके

पास आये और उनकी वन्दना की। उनसे धर्मदेशना श्रवणकर उन्हें प्रतिबोध प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने शतबल नामक पुत्रको राज्यपर बैठाकर आप उन्हीं मुनिसे दीक्षा ले ली। क्रमशः वे भी गीतार्थ हो गये। इसके बाद वे अपने पिताके परिवारमें सम्मिलित हो गये और दोनों पिता-पुत्र विविध प्रकारकी तपस्याएँ करते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे। अन्तमें वे दोनों मुनि ईषत्प्राग्भार नामक पर्वतपर आरोहण कर, वहीं पादपोगम-अनशन करने लगे। अनुक्रमसे शुभध्यानसे सब कर्मोंका क्षय कर, वज्रायुध और सहस्रायुध—ये दोनों ही मुनीश्वर नवें ग्रैवेयकमें जाकर देव हुए।

# पाँचवाँ प्रस्ताव।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, पुष्कलावती नामक विजय में, पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसमें नीति, कीर्त्ति और जयलक्ष्मीके मन्दिर-स्वरूप घनरथ नामके तीर्थङ्कर राजा रहते थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पहलीका नाम प्रीतिमती और दूसरीका नाम मनोहरी था। नवें ग्रैवेयकमें रहनेवाला वज्रायुधका जीव, इकतीस सागरोपमका आयुष्य पूर्ण कर, वहाँसे च्युत हो, उनकी पहली रानी प्रीतिमतीकी कोखमें आया। उस समय उसकी माताने मेघका स्वप्न देखा। सहस्रायुधका जीव भी वहाँसे च्युत हो, दूसरी रानीकी कोखमें आया। उस समय रानीने भी रथका स्वप्न देखा। क्रमसे समय पूरा होने पर दोनों रानियोंके गर्भसे शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुए। क्रमसे उनके नाम मेघरथ और दृढ़रथ रखे गये। दोनों राजकुमार शैशवावस्थाको पार कर, अपनी विनय शीलता और बुद्धिमत्ताके प्रभावसे कलाचार्यके निकट रहकर कलाओंकी शिक्षा प्राप्त की। सब कलाएँ सीखने पर वे दोनों राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त हुए और अपनी सुन्दरताके आगे कामदेवको भी नीचा दिखाने लगे। इसी समय सुमन्दिर नामक नगरके स्वामी, राजा निहतारिकी प्रियमित्रा और मनोरमा नामकी दो पुत्रियोंसे मेघरथका ब्या हुआ और उन्हीं निहतारिराजाकी छोटी लड़की सुमति, कुमार दृढ़रथको ब्याही गयी। मेघरथकी स्त्रियों-प्रियमित्रा और मनोरमाके नन्दिषेण और मेघसेन नामक दो पुत्र हुए

और दृढरथको अपनी स्त्री सुमतिसे रथसेन नामका एक पुत्र हुआ । क्रमसे लड़कपन पारकर उन तीनों राजकुमारोंने सब कलाओंका अभ्यास किया।

एक दिन राजा घनरथ, अपने पुत्रों और पौत्रोंके साथ, सिंहासनको अलंकृत करते हुए राजदरबारमें बैठे हुए थे । इसी समय मेघरथने सब कलाओंमें निपुण अपने पुत्रोंसे कहा,—"प्यारे पुत्रो ! तुम लोग अपनी-अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलानेके लिये परस्पर प्रश्नोत्तर करो।" यह सुन, छोटे लड़केने प्रश्न किया:—

"कथं सबोध्यते ब्रह्मा ?, दानार्थे धातुरत्र कः ?
कः पर्यायश्च योग्यानां ? को वाऽलंकरणं नृणाम् ? ॥ १ ॥

*अर्थात्*—"ब्रह्माका सम्बोधन क्या है ? दानके अर्थ में किस धातुका प्रयोग होता है ? योग्य का पर्याय क्या है ? और मनुष्यों का अलंकार कौनसा है" ?

यह सुन, कुछ देर विचार कर दूसरे पुत्रने जवाब दिया—कलाभ्यासः। [ अर्थात् ब्रह्माका सम्बोधन है 'क', दानके अर्थमें 'ला' धातु का प्रयोग होता है, योग्यका पर्याय है 'अभ्यास' और मनुष्योंका अलङ्कार है—कलाभ्यास। ] इसके बाद दूसरे लड़केने पूछा,—

"दण्डनीतिः कथं पूर्वं ? महाखेदे क उच्यते ?
कोऽबलाना गति-र्लोके-पालः क. पचमो मतः ? " ॥

*अर्थात्*—"प्रथम दण्डनीति कैसी थी ? बहुत बड़ा खेद प्रकट करनेवाला कौनसा शब्द है ? स्त्रियों की गति कौन है ? पाँचवाँ लोक पाल कौन कहलाता है ।"

यह सुन, बड़े बेटेने उत्तर दिया,— "महीपतिः"। [ अर्थात्—प्रथम युगलिकके समयमें दण्डनीति 'म' मकारवाली ही थी, महाखेद प्रकट करनेवाला शब्द 'ही' है, स्त्रियोंकी गति पतिही है और पाँचवां लोक-पाल 'महीपति' अर्थात् राजा है। ]

इसके बाद बड़े बेटेने प्रश्न किया:—

"किमाशीर्वचनं राज्ञां ? का शम्भोस्तनुमण्डनम् ?
क कर्ता सुख दुःखानां ? पात्रं च सुकृतस्यकिम् ? "

*अर्थात्—"राजाओंको क्या कहकर आशीर्वाद दिया जाता है ? महादेवके शरीरका शृंगार कौनसा है ? सुख—दुखका कर्त्ता कौन है ? पुण्यका ठीक-ठीक निवास किसमें है ?"*

यह सुन, और कोई उन्हें उत्तर नहीं देसका, इसलिये मेघरथही बोल उठे,—"जीवरक्षाविधिः।" [ अर्थात्—राजाओंको 'जीव'—तुम जिओ—ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया जाता है। महादेवके शरीरका भूषण 'रक्षा' यानी राख है। सुखदुःखको कर्त्ता विधि, यानी विधाता है। और पुण्यका स्थान'जीवरक्षाविधि' यानी जीवोंकी रक्षाका उपाय करना है। ]" फिर मेघरथनेही प्रश्न किया,—

"सुखदा का शशांकस्य ? मध्यं च भुवनस्य क ?
निषेधवाचक को वा ? का संसार-विनाशिनी ?

*अर्थात्—"चन्द्रमाकी कौनसी वस्तु सुखदायिनी है ? भुवनके मध्यमें क्या है ? निषेधवाचक शब्द कौनसा है ? और संसारका विनाश करनेवाली कौनसी वस्तु है ?"*

इसका जवाब भी किसीसे देते न बना । तब राजा घनरथनेही कहा,— 'भावना' [ अर्थात्—चन्द्रमाकी 'भा' यानी कान्ति सुख देने वाली है । 'भुवन' इस तीन अक्षरोंवाले शब्दके बीचमें 'व' है। निषेध-वाचक शब्द है 'ना'। और संसारका नाश 'भावना' ही करती है। ]

इस प्रकार उन लोगोंने कुछ देरतक प्रश्नोत्तरोंसेही दिल बहलाया। इसी समय एक गणिका वहाँ आकर बोली,— "महाराज ! मेरे पास यह जो मुर्ग़ा है, वह किसी दूसरे मुर्ग़ेसे हरगिज़ नहीं हार सकता। यदि किसीके मनमें अपने मुर्ग़ेकी ताक़तका घमण्ड हो, वह अपना मुर्ग़ा मेरे पास ले आये और मेरे मुर्ग़ेके साथ लड़ाकर देख ले। जिस किसी

का मुर्ग़ा मेरे मुर्ग़ेको हरा देगा, उसे मैं लाख अशर्फियाँ इनाम दूँगी। साथही जिसका मुर्ग़ा हार जायगा, उससे मैं भी लाख अशर्फियाँ ले लूँगी।" यह सुनकर मनोरमा रानीने राजासे हुक्म लेकर अपनी दासीसे अपना मुर्ग़ा मँगवा लिया और उस गणिकाकी शर्त कबूल कर ली। दोनों मुर्ग़ें आमने-सामने कर दिये गये— दोनों एक दूसरेसे गुथ गये। उस समय चोंच और पैरोंसे युद्ध करते हुए उन दोनों मुर्ग़ों की सब सभासदोंने बड़ी प्रशंसा की। इतनेमें, तीर्थङ्कर होनेके कारण गर्भवासके ही समयसे तीनों कालका ज्ञान रखनेवाले राजा घनरथने अपने पुत्र मेघरथसे कहा,—"पुत्र! ये दोनों मुर्ग़े चाहे ज़ितनी देरतक लड़ते रहें, पर इनमेंसे कोई हार नहीं सकता।" यह सुन मेघरथकुमार ने पूछा,— "इसका क्या कारण है?" तब तीनों ज्ञानके धारण करने वाले राजाने कहा,—

"इसी जम्बूद्वीपमें, भरतक्षेत्रकेही अन्दर, रत्नपुर नामक नगरमें धनदत्त और सुदत्त नामके दो बनिये रहते थे, जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी। वे दोनों बैलों पर माल लादे, भूख-प्यासकी मार सहते हुए, एकही साथ बनिज-ब्यौपार करते चलते थे: परन्तु दोनोंही मिथ्यात्वके कारण मूढ़ हो रहे थे, इसलिये कमती माप-तौल करके लोगों को ख़ूब ठगा करते थे। ऐसा करने पर और बहुत कोशिश करते हुए भी वे बहुत कम माल पैदा करते थे। एक समयकी बात है, कि उन दोनोंके दिलोंमें गाँठ पड़ गयी और वे परस्पर लड़ाई झगड़ा करते, एक दूसरेको मारते-कूटते हुए आर्त्तध्यानसे मृत्युको प्राप्त होकर सुवर्णकूला नदीके तीर पर काँचन-कलश और ताम्रकलश नामके दो जंगली हाथी हुए और अलग-अलग झुण्डोंके सर्दार बन बैठे। वहाँ भी वे अपना झुण्ड बढ़ानेके लिये लोभके मारे परस्पर युद्ध करते हुए मर गये और अयोध्यामें नन्दिमित्रके घर पाड़े (भैंसके बच्चे) हुए। उन्हें दो राजकुमारोंने ख़रीदा और परस्पर लड़ा दिया। उसी युद्धमें मरकर वे उसी नगरमें बकरे होकर पैदा हुए। इस जन्ममें भी उनका युद्ध जारी रहा

और वे सींगसे एक दूसरेको चोट करते हुए मर कर क्रोधके मारे लाल-लाल नेत्रवाले मुर्गेके रूपमें उत्पन्न हुए। इसलिये, बेटा! इन दोनोंमेंसे कोई हारनेवाला नहीं है।"

यह सुन, मेघरथकुमारने भी अपने अवधिज्ञानसे इस बातकी यथार्थता जान ली और पितासे कहा,—"पिताजी! ये दोनों मुर्गे परस्पर एक ईर्ष्या रखते हैं, यही नहीं है, इन पर दो विद्याधरोंकी छाया भी है। इसका कारण मैं आपको बतलाता हूँ, सुनियेः—

"इसी भरतक्षेत्रमें वैताढ्य पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें सुवर्णनाभ नामका नगर है। उसमें गरुडवेग नामक विद्याधरोंका राजा रहता था। उसके चन्द्रतिलक और सूरतिलक नामके दो पुत्र थे। एक दिन उन दोनोंने आकाशगामिनी विद्याके सहारे शाश्वती जिनप्रतिमाओंकी वन्दना करनेके निमित्त मेरु पर्वतके शिखरकी सैर की। वहाँ सोनेकी शिलापर बैठे हुए सागरचन्द्र नामक चारण श्रमण मुनीश्वरको देख, दोनों राजकुमारोंने बड़े हर्षके साथ उनकी वन्दना की। इसके बाद उन्होंने मुनिसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त पूछा। मुनिने ज्ञानसे सब हाल मालूम कर कहा,—

"धातकीखण्ड नामक द्वीपके ऐरवत-क्षेत्रमें वज्रपुर नामक एक नगर है। वहाँ अभयघोष नामके एक राजा रहते थे। उनकी रानीका नाम सुवर्ण-तिलका था। उन्हींके गर्भसे उत्पन्न राजाके जय और विजय नामके दो पुत्र थे। उन्हीं दिनों सुवर्ण नगरके स्वामी शंख नामक राजाकी रानी पृथ्वीदेवीके गर्भसे उत्पन्न पृथ्वीसेना नामकी एक सुन्दरी राजकुमारी थी। उसे शंखराजाने राजा अभयघोषके पास स्वयंवराके रूपमें भेजा। राजा अभयघोषने बड़ी खुशीसे उसके साथ विवाह कर लिया। एक बार वसन्त ऋतुमें राजा, फूले-फूले फूलोंकी बाहरसे मनोहर दिखाई देनेवाले उद्यानमें रानीके साथ क्रीडा करनेको गये। वहाँ रानी पृथ्वीसेनाने इधर-उधर घूमते-फिरते दान्तमदन नामक एक मुनीको देखा। उन्हींसे धर्म-देशना श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्त कर,

राजाकी आज्ञा लेकर रानीने प्रवृज्या अंगीकार कर ली। इसके बाद उद्यानकी शोभा देखते हुए राजा नगरमें आये।"

"एक दिन छद्मस्थ वेशमें विहार करते हुए अनन्त नामक तीर्थङ्कर राजाके घर आये। उस समय राजाने उनको प्रासुक अन्न-पान (वहराये) दिये, देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये। इसके बादही तीर्थङ्करको केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब राजा अभयघोषने उनके पास जाकर अपने दोनों पुत्रके साथ ही प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। इसके बाद अभयघोष राजर्षिने बीस स्थानकोंकी आराधना कर तीर्थङ्कर नाम-कर्म उपार्जन किया। अनुक्रमसे दोनों पुत्रोंके साथ कालधर्मको प्राप्त होकर वे अच्युत देवलोकमें जाकर देव हुए। वहाँसे च्युत होकर अभय घोष राजाका जीव तो हेमाँगद राजाके पुत्र घनरथके रूपमें प्रकट हुआ और जय-विजयके जीव अच्युत कल्पसे च्युत होकर तुम दोनोंके शरीरमें आ टिके हैं। " पिताजी ! मुनिने जब इस प्रकार चन्द्रतिलक और सूरतिलकको उनके पूर्व भवकी कथा सुनायी, तब वे दोनों विद्याधर आपके दर्शनोंके लिये बड़े उत्सुक हुए और यहाँ आ पहुँचे। कुछ देर तक तो वे दोनों विद्याधर-कुमार इन मुर्गोंकी लड़ाईका तमाशा देखा किये, इसके बाद वे अपनी विद्याके प्रभावसे इन मुर्गोंके अन्दर प्रविष्ट हो, अपनेको छिपाये हुए, यहीं मौजूद हैं।"

जब मेघरथने ऐसा कहा, तब वे दोनों विद्याधर झटपट उन मुर्गों के शरीरसे बाहर निकल आये और घनरथ राजाके पैरों पर गिर पड़े। इसके बाद अपने पूर्व जन्मके पिताको प्रणाम कर, वे दोनों अपने स्थान को चले गये और वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण संयम ग्रहण कर, दुष्कर तप करते हुए मोक्षको प्राप्त हुए।

इधर वे दोनों मुर्गे, अपने पूर्व भवोंका हाल सुन, अपने पापोंके लिये मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देते हुए, राजाके पैरोंपर गिर पड़े और अपनी भाषामें बोल उठे,—"प्रभो ! अब हमलोग क्या करें ? "
तब राजाने उन्हें समकित-सहित अहिंसाधर्मका उपदेश किया। उन्होंने

सच्चे दिलसे अहिंसा-धर्म स्वीकार कर लिया और उसीका पालन करते हुए मरकर भूताटवीमें जाकर ताम्रचूल और स्वर्णचूल नामक भूतदेव हुए। वहाँसे वे विमानपर चढ़कर अपने उपकार करनेवाले घनरथ राजाके पास आ, उनकी वन्दना और स्तुति कर, उनकी आज्ञा पाकर अपने स्थानको चले गये।

घनरथ राजाने बहुत दिनोंतक सुख-पूर्वक राजलक्ष्मीका भोग किया। एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर उनसे कहा,—"हे स्वामी! अब धर्म-तीर्थका प्रवर्त्तन करो।" यह सुन, अपने ज्ञानसे दीक्षाका समय आया जान, सांवत्सरिक दान कर, पुत्र मेघरथको राज्य पर बैठाकर उन्होंने दीक्षा ले ली और घाती कर्मोंका क्षय कर, केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुए वे पृथ्वी-मण्डल पर विचरण करने लगे।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने छोटे भाई दृढ़रथके साथ, अपनी दोनों स्त्रियोंको सङ्ग लिये हुए, देवरमण नामक उद्यानमें आये। वहाँ वे लोग एक अशोक-वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। इतनेमें बहुतसे भूत उनके पास आकर नाटक करने लगे। उन्होंने बहुतसे शस्त्र धारण कर, चर्मरूपी वस्त्र धारण किये हुए, सारे शरीरकी रक्षाके लिये झूल पहन लिया। इसके बाद उन्होंने बड़ा ही अनोखा नृत्य किया। उनका नृत्य हो ही रहा था, कि किंकिणी और ध्वजाओंसे सुशोभित एक विमान आस्मानसे नीचे उतर कर मेघरथ राजाके पास आया। विमानमें सुन्दर स्त्री-पुरुषकी एक जोडीको बैठे देख, रानीने राजासे पूछा,— "स्वामी ये कौन हैं?" राजाने कहा,—

"देवी! वैताल-पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलका नामकी एक नगरी है। वहींके विद्युद्रथ नामक विद्याधरोंके राजाका यह पुत्र है। इसका नाम सिंहरथ है। यह स्त्री इसीकी पत्नी वेगवती है। यह खेचरेन्द्र अपनी स्त्रीके साथ धातकी खण्ड-द्वीपमें जिनेश्वरको वन्दना करने गया हुआ था। वहाँसे यहाँ आतेही-आते अकस्मात् इसका

विमान स्खलित हो गया। यह देख, इसने सोचा, कि यह राजा कोई ऐसा-वैसा नहीं है; क्योंकि इसीके प्रभावसे मेरा विमान फिसल पड़ा है। यही विचार कर इसने मेरे पास भूतोंको भेजकर नृत्य करवाया है।" यह सुन, रानीने फिर पूछा,—"स्वामी! इसने पूर्व भवमें कौन सा पुण्य किया था, जिससे इसने इतनी ऋद्धि पायी है?" यह सुन, राजाने कहा,—प्रिये! इसके पूर्व भवका वृत्तान्त सुनो—

"पहले ज़मानेमें सिन्धुपुर नामक नगरमें राजगुप्त नामक एक कुल-पुत्र रहता था। उसकी स्त्रीका नाम शंखिका था। वे दोनों दारिद्र्‌ता के कारण बड़ा दुःख पा रहे थे, इसलिये औरोंके घर सेवा-टहल करके अपनी जीविका उपार्जन करते थे। एक दिन दोनों पति-पत्नी लकड़ी लानेके लिये जङ्गलमें गये हुए थे। वहाँ एक साधुको देख, उन्होंने बड़ी भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया। साधुने उन्हें जिनधर्मका उपदेश देते हुए कहा,—"यह जैनधर्म विधिपूर्वक पालन करनेसे कल्पवृक्ष और चिन्ता-मणिकी भाँति सारा मनोरथ पूरा करता है। इसके बाद मुनिने उनके पूर्व भवके पापोंका क्षय करनेके लिये उन्हें बीस-कल्याणक नामक तप का उपदेश किया। उसकी विधि उन्होंने इस प्रकार बतलायी,—"पहले एक 'अट्ठम' करके, इसके बाद अलग-अलग ३२ उपवास करना।" उन्हों ने मुनिके बतलाये अनुसार इस तपकी आराधना की। तपके अन्तमें, पारणाके दिन, उनके घर एक मुनि आये। उन्हें देखते ही उन्होंने उनको प्रणाम कर, शुद्ध अन्न और जल लाकर उनके सामने रखा। इसके कुछ दिन बाद दम्पतिने चारित्र ग्रहण कर लिया। पुरुषने तो आचाम्ल-वर्द्धमान नामक तप किया और क्रमशः आयु पूरी होने पर मृत्युको प्राप्त हो, ब्रह्मदेवलोकमें जाकर देव हो गया और वहींसे आकर सिंह-रथ नामक विद्याधर हुआ है। और उसीकी स्त्री शंखिका और तरह की तपस्याएं कर पाँचवें देवलोकमें जाकर देवी हुई और आयुष्य पूर्ण होनेसे वहाँसे चलकर यही वेगवती नामकी सिंहरथकी पत्नी हुई है।"

अपने पूर्व भवका यह वृत्तान्त श्रवण कर, सिंहरथको प्रतिबोध प्राप्त

शान्तिनाथ चरित्र

भाई! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता। (पृष्ठ २०५)

हुआ और उसने अपने घर जा पुत्रको राज्य पर बैठा, प्रिया सहित श्री घनरथ जिनेश्वरके पास आकर दीक्षा ले ली। इसके बाद दुष्कर तप कर निर्मल केवल-ज्ञान उपार्जन कर, कर्मरूपी मलका सर्वथा नाश कर, सिंहरथ मुनिने मोक्ष प्राप्त कर लिया।

इधर मेघरथ राजा उद्यानसे लौटकर रानीके साथ-साथ घर आये। एक दिन वे सर्वारम्भ-परित्याग-पूर्वक, अलङ्कार आदिको दूर कर, पौषध-व्रत ग्रहण किये हुए पौषधशालामें योगासन मारे बैठे हुए राजाओं को धर्मदेशना कर रहे थे! इसी समय कहींसे उडता हुआ एक कबूतर जिसका शरीर काँप रहा था और जिसकी आखोंसे भय और चंचलता टपक रहीथी, मनुष्यकीसी वाणीमें यह कहता हुआ, कि मैं आपकी शरणमें हूँ, राजाकी गोदमें आ गिरा। उस समय उस भयभीत पक्षी को देख, दयार्द्र होकर राजा मेघरथने कहा,– "भाई-जब तुम मेरी शरणमें आ गये, तब तुम्हें कोई डर नहीं है।" राजाको यह बात सुन, वह पक्षी निर्भय हो गया। इतनेमें उसके पीछे-पीछे एक महाभयंकर और निर्दय बाज़ वहाँ आ पहुँचा और राजासे बोला,—"महाराज! सुनिये। आपकी गोदमें जो कबूतर पड़ा है, वह मेरा आहार है, इस लिये उसे मेरे हवाले कीजिये— मुझे बेतरह भूख लग रही है।" यह सुन, राजाने कहा,—"भाई! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता। क्योंकि पण्डितोंने कहा है, कि—

"शूरस्य शरणायातो-ऽहेर्मणिश्च सटा हरेः।
गृह्यन्ते जीवतां नैते-र्मापां सत्या उरस्तथा ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"शूरवीरकी शरणमें आये हुए प्राणीको दूसरा उसी प्रकार जीते-जी नहीं ग्रहण कर सकता, जैसे शरीरमें प्राण रहते, कोइ सर्पकी मणि, सिंहका केसर और सती स्त्रीका हृदय नहीं पा सकता।"*

"साथ ही हे पक्षी! तुम स्वयं ही इस बातका विचार करो, कि औरोंकी जान लेकर अपनी जान बचाना, कितना बड़ा पुण्य-नाशक है। यह प्राणीको स्वर्गमें जानेसे रोकता है और नरकका कारण है। इस

लिये तुम्हें भी इस कामसे हाथ खींच लेना चाहिये। यदि कोई तुम्हारा एक ही पर नोच ले, तो तुम्हें कितना कष्ट होगा? वैसेही औरोंको भी पीड़ा होती है, इसका भी तो विचार करो। और देखो, इस कबूतरका माँस खानेसे तुम्हें क्षण भरकीही तृप्ति होगी, पर यह विचारा तो सदाके लिये जान-जहानसे हाथ धो बैठेगा? सोच देखो, पंचेंद्रिय जीवों का वध करनेसे दुष्टात्मा प्राणियोंको नरकमें जाना पड़ता है। कहा है, कि—

> "श्रूयते जीवहिंसावान्, निषादो नरकं गतः।
> दयादिगुणसंयुक्ता, वानरी त्रिदिवं गता॥ १॥"

*अर्थात्— "शास्त्रमें कथा आयी है, कि जीवहिंसा करनेवाला निषाद (व्याध) नरकमें गया और दयादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण वानरी (बँदरी) स्वर्गमें गयी।"*

यह सुन, उस बाजने मेघरथ राजासे पूछा,—"हे राजन्! उस निषाद और वानरीकी कथा मुझे कह सुनाइये।" इसपर राजाने कहा,—

## निषाद-वानरीकी कहानी

इस पृथ्वीपर सैकड़ों वन्दरोंसे भरी हुई 'हरिकान्ता' नामकी एक नगरी है। उस पुरीमें वन्दरोंका पालन-पोषण करनेमें तत्पर 'हरिपाल' नामके राजा रहते थे। उसी नगरीमें एक निषाद रहता था, जो बड़ा ही क्रूर, यमदूत सा निर्दय और कृतघ्नोंका सिरमौर था। वह पापी सदैव वनमें जाकर वराह, शूकर और हरिण आदि अनेक जीवों का वध किया करता था। उसी पुरीके पास एक वनमें राजाकी कृपासे बहुतसे वन्दर रहा करते थे। उनमें हरिप्रिया नामकी एक वन्दरी (वानरी) भी रहती थी, जो कभी माँस नहीं खाती और दया-दाक्षिण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी। एक दिन वही निषाद, हाथमें

खड्ग लिये, मृगयाके निमित्त उसी वनमें आया। इसी समय उसने अपने सामनेसे एक भयंकर वाघको आते देखा। उसे देखते ही वह डर गया और पासके ही एक पेड़पर चढ़ गया। उसपर एक क्रुर स्वभाव वाली बन्दरी मुह फाडे बैठी हुई थी। उसे देख, वह फिर डर गया। उसे बाघके डरसे भागकर आया हुआ जान, बन्दरीने अपना मुख प्रसन्नता-पूर्ण बना लिया। यह देख, निषादके जी-में-जी आया और वह दिलजमईके साथ उसके पास बैठ रहा। बँदरी उसे भाईसा मानकर उसके सिरके केश सहलाने लगी। वह भी उसकी गोदमें सिर रखकर सो गया। इसी समय वह बाघ उस वृक्षके नीचे आया और बन्दरीकी गोदमें सिर रखकर सोये हुए उस मनुष्यको देखकर बन्दरीसे कहने लगा,—"अरी बावली! इस संसारमें कोई किसीके किये हुए उपकारको नहीं मानता और मनुष्य तो खासकर ऐसे होते हैं। इस विषयमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, सुनो,—

"किसी गाँवमें शिवस्वामी नामका एक ब्राह्मण रहता था। एक बार वह तीर्थयात्रा करनेके इरादेसे अपने घरसे बाहर हुआ और देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ एक बड़े भारी जङ्गलमें आ पहुँचा। वहाँ प्याससे छटपटाता हुआ, वह पानीकी खोजमें इधर-उधर घूमता-फिरता एक कुएके पास आ पहुँचा। यह देख, उसने घासकी रस्सी बट-कर उसीके सहारे कलसा ( घड़ा ) कुएमें लटकाया। उसी समय उस रस्सीके सहारे उस कुएँमेंसे एक बन्दर बाहर निकला। यह देख उस ब्राह्मणने सोचा, कि चलो, मेरी मिहनत सफल हो गयी। यही सोचकर उसने फिर रस्सीमें घडा बाँधकर नीचे लटकाया। इस बार कुएँमेंसे एक बाघ और एक साँप निकल पड़े। उन्होंने उस ब्राह्मण को अपना प्राणदाता समझकर प्रणाम किया। इसके बाद उन तीनोंमें से बानरने, जो जाति स्मरण-युक्त हुआ था, पृथ्वीपर अक्षरोंमें लिखकर ब्राह्मणको बतलाया, कि—हे द्विजदेव! मै मथुरा-नगरीके पासका रहनेवाला हूँ। तुम कभी उधर मेरे पास आना, तो मैं तुम्हारी

ख़ातिर करूँगा। लेकिन, देखना, अभी इस कुएँमें एक आदमी और पड़ा है, उसे तुम कदापि बाहर नहीं निकालना, क्योंकि वह बड़ा भारी कृतघ्न है—किसीका अहसान नहीं मानता।" यह कह, वे तीनों अपने-अपने स्थानको चले गये।

"इसके बाद उस ब्राह्मणने सोचा,—"उस बेचारे मनुष्यको ही क्यों कुएँमें पडा रहने दूँ? यदि अपनेसे हो सके तो सभीकी भलाई करनी चाहिये। यहीतो मनुष्यके घर जन्म लेनेका फल है!" ऐसा विचार कर, उस विप्रने फिर कुएँमें डोरी डाली और उस मनुष्यको बाहर निकाला उसे देख, ब्राह्मणने पूछा,—'भाई! तुम कौन हो और कहाँके रहने-वाले हो?' उसने कहा,—"मैं मथुराका रहनेवाला—सुनार हुँ। एक जरूरी कामके लिये इधर आ पहुँचा था और प्यासके मारे व्याकुल हो कर इस कुएँमें गिर गया था। वहाँ कुएँमें उगे हुए एक वृक्षकी शाखा पकड़ कर टिका रह गया। इसके बाद उसमें एक बन्दर, एक बाघ और एक साँप भी आ गिरे। वहाँ सबपर समान विपद् थी, इसीलिये किसीका किसीसे वैर विरोध नहीं रह गया था। हे उपकारी! तुमने हम सबके प्राण बचाये हैं, इसलिये एकबार मथुरा नगरीमें अवश्य अवश्य आओ।' यह कह, वह भी अपने स्थानपर चला गया. वह ब्राह्मण पृथ्वी-मण्डल पर घूमता-घामता तीर्थ यात्रा करता हुआ किसी समय मथुरा-नगरीमें आ पहुँचा। वहाँ जंगलमें रहनेवाले उस बन्दरने उसे देख लिया और अपने उपकारीको पहचान कर बड़ी ख़ुशीसे अच्छे-अच्छे फल लाकर उसे दिये और इस प्रकार उसकी ख़ातिरदारी की। इसके बाद उस बाघने भी उसे देखा और पहचान कर अपने मनमें विचार किया,—'इस महापुरुषने मुझे मरनेसे बचाया था, इसलिये उस उपकारका इसे कुछ-न-कुछ बदला ज़रूर देना चाहिये।' यह सोचकर वह बाग़में घुस पडा और वहाँ बेफ़िक्रीके साथ खेलते हुए राजकुमारको मारकर उसके तमाम क़ीमती गहने उतार कर ले आया, और वह सब उस ब्राह्मणके हवाले कर उसे प्रणाम किया। ब्राह्मणने

उन्हें दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया और मथुरा-नगरीके अन्दर आ, उस सुनारका घर पूछते-पूछते वहाँ आ पहुँचा। उस समय उसे दूरसे आते देख, वह सुनार कुछ देरतक तो उसकी ओर देखता रहा, पर फिर तुरत ही नीची नज़र किये हुए अपना काम करने लगा। ब्राह्मण ने उसके पास आकर पूछा,— "क्यों साहुजी! क्या तुम मुझे पहचानते हो?" उसने कहा,— "मैं तुम्हें एकदम नहीं पहचानता।" यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,— "अरे भाई! मैं वही ब्राह्मण हूँ, जिसने तुम्हें उस जंगलमें कुएँसे बाहर निकाला था। आज मैं तुम्हारे घर अतिथि होकर आया हूँ।" यह सुन, उस सुनारने बैठेही बैठे जरा सिर हिला कर उसे प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन देते हुए कहा,— "विप्रजी! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" इस पर उस ब्राह्मण ने बाघके दिये हुए गहनोंको उसे दिखा कर कहा,— "भाई मेरे एक यजमानने ये गहने मुझे दिये हैं। तुम्हीं इनका ठीक-ठीक दाम लगा सकते हो। इसलिये तुम इन्हें ले लो और मुझे इनका उचित मूल्य दे दो।" यह कह, गहनोंको उसीके पास रखकर वह ब्राह्मण नदीमें स्नान करने चला गया। इसी समय उस सुनारने बस्तीमें यह ड्योढ़ी फिरती हुई सुनी, कि—"आज राजकुमारको मारकर कोई उनके सारे गहने चुरा ले गया है। जो कोई उस आदमीको कहीं देख पाये, वह राजाको उसका पता दे; क्योंकि राजा उस द्रोहीको प्राण दण्ड दिये बिना न रहेंगे।" यह सुनकर, उस सुनारके मनमें शङ्का हुई। उसने सोचा,—"ये गहने तो मेरे ही गढ़े हुए हैं। जरूर इसी ब्राह्मणने गहनों के लोभसे राजकुमारको मार डाला है और उनके गहने लिये हुए मेरे पास आ पहुँचा है; पर यह न तो मेरा कोई भाई है, न नाता-गोता, फिर मैं इस के लिये अपनी जानको क्यों बलामें फँसाऊँ?" ऐसा विचार कर उसने राजाके द्वार पर जा, नगाड़े पर चोट दी और फिर उनके पास पहुँच कर, गहनोंको उनके हवाले करते हुए कहा,— "महाराज! इन गहनों का चोर एक ब्राह्मण है।" यह सुन, राजाने अपने सिपाहियोंको भेज

कर उस ब्राह्मणको खूब मज़बूतीसे बँधवा मँगवाया और विद्वानोंको बुलाकर पूछा,—"हे पण्डितो ! इस मामलेमें मुझे क्या करना चाहिये ?" पण्डितोंने कहा,—"महाराज ! भलेही कोई जातिका ब्राह्मण और वेद-वेदाङ्गका जाननेवाला हो ; पर उसने यदि मनुष्यकी हत्याकी हो, तो राजाको अवश्य उसका वध करना चाहिये। इससे राजाको पाप नहीं लग सकता।" पण्डितोंकी यह बात सुन, राजाने अपने सेवकोंकों उसका वध करनेका हुक्म दे दिया। राजसेवक उसे गधेपर चढ़ाये, उसके सारे शरीरमें रक्त चन्दनका लेप किये हुए, उसे वध्यभूमिकी ओर ले चले। उस समय वध्यस्थानको जाते हुए ब्राह्मणने अपने मनमें सोचा,—"ओह ! मेरे पूर्व कर्मोंके दोषसे यह मेरी कैसी अवस्था हुई ? ओह ! उस दुष्ट सुनारने मेरे साथ कैसी कृतघ्नता की ? इधर उस वानर और वाघने मेरे साथ कैसी कृतज्ञता प्रकट की ?" ऐसा विचार करने और उस वन्दरकी वात याद आ जानेसे उस ब्राह्मणके मुँहसे अनजातमें ये दो श्लोक निकल पड़ः—

> व्याघ्रवानरसर्पाणां, यन्मया न कृतं वचः ।
> ते नाहं दुर्विनीते न, कलादेन विनाशितः ॥ १ ॥
> वेश्याह्वा. ठक्कुराश्चौरा, नीरमार्जारमर्कटाः ।
> जातवेदाः कलादश्च, न विश्वास्या इमे क्वचित् ॥ २ ॥

*अर्थात्—"बाघ, वानर और साँपकी बात मैंने नहीं मानी, इसी लिये मैं इस दुष्ट सुनारके करते मारा गया ! सच है- वेश्या ? इन्द्रिय, ठाकुर, चोर, जल, बिल्ली, बन्दर, आग और सुनार—इनका कभी विश्वास करना ठीक नहीं है।"*

वह ब्राह्मण वार-वार इन दोनों श्लोकोंको वोल रहा था। इसलिये उसकी आवाज़से उसे पहचान कर उसी जगह रहनेवाले उस साँपने ( जिसे ब्राह्मणने कुएँसे वाहर निकाला था ) अपने मनमें विचार किया, "ओह! उस दिन जिस ब्राह्मणने मुझे कुएँसे वाहर निकाला था, वही महात्मा आज सङ्कटमें पड़े हुए मालूम होते हैं। शास्त्रमें कहा हुआ है—

उपकारिणि विश्वस्ते, साधुजने यः समाचरति पापम् ।
तं जनमसत्यसन्धं, भगवति वसुधे ! कथं वहसि ? ॥ १ ॥

*अर्थात्—"उपकार करनेवाले और विश्वासी सज्जनोंके साथ जो पापाचरण करते हैं, उन असत्य प्रतिज्ञावाले पुरुषोंका बोझ, हे पृथ्वी ! तू क्यों ढोती है ?"*

यही विचार कर उस साँपने फिर अपने मनमें सोचा,—"इस समय इस ब्राह्मणके प्राणोंपर आ बनी है, इसलिये मैं इसके उपकारका कुछ बदला दूँ, तो इसके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा।" ऐसा सोच उसके उपकारोंको याद करता हुआ वह साँप बग़ीचेमें आया और वहाँ सखियोंके साथ खेलती हुई राजकुमारीको देख, लताओंके गुच्छेके अन्दरसे उसे काट खाया। तुरतही वह राजकुमारी व्याकुल होकर छटपटाती हुई ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो गयी। यह देख, सखियोंने जाकर राजाको ख़बर दी। इस ख़बरको पातेही राजा अत्यन्त शोकातुर और दुःखसे अधीर होकर विलाप करने लगे,— "हाय ! यह क्या हुआ ! अभी तो एकही दुःखके समुद्रसे पार नहीं हुआ कि इतनेमें दूसरा आ पहुँचा ! अब मैं क्या करूँ ?"

ऐसा विचारकर, राजाने तत्काल अनेक मन्त्रवादियोंको बुलाया। वे सब उसकी लड़कीकी झाड-फूँक करने लगे, पर किसीका कुछ असर नहीं हुआ। तब एक मन्त्र जाननेवालेने राजासे कहा,—"हे राजा ! मुझे निर्मल ज्ञान प्राप्त है। उसीके बलपर मैं यह समझ रहा हूँ, कि आपने जिस ब्राह्मणके वधकी आज्ञा दी है, वह बिलकुल निर्दोष है। उसका सच्चा-सच्चा हाल यों है— किसी समय इस दयालु ब्राह्मणने जङ्गलके कूएँमेंसे साँप, वानर और बाघको बाहर निकाला। इसके बाद इसने एक सुनारको भी बाहर निकाला। उस समय साँप वग़ैरहने इस ब्राह्मणसे कहा था, कि तुमने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है, इसलिये किसी दिन मथुरामें आना। यह कह, वे अपने-अपने स्थानको चले गये और यह ब्राह्मण भी सब तीर्थोंसे घूमता-घामता इस बार मथुरामें आ

पहुचा। आनेपर उस बन्दरने तो इसे उत्तमोत्तम फल देकर सम्मानित किया और बाघने आपके पुत्रको मारकर उसके कुल गहने इसे लाकर दिये। उन्हें लिये हुए यह सीधा-सादा ब्राह्मण उस सुनारसे मिलने गया और उसे बाघके दिये हुए गहने दिखाये। गहनोंको देख, उन्हें पहचान कर, उस कृतघ्न सुनारने आपको ख़बर दे दी। इसी पर आपने ब्राह्मणको चोर और हत्यारा समझकर मार डालनेका हुक्म दे दिया। दैवयोगसे जल्लादोंको, वध करनेके लिये उस ब्राह्मणको ले जाते देखकर, पूर्वोक्त सर्पने उसे पहचाना और उसकी भलाई की बात याद कर, उसे छुड़ानेके इरादेसे लताके अन्दरसे आपकी पुत्रीको डँस दिया। इसलिये, हे महाराज। यदि आप उस ब्राह्मणको छोड़ दे, तो आपकी लड़की अवश्य ही जी जायेगी।"

यह सुन, राजाने कहा—"अच्छा, मुझे ऐसी कोई बात बतलाओ, जिससे मुझे इस बातकी सचाई का भरोसा हो।" यह सुन, उस मन्त्रवादीने उस सर्पको राजपुत्रीके शरीरपर उतारा। उसने मन्त्रवादीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर ली, जिससे राजाको पूरी दिल जमई हो गयी और उन्होंने उस ब्राह्मणको छुटकारा दे दिया। उसे छूटते देख, साँपने राजकुमारीके डंकपरका विष चूस कर खींच लिया, जिससे वह तुरत भली चङ्गी हो गयी। इसके बाद मन्त्रवादीने उस ब्राह्मणसे कहा,—हे विप्र! इसी साँपने आपकी जान बचा दी।" यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—"अहा! इस संसारके प्राणियोंकी गति कैसी विचित्र है, ज़रा देखिये तो सही—जो बड़े ही क्रूर प्राणी कहे जाते हैं, उन्होंने तो कृतज्ञता दिखलायी और जो क्रूर नहीं कहा जाता, उसीनें हर दर्जे की कृतघ्नता—अहसानफ़रामोशी—की।" यह कह, उस ब्राह्मणने फिर कहा,—

"दो पुरिसे धरं धरा, अहवा दोहिं पि धारिया धरणी।
उवयारे जस्स मई, उवयारं जो न विम्हरई॥ १॥

*अर्थात् "जिसकी मति उपकारमें होती है—जो उपकार करना*

*चाहता है—और जो उपकारको नहीं भूलता; या तो इन्हीं दोनों पुरुषोंको पृथ्वी धारण करती है; अथवा ये ही दो पुरुष पृथ्वीको धारण किये हुए हैं ॥*

"यह सुनकर, राजाने उस ब्राह्मणसे उसका कुल हाल पूछा, जिसके उत्तरमें उसने आदिसे अन्ततक अपनी सारी रामकहानी कह सुनायी। इससे सन्तुष्ट होकर राजाने उस शिवस्वामी ब्राह्मणको बड़े आदरके साथ एक देशका स्वामी बना दिया। इसके बाद ही उस ब्राह्मणने अपने देशमें आकर नागकी पूजा करनेके लिये नागपञ्चमी व्रत चलाया।

यह कहानी-सुनाकर उस बाघने उस बँदरीसे कहा,—"हे वानरी! जैसे उस ब्राह्मणने सुनारका विश्वास कर धोखा खाया और विपत्तिमें पड़ा, वैसे ही तू भी इसका विश्वास न कर, नहीं तो यह भी तेरी वैसीही दुर्दशा करेगा। इसलिये, ला—इसे मेरे हवाले कर- मैं झट-पट खा कर जाऊँ।" बाघके इतना सब कुछ कहने पर भी उस बँदरीने उसे नहीं छोड़ा। तब वह बाघ उसी वृक्षके नीचे बैठकर विचार करने लगा,——"ओह! यह बँदरी भी तो अपनी धुनकी बड़ी पक्की है।"

इसके बाद जब उस निषादकी नींद टूटी, तब उसकी गोदमें सिर रखकर वह वानरी भी सो रही। उसको सोते देख, उस बाघने पास आकर उस निषादसे कहा,—"देखो, भाई! तुम इस बँदरी का विश्वास न करो। यदि तुम अपना भला चाहते हो, तो मुझ सात दिनके भूखे हुएको यह बँदरी दे डालो और तुम सही-सलामत पुण्यात्मा बने रहो, नहीं तो सच जानना, सदेह घर नहीं जाने पाओगे। और क्या तुमने यह नहीं सुना है, कि पहले ज़मानेमें एक बन्दरने ही एक राजाका नाश कर दिया था?" यह सुन निषादने कहा,—"हे बाघ! तुम मुझे वह कथा सुनाओ।" तब बाघने यह कथा सुनायी:—

"पूर्वकालमें नागपुर नामक नगरमें पावक नामका एक बड़ी समृद्धि-वाला राजा रहता था। एक दिन अश्वक्रीडा करते हुए वे राजा एक उल्टी सीख पाये हुए घोड़े द्वारा जबरदस्ती खिंचे हुए एक बड़े भारी

जङ्गलमें पहुँच गये। उस वनमें भूखे-प्यासे और अकेले घूमते हुए राजाको एक बन्दर मिल गया। उसने राजाको खूब मीठे फल लाकर दिये और एकनिर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर भी उन्हे दिखला दिया। राजाने वही फल खा, पानी पी, स्वस्थ होकर सुखी मन एक वृक्षके नीचे छायामें डेरा डाल दिया। इतनेमे उनकी तलाशमें पीछे-पीछे चले आने वाले उनके सभी सैनिक वहाँ आ पहुँचे। इसके बाद जब राजा उन सब सैनिकोंके साथ अपने नगरकी ओर चले, तब उन्होंने उस बन्दरको भी साथ ले लिया और उसे लिये हुए अपने नगरमें आये। वहाँ पहुँचकर, उस बन्दर पर बड़े प्रसन्न रहनेके कारण उसे सदा मिठाई और अच्छे-अच्छे पकवान खिलाने लगे तथा राजाकी आज्ञासे वह अपनी इच्छाके अनुसार आम और केले आदि फल भी खानेको पाने लगा। उस बन्दरके उपकारको याद कर, राजा उसे सदा अपने पास ही रखने लगे। एक दिन वसन्तऋतुमें राजा बगीचेमें जाकर हिंडोला झूलने, जलक्रीड़ा करने और फूल चुनने आदिकी क्रीड़ाएँ करते हुए थक गये और वहीं सो रहे। अपनी शरीर-रक्षाका भार उन्होंने उसी बन्दरको सौंपा। इतनेमें राजाके मुँहके पास एक भौंरा मँड़राने लगा। यह देख, स्वामी पर भक्ति रखनेवाले उस मूर्ख बन्दरने उस भौंरेको तलवारसे मारना चाहा और इसी बहाने एक हाथ ऐसा जमाया, कि राजाका सिर कट गया। इसलिये हे निषाद! तुम भी इस बँदरीके फेरमें न पड़ो, नहीं तो जैसे वे राजा अपने हितैषी वानरके करते संसार से उठ गये, वैसे ही तुम पर भी बला टूट पड़ेगी।"

बाघकी यह बात सुनते ही उस निषादने उसी क्षण उस बन्दरी-को उठाकर फेंक दिया। वह उस बाघके पास आ गिरी। उस समय बाघने उस वानरीसे कहा,—"बड़ी बीबी! अफ़सोस न करना, क्योंकि जैसे पुरुषकी सेवा की जाती है, वैसा ही फल मिलता है।" यह सुनते ही उस बन्दरीको तत्काल बुद्धि उत्पन्न हो गयी और उसने उसीके बल पर बाघसे कहा,—"भाई! अब तो तुम मुझे हरगिज़ न छोड़ो—खाह

डालो; पर सुनो—वन्दरोंके प्राण उनकी पूँछमें ही रहते हैं, इसलिये तुम पहले मेरी पूँछही खाओ।" यह सुन, बाघ बड़ा आनन्दित हुआ। इसके बाद ज्योंही उसने अपने मुँहमें पूँछ ली, त्यों ही वह वन्दरी छलाँग मार कर दौड़ी और फुर्तीके साथ पेड़पर चढ़ गयी। यह देख झेंपा हुआ बाघ अन्यत्र चला गया।

इसके बाद उस निषाद पर बिना किसी प्रकारका द्वेष रखे ही उस बन्दरीने उससे कहा—,"भाई! अब तो वह बाघ चला गया तुम भी नीचे उतरो।" वह नीचे उतर आया। बन्दरी उसे लिए हुए अपने लतागृहमें आयी, जिसमें उसके बालबच्चे रहते थे। उन्हींके पास उसे बैठाकर वह उसके खानेके लिये फल लानेको जङ्गलमें गयी। इधर क्षुधासे पीड़ित उस दुष्ट निषादने उसीके बच्चोंको मारकर खा लिया और बेफ़िक्रीके साथ टांग फैलाये सो रहा। जब वह बन्दरी जङ्गलसे स्वादिष्ट फल लिये हुई आयी, तब उसने देखा, कि निषाद सोया हुआ है और उसके बच्चे ला पता हैं। उसने उसे उठाकर फल दिये। इसके बाद वह निषादको साथ लेकर अपने बच्चोंको खोजती हुई जङ्गलमें इधर-उधर भटकने लगी; पर उसने अपने मनमें निषादकी शरारतोंका कुछ भी ख़याल नहीं आने दिया। पहले तो उस दुष्टने उसे पेड़ परसे नीचे गिराया और अबके उसके बच्चोंको ही खा गया। इतने पर भी उसके दोषोंका कुछ विचार किये बिनाहीं, उसको अपने भाईके समान मानती हुई, वह सरल अन्तःकरणवाली वानरी उसके साथ-साथ अपने बच्चोंकी खोज-ढूंढ करने लगी। इसी समय उस निषादने अपने मनमें सोचा,—"आज तो मेरी सारी मिहनत बेकार गयी—कुछ भी हाथ नहीं लगा—भूख लगीकी लगी ही रही। अब खाली हाथ घर कैसे लौटूं?" ऐसा विचार कर उस निर्दयी और पापी निषादने उस विश्वस्त चित्त-वाली और भाई-भाई कहकर पुकारनेवाली बन्दरीको डंडेकी चोटसे मार गिराया और उसे अपने काँवरमें रखकर घरकी तरफ चला। इतने में उसी बाघसे उसकी रास्तेमें मुलाक़ात हुई। बाघने उसे देख कर

कहा,—"रे दुष्ट! तूने यह क्या कर डाला ? रे पापी! जिस बेचारी वन्दरीने तुझे अपने पुत्रकी तरह रखा था, उसीको मारते हुए क्या तेरा हाथ नहीं काँप उठा? रे दुष्ट, पापी, कृतघ्न! जा, तू अपना काला मुँह यहाँसे दूर कर। तेरा मुँह देखनेसे भी पाप लगता है। मैं तुझे मारकर अपना हाथ भी कलङ्कित नहीं कर सकता; क्योंकि उससे तेरा पाप मेरेको स्पर्श कर जायेगा।" इस तरह उसको फटकारते हुए बाघने उसे छोड़ दिया और वह अपने घर चला गया। उस समय लोगों के मुँहसे यह सब हाल सुनकर राजाने अपने मनमें विचार किया,—"मैं तो बन्दरोंकी रक्षा करता हूँ और इस दुरात्माने बालबच्चों समेत उस वन्दरीको मार डाला। इसलिये उसे पकड़ कर सज़ा देनी चाहिये; क्योंकि उसने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर डाला है। कहा है, कि—

"आज्ञा-भंगो नरेन्द्राणां, गुरूणां मान-मर्दनम्।
भर्तृकोपश्च नारीणा-मशस्त्रवध उच्यते॥ १॥"

*अर्थात् "राजाकी आज्ञाका भग, गुरुओंका मानमर्दन और स्त्रियों पर स्वामीका क्रोध होना, बिना शस्त्रके ही वध कहलाता है।"*

इस प्रकार विचार कर राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी और वे उसी दम उस निषादको बाँधकर पकड़ लाये और घुँसों तथा लाठियों से मारते हुए वध्य स्थानको ले गये। इतनेमें उस बाघने वहाँ आकर कहा,—"अरे! इसे न मारो, इसे मारना उचित नहीं।" यह सुन, राजपुरुषोंने आश्चर्यमें पड़कर उस बाघकी बात राजासे जाकर कह सुनायी। इससे राजाको भी बड़ा कौतूहल हुआ और वे भी वहाँ आ पहुँचे। तब फिर बाघ बोला,—"हे राजन्! इस पापीको मारकर आप भी इसके पापके हिस्सेदार बन जायेंगे। दुष्टात्मा प्राणी आपही अपने कर्मोंके दोषसे विपत्तिमें पड़ा करते हैं।" यही सुन, आश्चर्यमें पड़े हुए राजाने पूछा,—"हे बाघ! तू जानवर होकर भी मनुष्यकी बोली कैसे बोलता है? तुझमें ऐसी विवेक-भरी चतुराई कहाँसे आयी"

बाघने कहा,—"इस उद्यानमें एक बड़े भारी ज्ञानी आचार्य आये हुए हैं। वे ही यह सब हाल बतलाते हैं। आप उन्हींसे जाकर यह प्रश्न करें।" यह कह, वह बाघ चला गया। राजाने उस निषादको छुटकारा देकर अपने राज्यसे निकाल बाहर कर दिया।

इसके बाद राजा, गुरुके आगमनका हाल सुनकर, उद्यानमें आये। वहाँ अनेक साधुओंसे घिरे हुए आचार्य महाराजको देख, राजाने उन्हें बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया और उनके बाद क्रमशः और सब साधुओंकी भी वन्दना की। इसके बाद राजाने गुरुके सामने हाथ जोड़े हुए पूछा,—"आप अपने निर्मल ज्ञानचक्षुओंसे सब कुछ जानते हैं। इसीलिये मैं आपसे पूछता हूँ, कि वह वानरी मरकर क्या हुई?" गुरुने कहा,—"हे राजन्! वह शुभ ध्यानके वश मृत्यु पाकर स्वर्गको गयी है। आगमशास्त्रमें कहा है :—

'तवसंजमदाणरओ, पयइए भद्दो किवालु अ।
गुरुवयणरओ निच, मरिउं देवेसु जाएइ ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'जो तप, संयम और दानमें निरत रहता है, प्रकृतिसे ही भद्र होता है, कृपालु होता है और निरन्तर गुरुके वचनोंमें अनुरक्त रहता है, वह मरकर देवताओंके यहाँ जन्म लेता है।'*

यह सुन राजाने कहा,—"हे भगवन्! जो जाति और कर्म दोनों ही से महा नीच और बड़ा भारी पापी है, वह निषाद मरकर कहाँ जायेगा?" सूरिने कहा,—"इस पापीको नरकके सिवा और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं होगा। कहा भी है, कि—

'जीवहिंसामृषावाद—स्तन्यान्यस्त्रीनिषेवनैः।
परिग्रहकषायैश्च, विपर्यैर्विवशीकृतः ॥ १ ॥
कृतघ्नो निर्दयः पापी, परद्रोहविधायकः।
रौद्रध्यानपरः क्रूरो, नरो नरकमागमेत ॥ २ ॥'

*अर्थात्—"जीवहिंसा, असत्य-सभाषण, चोरी परस्त्रीगमन,*

परिग्रह, कषाय और विषयोंमें फँसा हुआ, कृतघ्न, निर्दय, पापी, परद्रोही, रौद्रध्यानमें तत्पर और र मनुष्य नरकमें ही जाता है ।"

"इसके सिवा हे राजन्! प्रसंगतः दूसरी दो गतिको कौन प्राप्त होता है उनके लक्षण भी सुनो ।

'पिशुनागोमतिश्चैव, मित्रे शाठ्यरतः सदा ।
आर्त्त-ध्यानेन जीवोऽयं, तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥१॥
मार्दवार्जवसम्पन्नो, गतदोषकषायकः ।
न्यायवान् गुणगृह्यश्च, मनुष्यगतिमागमेत् ॥ २ ॥

*अर्थात्—"पिशुन ( चुगलखोर ), पाप-मति, मित्रके साथ सदा कपट करनेवाला और आर्त्तध्यान करनेवाला मरकर तिर्यक्गति-को प्राप्त होता है । जो मृदुता और ऋजुतासे सम्पन्न होता है, जिसके दोष और कषाय नष्ट हो चुके हैं तथा जो न्यायवान् और गुणग्राही होता है, वह प्राणी मरकर फिर मनुष्यगतिको प्राप्त होता है ।'*

यह सुन, राजाने फिर पूछा,—"हे प्रभो ! उपर्युक्त बाघ मनुष्यकी सी वाणी क्यों बोलता था ? उसने आदमीकी ही बोलीमें मुझे उस निषादको मारनेसे रोका था ।" सूरिने उत्तर दिया,—"हे राजन्! उसका कारण यह है । सुनिये,—"सौधर्म नामक देवलोकमें शक्र—इन्द्र-के एक सामानिक देवता हैं । उनकी प्राणप्रिया देवी, स्वर्गसे च्युत होकर कहीं मनुष्य भवमें उत्पन्न हुई । तब उस देवाङ्गनाके आत्म-रक्षक देवताओंने उस देवीके स्वामीसे पूछा,—'हे स्वामी ! इस विमान-में देवीके रूपमें कौन उत्पन्न होगा ?' इस पर देवताओंने कहा,—'अमुक वनमें एक वानरी है । वही मरकर यहाँ आयेगी ।' यह सुनकर उन आत्मरक्षक देवोंमेंसे एक बाघका रूप धारण कर उस वानरीकी परीक्षा करनेके लिये यहाँ आया हुआ था । इसीलिये वह दिव्य-शक्ति-सम्पन्न व्याघ्र मनुष्यकीसी वाणी बोलता था । उस व्याघ्रने वानरी और निषादके साथ खूब वाद-विवाद किया था और उन्हें कई दृष्टान्त भी सुनाये थे ।"

गुरुका सुनाया हुआ बालका यह वृत्तान्त सुन राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया और उन्होंने अपने पुत्रको गद्दी पर बैठाकर गुरुसे दीक्षा ले ली। वे हरिपाल राजर्षि संयमका पालन करते हुए सौधर्म-कल्पमें देवत्वको प्राप्त हुए।

निषाद-वानरी-कथा समाप्त।

"जैसे यह निषाद जीवहिंसा करके नरकको प्राप्त हुआ, वैसेही और जीव भी, जो पाप करते हैं, पापके प्रभावसे नरकको प्राप्त होते हैं। इस लिये हे बाज़! तुमको भी जीवहिंसासे एकदम बाज़ आना चाहिये।

यह सुन, उस श्येन (बाज़) पक्षी ने मेघरथ राजासे कहा,—"हे राजन्! आपही सुखी हैं; क्योंकि आप इस प्रकार धर्म और अधर्मका विचार कर सकते हैं। यह कबूतर तो मेरे डरसे भागा हुआ आपकी शरणमें चला आया। अब आपही कहिये, क्षुधारूपिणी राक्षसीका सताया हुआ मैं किसकी शरणमें जाऊँ? हे राजन यदि आप सत्पुरुष हैं और किसी प्राणीकी बुराई करना नहीं चाहते, तो मैं भी भूखसे पीड़ित हो रहा हूँ, इसलिये हे दयालु! मेरी आत्माकी भी रक्षा कीजिये। मैं भी भले-बुरे कर्मोंकी पहचान कर सकता हूँ, पर इस समय भूखसे बे तरह सताया हुआ हूँ, इसलिये क्या कर सकता हूँ? कहा भी है, कि—

'या सा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी।
चक्षुःश्रोत्रललाटदीनकरणी वैराग्यसम्पादिनी ॥
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी चारित्र्यविध्वंसिनी।
सा मे तिष्ठति सर्वभूतदमनी प्राणापहारी क्षुधा ॥ १ ॥

विवेको हीदया धर्मो, विद्या स्नेहश्च सौम्यता।
सर्वं च जायते नैव, क्षुधाक्रान्तस्य शरीरिणः ॥ २ ॥
प्रतिपन्नमपि प्रायो, लुप्यते क्षुन्निपीडितैः।
इत्यर्थे भीतिगान्धोर्णो, दृष्टान्तं श्रूयतां प्रभो ॥ ३ ॥"

अर्थात्—"जो क्षुधा, रूपका नाश करनेवाली, स्मृतिका हरण करनेवाली, पाँचों इन्द्रियोंका आकर्षण करनेवाली, आँख-कान और

ललाट पर दीनता ला देनेवाली, वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली, भाई-बन्धुओंको छुड़ानेवाली, विदेशमें जानेको लाचार करनेवाली, चारित्र-को चौपट करनेवाली, सब प्राणियोंको दमन करनेवाली, और प्राणोंका नाश करनेवाली है, वही इस समय मुझे सता रही है। क्षुधासे पीड़ित प्राणियोंको विवेक, लज्जा, दया, धर्म, विद्या, स्नेह, सुन्दरता और सत्त्व (पराक्रम) नहीं रह जाता। जो भूखा होता है, वह अकसर अपनी की हुई प्रतिज्ञाओंको भी तोड़ देता है। हे प्रभो! इस विषयमें एक दृष्टान्त नीतिशास्त्रमें कहा हुआ है, उसे सुनिये।

यह कह, उस बाजने मेघरथ राजाको नीचे लिखा हुआ दृष्टान्त कह सुनाया :—

'केर के * जङ्गलोंसे भरे हुए निर्जल मरुदेशमें एक कुआँ था। उसमें प्रियदर्शन नामका एक साँप रहता था। उस कुएँ में पानीके पासही एक बिल था, जिसमें वह रहता था और निरन्तर मेंढ़क आदि जीवोंको मार-कर खाया करता था। वही रहते-रहते उसकी गङ्गदत्त नामक एक मेंढक से गाढ़ी दोस्ती हो गयी। साथही उसी कुएँ में रहनेवाली और मीठे वचन बोलनेवाली चित्रलेखा नामकी मैनासे भी उसकी ख़ासी मित्रता हो गयी। इस प्रकार परस्पर प्रीतिका व्यवहार करते हुए उन लोगोंने कुछ दिन बड़े सुखसे बिताये। इसके बाद, वहाँ एक बार बारह वर्षकी अनावृष्टि हुई, जिससे उस कुएँ का भी पानी सूख गया और पानीमें रहने-वाले सब जीव मर गये। अब तो उस साँपके खाने-पीनेकी भी मुश्किल आ पड़ी। गङ्गदत्त नामक वह मेंढ़क तो कीचड़-मिट्टी ही खा-खाकर दिन बिताने लगा। एक दिन साँपने मान अपमानकी बात भूलकर गङ्गदत्तसे कहा,—"हे मित्र! आजकल तो मैं बड़ी तकलीफ़में हूँ।" गङ्गदत्तने पूछा,—"क्यों, कैसी तकलीफ़ है?" सर्पने कहा,—"खाने-पीनेकी तकलीफ़ मुझे बेहद सता रही है। कहा भी है,—

* एक जङ्गली वृक्ष।

"मरणसमं नत्थि भयं, खुहा समा वेयणा नत्थि ।
पथ समा नत्थि जरा, दालिद्द समो पराभवो नत्थि ॥ १ ॥"

अर्थात्—"मृत्युके समान भयकी वस्तु और कोई नहीं है । क्षुधा के समान दूसरी कोई वेदना भी नहीं है । मुसाफिरीकी तरह तकलीफ बुढ़ापेमें भी नहीं होती और दरिद्रताके समान दूसरा कोई पराभव (पराजय सकट ) नहीं है । "

"इसलिये हे मित्र! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे मेरी यह तकलीफ़ दूर हो ।"

यह सुन, गङ्गदत्तने सोचा,—"इस दुष्टने इस कुए के सब जीवोंको तो खाही लिया, अब मुझे भी खाया चाहता है। इसलिये चाहे जैसे हो अपनी जानको तो इसके फन्देसे बचाना ही होगा ।" यही सोचकर गङ्गदत्तने प्रियदर्शनसे कहा,—"स्वामी! मैं तुम्हारे लिये बड़ी-बड़ी नदियों-में जाकर अपनी जातिके जीवोंको ला दिया करूँगा; पर मुझमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वहां तक जा सकूँ, इसलिये यदि यह चित्रलेखा मुझे अपनी चोंचमें पकड़ कर वहाँ पहुँचा दिया करे, तो तुम्हारी खुराक आनन्दसे पहुँच जाया करे।" यह सुन, प्रसन्न होकर, उस सर्पने, अपने स्वार्थके लिये चित्रलेखा नामक मैनाको वैसी ही आज्ञा दे दी। तदनुसार चित्रलेखा, उसे चोंचमें दबाये हुए ले चली और एक बड़ी भारी झीलमें जाकर छोड़ आयी। वह मेंढक तो उस झीलमें पहुँचकर चैनसे बैठ रहा। तब उसका अभिप्राय नहीं समझ कर चित्रलेखाने थोड़ी देर बाद आवाज़ लगायी,—"भाई गङ्गदत्त! जल्दी चलो। स्वामी प्रियदर्शन बड़ी तकलीफ़-में हैं। इसलिये तुम अपने प्रतिज्ञानुसार उनका मनोरथ पूरा करनेके लिये जल्दी चलो।" यह सुन, गङ्गदत्तने कहा,—"अरी मैना! सुन—भूखा हुआ प्राणी कौनसा पाप नहीं करता? क्षुधासे क्षीण मनुष्योंके हृदयमें करुणा नहीं होती, इसलिये बहन! तुम प्रियदर्शनसे जाकर कह देना, कि अब गङ्गदत्त उस कुए में नहीं आनेका।" इस प्रकार अपना अभिप्राय प्रकट कर उसने फिर कहा,—"बहन! अब तुम भी

आजसे उसका विश्वास न करना।" यह सुन, वह मैना अपने स्थानको लौट गयी।"

"महाबल! इस दृष्टान्तसे तो आप समझ ही गये होंगे, कि क्षुधार्तको कृत्य-कृत्यका विचार नहीं होता। इसलिये आप मेरे आहारका प्रबन्ध कर दीजिये, जिससे मैं मर न जाऊँ।" बाजकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"भाई! यदि तुम भूखे हो, तो मैं तुम्हें ज़रूर अच्छेसे अच्छा भोजन दूँगा।" इसपर उस बाज़ने कहा,—"हे महाराज! मुझे तो माँसके सिवा और कुछ खाना अच्छा नहीं लगता।" राजाने कहा,—"अच्छा, मैं कसाईके यहाँसे माँस मँगवाये देता हूँ।" पक्षीने कहा,—"महाराज! यदि मेरी आँखोंके सामनेही किसी प्राणीके शरीरका माँस काटा जाये, तो उसी माँससे मेरी तृप्ति हो सकती है, दूसरे किसी माँससे नहीं।" राजाने कहा,—"अच्छा, इसी कबूतरको तराज़ूपर रखकर, मैं इसीके तोलके बराबर अपने शरीरका माँस काट कर तुमको दूँगा।" बाज इस बातपर राज़ी हो गया।

इसके बाद राजाने एक तराज़ू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज़ छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे। इस प्रकार ज्यों-ज्यों वे अपने शरीरका माँस काट-काट कर पलड़े पर रखने लगे, त्यों-त्यों वह कबूतर भी अधिकाधिक तौल वाला होता गया। यह देख, वे साहसिक राजा, यह जानकर, कि वह कबूतर बहुत ज़ियादा वज़नका है, खुदही उस पलड़े पर बैठ गये। यह देख, सभी लोग हाहाकार करते हुए विषादके मारे कहने लगे,—"हे नाथ! आप प्राण-त्याग करनेका साहस क्यों कर रहे हैं? एक पक्षीके लिये आप हम सब लोगोंका अपमान क्यों कर रहे हैं? यह तो कोई माया मालूम पड़ती है। नहीं तो आपके इतने बड़े शरीरका भार इस नन्हेंसे कबूतरके बराबर कैसे हो सकता है?" लोगोंके इतना कहने पर भी, स्वयं ज्ञानी होते हुए भी, राजाने, परोपकार-प्रियताके कारण—सरलताके मारे—अपने ज्ञानका उपयोग
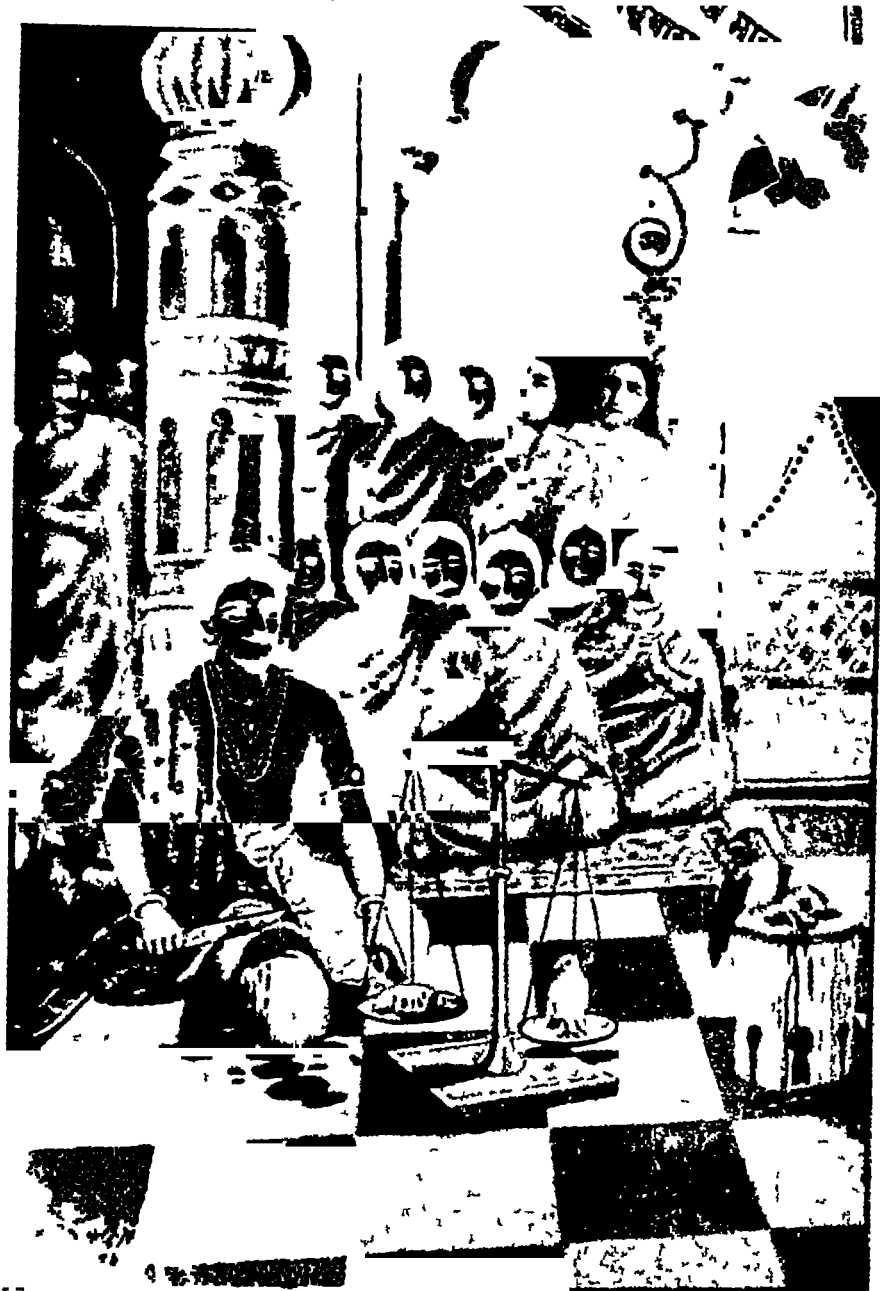
इसके बाद राजाने एक तराज़ू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज़ छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे। (पृष्ठ २२२)

HARSINGH PRESS, CALCUTTA

नहीं किया। उन्होंने अपने मनमें यही सोचा,—"जो अङ्गीकार किये हुए कार्यका निर्वाह करता है, वही इस जगतमें धन्य है। मेरे ये परिजन अपने निजी स्वार्थके लिये मुझे रोक रहे हैं, परन्तु इस असार शरीरसे परोपकार कर लेना ही सार है। उसे मैं कर ही रहा हूँ। इसलिये इनके आग्रहसे मैं अपने स्वार्थका क्यों नाश करूँ? जो होना होगा, वह भले ही हुआ करे, पर मैं तो अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करूँगा।"

राजा अपने मनमें ऐसा ही विचार कर रहे थे, कि इतनेमें कानोंमें हिलते हुए कुण्डल पहने, सब अंगोंमें सुहावने अलङ्कार धारण किये हुए एक दिव्य वेशधारी देव वहाँ प्रकट होकर बोले,—"हे राजन्! तुम धन्य हो। हे वीरजनोंमें शिरोमणि! तुम्हारे जीवनजन्म सुफल हो गये; क्योंकि आज ईशान-देवलोकमें इन्द्रने सभामें बैठे हुए तुम्हारे निर्मल गुणोंकी बड़ी प्रशंसा की थी। तुम्हारी वह बड़ाई मुझसे नहीं सही गयी और मैं तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ चला आया। इसके बाद जंगलमें रहनेवाले इस कबूतर और इस बाज़के शरीरमें मैंने प्रवेश किया, क्योंकि इनमें पहलेसेही वैर था।" देवने इतनाही कहा था, कि राजा पूछ बैठे,—"हे देव! इन दोनों पक्षियोंमें परस्पर वैर किस लिये हुआ? मुझे यह बात जाननेका बड़ा कौतूहल हो रहा है, इसलिये मुझसे कह सुनाइये।" तब देवने कहा,—

"किसी ज़मानेमें इसी नगरमें सागर नामका एक बनियाँ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम विजयसेना था। उसके धनदत्त और नन्दर नामके दो पुत्र थे। क्रमशः बढ़ते-बढ़ते वे जवान हो गये और बनज व्योपार करनेको तैयार हुए। एक दिन वे दोनों, माँ-बापकी आज्ञा ले, बहुतसे आदमियोंका क़ाफ़िला संग लेकर, व्यापार करनेके लिये नागपुर नामक नगरमें आये। वहाँ व्यापार करते हुए उन्हें दैवयोगसे किसी तरह एक बड़े दामोंवाला उत्तम रत्न हाथ लग गया। इसके बाद जब वे अपने नगरकी ओर लौटने लगे, तब उस रत्नके लोभसे एक दूसरेको मार डालनेकी ताकमें लगे। रास्तेमें एक नदी पड़ती थी। उसीके पार

उतरते-उतरते दोनोंमें विवाद होने लगा। एकने कहा,—'यह मनोहर रत्न मेरा उपार्जन किया हुआ है। दूसरेने कहा,—"नहीं, मेरा उपार्जन किया हुआ है। तुम व्यर्थ ही लोभ क्यों करते हो ? इसी प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों क्रोधमें आकर वहीं युद्ध करने लगे। लड़ते-लड़ते वे उसी नदीमें गिर पड़े और आर्त्तध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हुए। वे ही दोनों मरकर इस जंगलमें कबूतर और बाज हुए हैं। महाराज मैंने इन दोनोंको एक जगह इकट्ठे होकर लड़ते देखा, इसीसे इनपर अपना असर डाला।

यह कह, राजाकी प्रशंसा कर, वह देवता अपने स्थानको चले गये। राजा भी अक्षत शरीर वाले हो गये। इसके बाद सभासदोंने राजा मेघरथसे पूछा,—"हे स्वामी! ये देवता कौन थे? और इन्होंने बिना किसी प्रकारके अपराधके ही इतनी माया फैलाकर आपको प्राण-सङ्कटमें क्यों डाल रखा था?" राजा मेघरथने कहा,—हे सभासदो! अगर तुम्हारे मनमें इस बातके जाननेका कौतूहल हो, तो जी लगाकर सुनो,—

"इस भवके पूर्व, पाँचवें भवमें, मैं अनन्तवीर्य नामक वासुदेवका बड़ा भाई अपराजित नामक बलदेव था। उस भवमें दमितारि नामक प्रतिवासुदेव मेरा शत्रु था। मैंने उसकी पुत्रीका हरणकर उसे जानसे मार डाला था। इसके बाद वह संसार-रूपी अरण्यमें भ्रमण करता हुआ, इसी भरत-क्षेत्रके अष्टापद-पर्वतके पास एक तपस्वीका पुत्र हुआ। वहाँ अज्ञान-तप कर, आयुष्यका क्षय होने पर, मृत्युको प्राप्त हो कर, वह ईशान-देवलोकमें जा, सुरूप नामका देव हुआ है। जब इन्द्रने सभामें मेरी प्रशंसा की, तब पूर्व भवके वैरके कारण, इस देवको मेरी बड़ाई अच्छी न लगी और यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ आया। इसका जो कुछ नतीजा हुआ, वह तुम लोग देख ही चुके हो।"

यह सुनकर सब सभासदोंको बड़ा अचम्भा हुआ। उसी प्रकार उन दोनों पक्षियोंको अपना और उस देवताका वृत्तान्त सुनकर जाति-

स्मरण हो आया और वे अपनी भाषामें बोल उठे,—"हे स्वामिन्! हमें अपना चरित्र सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो आया है, इसलिये अब जो कुछ हमारे करने योग्य हो, वह हमें बतलाइये।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे पक्षियो! तुम सच्चे दिलसे समकित अङ्गीकार कर पापका नाश करनेवाला अनशन व्रत ग्रहण करो।" यह सुन, उन दोनोंने उसी प्रकार अनशन-व्रत ले लिया। इसके बाद पञ्चनमस्कारका स्मरण करते हुए, मरणको प्राप्त होकर वे भुवनपतिमें जाकर देवता हो गये। राजा मेघरथ पौषध-व्रत ग्रहण कर, उसके अन्तमें पारणा कर फिर भोग-सुख भोग करने लगे।

एक दिन राजा मेघरथ, परिषह और उपसर्गोंके विषयमें निर्भय होकर वैराग्यकी प्रेरणासे अट्ठम तप कर, शरीरको निश्चल कर, प्रतिमा धारण (काउस्सग्ग=कायोत्सर्ग) किये हुए थे, इसी समय अट्ठाईस लाख विमानोंके अधिपति ईशानेन्द्रने भक्तिके आवेशमें आकर कहा,—"अपने महात्म्यसे इन तीनों लोकोंको जीतनेवाले और पापको नाशकर-नेवाले हे राजन्! आप तीर्थङ्कर होंगे, इसीलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।" इस प्रकार ईशानेन्द्रके किये हुए नमस्कारको सुन कर, उनके पास बैठी हुई उनकी स्त्रियोंने पूछा,—"हे स्वामी! अभी किसको आपने प्रणाम किया?" देवेन्द्रने कहा,—"हे सुन्दरी! पृथ्वीमण्डलपर पुण्डरीकिणी नामक नगरीके राजा मेघनाथ इस समय अट्ठम-तप कर, स्थिर-चित्त हो, शुभध्यानसहित प्रतिमा किये हुए हैं। उन्हींको मैंने प्रणाम किया है। इस प्रकार शुभध्यानमें तत्पर और धर्म-कर्ममें निश्चल उन मेघरथराजाको ध्यानसे हटानेमें इन्द्रसहित सभी देवता भी असमर्थ हैं।"

इन्द्रकी यह बात सुन, उनकी दोनों स्त्रियाँ—सुरूपा और अतिरूपा—राजाको विचलित करनेके लिये वहाँ आयीं। अत्यन्त मनोहर रूप-लावण्य और कान्तिसे युक्त वे दोनों देवियाँ तरह-तरहके विलासके साथ शृंगार-रसको प्रकट करती हुई राजासे बोलीं,—"हे स्वामी! हम

दोनों देवाङ्गनाएँ हैं और तुमपर स्नेह हो जानेके कारण मोहित होकर तुम्हारे पास आ पहुँची हैं। इसलिये तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो। हमारे पति देवेन्द्र हमारे वशमें हैं, तो भी हम तुम्हारे लावण्यसे मोहित हो, उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास चली आयी हैं, इसलिये हे स्वामिन्! आपको अवश्य हमारी प्रार्थना पूरी करनी चाहिये।" यह कह, वे रात भर तरह-तरहके अनुकूल उपसर्ग कर, उनके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती रहीं, पर राजा ज़रा भी विचलित न हुए। वे मेरु-पर्वतकी भाँति अचल बने रहे। यह देख, हार मानकर उन दोनों देवाङ्गनाओंने मेघरथ राजाको ध्यानमें निश्चल जान, उनसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी और उन्हें प्रणाम कर, उनके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई अपने स्थानको चली गयीं। प्रातः काल प्रतिमा और पौषधकी समाप्ति कर, राजा मेघरथने विधिके साथ पारणा किया।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने सब सामन्तोंके साथ, परिवार-वर्गसे घिरे हुए सभामें बैठे हुए थे। इसी समय उद्यान-पालकने आकर भक्तिपूर्वक निवेदन किया,—"हे महाराज! मैं आपको बधाई देता हूँ। आज आपके नगरके उद्यानमें आपके पिता श्रीघनरथ जिनेश्वरने समवसरण किया है।" यह सुन, राजाको बड़ा हर्ष हुआ,—उनके रोम-रोम खिल गये। उन्होंने उसी समय बाग़के रक्षकको इनाम दिया। इसके बाद वे कुमारों तथा हाथी, घोड़ों, सामन्तों और माण्डलिकों आदिके साथ बड़ी धूमधामसे श्रीजिनेश्वरकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच, भगवान्की वन्दना कर, सब साधुओंको प्रणाम कर, भक्तिसे चित्तको सुवासित कर, वे उचित स्थानमें बैठ रहे। इसी समय श्रीजिनेश्वरने सबको समान रूपसे प्रतिबोध देनेवाली धर्मदेशना इस प्रकार सुनायी,—

"हे भव्य प्राणियो! श्रीजिनेश्वरकी पूजा करने, उनकी वन्दना करने तथा नवीन ज्ञान ग्रहण करनेमें लेशमात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। जो पुण्यवान् जीव, धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करते, उनपर

यदि कष्ट भी आ पड़े, तो वह सूरराजकी तरह सुखका ही कारण हो जाता है।"

जब प्रभुने ऐसी बात कही, तब गणधरने श्रीजिनेश्वरको नमस्कार कर विनयपूर्वक कहा,—"हे स्वामी! वह सूरराज कौन था, जो धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करता था।" इस पर भगवान्‌ने कहा,—"हे भद्र! यदि तुम्हें उसका चरित्र श्रवण करनेकी इच्छा हो, तो सावधान होकर सुनो।

## सूरराज (वत्सराज) की कथा

इसी जम्बूद्वीपमें, भरतक्षेत्रके अन्तर्गत, क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक नगर है। उसमें प्रजा-पालनमें तत्पर और गुण-रत्नोंके मन्दिर-स्वरूप वीरसिंह नामके राजा राज्य करते थे। इन राजाके शीलरूपी अलंकार को धारण करनेवाली और इनके बाँयें अङ्कको अधिकारिणी धारिणी नामकी स्त्री थी। एक दिन रानी, स्वप्नमें अपने आगे-आगे देवेन्द्र-को जाते देख, जग पड़ी। प्रातः काल रानीने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामीसे कही। राजाने अपने मनमें इस स्वप्नका विचार कर कहा,—"इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा; परन्तु चूँकि तुमने देवेंद्रको जाते देखा है, इसलिये वह पुत्र कुछ चंचल चित्तवाला होगा।" इसके बाद क्रमसे गर्भका समय पूरा होने पर रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। माता पिताने स्वप्नके अनुसारही उसका नाम 'देवराज' रखा। वह कुमार धीरे-धीरे बड़ा हो चला। इसी समय रानीने एक दिन फिर स्वप्नमें शंखके समान उज्ज्वल, पुष्ट शरीरवाला और अपनी गोदमें बैठा हुआ एक वृषभ देखा। सवेरे ही उठकर रानीने इसका हाल राजाको सुनाया। रानीने कहा,—"हे स्वामी! आज मैंने सुख-सेज पर सोते-सोते सपने-में कैलास-पर्वतकी तरह उज्ज्वल एक वृषभ देखा है। भला इस स्वप्न-

के प्रभावसे मुझे कौनसा फल प्राप्त होगा ?" राजाने विचार कर उत्तर दिया,—"हे देवी! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा और वह राज्यकी धुराधारण करनेवाला तथा परम भाग्यवान् होगा।" इस प्रकार स्वप्नका फल सुनकर धारिणी देवी बड़ी प्रसन्न हुई। क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ मुहूर्त्तमें रानीके पुत्र पैदा हुआ। बालक जब दस दिनोंका हुआ, तब राजाने अपने सब स्वजनोंको बुलवा कर, उन्हें भोजन तथा वस्त्र और ताम्बूल आदि दे, सम्मान्नित कर, उन लोगोंके सामनेही स्वप्नके अनुसार उस पुत्रका नाम वत्सराज रखा। वह भी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ आठ वर्षका हो गया। तब राजाने उसको सूक्ष्म बुद्धिवाला जान कर, उसे कालाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेजा। वहीं उसने सब कलाओंका अभ्यास कर लिया।

एक बार राजा वीरसिंह शरीरमें दाह ज्वरादि महाव्याधियाँ हो जानेके कारण बड़े दुःखित हुए। सारा राज-परिवार उन्हें इस प्रकार विषम रोगसे पीड़ित देख, परम दुःखित हो गया। उस समय सब लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे,—'यद्यपि राजकुमार देवराज उमरमें बड़े हैं, तथापि गुणोंके कारण यह वत्सराजही बड़े हैं'। इसलिये यदि वत्सराजही राजा हो, तो बहुत अच्छा है।" लोगोंकी यह बात सुन, देवराजने एक मन्त्रीको अपने मेलमें लाकर; हाथी घोड़े और पैदल सैनिकोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। लोगोंके मुँहसे यह वृत्तान्त सुन, बीमार होने पर भी, वीरसिंह राजाने कहा,—"ओह! उस मन्त्रीने बहुत बुरा किया; क्योंकि राज्य पर बैठनेके योग्य तो वत्सराज ही है—देवराज योग्य नहीं है। पर मैं ऐसी हालतमें पड़ा हूँ, इसलिये क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।" यहीं कह कर राजा, आयु क्षय होनेके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये। इसके बाद सब लोगोंकी मर्ज़ीके खिलाफ़ देवराजने पिताकी गद्दी पर दख़ल जमा दिया। विनयादि गुणों-से युक्त वत्सराज, देवराजको पिताकी तरह मानते हुए, उन्हें प्रणाम करते और तरह-तरहसे उनका आदर-सम्मान करते। देवराजके पक्ष-

पाती उस मन्त्रीने सब लोगोंको वत्सराजकी ही तरफदारी करते देख कर अपने मनमें विचार किया,—"यह वत्सराज उम्र बड़ी होनेपर अवश्य ही इस राज्य पर अधिकार जमा लेगा; इसलिये इसे किसी तरह यहाँसे दूर करना चाहिये। नीतिमें कहा हुआ है, कि—

'तदस्मिन्नाहितं स्वस्य, नोपेक्षा युज्यते खलु ।
कोमलोऽपि रिपुश्छेद्यो, व्याधिवद् बुद्धिशालिना ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'अपने शत्रुकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये, कि छोटीसी व्याधिकी तरह अपने नन्हे-से शत्रुको भी अवश्यही मार डाले।"*

ऐसा विचार कर, उस मन्त्रीने अपना अभिप्राय राजापर प्रकट किया। देवराजने उससे पूछा,—"मन्त्री! इसके लिये कौनसा उपाय करना चाहिये?" मन्त्रीने कहा,—"हे राजन्! वत्सराजका यहाँ रहना आपके हक़में अच्छा नहीं है, इसलिये इसे किसी-न-किसी उपायसे इस नगरसे निकाल बाहर करना चाहिये। क्योंकि यद्यपि वह तुम्हारा छोटा भाई है, तथापि तुम्हारी बुराई करनेवाला है।" मन्त्रीकी यह सलाह सुन, एक दिन देवराज अपने छोटे भाईको बुलाकर कहा,—"तुम मेरा देश छोड़कर कहीं और चले जाओ।" बड़े भाईकी यह आज्ञा उसने झटपट स्वीकार कर ली और अपनी मातासे आकर यह हाल कहा। वह उसके मुँहसे यह सब हाल सुन, बड़ी दुःखित हुई और आँसू गिराने लगी। अपनी माताको दुःखित होते देख, वत्सराजने कहा,—"हे माता! तुम क्यों उदास होती हो? मेरे बड़े भाई देवराज बड़े विनयी हैं। मैं उनके हुकमसे यह देश छोड़कर दूसरी जगह जाता हूँ। इसलिये तुम राजी-खुशीसे मुझे जानेकी आज्ञा दे दो।" यह सुन, देवीने कहा,—"बेटा! यदि तू दूसरे देशमें जायेगा, तो मैं भी अपनी बहनके साथ तेरे साथही चलूँगी।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"माता! तुम्हें तो यहीं रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये परदेश

जाना बड़ा ही कठिन है। इसके सिवा भैया देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसलिये तुम इन्हींके पास सुखसे पड़ी रहो।" रानीने कहा,---"बेटा! मैं तो तेरे ही साथ चलूँगी। जो देवराज तेरी बुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है।" यह कह, धारिणीदेवी भी वत्सराजके साथ जानेको तैयार हो गयी। देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या और किसी सवारीका प्रबन्ध नहीं किया। इसीलिये देवी भी वत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ीं। उस समय राजाने लोगोंको हुक्म दिया, कि जो कोई वत्सराजके साथ जायेगा, वह मारा जायेगा। यह कह, उन्होंने उनके परिवारको भी उनके साथ जानेसे रोक दिया। उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया। सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे वत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो। लोग वत्सराजके सौभाग्यके निमित्त कहने लगे,—"आजही यह नगर अनाथ हो गया -मानों राजा वीरसिंहकी आजही मृत्यु हुई है। अब जरूर यहाँकी प्रजापर आफत आयेगी।" प्रजावर्गकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए वत्सराज नगरसे बाहर हो गये।

अपनी माता और मासीके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए वत्सराज मालवा-देशके उज्जयिनी नामक नगरीमें आ पहुँचे। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम कमलश्री था। वहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते थकी हुई धारिणी देवी, एक वृक्षकी छायामें बैठ रहीं और विचार करने लगीं,—"हा दैव! तुमने यह क्या कर डाला? मैं वीरसेन राजाकी प्राणप्रिया होकर भी ऐसी कष्टदायक अवस्थामें क्यों पड़ गयी?" वे ऐसा ही विचार कर रही थीं, कि इतनेमें उनकी बहन धिमला, धारिणीकी आज्ञा ले, रहनेकी जगह ढूँढ़नेके लिये नगरमें गयीं। नगरके लोगोंको देखते-देखते वह क्रमशः सोमदत्त नामक सेठके घरका रास्ता देख, उसीमें घुस पड़ीं। वहाँ शान्तमूर्त्ति और परोपकारी सेठको बैठे देख, उन्होंने दीन-वचनोंसे कहा,—"सेठजी! मैं, मेरी बहन और उसका पुत्र—ये तीनों परदेशी यहाँ आ पहुँचे हैं। यदि

आप हमें रहनेके लिये कहीं थोडासा स्थान दे दें, तो हम आपकी शरणमें सुखसे रहें।" यह सुन, सेठने उदारता और परोपकार-बुद्धिसे प्रेरित होकर उन्हें एक छोटीसी कोठरी दिखलाते हुए कहा,—"देखो, तुम लोग यहीं रहना ; पर तुम इसका कुछ भाड़ा दोगी या नहीं?" इसपर उन्होंने कहा,—"सेठजी ! मेरे पास भाड़ा देनेके लिये तो कुछ भी नहीं है ; परन्तु हम दोनों बहने आपके घरके सब काम-धन्धे किया करेंगी। उसके बदलेमें आप हमें खानेको दे दिया कीजियेगा। बड़े-बड़े घरोंमें तृण भी काममें आ जाते हैं, फिर मनुष्योंकी क्या बात है?"

इसके बाद वे तीनों उसी सेठके आश्रयमें रहने लगे। दोनों बहनें सेठके घरके कुल काम-धन्धे करने लगीं और वत्सराज उसके बछड़ोंको चरानेके लिये जंगलमें ले जाने लगे। एक दिन वे इसी तरह बछडोंको चरा रहे थे, और एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए थे। इसी समय कसरत करते हुए कुछ राजकुमारोंकी आवाज उनके कानमें पडी और वे कौतूहलके मारे उनका खेल देखने चले गये। उन राजकुमारोंमेंसे यदि किसीका वार ज़रा भी ख़ाली जाता, तो पास खड़े हुए वत्सराजका मुँह मलिन हो जाता और यदि किसीका वार ठीक ठिकानेपर बैठना, तो वे ख़ुश होकर उसकी प्रशंसा करने लगते और "क्या ख़ूब !" कह उठते थे। उनकी इस हरकतको देख, कलाचार्यने सोचा,—"यह तो कमसिन होते हुए भी शस्त्र-कलामें निपुण सा मालूम पड़ता है।" ऐसा विचार कर कलाचार्यने पूछा,—"पुत्र ! तुम कहाँसे आये हो?" वत्सराजने कहा,—"हे तात ! मैं तो एक परदेशी हूँ।" आचार्यने कहा,—"अच्छा, एक बार अपने हाथमें शस्त्र लेकर मुझे अपनी शस्त्रकुशलता तो दिखलाओ।" यह सुन, मौक़ा अच्छा देखकर वत्सराजने अपनी शस्त्रकला उनपर प्रकट की। इतनेमें उन राजकुमारोंके भोजनकी सामग्री वहाँ आयी। सबके सब वहीं खाने बैठ गये। वत्सराजके कलाभ्यासको देखकर सन्तुष्ट राजकुमारोंने उन्हें भी बड़े आग्रहसे अपने साथ ही खिलाया।

इसके बाद वत्सराज संध्यातक वहीं रह गये। इसीलिये सब गोरू-बछरू, कोई रखवाला न होनेके कारण, आपसे आप झुण्ड बाँधे समयसे पहलेही घर चले आये। यह देख, सेठने विमला और धारिणी-से पूछा,—"आज ये जानवर इतनी जल्दी घर कैसे चले आये? इसका क्या कारण है? तुम्हारा पुत्र अभी तक आया है या नहीं?" यह सुन, विमलाने कहा,—"इन बछरोंके इतनी सिदौसी घर चले आनेका कारण तो मैं नहीं जानती, पर वत्सराज अभी तक घर नहीं आया है।" इतनेमें साँझको वत्सराज घर लौटे। उनकी माता और मासीने पूछा,—"बेटा! आज तूने इतनी देर कहाँ लगायी?" उन्होंने कहा,—"हे माता! बछड़ोंको चरते छोड़कर मैं सो गया था। किसीने मुझे जगाया ही नहीं, इसलिये जब आपसे आप नींद खुली, तब चला आया हूँ।" इसपर वे दोनों बहनें कुछ न बोलीं। इसके बाद दूसरे दिन भी वह कला-भ्यासमें ही अटके रह गये, इसलिये उस दिन भी गोरू-बछरू जल्दीसे घर आ गये। तीसरे दिन भी यही हाल हुआ। तब सेठने विमला और धारिणीको चेतावनी देते हुए कहा,—"वत्सराज रोज़ इन गोरू-बछरुओंको छोड़कर न जाने कहाँ चला जाता है। जानवर रोज़ समय-से पहले ही घर चले आते हैं।" यह सुनकर, वे उस दिन वत्सराजके घर आतेही क्रोधके साथ बोल उठीं,—"बेटा! क्या तू यह भूल गया है, कि हम इस परदेशमें आकर परायेके घर नौकरी कर रहे हैं? हमें भोजन भी बड़ी मुश्किलोंसे मिल रहा है। ऐसी अवस्थामें तू हम लोगों-को बातें क्यों सुनवाता है?" यह सुन, वत्सराजने अपनी मासीसे कहा,—"तुम लोग सेठसे कह देना, कि अब मैं बछड़ोंको चरानेके लिये नहीं ले जाऊँगा।" यह सुन, उसकी माताने सेठसे जाकर कहा,—"मेरा पुत्र अभी बालक है, इसीलिये अल्हड़पनके कारण खेल-कूद करने लगता है। इससे जानवरोंकी चरवाही भली भाँति नहीं बन पड़ती। हम दोनोंने उससे लाख कहा, पर वह लड़कपनके मारे कुछ सुनताही नहीं।" उन दोनोंने जब यह बात रो रोकर कही, तब दया

आ जानेके कारण उस सेठने उनसे कहा,—"बालक ऐसेही मनमौजी हुआ करते हैं!" यह सुनकर वे दोनों चुप हो रहीं।

अब तो वत्सराज रोज़ सवेरे उठकर उन्हीं राजकुमारोंके पास पहुँच आते और कलाभ्यास करते। उनका खाना-पीना भी वहीं होता। एक दिन उनकी माताने उनसे पूछा,—"बेटा! तू आजकल रोज़ साँझ-तक कहाँ रहता है? कहाँ जाता है? और क्या खाता है?" इस बार उन्होंने कहा,—"मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ राजाके लड़के हथियार चलाना सीखते हैं। मैं भी उन्हींके साथ कलाभ्यास करता हूँ और वहीं खाता-पीता हूँ।" यह सुन, उनकी माता धारिणीने आँखोंमें आँसू भर कर कहा,—"पुत्र तू हम लोगोंकी चिन्ता क्यों नहीं करता? बेटा! इस समय अपने घरमें ईंधन भी नहीं है, इसलिये कहींसे ला दे, तो ठीक हो।" माताकी यह बात सुन, वत्सराजने कहा,—"माता! तुम सेठके यहाँसे कुल्हाड़ी और काँवर लाकर मुझे दो, तो मैं जङ्गलमें जाकर लकड़ी काट लाऊँ।" यह सुन वह कुल्हाड़ी आदि माँग लायी। दूसरे दिन सवेरे बहुत जल्दी उठकर वह कुल्हाड़ी आदि लिये हुए घने जङ्गलमें चले गये। वहाँ तरह-तरहके वृक्षोंको देखकर उन्होंने विचार किया,—"यदि कहीं चन्दनका पेड़ मिल जाये, तो उसकी लकडी बेचकर मैं अपनी दरिद्रता दूर कर दूँ और माता तथा मासीकी इच्छा पूरी करूँ।" यही विचार कर वह उस जंगलमें चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने एक देवमन्दिर देखा, जिसमें एक प्रभावशाली यक्षको प्रतिमा थी। उसे प्रणाम कर वह खड़े ही थे, कि इतनेमें दूरसे सुगन्ध आती मालूम पडी। तब उन्होंने सोचा,—"अवश्य ही इस वनमें कहीं चन्दनका पेड़ है।" ऐसा विचार कर वह बड़े शौक़से उस वनके चारों ओर घूम घूमकर देखने लगे। इत-नेमें उन्हें एक स्थान पर सर्पोंसे घिरा हुआ एक चन्दनका पेड़ दिखाई पड़ा। यह देख, उन्होंने बड़े साहससे उस पेड़के पास जाकर उसे हिला-हिला कर सब सर्पोंको भगा दिया। यह वन एक यक्षका था, इसलिये पहले कोई यहाँ चन्दनका पेड़ नहीं काटता था। परन्तु चूँकि वत्सराज बड़े

ही साहसी थे, इसलिये उन्होंने उस चन्दनके पेड़की एक डाल काट गिरायी। इसके बाद उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर, काँवरमें भरकर, वे घरको लिये जाते थे, कि इसी समय नगरके पास पहुँचते-न-पहुँचते रास्तेमें ही सूर्यास्त हो गया और नगरका फाटक बन्द हो गया। उस नगरमें शाकिनीका बड़ा उपद्रव हुआ करता था। इसी डरसे सूर्यास्तके ही समय शहर-पनाहके फाटक बन्द हो जाते थे और फिर सूर्योदय होने पर ही खुलते थे। वहीं पड़े-पड़े वत्सराजने विचार किया,—"यदि मैं नगरके बाहर ही किसी घरमें रातभर रह जाऊँ, तो इस चन्दनकी गन्ध चारों तरफ़ फैल जायेगी, इसलिये अच्छा हो, यदि मैं फिर उसी जंगलमें लौट जाऊँ और रात वहीं बिता दूँ।" फिर सोचा,—"आज बड़ी कड़ाकेकी सरदी है, इसलिये अगर ठण्ड लगी, तो फिर मैं क्या करूँगा?" यही सोचते-सोचते उन्हें उस मन्दिरकी याद आ गयी और उन्होंने सोचा, कि उसी मन्दिरमें रह जाऊँगा। ऐसा विचारकर वह बहुत जल्दी-जल्दी वहीं पहुँचे और एक बड़ेसे वृक्षपर ऊँचे चढ़कर चन्दनका वह काँवर बाँधकर लटका दिया। इसके बाद वे वीर-शिरोमणि स्वयं उस मन्दिरमें चले गये और उसका दरवाज़ा बन्दकर, पासही कुल्हाड़ी रख, एक कोनेमें बेफ़िक्रीके साथ सो रहे। इतनेमें वैताढ्य-पर्वतपर रहनेवाली विद्याधरियोंका झुण्ड, विमानसे उतरकर उसी यक्षमन्दिरमें आया और उत्तम शृङ्गार किये, यक्षकी भक्तिके वशमें हो, वे नाचने-गानेको तैयार हो गयीं। इसी समय मन्दिरके बाहर वाले मण्डपमें बैठकर वे परस्पर इस प्रकार बातें करने लगीं,—"चित्रलेखा! तू बीन बजा, मानसिका! तू ताल दे। वेगवती! तू बजानेके लिये ढोलको तैयार कर ले। पवनकेतना! तू मृदङ्ग तैयार कर ले। गन्धर्विका! तू गीत गा। हम सब नृत्य करेंगी। बस आओ, हम आज इस मनोहर स्थानमें जी भरकर मौज करें।" इस प्रकार बातें करती हुई, वे विद्याधरियाँ, मौजके साथ हँसती और आनन्द मनाती हुई, क्रीड़ा करने लगीं। इस प्रकार बड़ी देरतक मौज-बहार करनेके अनन्तर उन्होंने अपने पसीनेसे भींगे हुए

कपड़े उतारकर, दूसरे पहन लिये और क्षणभर विश्राम कर, अपने-अपने घर चली गयी वत्सराजने उनकी यह सारी कारवाई और नाचना-गाना उस किवाड़की सन्धसे देखा-सुना। इसके बाद जब वे चली गयीं, तब वत्सराजने उनमेंसे किसीकी सुन्दर अँगिया गिरी देखी, जिसमें तरह-तरहके विचित्र रत्न टँके हुए थे। उसे देख, उन्होंने किवाड खोलकर वह सुन्दर अँगिया ले ली और तुरतही मन्दिरके अन्दर चले गये।

थोड़ी ही दूर आगे बढ़नेपर उन विद्याधरियोंमेंसे एक जिसका नाम प्रभावती था, अपनी अँगिया भूली हुई देखकर बोली,—"हे सखियो! मेरी तो एक बड़ी कीमती अँगिया उसी मन्दिरमें छूट गयी है।" इसपर उन सबने कहा,—"प्रभावती! तू वेगवतीको साथ लेकर वहाँ चली जा और अपनी अँगिया लेकर जल्द चली आ। यह सुन, वे दोनों जल्दीसे वहाँ आकर अँगिया ढूँढ़ने लगीं; पर वह कहीं नजर नहीं आयी। तब प्रभावतीने वेगवतीसे कहा,—"सखी! इतनी ही देरमें अँगिया क्या हो गयी? यहाँ तो शायद कोई आदमी भी नहीं रहता। उसपर आधीरातका समय! फिर कौन ले गया?" वेगवतीने कहा,—"शायद हवामें उड़कर कहीं दूर चली गयी होगी। इसलिये हमलोगों-को आलस्य छोड़कर उसकी ठीकसे तलाश करनी चाहिये।" यह कह, वे दोनों विद्याधरियाँ, मन्दिरके चारों ओर ढूँढ-खोज करने लगीं; पर अँगिया कहीं न दिखाई दी। इतनेमें उन्हें वृक्षपर लटकाया हुआ चन्दनकी लकड़ियोंसे भरा हुआ काँवर दिखाई पड़ा। यह देख, उन्होंने परस्पर विचार किया,—"इस मन्दिरके भीतर अवश्यही कोई आदमी बैठा हुआ है और उसीने अँगिया चुरायी है। इसलिये चलकर उसे डराना-धमकाना चाहिये, जिसमें वह मेरी अँगिया दे दे।" ऐसा विचार कर, दोनों मन्दिरके द्वारपर जाकर बोलीं,—"रे मनुष्य! तू मन्दिरसे बाहर निकल और हमारी अँगिया दे दे, नहीं तो हम तेरा सिर तोड डालेंगी।" यह सुनकर भी वह वीर-शिरोमणि, क्षत्रिय होनेके कारण,

ज़रा भी न डरा। वे विद्याधरियाँ भी यक्षके भयके मारे किवाड़ तोड़कर भीतर नहीं जा सकती थीं, इसलिये बाहरसे बोलती रहीं। इसके बाद उन्होंने सोचा,—"मालूम होता है, कि यह रातभर यहीं रहेगा, इसलिये नगरमें चलकर इसके नामादिका पता लगाना चाहिये; क्योंकि इसका कोई-न-कोई सगा सम्बन्धी तो होगा ही, जो इसे रातको न आया देख रो रहा होगा। तभी इसको बाहर बुला लानेमें आसानी होगी।" यही सोचकर वे दोनों विद्याधरियाँ आकाशमार्गसे नगरमें चली आयीं और चारों ओर जोह-टोह लेने लगीं। इतनेमें उन्हें एक स्थान पर धारिणी और विमला बैठी हुई दुःखके साथ पुत्रका नाम ले-लेकर रोती दिखाई पड़ीं। वे कह रही थीं,—"हाय! वीरसेन राजाके पुत्र पवित्र-चरित्रवाले कुमार वत्सराज तेरी यह क्या गति हुई? पहले तो तेरा राज्य छीना गया, इसके बाद तू परदेशी बना, पराये घरमें आकर रहा, कष्टसे भोजन मिलता रहा, इतनेपर भी आज हम अभागिनियोंने तुझे न जाने क्यों ईंधन लानेके लिये भेजा? आज तू अभीतक लौटकर क्यों नहीं आया?" उनकी यह बात सुन, वे विद्याधरियाँ फिर उसी देवमन्दिरमें चली आयीं और वत्सराजकी माता तथा मासीकी सी आवाज़में बोलीं—"हे वत्सराज! हम दोनों तुझे सारे शहरमें खोजती-ढूँढ़ती तेरे वियोगके दुःखसे दुःखी होकर यहाँ आ पहुँची हैं। इसलिये जल्द बाहर आ और हमें अपना मुखड़ा दिखला।" यह सुन, मन्दिरके भीतर बैठे हुए वत्सराजने सोचा,—"इस समय मेरी माँ और मासीका यहाँ आना कदापि सम्भव नहीं है। यह उन्हीं विद्याधरियोंकी माया है। यह कपट-रचना उन्होंने अँगियाके ही लिये की है।" ऐसा विचार कर, वे चतुराईसे चुप रह गये। उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। क्रमसे सूर्योदय हो आया और वे विद्याधरियाँ चिल्लाते-चिल्लाते हारकर घर चली गयीं।

इसके बाद किवाड़की सन्धसे उँजेला आता देख, वत्सराज किवाड़ खोलकर बाहर निकले और चन्दन-वृक्षके कोटरमें उस कंचुकी (अँगिया)

को छिपाकर, लकडीका कांवर ले, हाथमें एक मामूलीसी लकड़ी लिये घरकी ओर चले। क्रमशः वे नगरद्वारके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने द्वार-रक्षकको हाथकी मामूली लकडी धरा दी और आप घरकी तरफ बढ़े। बाज़ारमें जहाँ-जहाँ चन्दनकी ख़ुशबू फैली, वहाँ-वहाँके लोग अचम्भेके साथ चारों ओर देखने और विचार करने लगे, कि यह ख़ुशबू कहाँसे आ रही है!" इसप्रकार विस्मित होकर, एक आदमी-को लकडी लिये आते देखकर भी उन्होंने सोचा, कि हवाके झोंकेसे उड़कर यह सुगन्ध कहींसे यहाँ तक आ रही है। लोग इसी सोच-विचारमें रहे, तबतक वत्सराज अपने घर पहुँच गये और एक ओर लकडीका कांवर रख, उसका एक छोटासा टुकडा मासीके हाथमें देकर बोले,—"मासी! तुम गन्धीकी दूकान पर इसे ले जाओ और इसका जो दाम मिले, वह लेती आओ।" विमला उस चन्दनके टुकड़ेका बहुतसा दाम ले आयी। यह देख, वत्सराजने अपनी माता और मासी-से कहा,—"अब हमें पराये घरकी नौकरी करनेकी जरूरत नहीं। जो कुछ असबाबकी ज़रूरत होगी, वह इसी द्रव्यसे खरीद लिया जायेगा। सेठके मकानका भाड़ा भी दिया जायेगा। यह सब चुक जाये, तो फिर दूसरा टुकड़ा ले जाकर बेंच आना। यह लकडी चन्दनकी है। इसके प्रतापसे अब तुम्हारे घरमें धनकी कमी नहीं रहेगी। इसलिये अब हमें पराधीन होकर रहनेका काम नहीं है। दिनभर मजेसे खेल-कूद करूँगा। रातको सदा घर आया करूँगा, तुम किसी तरहकी फिक्र अपने मनमें न आने देना।"

यह कह, वत्सराज राजकुमारोंके पास गया। उन्होंने कहा,—"क्यों भाई! तुम कल क्यों नहीं आये?" वत्सराजने कहा,—"कल मेरी तबियत अच्छी नहीं थी, इसीसे नहीं आया।" राजकुमारने कहा,—"मित्र! हमने तुम्हारा घर नहीं देखा है, नहीं तो. जरूर तुमसे मिलकर तुम्हें देख आते।" यह सुनकर वत्सराजको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद कलाचार्यने वत्सराजसे पूछा,—"हे सज्जन! तुम किस कुलमें

उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारी जन्मभूमि कहाँ है ?" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"अभी आप मुझसे मेरा परिचय न पूछिये, समय आनेपर मैं स्वयं सब कुछ कह दूँगा।" जब उन्होंने ऐसा कहा, तब राजकुमारोंने उनका मतलब समझकर, ऊपरसे कुछ भी जाहिर न करते हुए, वत्सराजको बड़े प्रेमसे भोजन-वस्त्र आदि देना आरम्भ किया।

एक दिन आचार्य, उन सब राजकुमारोंको साथ ले, वत्सराजको भी अपनी मण्डलीमें शामिलकर, राजाके पास आये। वहाँ आ, कुमार राजाको प्रणामकर, उचित स्थानपर बैठ रहे। राजाने वत्सराजको अजनबी समझकर कुमारोंसे पूछा,- -"पुत्रो ! तुम्हारे साथ यह नया लड़का कौनसा है ?" उन्होंने कहा,—"इनको हमलोगोंने अपना बन्धु बना रखा है।" इसके बाद राजाने कलाचार्यसे पूछा,—"यह किसका पुत्र है ? इसकी कला-कुशलता कैसी है ?" यह सुन, कलाचार्यने कहा,--"महाराज ! मुझे इस लडकेके कुल आदिका बिलकुल पता नहीं है ; परन्तु इसकी कला-कुशलता ऐसी है, कि कोई इसकी बराबरीका नहीं दिखलाई देता।" यह सुन, राजाने पहले सब राजकुमारोंकी परीक्षा ली। इसके बाद उनकी आज्ञासे वत्सराजने भी अपनी कुशलता उनपर प्रकट की। राजाने उनकी विज्ञानकला और चतुराईका चमत्कार देख, उनसे कहा,— हे पुत्र ! तुम अपने कुलका मुझे परिचय दो, क्योंकि छिपे हुए मोती का कुछ मूल्य नहीं होता। यह सुन, वत्सराजने सोचा,—"पूर्वाचार्यने कहा था, कि—

> 'प्रस्तावे भाषितं वाक्य, प्रस्तावे दानमंगिनाम्।
> प्रस्तावे वृष्टि रल्पाऽपि, भवेत्कोटिफलप्रदा ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"समयपर बोला हुआ थोडासा वाक्य, समयपर किसीको दिया हुआ थोडासा दान और समयपर होनेवाली थोडीसी वर्षा भी करोडगुना फल देनेवाली होती है।"*

ऐसा विचार कर, उचित समय जान, वत्सराजने निःशंक होकर, आदिसे अन्त तक अपनी सारी कथा राजाको कह सुनायी। उनके पासही बैठी हुई रानी कमलश्रीने यह हाल सुनकर अकस्मात् प्रश्न किया,—"क्या धारिणी और विमला यहाँ आयी हुई हैं?" इसपर वत्सराजने हामी भर दी। यह सुन, रानीने राजासे कहा,—"प्राणेश्वर! धारिणी और विमला मेरी बड़ी बहनोंके नाम हैं। यह लड़का मेरा बहन-बेटा है। तुम्हारी आज्ञा हो, तो मैं अपनी बहनोंको यहीं बुलवा लूँ।" यह सुन, राजाने कहा,—"तुम स्वयं वहाँ जाकर अपनी दोनों बहनोंको कुमारके साथ बुला लाओ, क्योंकि वे वहाँ बड़ा दुःख पा रही होंगी।" इसके बाद राजाका हुक्म पा, रानी कमलश्री, हाथीपर सवार हो, सिरपर छत्र लगाये, बहुतसे नौकर-चाकरोंके साथ सेठके घर पहुँची। यह देख, उस सेठको बड़ा विस्मय हुआ और रानीके पास आकर तरह-तरहके विनयोपचार करने लगा। उसे इस प्रकार खुशामद करनेसे रोककर रानीने कहा,—"सेठजी! घबराओ नहीं, मैं जिन लोगोंसे मिलने आयी हूँ, उन्हींसे मुझे मिल लेने दो।" यह कह, राजप्रिया धारिणी और विमलाके पास जानेको तैयार हुई। इतनेमें वत्सराजने पहले ही वहाँ पहुँच कर धारिणी और विमलाको प्रणाम करते हुए उनसे सारा हाल कह सुनाया और निवेदन किया,—"माता! इस नगरके राजा तुम्हारे बहनोई हैं। तुम्हारी बहन रानी कमलश्री तुमसे मिलनेके लिये इस घरके आँगन तक चली आयी हैं।" यह सुनतेही उनकी मा और मासीने कहा,—"पुत्र! हमें इस नातेदारीका पहलेसे ही पता था; पर शर्मके मारे हम इसे प्रकट नहीं करती थीं।" यह कह वह दोनों बड़े हर्षके साथ घरसे बाहर निकलीं और रानीके पास चलीं। रानी भी हाथीसे नीचे उतरकर दोनोंसे गले-गले मिली और ऊँचे स्वरसे रोती हुई बोली,—"प्यारी बहनो! तुम्हारी ऐसी भयङ्कर अवस्था क्योंकर हुई? इसमें विधाताका ही कोप मालूम पड़ता है, क्योंकि वह सत्पुरुषोंको भी दुःख देता है। कहा भी है,—

'अघटितघटितानि घटयति, सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"विधाता अनहोनीको होनी कर देता और होनीको अनहोनी कर देता है । वह ऐसेही काम किया करता है, जिनकी मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं करता ।"*

"प्यारी बहनो! तुम दोनों यहाँ आकर भी क्यों छिपी रहीं? कहीं दैवयोगसे इस दुःखमें पड़ जानेके कारण लज्जाके मारे तो नहीं छिपी पड़ी रहीं? अथवा मैं ही अभागिनी हूँ, इसीसे तुम हमारे नगरमें पुत्र सहित आकर रहीं और मैंने ज़रा भी यह हाल नहीं जाना। अब अधिक कहनेसे क्या?

'यद्भाव्यं तद्भवत्येव, नालिकेरीफलाम्बुवत् ।
गन्तव्यं गमयत्येव, गजभुक्तकपित्थवत् ॥२॥'

*अर्थात्—'जैसे नारियलके फलमें आपसे आप पानी भर जाता है, वैसेही जो होना होता है, वह तो होकर ही रहता है । और जो जानेवाला होता है, वह हाथीके खाये हुए कैथके फलकी तरह योंही चला जाता है—रहता नहीं ।"*

"यही समझ कर मनुष्यको मनमें चिन्ता नहीं आने देनी चाहिये; क्योंकि कहा है, कि—

'दत्ते तु खानां न कोऽपि, कर्ता हर्ता कस्यचित् पुंसः ।
इति चिन्तय सद्बुद्ध्या, पुराकृतं भुज्यते कर्म ॥३॥'

*अर्थात्—'इस संसारमें कोई किसीका सुख-दुख नहीं देता, न हरण कर सकता है । सुखमें या दुःखमें मनुष्य अपने पूर्वकृत् कर्मोंका ही फल भोगता है । ऐसी सद्बुद्धि रखनी चाहिये ।'*

'ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः महासंकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥४॥'

*अर्थात्—'जिसने ब्रह्माको ब्रह्माण्डरूपी भाण्डके उदरमें कुम्हारकी तरह नियमित कर रखा है, जिसने विष्णुको निरन्तर दशावतार-रूपी गहन संकटमें डाल रखा है, जिसने महादेवको हाथमें खप्पर लेकर भीख माँगनेको मजबूर कर रखा है और जिसके करते सूर्य नित्य आकाशमें चक्कर लगाया करता है, उस कर्मको प्रणाम है।'*

"ऐसाही विचार कर, अपने ऊपर दुःख आ पड़ने पर उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।" इतनी बातें कह कर रानीने बड़े हर्षसे अपनी दोनों बहनोंसे कहा,—"प्यारी बहनो! तुम पुत्र सहित इसी हाथी पर सवार हो, मेरे घर चलो।" रानीकी यह बात सुन, उन दोनोंने सेठसे कहा,—"सेठजी! यदि आपके घर रहते हुए हमलोगोंने आपका कुछ अपराध किया हो, तो उसे क्षमा करना।" सेठने कहा,—"मैंने महज मामूली बनिये होकर आप लोगोंसे सेवा करवायी, इसके लिये आपही लोग मुझे क्षमा करें।" यह कह, वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। इसके बाद वे दोनों वत्सराजके साथही रानीके आग्रहसे राजमन्दिरमें आयीं। उस समय राजाने उन लोगोंके रहनेके लिये एक अच्छासा मकान दे दिया, जिसमें सब सामग्री भरी हुई थी। इसके बाद उन्होंने वत्सराजसे कहा,—"बेटा! अब मैं तुम्हें क्या दूँ?" वत्सराजने कहा,—"हे स्वामी! मैं दिन भर आपकी सेवा करूँगा। रातको आप मुझे घर चले जानेकी आज्ञा दे दीजियेगा। बस मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ और कुछ मुझे नहीं चाहिये।" यह सुन, राजाने उनकी बात मान ली। इसके बाद वत्सराज राजाकी सेवा करने लगे। राजाने उनके घरमें अनाज-पानी घी, आदि सब चीज़ें भरवा दीं। वे लोग सुखसे वहाँ रहने लगे।

एक दिन रातको भूलसे राजा वत्सराजको छुट्टी देना भूल गये। क़ायदेके मुताबिक पहरेदार राजमहलके चारों तरफ आकर बैठ गये।

वत्सराज हाथमें खड्ग लिये, राजाके शयन-मन्दिरके बाहर अदबसे खड़े हो रहे। आधी रातको-राजाकी नींद टूट गयी। उसी समय उन्हें दूरसे आती हुई किसी दुखिया स्त्रीके करुण-स्वरसे रोनेकी आवाज़ सुनाई दी। सुनते ही राजाने पहरेदारोंको पुकारा; पर वे नींदमें बेख़बर पड़े हुए थे, इसलिये किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। वत्सराजने कहा,—"हे स्वामी! जो कुछ हुक्म हो, कहिये, मैं बजा लाऊँ।" राजाने कहा,—"हे वत्सराज! क्या आज मैं तुम्हें घर जानेकी छुट्टी देना भूल गया?" उन्होंने कहा,—"हाँ।" तब राजाने फिर कहा,—"वत्सराज! इस समय मुझे तुमको आज्ञा नहीं देनी चाहिये।" वत्सराजने कहा,—"स्वामी! आपकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें मुझे कोई लज्जा थोड़े ही है? जो कोई काम हो, कहिये, कर लाऊँ।" तब राजाने कहा,—"बेटा! सुनो—यह जो रुलाई सुनाई दे रही है, वह किसकी है और वह क्यों रो रही है, इसे जाकर देख आओ और उससे पूछ कर मुझे ख़बर दो। साथही उस रोती हुई स्त्रीको इस तरह छाती फाड़ कर रोनेसे मना कर दो।" यह सुन, राजाकी बात स्वीकार कर, वत्सराज उसी रुलाईके शब्दकी सीध पर क़िलेसे बाहर हो, नगरके बाहर स्मशान-भूमि तक चले गये। वहाँ एक स्थानमें उत्तम-वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे विभूषित एक स्त्रीको बैठे-बैठे रोते देख, उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—"हे मुग्धे! तुम कौन हो? इस स्मशानमें आकर क्यों रो रही हो। यदि बात छिपाने लायक़ न हो, तो अपने दुःखका कारण मुझसे कह सुनाओ।" इसके उत्तरमें उस स्त्रीने कहा,—"भाई! तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ। तुमसे मेरा काम नहीं हो सकता। इसलिये तुम व्यर्थ ही क्यों मेरी चिन्तामें पड़ते हो?" वत्सराजने कहा,—"तुम्हें दुःखी देखकर भी मैं क्योंकर यहाँसे चला जाऊँ? क्योंकि भले आदमी पराये दुःखसे दुःखित होते हैं।" यह सुन, उस स्त्रीने कहा,—"जिसी-किसीसे अपना दुःख कहना नहीं चाहिये; क्योंकि कहा है,—

'जो नवि दुक्खं पत्तो, जो नवि दुक्खस्स निग्गहसमत्थो।
जो नवि दुहिए दुहिओ, तो कीस कहिज्जए दुक्खम् ॥१॥'

*अर्थात्---'जिस मनुष्यको किसी समय दुःख नहीं हुआ हो, जो दुःख छुड़ानेमें भी समर्थ न हो, तथा जो पराये दुःखसे दुःखित होने वाला न हो, उससे अपना दुःख क्यों कहना ?'*

यह सुन, वत्सराजने कहा,—"हे भद्रे! सुनो—

'अहमवि दुक्खं पत्तो, अहमवि दुक्खस्स निग्गहसमत्थो।
अहमवि दुहिए दुहिओ, ता अम्ह कहिज्जए दुक्खम् ॥१॥'

*अर्थात्—'मैं भी दुखिया हूँ और दुःख छुड़ानेको भी समर्थ हूँ। मैं पराये दुःखसे दुखी भी होता हूँ; इसलिये तुम मुझसे अपना दुःख अवश्य कहो।'*

यह सुन वह स्त्री बोली,—"तुम अभी बालक हो, इसलिये मैं तुम्हें अपना दुःख कैसे सुनाऊँ ? कहा है, कि—

'दुक्खं तास कहिज्जइ, जो होइ दुक्खभंजणसमत्थो।
असमत्थाण कहिजइ, सो दुक्खं अप्पणो कहइ ॥१॥'

*अर्थात्—'जो मनुष्य दुःख-भंजन करनेमें समर्थ हो, उसीसे अपना दुःख कहना चाहिये। असमर्थोंसे दुःख कहना अपने आपसे कहनेके समान ही निष्फल है।'*

तुम अभी बालक हो, इसलिये मेरा दुःख कैसे छुड़ा सकते हो ? इसीसे मैं तुमसे अपना दुःख नहीं कहा चाहती।"

वत्सराजने कहा,—

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो ?
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ?
वज्रेणाभिहताः पतन्ति गिरयः, किं वज्रमात्रो गिरिः ?
तेजो यस्य विराजते स बलवान्, स्थूलेषु कः प्रत्ययः ?

*अर्थात्—'हाथीकी देह बहुत बड़ी होती है; पर वह भी छोटे-*

से अंकुशके वशमें रहता है। तो इससे क्या अंकुश हाथीके बराबर होगया? जलता हुआ छोटासा चिराग घनी अँधियारीको दूरकर देता है। तो क्या दीपके बराबर ही अन्धकार होता है? वज्रके मारसे बड़े-बड़े पर्वत भी गिर पड़ते हैं। तो क्या पर्वत वज्रकीही तरह छोटे-छोटे होते हैं? नहीं—ऐसा नहीं है। जिसमें तेज विराजमान होता है वहीं बलवान् होता है। केवल मोटे-ताजे होनेसे ही उसके बलका भरोसा नहीं करना चाहिये।'

'सिंहः शिशुरपि निपतति, मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः॥ १॥'

अर्थात्—'सिंह बालक होनेपर भी, कपोल-प्रदेशसे मद चुआनेवाले हाथीपर ही पड़ता है। इससे सिद्ध होता है, कि पराक्रमी जीवोंकी ऐसी प्रकृति ही होती है, इसलिए अवस्था तेजका कारण नहीं है।'

"अतएव हे मुग्धे! तुम मुझे बालक समझकर मेरी अश्रद्धा न करो। तुम्हें जो दुःख हो, वह मुझसे कहो। मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, वहाँ तक मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।"

यह सुन, वह स्त्री ज़रा मुस्कराकर बोली,—"हे पुरुष! मेरे दुःखका कारण सुनो। मैं इसी नगरके रहनेवाले एक अच्छे आदमीकी स्त्री हूँ। मेरे उस युवा पतिको यहाँके राजाने निरपराध सूलीपर चढ़ा दिया है। अभीतक वे सूलीपर लटके हुए भी जी रहे हैं और घेवर खानेकी बड़ी इच्छा प्रकट कर रहे हैं। इसलिये मैं उनके वास्ते घरसे घेवर बना लायी हूँ; पर सूली इतनी ऊँची है, कि मैं वहाँतक पहुँच नहीं पाती। इसीलिये मैं अपने पतिको याद कर-करके रो रही हूँ; क्योंकि स्त्रियोंका बल तो रोनाही है।"

यह सुन, वत्सराजने कहा,—"भद्रे! तुम मेरे कन्धेपर चढ़कर अपनी इच्छा पूरी कर लो।" यह सुनतेही वह दुष्ट अभिप्रायवाली स्त्री, वत्सराजके कन्धे पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देहसे माँस

श्री मोतीलाल ... पुस्तकालय

यह सुनतेही वह दुष्ट अभिप्रायवाली स्त्री, वत्सराजके कन्धे पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देहसे माँस काट-काट कर खाने लगी (पृष्ठ २४५)

काट काट कर खाने लगी। इतनेमें माँसका एक टुकडा वत्सराजके कन्धेपर आ पड़ा, इससे विस्मित होकर वत्सराजने सोचा,—"हैं! यह माँस कहाँसे आया ?" ऐसा विचार कर उन्होंने ऊपरकी ओर देखा, तो उस स्त्रीकी कुल हरकत उन्हें नज़र आयी। बस, उन्होंने उसे नीचे गिरा, खड्ग खींच, क्रोधके साथ कहा,— "अरी निर्दयी स्त्री! तू यह क्या कर रही है?" वत्सराजके यह पूछते ही वह स्त्री उड़कर आसमानमें चली गयी। उस समय वत्सराजने उसकी ओढ़नी पकड ली थी, पर वह दुष्टा अपनी ओढ़नी छोड़कर ही भाग गयी।

इसी समय किसी श्रोताने घनरथ जिनेश्वरसे पूछा,— "प्रभो! वह स्त्री कौन थी? और ऐसा कुकर्म क्यों कर रही थी?" भगवान्ने कहा,— "वह पापिनी देवता थी और पुरुषोको छलनेके ही लिये ऐसा कुकर्म करती थी।" किसीने फिर पूछा,— "स्वामी! कही देवता भी माँस खाते हैं?" स्वामीने कहा,— "वह खाती नहीं थी—महज क्रीड़ा कर रही थी!"

इधर वत्सराज उसकी ओढ़नी लिये हुए घर आये और सो रहे। थोड़ी देरमें सवेरा हो गया और वे उस वस्त्रको लिये हुए राजाके पास आ, उन्हें प्रणाम कर उचित आसनपर बैठ रहे। राजाने मौक़ा पाकर उनसे रातकी बात पूछी। वत्सराजने रातका सारा किस्सा उनसे कह सुनाया और उस देवताकी ओढ़नी उन्हें दे दी। राजाको वह रत्न-जटित बहुमूल्य वस्त्र देखकर बडा विस्मय हुआ और उन्होंने वत्सराज की कुल बातोंको सच समझा। इसके बाद राजाने वह सुन्दर ओढ़नी अपने पास बैठी हुई रानी कमलश्रीको दे दी। रानीने उसी समय राजा-का प्रेमोपहार समझकर उसे ओढ़ लिया। उससे पहलेकी पहनी हुई अँगियाकी शोभा फीकी पड गयी। यह देख, उन्होंने यह विचार कर, कि इसी ओढ़नीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी होनी चाहिये, राजासे कहा,— स्वामी। यदि इसी ओढनीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी मिले, तो ठीक हो।" यह सुन, राजाने वत्सराजसे कहा,—"प्यारे वत्सराज! तुम्हारी

मासीको तो उसी ओढ़नीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी चाहिये ।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"स्वामिन्! यदि आपकी कृपा होगी, तो वह भी मिल जायेगी।" यह कह वह नगरसे बाहर आ, उसी चन्दनके वृक्षके कोटरसे वह रत्न-जटित अंगिया निकाल लाये और राजाके हवाले करते हुए उसका भी वृत्तान्त उनसे कह दिया। राजाने अँगिया रानीको दे दी। उन्होंने हर्षित होकर उसे उसी समय पहन लिया। इसके बाद ओढ़नी और अँगियाके मुकाबलेका घाँघरा न देखा, रानीका चित्त बड़ा बेचैन होने लगा। शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है, कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है।"

एक दिन राजाने रानीको चेहरा उदास किये देखकर पूछा,—"प्रिये! अब तो तुम्हें मन लायक़ अँगिया मिलही गयी, फिर क्यों मुँह उदास किये हुई हो?" रानीने कहा,—"इसीके मुकाबिलेका घाँघरा भी तो चाहिये।" यह सुन, राजाने सोचा,—"ओह! असन्तुष्टा स्त्रियोंको वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। कहा है, कि-

'अग्निर्विप्रो यमो राजा, समुद्र उदरं स्त्रियः।
अतृप्ता नैव तृप्यन्ति, याचन्ते च दिने दिने ॥ १ ॥'

*अर्थात्.—"अग्नि, ब्राह्मण, यम, राजा, समुद्र, उदर और स्त्रियाँ कदापि तृप्त नहीं होतीं। ये दिन-दिन नयी-नयी फर्मायशें करते ही रहते हैं।"*

स्त्रियोंका ऐसा ही स्वभाव होता है, यही सोच कर राजाने कहा,-"विवेकहीन रानी! जो चीज़ मौजूद नहीं है, उसके लिये व्यर्थ हाय-हाय न करो।" यह सुन, रानीकी ज़िद और ज़ोर पकड़ गयी। उन्होंने कहा,—"अब मुझे अभी ओढनी और अँगियाके मुक़ाबलेका घाँघरा मिलेगा, तभी मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगी।" यह कह, रानी अपने महलमें चली गयीं। इसके बाद राजाने वत्सराजको बुलाकर कहा,—"हे सहसी तुमने तो दो उत्तम दिव्य वस्त्र लाकर बड़ा अन्धेर कर दिया। अब तुम ही किसी तरह अपनी मासीको राज़ी करो। बिना तुम्हारे और

किसीसे यह बीमारी नहीं दूर होनेकी।" राजाकी यह बात सुन, वत्सराजने अपनी मासीके पास जाकर बड़े आग्रहसे कहा,—"माता! यह व्यर्थकी हठ छोड़ो और खाओ-पियो। मैं घाँघरा ढूँढ़ कर ला दूँगा।" पर उनके ऐसा कहने पर भी स्त्री-स्वभावके कारण रानीने हठ नहीं छोड़ा। तब वत्सराजने उनके सामने ही यह कठिन प्रतिज्ञा की,—"यदि मैं छ: महीनेके अन्दर तुम्हारे इच्छानुसार वस्त्र न ला दूँ, तो आगमें जल मरूँगा।" उनकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"बेटा! ऐसी भयङ्कर प्रतिज्ञा न करो।" इसपर वत्सराजने कहा,—"आपकी दयासे सब भला ही होगा। अब मुझे जल्दीसे देशान्तर जानेकी आज्ञा दीजिये।" राजाने उनके साहससे प्रसन्न होकर उन्हें अपने हाथसे पानका बीड़ा दिया और परदेश जानेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद वत्सराज अपने घर गये और अपनी माता तथा मासीके चरणोंमें प्रणाम कर, उनसे सारा हाल सुनाकर, उनसे भी आज्ञा माँगी। यह सुन, उन्होंने इच्छा न रहते हुए और पुत्रको कष्ट होगा, इस बातको सोचते हुए भी दीर्घबुद्धिसे विचार किया,—"पुत्र! तुम सानन्द चले जाओ। तुम्हारी विजय होगी।' इस प्रकार दोनों माताओंका आशीर्वाद सिर पर चढ़ा, राह-खर्चके लिये कुछ सामान साथ ले, ढाल-तलवार लगाये, वत्सराज नगरसे बाहर हुए।

इसके बाद वत्सराज, दक्षिण दिशाकी ओर गये और बहुतसे गाँवों और नगरोंको देखते हुए एक घने जङ्गलमें पहुँचे। वहाँ ऊँचे क़िलेवाले, पर निर्जनके समान एक छोटासा गाँव देख, वत्सराजने सोचा,—"क्या यह भूतोंका नगर है? अथवा यक्षराक्षसोंका नगर है? अथवा यह विचार किस लिये करना? अन्दर ही चलकर देखना चाहिये।" ऐसा विचार कर, वे ज्योंही गाँवके अन्दर गये, त्योंही उन्हें उस गाँवमें एक बड़ा भारी सुन्दर मन्दिर दिखाई दिया और उसके पासही और भी बहुतसे छोटे-छोटे घर नज़र आये। क्रमसे आगे जाते-जाते बहुतसे आदमियोंके बीचमें बैठा हुआ एक उत्तम पुरुष दूरसे ही दिखाई दिया।

उसे देख, उसके सेवकके समान मालूम पड़नेवाले एक पुरुषसे वत्स राजने पूछा,—"हे भाई। यह कौनसा नगर है? यहाँका राजा कौन है!" उसने कहा,—"न तो यह कोई नगर है, न यहाँका कोई राजा है। परन्तु जो कुछ है, वह सुनो,—

"इस स्थानसे थोडी दूरपर भूतिलक नामका एक नगर है। उसमें वैरीसिंह नामका राजा राज्य करता है। उसमें दत्त नामका एक सेठ रहता है। उनकी पत्नीका नाम श्रीदेवी है। उसके गर्भसे उत्पन्न, रूप-लावण्यसे युक्त श्रीदत्ता नामकी एक पुत्री है। वह पुत्री युवावस्थाको प्राप्त हो गयी है, पर उसका शरीर भूत दोषसे ग्रस्त हो रहा है, इस लिये जो पुरुष रातको उसके पास पहरे पर रहता है, वह मर जाता है और यदि उसके पास पहरेपर कोई नहीं रहता, तो नगरके सात आदमी मरते हैं। ऐसा होनेके कारण एक दिन राजाने उस सेठको बुलाकर पूछा,—"सेठजी। मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ, कि यह नगर छोड़ कर जंगलमें चले जाओ, क्योंकि तुम्हारी लड़कीके करते हमारे नगरके लोग मरते जाते हैं।" राजाकी यह आज्ञा पाकर, सेठ अपने परिवारके साथ यहीं चला आया और चोर वग़ैरहसे अपनी रक्षा करनेके लिये क़िले सहित यह महल बनाकर यहाँ रहता है। उसीने ढेर-का-ढेर धन देकर ये पहरेदार रखे हैं। ये लोग महलके चारों ओर बने हुए छोटे छोटे घरोंमें रहते हैं। इन पहरेदारोंके नामसे गोलियाँ बनाकर रखी हैं। जिस दिन जिसके नामकी गोली निकलती है, उस दिन रातको वही पहरेदार सेठकी बेटीके पास रहता है और रातको मर जाता है। हे पथिक! यदि यह हाल सुनकर तुम्हे डर मालूम होता हो, तो तुम अभी यहाँसे कहीं और चले जाओ।"

यह बातें सुन, वत्सराज सेठके पास आये। उन्हें देख, दत्त सेठने उन्हें आसनपर बैठाते हुए पान दिया और आदरके साथ पूछा,—"वत्स! तुम कहाँसे आ रहे हो?" वत्सराजने कहा,—"मैं एक कामसे उज्जयिनी-नगरीसे चला आ रहा हूँ।" कुमार वत्सराज सेठके साथ

इसी प्रकार बातें कर रहे थे, कि इतनेमें एक श्रेष्ठ अलङ्कारोंसे सुशोभित पुरुष वहाँ आया। उसके चेहरेका रंग उड़ा हुआ था। यह देख, वत्सराजने सेठसे पूछा,—"सेठजी! इस आदमीका चेहरा इतना उदास क्यों दिखाई देता है?" यह सुन, सेठने लम्बी साँस लेकर कहा,—"हे सुन्दर! अत्यन्त गुप्त रखने लायक हो, तो भी यह वृत्तान्त मैं तुमसे कह सुनाता हूँ। मेरे एक पुत्री है। उसके पास हर रातको एक पहरेदार रहता है। वह अवश्य ही उग्र भूतदोषसे उसी रातको मारा जाता है। आज इसी बेचारेके पहरेकी बारी है, इसीसे इसका चेहरा उदास हो रहा है; क्योंकि मृत्युसे बढ़कर भयकी बात दूसरी नहीं है।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"सेठजी! आज इस आदमीको आनन्द घर रहने दीजिये। आज मैं ही आपकी पुत्री पर पहरा दूँगा।" यह सुन, सेठने कहा,—"हे वत्स! तुम आज अतिथिकी तरह मेरे घर आये हो। अभीतक तुमने मेरे घर भोजन भी नहीं किया। फिर व्यर्थही मृत्युको आलिंगन करने क्यों जा रहे हो?" सेठकी यह बात सुन, वत्सराजने कहा,—"सेठजी! मुझे परोपकार करनेकी लगनसी है। इसलिये मैं तो आज यह काम ज़रूर करूँगा; क्योंकि मनुष्य-जन्मका सार परोपकार ही है। शास्त्रमें भी कहा है,—

> "धन्यास्ते पशवो नून-मुपकुर्वन्ति ये त्वचा।
> परोपकारहीनस्य, धिग्मनुष्यस्य जीवितम्॥ १॥
> क्षेत्रं रक्षति चञ्चा, गेहं लोलापटी ध्वजान् रजा।
> दन्तान्तस्तृणा प्राणान्, नरेण किं निरुपकारेण॥ २॥"

*अर्थात्—"वे पशु धन्य हैं, जो अपने शरीरके चमड़ेसे परोपकार करते हैं; पर जो मनुष्य परोपकार नहीं करते हैं, उनके जीवनको धिक्कार है। चञ्चा-पुरुष (नकली आदमी) खेतकी रक्षा करता है, ध्वजाका चंचल वस्त्र घरकी रक्षा करता है, राख कणोंकी रक्षा करती है और दाँतमें दबाया हुआ तृण शत्रुओंके प्राणोंकी रक्षा करता है; पर जो मनुष्य परोपकार नहीं करता; वह भला किस कामका!'*

यह कह, वत्सराज महलके उस ऊपरी हिस्सेमें चले गये, जहाँ सेठ-पुत्री श्रीदत्ता रहती थी। उस समय उस लडकीने उस अलौकिक रूपवान् कुमारको देखकर सोचा,—"अहा! इसका कैसा सुन्दर रूप है! इसकी शरीरकी कान्ति कैसी मनोहर है! इसके शरीरका कोई अङ्ग ऐसा नहीं, जो मनोहर नहीं हो। हाय! दैवने मुझे स्त्रीके रूपमें मृत्यु-की देनेवाली क्यों बनाया? मैं ऐसे-ऐसे मनुष्य-रत्नोंको मार कर जीती हूँ।" वह ऐसा सोचही रही थी, कि वत्सराजने उसकी सेजके पास आ, मधुर वचनोंसे उसे ऐसा प्रसन्न किया, कि वह फिर विचार करने लगी,—"चाहे जो हो, मैं अपनी जान देकर भी इसकी ज़ान बचाऊँगी।" यही सोचते-सोचते वह सो गयी। इसके बाद साहसी मनुष्योंमे शिरो मणि कुमार वत्सराजने खिडकीकी राह, नीचे उतरकर, जमीनपर पड़ी हुई एक लकड़ी उठा ली और फिर उसी राहसे ऊपर चढ़कर अपनी शय्यापर वह लकड़ी रखकर उसके ऊपर एक वस्त्र डाल, हाथमें खड्ग लिये, चारों ओर नजर दौड़ाते हुए, दीयेके उँजालेसे हटकर अँधेरेमें खडे हो रहे। इतनेमें उसी खिड़कीके बाहर किसीको मुँह निकालते देख-कर कुमार और भी सावधान हो रहे। इसके बाद उस मुखने उस घरके चारों ओर देखा। तदनन्तर मनोहर अँगूठियोंसे सोहती हुई अँगुलियोंवाला एक हाथ उसी खिड़कीमें नज़र आया। उस हाथमें दो औषधियोंके कड़े पडे थे। उन कड़ोंमेंसे एकमेंसे धुआँ निकला। उस धुएँ से सारा घर भर गया। इसके बाद अन्दर आकर उस हाथने पहरेदारके पलँगको छुआ। इसी समय वत्सराजने तलवारका एक हाथ ऐसे जोरसे उस हाथपर मारा, कि वह कट गया, परन्तु दैवशक्ति-के प्रभावसे वह हाथ कटनेपर भी ज़मीनपर नही गिरा। तथापि पीड़ाके कारण उस हाथके दोनों कड़े नीचे गिर पड़े। उसमें एक धूम्रौषधि और दूसरी संरोहिणी-औषधि थी। इन दोनों महौषधिओंको कुमारने अपने पास रख लिया। इसके बाद वह हाथ उस घरसे बाहर निकला। उस समय "अरे बापरे!' बड़ा

दग़ा हुआ। मैंने बड़ा धोखा खाया।" यह शब्द सुन, वत्सराज यह कहते हुए उसके पीछे-पीछे दौड़े, कि अरी दासी! तू कहाँ चली जा रही है? हाथमें खड्ग लिये पुण्यसे बलवान् बने हुए वत्सराजको पीछे-पीछे आते देख, उसे परास्त करनेमें अपनेको असमर्थ समझ कर वह देवी उसी समय भाग गयी। इसके बाद पीछे लौटकर वत्सराजने उस शय्यापरसे वह लकडी हटा दी और आप उसीपर बैठ रहे। इतनेमें रात बीत गयी और उदयाचल-पर्वतपर सूर्यका उदय हुआ। इसी समय कुमारीकी नींद खुली और उसने अक्षत शरीरसे बैठे हुए कुमार-को देखकर हर्षित हो अपने मनमें विचार किया,--"अवश्य ही यह कोई बड़ा प्रभावशाली मनुष्य-रत्न मालूम पड़ता है। इसीसे यह नहीं मरा। मेरे सोये हुए भाग्य अब जगनेही वाले हैं और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ही चाहता है। अब यदि यह मनुष्य स्वामी हो तो मैं इसके साथ संसारके सुख भोगूँ, नहीं तो इस जन्ममें मेरा वैराग्य ही ठीक है।' यही विचार कर उस लड़कीने मधुर वचनोंसे वत्सराजसे कहा,--"हे नाथ! आपने कैसे विपदसे छुटकारा पाया? वह कहिये।" उसके ऐसा पूछने पर वत्सराजने उससे रातका सारा हाल कह सुनाया। यह सुनते ही श्रीदत्तके रोंगटे खड़े हो गये। साथ ही उसे बड़ा हर्ष भी हुआ। वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, कि उस लड़कीकी सेविका दासी उसके मुँह धोनेके लिये जल लिये हुए आयी। उसने भी कुमारको भला-चङ्गा देखकर अपने मनमें बड़ा हर्ष माना और उनको इस प्रकार क्षेमकुशलसे रहने पर बधाई दी। यह समाचार सुन, सेठको भी बड़ा अचम्भा हुआ और वह भी वहाँ आ पहुँचा। श्रीदत्ताने झटपट उठकर पिताको आसन दिया। उसपर बैठे हुए सेठने कुमारसे पूछा,--"हे वीर! तुम रातको दुःखसागरके पार कैसे उतरे?" इसपर कुमार-ने सेठको भी राई-रत्ती सारा हाल कह सुनाया। तब सेठने कुमारसे कहा,--"हे कुमार! मैं अपनी यह प्राणप्यारी पुत्री तुम्हारे ही हाथोंमें सौंपता हूँ।" यह सुन कुमारने कहा, "आप मेरा कुल-शील जाने

बिना मुझे अपनी कन्या क्यों दे रहे हैं ?" सेठने कहा,—"तुम्हारे गुणोंसे ही तुम्हारे कुलकी पहचान हो गयी । कहा भी है, कि—

'आकृतिर्गुणसमृद्धिशंसिनी, नम्रता कुल-विशुद्धि-सूचिका ।
वाक्क्रमः कथितशास्त्रसंक्रमः, संयमश्च भवतो वयोऽधिकः ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"तुम्हारी आकृतिसे ही यह मालूम हो जाता है, कि तुममें बहुतसे गुण भरे हैं, तुम्हारी नम्रता कुलकी शुद्धताकी सूचना दे रही है, तुम्हारी बातचीतका ढंग यह साफ बतलाये देता है, कि तुमने शास्त्रोंका अध्ययन किया है और तुम्हारा संयम तो तुम्हारी अवस्था देखते हुए बहुत बढ़ा-चढ़ा है । ( छोटी उम्रके होनेपर भी तुममें वृद्ध पुरुषोंकीसी स्थिरता है )"*

यह सुन कुमारने कहा,—"सेठजी ! अभी मुझे एक बहुत ज़रूरी कामके लिये दूर-देश जाना है । इसलिये आपका वह काम तो मैं पीछे लौटनेपर करूँगा ।" यह सुन, सेठने कहा,—"पुत्र ! पहले मैं तुम्हारे साथ इसका ब्याह कर दूँ, इसके बाद तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चले जाना।" यह सुन, कुमारने उसकी बात मान ली । इसके बाद उसी दिन उस कन्याके साथ विवाहकर, एक रात उसीके साथ बिताकर, दूसरे दिन उन्होंने यात्रा करनेके लिये विदा माँगी । इसपर उस कन्याने अपने स्वामीसे कहा,—

"विरहो वसन्तमासो, नवस्नेहो, नवं वयः ।
पंचमस्थ ध्वनिश्चेति, सह्याः पंचाग्नयः कथम् ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"विरह, वसन्त-मास, नया स्नेह, नयी उमर, कोयलका पञ्चम स्वर—इन पाँचों अग्नियोंकी आँच भला कैसे सही जायगी ?"*

यह सुन, वत्सराजने कहा,—"ठीक समझ लो, प्रिये ! यदि मैं देशान्तर नहीं गया, तो मुझे आगमें जल मरना पड़ेगा । इसमें कोई सन्देह नहीं ।" इसपर वह बोली,—"हे नाथ ! देखो, मैं तुम्हारे सामने ही इन बालोंकी वेणी बाँधती हूँ, अब यह तुम्हारे आनेपर ही खुलेगी ।

तुम्हारी आज्ञासे मेरा शरीर तो यहीं रहेगा, पर चित्त तुम्हारे साथ आयेगा। हे स्वामी! और भी सुन लो कि—

"कुंकुमं कज्जलं चैव, कुसुमाभरणानि च।
स्पर्शिष्यन्ति शरीरं मे, त्वयि कान्ते समागते ॥ १ ॥"

*अर्थात्—'हे स्वामी! अब जिस दिन तुम लौटकर आओगे, उसी दिन मेरे शरीरको कुंकुम, काजल, फूल और गहने स्पर्श करने पायेंगे।'*

इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेवाली अपनी स्त्रीको वहीं छोड़, सेठकी आज्ञा ले, वत्सराज उसी जङ्गलकी राह आगे चढ़े। उसी जङ्गलमें उन्होंने भीलोंका एक छोटासा गाँव देखा। उसके पासही बहुतसी पहाड़ियाँ और पहाड़ी नदियाँ भी दिखाई दीं। इन सब प्राकृतिक दृश्योंको देखते हुए वे चले जा रहे थे, कि इतनेमें एक जगह उसी जंगलके सिलसिलेमें उन्हें बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित एक नगरी दिखाई दी। उसे देखकर कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस नगरीके बाहर एक सुन्दर सरोवर था। उसीमें हाथ-मुँह धोकर उन्होंने उसीका पानी पिया और उसीके घाटपर एक वृक्षके नीचे पालथी मारे बैठ रहे। इतनेमें उन्हें तालाबसे पानी लेकर जाती हुई स्त्रियोंका झुण्ड दिखाई दिया। उन स्त्रियोंको देख, आश्चर्यमें आकर कुमारने एकसे पूछा,—"यह नगरी कौनसी है? यहाँका राजा कौन है?" उसने जवाब दिया,— "यह नगरी व्यन्तर देवियों (एक प्रकारकी प्रेतिनी) की क्रीडाका स्थान है। यहाँका कोई राजा नहीं है।" यह सुन, वत्सराजने फिर पूछा,—"यदि यह नगरी व्यन्तर-देवीकी है तो फिर तुम लोग इतना पानी कहाँ लिये जाती हो?" वह बोली,—"हे सत्पुरुष! हमारी स्वामिनी, जो एक देवी है, कहीं गयी हुई थीं। वहाँ किसी पुरुषने उसके हाथपर तलवारका वार कर दिया है, जिससे वह बड़ी तकलीफ़ पा रही है। उसीकी पीड़ा दूर करनेके लिये हमलोग उसके हाथ पर पानीके छींटे देती हैं। बहुतेरा सींचा गया, तो भी उसके हाथकी चोट अभी

तक अच्छी नहीं हुई!" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"क्या वह देवी स्वयं अपने शरीरकी पीड़ा दूर नहीं कर सकती?" वह बोली,—"हे पथिक! उस तलवार चलानेवाले पुरुष पर किसी देवताकी छाया है, इसी-से उसका प्रभाव अधिक है। इसीलिये उसकी पीड़ा अभी तक शान्त नहीं हुई। इसके सिवा व्यन्तरोंके राजाने दो महौषधियाँ उसे दे रखी थीं, जिन्हें वह हाथ पर बाँधे रहती थी। उनमें एकसे जो धुआँ निकलता रहता था, उससे लोगोंके होशोहवास जाते रहते थे और दूसरी महौषधि हर तरहकी चोट और ज़ख्मोंकी दवा थी। वे दोनों महौषधि भी उसके हाथसे तलवारकी चोट लगतेही नीचे गिर पड़ी थीं।" यह सुन, वत्स-राजने कहा,—"भद्रे! मैं मनुष्यवैद्य हूँ।" पर यदि मैं तुम्हारी स्वामिनी-का जख्म अच्छा कर दूँ तो मुझे क्या इनाम मिलेगा?" इसपर वह बोली,—"तुम जो कुछ माँगोगे, वही मिलेगा।" यह कह, वह फिर बोली,—"भाई! अभी तो तुम यहीं रहो— पहले मै अपनी स्वामिनीसे जाकर तुम्हारे आनेकी बात करती हूँ।" यह कह, उसने अपनी स्वामि-नीके पास जाकर यह सब हाल कहा। इसपर उसने हुक्म दिया, कि उस आदमीको जल्द मेरे पास ले आओ। अब तो वह स्त्री बाहर आकर वत्सराजको अपने साथ ले चली। रास्तेमें वह वत्सराजसे कहने लगी,—"हे सत्पुरुष! जब हमारी स्वामिनी तुमसे सन्तुष्ट होकर वरदान माँगनेको कहें, तो तुम महलके ऊपर रहनेवाली दोनों कन्याओं, अश्वके रूपवाले यक्ष और इच्छित वस्तुओंको दिला देनेवाले पर्यङ्कके सिवा और कुछ नहीं माँगना।" यह सुन, उसकी बात स्वीकार कर, वत्सराज देवीके पास चले आये। वहाँ देवीने उन्हें सुन्दर आसन बैठने-को दिया।

कुमार उसीपर बैठ रहे। देवी उनसे बड़े आदरके साथ बातें करती हुई बोली,—"भाई! यदि तुम सचमुच वैद्यक जानते हो, तो शीघ्र मेरी पीड़ा दूर कर दो।" यह सुन, वत्सराजने उसी समय धूम्रौषधिसे धुआँ पैदाकर, व्रणसंरोहिणी नामक औषधिसे उसकी व्यथा दूर कर दी।

उसी क्षण उसके हाथका दर्द दूर हो गया। उसने हर्षित होकर कहा,—"भाई! मुझे ऐसा मालूम होता है, कि तुम्हींने मेरे ऊपर तलवार चलाया था।" वत्सराजने यह बात स्वीकार की। इतने पर भी देवीने सन्तुष्ट होकर कहा,—"भाई! मैं तुम्हारी हिम्मत देख, बड़ी खुश हुई, इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।" वत्सराजने कहा,—"यदि तुम सचमुच मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस महलके ऊपरी हिस्सेमें रहनेवाली दोनों कन्याएं, अश्वरूपी यक्ष और सर्व कामदा पर्यङ्क-इतनी चीजें मुझे दे डालो।" यह सुन, देवीने सोचा,—"यह मेरा घर फूटनेसे ही ये चीज़ें माँग रहा है, नहीं तो इसे इन चीजोंकी क्या ख़बर थी?" ऐसा विचार कर वह बोली,—"हे सत्पुरुष! मैं ये सब चीज़ें तुम्हें दे चुकी, परन्तु ज़रा सावधान होकर उन दोनों कन्याओंकी उत्पत्तिका हाल सुनो,—

"वैताढ्य-पर्वत पर चमरचञ्चा नामक नगरीमें गन्धवाहगति नामका एक विद्याधर राजा रहता था। उसके सुवेगा और मदनवेगा नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उनकी कोखसे क्रमशः रत्नचूला और स्वर्णचूला नामकी दो कन्याएँ पैदा हुईं। जब वे दोनों युवावस्थाको प्राप्त हुईं, तब राजाको उनके विवाहकी चिन्ता पड़ी—वे इसके लिये व्याकुल होने लगे। इसी समय वहाँ एक ज्ञानी मुनि पहुँच गये। उस समय राजाने उन्हें बडी भक्तिके साथ एक आसनपर बैठा, प्रणाम कर पूछा,—"हे पूजनीय! मेरी इन दोनों पुत्रियोंके स्वामी कौन होंगे?" इसपर मुनिने ज्ञानसे मालूम कर कहा,—'एक मनुष्य—राजकुमार, जिसका नाम वत्सराज है, इन दोनोंका स्वामी होगा, परन्तु हे राजन्! इनका विवाह तुम्हारे जीतेजी नहीं होगा, क्योंकि तुम्हारी आयु आजसे सिर्फ़ एक महीनेकी और बाक़ी है।' यह सुन, राजाने पूछा,—'तो अब मैं क्या करूँ?' मुनिने कहा,—"राजन्। सुनो—वह वत्सराज कैसे इनका स्वामी होगा, वह भी मैं बतलाये देता हूँ। पहले तुम्हारे एक बहन थी। उसे तुम्हारे पिताने अपने मित्र शूर नामक भूचर-राजाको ब्याह दिया था। इसके बाद शूर राजाने एक दूसरी सुन्दर रूपवती—राजकुमारीसे विवाह

कर लिया। उसपर राजाका अधिक प्रेम हो गया और तुम्हारी बहन उनके चित्तसे उतर गयी। इससे तुम्हारी बहनको बडा डाह हुआ और वह अज्ञान कष्ट द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर व्यन्तर-जातिकी देवी हुई है। उसीकी सौत बहुत दान-पुण्यकर समय पर मृत्युको प्राप्त होकर दत्त नामक सेठकी पुत्री श्रीदत्ता हुई है। इन दिनों पूर्वभवके द्वेषके कारण यह व्यन्तर-देवी उस श्रीदत्ताके पहरेदारोंको मार डालती है। अबतक बहुतेरे मनुष्य मारे जा चुके हैं। इसलिये हे राजन्! तुम अपनी इन दोनों पुत्रियोंको उसी व्यन्तर-देवीको दे डालो। इसके वहाँ रहनेसे इनका भावी पति वत्सराज आपसे आप वहाँ जा पहुँचेगा।" वही पुरुष देवीके द्वारा होनेवाले मनुष्योंके नाशका द्वार बन्द करेगा और इन दोनों लड़कियोंके साथ शादी करेगा।" यह सब हाल सुनाकर मुनि अन्यत्र विहार करने चले गये। इसीलिये हे सत्पुरुष! वह विद्याधर-राजा मेरे पास उन दोनों लड़कियोंको छोड गया है। इसके बाद वह विद्याधर राजा तपस्याकर मृत्युको प्राप्त होकर व्यन्तरेन्द्र हो गया। उसीने मुझे अश्व-रूपधारी एक यक्ष-सेवक भी दिया है और सर्व-कामद नामक पर्यङ्क भी उसीका दिया हुआ है। उसीने मुझे वे दोनों महौषधियाँ भी दी थी। अतएव हे भद्र! मैं अब यह सब चीज़ें तुम्हे दिये डालती हूँ।"

इसके बाद उन दोनों कन्याओंके साथ विवाह कर, वत्सराज वहीं रह कर उनके साथ भोग-विलास करने लगे।

एक दिन वत्सराजने अपनी रत्नचूला और स्वर्णचूला नामक दोनों स्त्रियोंको बुलाकर उनसे अपनी प्रतिज्ञाकी बात कह सुनायी। उन्होंने वह बात देवीसे कही। देवीने वह कारण जान, उनके वियोगसे दुखी होनेपर भी दोनों प्रियाओंके साथ वत्सराजको जानेकी आज्ञा देदी। तब वत्सराज, दोनों स्त्रियोंके साथ उसी पर्यङ्क पर सवार हो, आकाश-मार्गसे श्रीदत्ताके शयन-मन्दिरमें बात-की-बातमें आ पहुँचे। उस समय प्रातःकाल सोकर उठी हुई सेठ-कन्याने अपने महलके ऊपर पर्यङ्क तथा अश्वको देख, "ऐं! यह क्या?" कहते हुए आश्चर्यके साथ सोचा,—

"यह पर्यङ्क कहाँसे आया! और यह घोड़ा इस महलकी सातवीं मंज़िल पर कैसे चढ़ आया?" इसी विस्मयमें पड़ी हुई वह भली भाँति चारों ओर देखने लगी। उसी समय उसने दोनों स्त्रियोंके साथ शय्यापर बैठे हुए अपने पतिको देखा। यह देख, श्रीदत्ताने परम प्रसन्नताके साथ अपने पिताके पास जाकर कहा,—"महलके ऊपरवाले हिस्सेमें मेरे स्वामी आ पहुँचे हैं।" यह सुन, सेठने जरा सहमकर पूछा,—"बेटी! वे इस तरह कैसे आये?" तब उसने पर्यङ्क और अश्व आदि जो चीज़ें देखी थीं, उनकी बात बतलायी। यह सुन, सेठ भी घबराया हुआ तत्काल वहाँ आ पहुँचा। वत्सराजने अपने दोनों पत्नियोंके साथ सेठको प्रणाम किया। इसके बाद सेठके पूछनेपर कुमारने उससे सब कुछ कह दिया। यह सुन, आश्चर्यमें आकर सेठने सिर हिलाया। उस दिन वहीं रह कर दूसरे दिन सवेरे ही वत्सराज अपनी तीनों प्रियाओंके साथ उसी पर्यङ्कपर बैठ, सेठकी आज्ञा ले, अपने घरकी राह नापी।

उस समय धारिणी और विमलाने अपने घरमें आया हुआ पर्यङ्क देख, सोचा,—"यह शय्या किसकी है! इसपर कौन सोया हुआ है?" ऐसा विचार कर, उन्होंने ऊपरकी चादर हटाकर देखा, तो उनका पुत्र वत्सराज, अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ, सोया नजर आया। यह देख, शर्माकर, वे दोनों धीरे-धीरे पीछे लौट गयीं। उस समय उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद तीनों पत्नियोंके साथ वत्सराज जग पड़े और शय्या छोड कर उठ खड़े हुए। तब उन दोनोंने अत्यन्त हर्षित हो, उन्हें आशीर्वादोंकी बौछारसे ढाँकते हुए, उनसे सारा वृत्तान्त पूछा, जिसके उत्तरमें वत्सराजने अपनी वह आश्चर्यजनक राम-कहानी कह सुनायी।

इसके बाद उसी सर्व-कामप्रद पर्यङ्कसे एक उत्तम घाँघरा माँगकर, उसे लिये हुए वत्सराज राजाके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर वह घाँघरा रानीको देनेके लिये दे दिया। उसे लेकर रानीने परम सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया,—"वत्स! तेरी लम्बी आयु हो।" राजाने

भी उन्हें अलङ्कार आदि दे, सम्मानित कर पूछा,—"हे पुत्र! तुम्हें यह श्रेष्ठ वस्त्र कहाँसे मिला? और तुम किन-किन स्थानोंमें घूमे-फिरे?" इसके उत्तरमें वत्सराजने अश्व और पर्यङ्ककी प्राप्तिके सिवा और सभी बातें राजासे कह दीं और घाँघरा देवीको देनेके लिये कह दिया। इसके बाद वत्सराज वहाँ बड़े आनन्दसे रहने लगे।

एक दिन रानी कमलश्री, आयुष्यका क्षय हो जानेपर मृत्युको प्राप्त हो गयीं। उनके वियोगसे राजा बड़े ही शोकातुर हुए। इसपर वत्स-राजने कहा,—"हे राजन्! इस संसारमें जितने पदार्थ हैं, सभी अनित्य हैं। इसलिये विवेकी पुरुषोंको ज़रा भी शोक नहीं करना चाहिये। कहा है, कि—

"जललवचलम्मि विहवे, विज्जुलयाचंचलम्मि मणुयत्ते।
धम्मम्मि जो विसीयइ, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो॥ १॥"

*अर्थात्—'वैभव जलकी तरंगकी तरह चंचल है। मनुष्यका जीवन विजलीका सा क्षण-भंगुर है। इसलिये जो मनुष्य धर्म्म करनेमें आलस्य करता है, वह कापुरुष है—सत्पुरुष नहीं।'*

"ऐसा विचार कर मनुष्यको धर्मरूपी औषधिका सेवन करना चाहिये। वह औषध ऐसी है—

'सर्वज्ञभिषगादिष्टं, कोष्टशुद्धिविधायकम्।
शोकाविशरुजः शान्त्यै, कार्यं धर्मौषधं बुधैः॥'

*अर्थात्—'शोकावेश-रूपी रोगकी शान्तिके लिये बुद्धिमान म-नुष्योंको सर्वज्ञरूपी वैद्यकी बतलायी हुई, अन्तःकरणकी शुद्धि करने-वाली धर्मौषधिका सेवन करना चाहिये।'*

इस प्रकार वचन-रूपी अमृतसे राजाको सींचकर, वत्सराजने उनके मनसे शोकरूपी महाव्याधिको दूर कर दिया। इससे राजाका शोक दूर हो गया और वे सावधान हो गये।

एक दिन वत्सराजने अपनी स्त्रियोंके साथ बैठे-बैठे विचार

किया;—"यदि तुमलोग कहो, तो मैं एक दिन राजाको भोजनके लिये निमन्त्रण देकर बुलाऊँ।" इसपर उन्होंने कहा,—हे स्वामी! राजाको अपने घर बुलाना ठीक नहीं है; क्योंकि कहा है,—

'नारीनदीनरेन्द्राणां, नागनीचनियोगीनाम्।
नखिनां च न विश्वासः कर्तव्य शुभकांक्षिणा॥'

*अर्थात्—'भलाई चाहनेवाले मनुष्यको नारी, नदी, नरेन्द्र, नाग (हाथी या साँप), नीच, नियोगी (नौकर) और नाखूनवाले प्राणियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।'*

"इसलिये हे नाथ! यदि तुम्हें उन्हें भोजन करानेकी ही इच्छा हो, तो उन्हींके घर खाने-पीनेकी चीज़ें पहुँचवा दो।"

यह सुन, फिर वत्सराजने कहा,—"प्रियाओ! ऐसा करनेमें पूरा-पूरा गौरव नहीं होगा। यदि राजाको ही यहाँ बुलवाकर खिलाया जाय, तो मेरे मनको सन्तोष होगा।" यह सुनकर वे फिर बोलीं,—"स्वामी! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो उन्हें भलेही अपने घर बुला लो, पर हमें उनके सामने न जाने देना। ऐसा करना, जिसमें हमें वे न देखें।" यह सुन वत्सराजने उनकी बात स्वीकार कर ली और राजाके पास जा, उन्हे परिवार सहित भोजनके निमित्त अपने घर आनेका निमन्त्रण दे दिया। राजाने भी उनका बढ़ा-चढ़ा हुआ आग्रह देख, उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्हें न्यौता देकर वत्सराज अपने घर आये और अपनी प्रियतमाओंके साथ महलके ऊपरी हिस्सेमें क्रीड़ा करने लगे।

इधर राजाने अपने मनमें सोचा,—"ज़रा इस बातकी ख़बर लेनी चाहिये, कि वत्सराजके घर कितने आदमियोंकी रसोई तैयार है। तब मैं उतनेही आदमियोंके साथ उसके घर जाऊँगा।" ऐसा विचार कर, इस बातकी जोह-टोह लेनेके लिये उन्होंने अपने प्रतिहारीको वत्सराजके घर भेजा। राजाके हुक्मसे प्रतिहारीने उनके घर जाकर देखा, तो रसोई आदिका कोई प्रबन्ध उसे नजर नहीं आया। इसलिये उसने

लौट आकर राजासे कहा,—"हे स्वामी! वत्सराजके घर तो रसोईकी कुछ तैयारी ही नहीं है।" यह सुन, राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने एक दूसरे प्रतिहारीको बुला कर कहा,—"तुम जाकर देख आओ, कि वत्सराजअथवा उसके किसी पडोसीके घर लोगोंके खिलाने-पिलाने-की तैयारी हो रही है या नहीं?" वह भी इधर-उधर चारों ओर देख-भाल कर राजाके पास लौट आया और बोला,—"स्वामी! जिसके घर पाँच-सात आदमियोंका न्यौता होता है, वह न जाने कितनी तैयारी करता है; पर वत्सराजके घर तो मैंने वैसी कुछ भी तैयारी नहीं देखी—वहाँ तो कोई बोलता-चालता भी नहीं।" यह सुन, राजाने विचार किया,—"वत्सराजने मुझे न्यौता दे रखा है, फिर ऐसी बात क्यों हो रही है?" राजा यह सोच ही रहे थे, कि इतनेमें भोजनका समय हुआ देख, वत्सराजने वहाँ आकर उनसे भोजनके निमित्त पधारनेको कहा। तब राजाने कहा,—"हे वत्सराज! क्या तुम मेरे साथ हँसी करते हो? बिना रसोई-पानीका इन्तजाम कियेही मुझे बुलाने आये हो?" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"स्वामी! आप सब तरहसे मेरे पूज्य हैं, फिर मैं आपके साथ कैसे हँसी कर सकता हूँ?" राजाने कहा,—"तुम्हारे घर अन्न-पानादिकका तो कुछ ठिकानाही नहीं है।" वत्सराजने कहा,—"देव! आप इसकी फ़िक्र क्यों करते हैं, कि मेरे घर रसोई तैयार है या नहीं? यह फ़िक्र तो मुझे करनी चाहिये। आपको तो कृपाकर पधारने-की जरूरत है।"

यह सुन, उत्साहित हो, राजा अपने सब परिवार-परिजनोंके साथ, वत्सराजके घर आये। वहाँ विशाल मनोहर मण्डप देख, राजाने सोचा,—"इसकी तो कुल बातें अचम्भेसे भरी रहती हैं। यह मनोहर मण्डप तो अभी तुरतका बनाया मालूम पडता है।" इसके बाद यथा-योग्य मनोहर आसन बिछाये गये, जिनपर वत्सराजके बतलाये अनुसार राजा आदि सब लोग बैठे। पाद-प्रक्षालन आदि क्रियाएँ की गयी। इसके बाद वत्सराजके सेवकोंने रत्न, सुवर्ण और चाँदीके बड़े-बड़े थाल

लगा दिये, जिनमें मिठाइयाँ, खाजे, दाल, भात, घी आदि मनोहर भोज्य-द्रव्य परोसे गये थे। तरह-तरहकी बघारसे खुशबूदार मालूम पड़ते हुए साग भी परोसे गये। हलवा, घेवर, खीर और दही आदि चीज़ें भी परोसी गयीं। ऐसा रसीला भोजन करते हुए राजाने सोचा,—"मैं सदा अपने घर भोजन करता हूँ; पर ऐसा स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं मालूम होता। यह तो साक्षात् अमृततुल्य भोजन मालूम पड़ता है।" ऐसा सोचते और स्वादिष्ट भोजन होनेके कारण सिर हिलाते हुए राजा भोजन कर रहे थे। इसी समय वत्सराजने सोचा,—"यह उत्सव तो प्रियतमाओंके बिना अच्छा नहीं लगता।" ऐसा विचार कर उन्होंने कोठेपर जाकर अपनी स्त्रियोंसे कहा, —"मेरी प्यारियो! अब तुम लोग बाहर आकर राजाकी खातिरदारी करो।" स्वामीकी यह बात सुन, उन्होंने मनमें सोचा,—"कुलवती स्त्रियोंके लिये पतिही गुरु और पूज्य होता है। कहा भी है, कि—

'गुरुरग्निर्द्विजातीनां, वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि, वर्णोंका गुरु ब्राह्मण, स्त्रियोंका गुरु पति और सबका गुरु अतिथि है।'*

"इसलिये कुलाङ्गनाओंको हर हालतमें अपने स्वामीकी बात माननी चाहिये।" यही सोचकर उन सबने अपने स्वामीकी बात मान ली। फिर भी उन्होंने आपसमें सलाह की, कि स्वामीने जो हमें राजाके सामने आनेकी आज्ञा दी है, इसका नतीजा उनके हक़में अच्छा नहीं होगा; पर किया क्या जाये? पतिकी बात टाली भी तो नहीं जा सकती!" यह कह, वे तीनों सुन्दर शृङ्गार किये, पतिकी आज्ञासे भोजन परोसने आयीं। उस समय उन तीनोंकी सुन्दरता देख, राजा कामातुर हो गये और अपने मनमें सोचने लगे,—"इस संसारमें वत्सराज ही धन्य है, जिसे ऐसी तीनों जगत्में प्रशंसनीय मनोहर रूपवाली तीन स्त्रियाँ मिली हैं।" ऐसा ही विचार करते हुए वे राजा खा-पीकर उठ गये। इसके

बाद वत्सराजने उत्तम ताम्बूल और वस्त्र आदि देकर राजा तथा उनके परिवार वर्गका खूब आदर-सत्कार किया। सब कुछ लिये-दिये राजा, सबके साथ अपने घर आये। परन्तु कामदेवकी पीड़ासे वे सदा पीड़ित रहने लगे। इसी लिये उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर उन स्त्रियोंके सङ्गमकी इच्छासे अपना मतलब गाँठनेका उपाय उनसे पूछा। मन्त्रियोंने आपसमें विचारकर एक राय होकर कहा,—"हे स्वामी! जबतक वत्सराज जीता है, तब तक तो यह काम होनेका नहीं, इसलिये हे देव! किसी-न-किसी उपायसे वत्सराजको मार डाला जाये, तो आपकी मनस्कामना पूरी हो—यों तो होनेकी नहीं।" यह सुन, राजाने कहा,—"तो उसके मारनेका ही कोई उपाय सोचो।" इसके बाद मन्त्रियोंने सलाह कर एक दिन वत्सराजको मार डालनेकी तरकीब सोच निकाली। सिंह नामका एक सामन्त राजा था। वह सिंहके ही समान भयङ्कर था। इसलिये कोई उसके सामने देख भी नहीं सकता था। वह जब राजाकी सेवा करनेके लिये आता था, तब राजाको प्रणाम कर जिस आसन पर बैठा करता था, उसपर दूसरा कोई नहीं बैठ सकता था। यदि किसी दिन कोई उसपर बैठ जाता, तो इससे वह अपना बड़ा अपमान समझता था और उसे मारनेको तैयार हो जाता था। उसके शरीर और सैन्य दोनोंका बल था। इससे वह जल्दी किसीसे हारता नहीं था। राजा भी उससे डरा करते थे। एक दिन सिंह सामन्त सभामें नहीं आया था, इसी समय कपट-बुद्धि मन्त्रियोंने उसके आसनपर वत्सराजको धोखा देकर बैठा दिया। थोड़ी ही देरमे सिंह सभामें आया। उस समय अपनी जगहपर वत्सराजको बैठा देख, सिंहने कोपसे भौंहें चढ़ा लीं, पर बेचारा क्या करे? सभामें तो कोई किसीसे बोल ही नहीं सकता था—राजदरबारमें तो राजा और रङ्क दोनोंका दर्जा बराबर है। इसीसे वह निष्फल क्रोध करके ही रह गया। इसके बाद जब सभा विसर्जित हुई, तब वत्सराज सरलताके कारण निर्भय होकर धीरे-धीरे जाने लगे। उस समय मन्त्रियोंने सिंहसे कहा,—"सिंह! तुम्हारा

यह नाम व्यर्थ ही पड़ा। तुममें तो सियारोंकी सी हिम्मत भी नहीं है। यह वत्सराज तुम्हारे आसन पर बैठ गया और तुम अभी तक कुछ न कर सके! इससे तो तुम जीते-जी मुर्दा मालूम पड़ते हो। कहा भी है-

'आजीवन् य. परावज्ञा-दु म्वदग्धोऽपि जीवति।
तस्या जननिरेवास्तु, जननीक्लेशकारिणः॥ १॥'

*अर्थात्---"जो कुत्सित प्राणी, दूसरोंकी की हुई अवज्ञाके दुःख से जलते रहने पर भी, जीते हैं, वे अपनी माँको नाहक पुत्र-प्रसव करनेका कष्ट देनेवाले होते हैं--वे तो नहीं पैदा होते, वही ठीक होता।"*

मन्त्रियोंकी यह बात सुन, सिंहका क्रोध बहुत बढ़ गया और वह अपने आदमियोंके साथ राजसभाके सिंहद्वारके पास आया। वहाँ वत्सराजको देख, उसने कहा,—"रे वत्सराज! क्या तुझे अपने जीवनसे घृणा हो गयी है, जो आज तू मेरे आसनपर बैठ रहा? यदि तूने मुझे देखा नहीं था, तो क्या मेरा नाम भी नहीं सुना था, कि इस प्रकार मेरा अपमान कर बैठा? सचमुच, यह कहावत बहुत ठीक है, कि मौतके दिन, पास आनेपर चींटियोंके भी पर निकल आते हैं।" यह कह, सिंह वत्सराजसे युद्ध करने लगा। इतनेमें कुमारने अपने बाहुबलसे उसका हाथ पकड़ कर बन्दरकी तरह उसे उठाकर अपने सिरके चारों ओर घुमाते हुए इस तरह जोरसे फेंका, कि वह तत्काल मर गया। यह देख, सबने कहा,—"खाद खनै जो और को, ताको कूप तैयार।" इसके बाद सिंहके सब सैनिक डरकर राजाकी शरणमें चले गये। इसके बाद वत्सराज घर आये। तब उनकी पत्नी—उन दोनों विद्याधरियोंने कहा,—"स्वामी! तुमने हमारी विद्याके ही प्रभावसे उस सिंहको मार गिराया है। यह सब उपद्रव राजाका खड़ा किया हुआ है। वह अभी और न जाने क्या-क्या उपद्रव करेंगे। उनके यहाँ आने पर तुमने हम लोगोंको उनके सामने बुला लिया, यही सारे फ़िसादकी जड है।" यह सुनकर, वत्सराजने उनकी बातको सच मान लिया।

एक दिन फिर मन्त्रियोंके साथ सलाहकर, राजाने वत्सराजसे कहा,—"हे वत्सराज ! मुझे बाघिनका दूध चाहिये— बड़ी सख़्त ज़रूरत है। जब तुमसा मित्र मेरे पास है, तब मेरे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है।" यह सुन, वत्सराज उनकी बात स्वीकार कर अपने घर आये। उस समय पतिका चेहरा चिंतासे सूखा हुआ देखकर उनकी दोनों प्रियतमाओंने पूछा,—"हे नाथ ! क्या उस दुष्ट राजाने तुम्हें आज बाघिनका दूध लानेकी आज्ञा दी है?" वत्सराजने पूछा,—"प्यारियो ! तुम लोगोको यह हाल कैसे मालूम हुआ ?" उन्होंने कहा,—"स्वामी ! हम सदा छिपी-छिपी तुम्हारे साथ ही रहती हैं।" यह सुन, वत्सराजने उनकी बातको सच मान लिया। उन दोनोंने फिर कहा,—"स्वामी ! राजा ऐसेही हुआ करते हैं। उनके साथ मित्रता कैसी ? कहा है,—

'काके शौचं द्युतकारे च सत्यं, सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता, राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?'

*अर्थात्—'काकमें पवित्रता, जुआरीमें सत्यता, साँपमें क्षमा, स्त्रीमें कामकी शान्ति, नपुंसकमें धैर्य, मद्यपीमें तत्त्वचिंता और राजाकी मित्रता भला किसने देखी-सुनी है ?'*

ख़ैर, राजाके मँगाये हुए बाघिनके दूधके लिये तुम फ़िक्र न करो। हमारी बात सुनो। तुम इसी घोड़े पर सवार हो, यहाँसे उसी पहले वाले जङ्गलमें चले जाओ। हमारी माता, जो देवी हो गयी हैं, उसकी एक सखी—दूसरी देवी वहाँ रहती है। वह इस घोड़ेको देखकर तुम्हे पहचान लेगी। तुम उससे यह बात कहना। बस, वह बाघिनका रूप बनाये तुम्हारे साथ चली आयेगी। बस उसे राजाके पास लाकर कहना, कि लीजिये, अब इसका दूध दुह लीजिये।"

अपनी पत्नियोंकी यह बात सुन, जगलमें जा, बाघिनका रूप धारण किये हुई उस देवीको कान पकड़े हुए राज दरबारमें ले आकर वत्सराजने कहा,—"हे राजन् ! यह मैं अभी हालकी व्यायी हुई बाघिन लेता आया हूँ। लीजिये, इसे दुह लीजिये और अपनी मनस्कामना पूरी कर

लीजिये। यह कह, वत्सराजने उसका कान छोड़ दिया। बस, छुटते ही वह बाघिन, राजाको दुष्टबुद्धि देनेवाले मन्त्रियोंको पकड़-पकड़ कर खाने लगी। यह देख, राजाको बड़ा भय हुआ और वे घबराकर बोले,—"अरे वत्सराज! भाई वत्सराज! ऐसा हिंसक कार्य न करो-इसे पकड़ लो। मुझे इसके दूधका कोई काम नहीं है। यह तो मुझे और अन्य लोगोंको भी खा जाया चाहती है।" राजाकी ऐसी दीनता भरी बातें सुन, वत्सराज उसको कान पकड़े हुए अपने घर ले गये। वहाँ उनकी स्त्रियोंने उस देवीकी बड़ी भक्ति की। इसके बाद वह देवी ख़ुशी-ख़ुशी अपने घर चली गयी।

इसके बाद वत्सराजकी पत्नियोंके सङ्गमकी इच्छा रखनेवाले राजाने फिर मन्त्रियोंके साथ सलाह कर, वत्सराजसे कहा,—"भाई! तुम कहींसे मेरे लिये खौलता हुआ पानी ले आओ। इससे मेरे शरीरकी व्याधि दूर होगी, ऐसा वैद्योंने बतलाया है।" यह सुन वत्सराजने पूछा,—"वह पानी कहाँ मिलता है?" तब मन्त्रियोंने कहा,—"विन्ध्य नामक वनमें दो पर्वतोंके बीचमें एक कुआँ है। उसका पानी खौलता है। परन्तु उन दोनों पर्वतोंका आँखकी पिपनियोंकी (पलकोंकी) तरह प्रत्येक क्षण संयोग-वियोग हुआ करता है। इसी लिये मौका देखकर बड़ी सावधानीके साथ उनके बीचमें घुसकर पानी लेकर निकल आना चाहिये। कहीं ज़रा भी देर हुई, तो दोनों पर्वतोंके बीचमें दब जानेका डर है। इसलिये देखना, तुम बड़ी होशियारीके साथ उन पर्वतोंके बीचमें प्रवेश करना और बाहर निकलना। तुम्हारे सिवा और किसीसे यह काम नहीं होनेका।" यह सुन, वत्सराजने उनका यह आदेश भी स्वीकार कर लिया और घर आकर अपनी स्त्रियोंसे इसका हाल कह सुनाया। सुनकर उन दोनोंने कहा,—"हे स्वामी! तुम इसी दैवी अश्वपर चढ़-कर जाओ। वहाँ हमारी सखी, जो एक देवी है शकुनिकाका रूप धारण किये रहती है, तुम्हें पानी ला देगी।" यह सुन, वत्सराज उसी समय अश्वपर आरूढ़ हो, वहाँ चले गये। वहाँ उन्हें देखते ही वह शकुनिका

उनको पहचान गयी और उनके कामका हाल मालूम कर, उसी समय एक कमण्डलुमें जल भर लायी। उसे लेकर वत्सराज नगरमें आये और राज सभामें जा, वह जल उन्हें दे दिया। उस समय देवताके प्रभावसे वह जल ऊँचे स्वरसे बोल उठा,—“क्यों राजा! मैं तुम्हें खा जाऊँ? अथवा तुम्हारे मन्त्रियोंको ही खा जाऊँ? अथवा तुम्हें बुरी सलाह देनेवाले किसी और मनुष्यको ही खाऊँ?” जलको इस प्रकार बोलते देख, सभी सभासद् आश्चर्यमें पड़ गये। राजा तो अपना मतलब सिद्ध न हुआ देखकर झंखने लगे, तो भी ऊपरसे दिखावेके लिये हँस-कर बोले,—“अहा! वत्सराजके आगे कोई काम असाध्य नहीं है।” यह कह, राजाने उन्हें विदा किया और वे अपने घर चले आये।

इसके बाद राजा फिर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठे, और उसकी जान लेनेका उपाय सोचने लगे। उस समय चार मन्त्रियोंने राजासे कहा,—“हे देव! आप अपनी कन्या श्रीसुन्दरीके विवाहके बहाने दक्षिण दिशामें यमराजका घर बनवाइये और उसीके अन्दर जाकर यमराजको निमन्त्रण देनेके लिये वत्सराजको भेजिये, आपका काम बड़ी आसानीसे बन जायेगा। उनकी बतलायी हुई तरकीब सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन मन्त्रियोंकी प्रशंसा करते हुए बोले,—“वाह! तुम लोगोंने बड़ी अच्छी तरक़ीब बतलायी!” इसके बाद उन दुष्ट मन्त्रियोंने नगरकी दक्षिण दिशामें एक गहरी खाई खुदवायी और उसमें लकड़ी भरकर आग लगा दी। इतना कर चुकनेपर उन्होंने राजाको सूचना दी। तब राजाने सब वीरोंके साथ-साथ वत्सराजको भी बुलवाया। पहले तो राजाने और-और वीरोंको बुलाकर कहा—“हे वीरो! मेरी पुत्री श्रीदेवीका विवाह है, इसलिये मुझे यमराजको निमन्त्रण देना है। इसलिये इस अग्नि-से भरी हुई खाईंकी राहसे यमराजके घर जा, उन्हें न्यौता दे आओ। यह सुन, और-और लोगोंने कहा,—“स्वामी! यह काम हमलोगोंसे नहीं होगा।” जब उन्होंने ऐसा टकासा जवाब दे दिया, तब राजाने वत्स-राजसे कहा। “सुनतेही वत्सराजने वह काम करना स्वीकार कर लिया

और घर जाकर अपनी पत्नियोंसे इसका हाल कह सुनाया। इसपर उन स्त्रियोंने कहा,—"इस निर्दयी और कृतघ्न राजाकी आज्ञा तुमने क्यों स्वीकार कर ली? जैसे औरोंने नाहीं कर दी थी, वैसेही तुम भी इन्कार कर देते।" उनके ऐसा कहने पर भी वत्सराजने उस कामसे हाथ न खींचा। तब उन दोनों स्त्रियोंने वत्सराजको घरमें ही छिपाकर रख दिया और अपने यक्ष रूपी दासको आज्ञा दी,—"हे यक्ष! तुम मेरे पतिका रूप धारणकर, राजाके पास जाओ और वह जो काम करनेको कहें, उसे कर लाओ।" यह सुन, उस यक्षने वत्सराजका रूप धारण कर, राजाके पास आकर कहा,—"महाराज! जो काम हो, वह बतलाइये।" राजाने कहा,—"वत्सराज! तुम यमराजको बड़े आग्रहसे निमन्त्रण देना और उन्हें लिये हुए एक महीनेके अन्दर यहाँ चले आना।" यह सुन, नगरके बाहर आ, राजा, मन्त्री और अन्यान्य नगर-निवासियोंके सामने ही वह आगवाली खाईमें कूदकर क्षण भरमें अदृश्य हो गया। उस समय वत्सराजको आगमें घुसते देख, सब लोगोंके मनमें बड़ा शोक हुआ और वे अकस्मात् कह उठे,—"ओह! हमारे राजा भी कैसे निर्दय हैं, जो इन्होंने ऐसे गुण-रत्नोंसे भरे हुए वत्सराजकुमारको मार डाला। इनका हरगिज़ भला न होगा।" यही कह-कह कर लोग शोक करने लगे। पर राजाको तो यही सोच-सोचकर आनन्द होने लगा, कि अबके मेरा काम बन गया।

इसके बाद राजाने मन्त्रियोंसे कहा,—"मन्त्रियो! अब तुम उसकी स्त्रियोंको मेरे घर ले आओ—देर न करो।" यह सुन मन्त्रियोंने कहा,—"हे महाराज! सारी प्रजा इस समय आपसे फिरन्ट हो रही है, इसलिये अभी ऐसा करनेसे वह और भी विरक्त हो जायेगी। प्रजाकी प्रीति बिना संपत्ति नहीं प्राप्त होती। कहा है, कि—

'विनयेन भवति गुणवान्, गुणवति लोकोऽनुरज्यते सकलः।
अनुरक्तस्य सहाया,ससहायो युज्यते लक्ष्म्या॥ १॥'

अर्थात्—'राजा विनयसे गुणवान् होता है; गुणवान् पर सब

*लोगोंका अनुराग होता है; अनुराग वालेको सहायक भी बहुत मिल जाते हैं और जिसके सहायक हैं, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती ही है ।*

"इसलिये हे राजन्! एक महीने तक आप उसके आनेकी राह देखिये— उतावलेपनसे काम नहीं बनेगा। यह कह, मन्त्रियोंने राजाको रोक दिया। इसके बाद क्रमसे वह महीना बीत गया। तब कामसे अन्धे बने हुए राजाने अपने चार मन्त्रियोंको वत्सराजकी स्त्रियोंको ले आनेकी आज्ञा दी। जब तक वे राजाके हुक्मकी तामील करनेके लिये वत्सराजके घर पहुँचें-पहुँचें, तबतक वत्सराजकी दोनों स्त्रियोंने अपने यक्ष-रूपी किंकरको भेजकर पातालमेंसे अपने पिताको, जो व्यन्तरेन्द्र हो गये थे, बुलवा लिया। व्यन्तरेन्द्र, सारा हाल सुन, दामादके शत्रुओंका नाश करनेके इरादेसे, देवशक्तिके द्वारा मनोहर और बड़े दामोंवाले आभूषणोंसे भूषित वत्सराजका रूप धारण कर, घोड़े पर सवार हो, एक देव-रूपी सेवकको साथ ले, सबके सामने राजमार्गसे होते हुए राजदरबारमें आये। यह देख, राजा अचम्भेमें आकर सोचने लगे,— "यह वत्सराज मेरी आँखोंके सामनेही अग्निमें प्रवेश कर, मृत्युको प्राप्त हुआ था, फिर यह कहाँसे आ टपका? इस वीर पुरुषने तो इस सुभाषितको भी झूठ साबित कर दिया, कि—

> 'पुनर्दिवा पुना रात्रि., पुन· सूर्य. पुनः शशीः ।
> पुन· सजायते सर्वं, न कोऽप्येति पुनर्मृत. ॥१॥'

*अर्थात्—'फिर दिन होता है, फिर रात होती है, फिर सूर्य उदय होते हैं, चाँद उगता है, सब चीजें फिर होती हैं; पर मरा हुआ आदमी फिर नहीं लौटता ।'*

ऐसा विचार कर राजाने बड़े आश्चर्यके साथ उनसे पूछा,—"वत्सराज! यमराज कुशलसे हैं न?" इसपर उन्होंने कहा,—"नाथ! आपके मित्र यमराज खूब कुशलसे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा, कि क्यों वत्सराज! तुम्हारे स्वामीके साथ मेरी इतनी गहरी दोस्ती है— तो भी

उन्होंने मुझे इतने लम्बे अर्सेके बाद याद किया, इसका क्या कारण है ? यह कह, उन्होंने मुझे कितने ही दिनोंतक बड़े आदरसे अपने पास रखा । स्वामी ! मुझे आपका सेवकही समझकर उन्होंने मेरी इतनी ख़ातिर की । आपके ही प्रेमके अनुरोधसे उन्होंने ये सब अलङ्कार, जो मेरे शरीर पर मौजूद हैं, मुझे दिये हैं । और आपके विश्वासकेही लिये उन्होंने मेरे साथ-साथ अपना यह द्वारपाल भेज दिया है ।" यह सुन, राजाने उसके सामने दृष्टि की । उसकी पलकहीन दृष्टि देख, राजाको इस बातका विश्वास हो गया । इसके बाद व्यन्तरेन्द्रने कहा,—"हे महाराज ! यमराजने मेरी मार्फ़त आपको कहला भेजा है कि इसी तरह बराबर मेरे पास अपना आदमी भेजा करेंगे—मैं आपसे मिलनेके लिये आना चाहता हूँ; पर इन्द्र छुट्टी नहीं देते; क्योंकि यहाँ मेरे बिना इन्द्रका घड़ीभर भी काम नहीं चल सकता । इसलिये आपही मुझसे मिलने आइये । सच पूछिये तो, आनेही जानेसे प्रीति बढ़ती है ।" यह सुन, सब राजपुरुष वहाँ जानेके लिये उत्कण्ठित हो गये । तब यमराजके द्वारपालने कहा,—"तुममेंसे जो लोग वहाँ चलना चाहें, वे मेरे साथ-साथ चलें ।" इसके बाद राजा आदि सभी लोग यमराजके घर जानेके लिये तैयार होकर उसी जलते हुए यमगृहके पास आये । वहाँ पहुँचकर यमराजके द्वारपालने कहा,—"मेरे पीछे-पीछे सबलोग चले आओ ।" यह कह, वह आगसे भरी हुई खाईमें कूद पड़ा । इसके बाद राजाके हुक्मसे उनके चारों मुख्य मन्त्री भी कूदे । कूदतेही सबके सब जल कर ख़ाक हो गये । अन्तमें जब राजा उसमें कूदनेके लिये तैयार हुए, तब वत्सराजने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोक दिया और कहा, "हे राजन् ! यह सब लोग जानते हैं, कि जो आगमें कूदता है, वह जलकर मर जाता है । पर मैं देवताके प्रभावसे जीता रह गया और उसीने मेरे शत्रुओंको धोखा देकर मौतके घाट उतार दिया है । इन लोगोंने आपको मुझे मार डालनेकी सलाह दी थी, इसीसे मैंने भी इन्हें मार डाला । कहा भी है, कि—

कृते प्रतिकृतं कुर्यात्, लुञ्चिते प्रतिलुंचितम् ।
त्वया लुंचापिताः पक्षाः, मया मुण्डापितं शिरः ॥

*अर्थात्—'जैसेको तैसा करनाही चाहिये । जो अपने सिरके बाल नोचे, उसके भी बाल नोच लेने चाहिये । यह बात और है, कि तुमने मेरे पंख नोच लिये और मैंने तुम्हारा सिर मुँड़वा दिया; पर बदला तो लिया ।'*

और भी कहा है, कि—

'धुत्तह किज्जइ धुत्तई, आलह दिज्जइ आल ।
मित्तह किज्जइ मित्तई, इम गमिज्जइ काल ॥१॥'

*अर्थात्—'धूर्त्तके साथ धूर्त्तता करनी, दोष लगाने वालेको दोष लगाना और मित्रके साथ मित्रता करनी चाहिये । मनुष्यको इसी तरह समय बिताना चाहिये ।'*

वत्सराजकी यह बातें सुन, राजा उसकी भक्ति और शक्तिसे बड़े प्रसन्न हुए और अपनी सारी चेष्टा विफल हो जानेसे लज्जित भी हुए । इसके बाद वे अपने घर जाकर विचार करने लगे,—"वत्सराजकी स्त्रियोंके साथ रमण करनेका विचार कर मैंने बड़ा पाप कमाया—साथही मेरी लोक-हँसाई भी हुई ।" ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी श्रीसुन्दरी नामक कन्या वत्सराजको व्याह दी और प्रजाकी सम्मति ले, उन्हींको राज्य देकर आप तपस्वी हो गये । इसके बाद वत्सराजने राज्यका पालन करते हुए बहुतसे देश जीत, पुण्यवान् और दृढ़-पराक्रमी होकर, महाराजकी पदवी पायी ।

एक बार एक पुरुषने सभामें आ, राजा वत्सराजको प्रणाम कर, उनके सामने एक लिखा हुआ पर्चा रखकर निवेदन किया,—"हे महाराज मैं क्षितिप्रतिष्ठित नगरसे आया हूँ । यह पर्चा वहींके नगर-निवासियोंने भेजा है ।" यह सुन, राजाने यह पर्चा हाथमें लेकर पास बैठे हुए लेख-वाचकको पढ़नेके लिये दे दिया । लेखवाचकने उसे खोल कर पढ़ा ।

"स्वस्तिश्री उज्जयिनी नगरीमध्ये वत्सराज राजाकी सेवामें क्षितिप्रतिष्ठित नगरके पुरजनोंका प्रणाम-पूर्वक निवेदन है, कि—जैसे गरमीसे व्याकुल मनुष्य मेघका स्मरण करते हैं और ठंढसे ठिठरते हुए लोग आगकी शरण लेते हैं, वैसेही राजा देवराजके सताए हुए हम लोग आपको याद कर रहे हैं। इसलिये आप जल्दीसे आकर हमारे स्वामी बनिये, नहीं तो हमलोग किसी और न्यायी मनुष्यको अपना स्वामी बना लेंगे।'

उस पर्चेमें लिखा हुआ यह वृत्तान्त सुनकर राजा वत्सराज, सारी सेना लिये हुए, क्षितिप्रतिष्ठित नगरीके पास आ पहुँचे और देवराजके निकट एक दूत भेजा। इसी समय उनके आनेकी खबर पाकर राजा देवराज भी तत्काल बख्तर पहने हुए नगरके बाहर चले आये। परन्तु उनके परिजन, उनसे असन्तुष्ट थे इसलिये कोई उनके पीछे-पीछे नहीं आया। इसीलिये वत्सराजको अपनेसे बलवान् समझ और अपने सेवकोंको अपनेसे नाराज़ देख, देवराज न जाने किधर भाग गये। तब समस्त नगर-निवासियोंने हर्षके साथ बड़ी धूमधाम करते हुए वत्सराज राजाका नगरमें प्रवेश कराया। वत्सराज इन दोनों राज्योंका पालन करते हुए सुखसे समय बिताने लगे।

एक दिन उद्यान-रक्षकने राजाके पास आ, प्रणाम कर, कहा,—"हे स्वामी! मैं आज बड़े प्रेमसे आपको बधाई देता हूं, कि आज इस नगरके बाहरवाले उद्यानमें चार प्रकारके ज्ञानका धारण करनेवाले आचार्य महाराज पधारे हैं'। यह सुन, हर्षित हो, राजाने उसे इनाम दिया और सब सामग्रियोंके साथ भक्तिपूर्वक उद्यानमें आ पहुँचे। वहाँ मुनीश्वरकी वन्दना कर, उचित स्थानमें बैठ, उन्होंने गुरुके मुखसे साधुओं और श्रावकोंके धर्मके सम्बन्धमें देशना सुनी और श्रावक-धर्म अङ्गीकार कर घर आये। सूरि भी मास-कल्प पूरा कर वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये।

इसके बाद गुरुके उपदेशसे राजा वत्सराजने बहुतसे जिन-चैत्य

बनवाये, अनेक जिनेश्वरोंकी प्रतिमाएँ स्थापित करवायीं और जिन-चैत्योंमें अष्टाह्निका उत्सव आदि अनेक धर्म-कृत्य करवाये। इसी प्रकार वे निरन्तर धर्मकार्योंमें मग्न रहते थे। कुछ दिन बीतने पर फिर आचार्य वहाँ आये। उस समय राजा भी उनकी वन्दना करने गये। उनके चरण-कमलोंको प्रणाम कर, धर्म-देशना सुन, उन्होंने गुरुसे कहा,—"हे प्रभु! मैंने पूर्व भवमें कौन ऐसा कर्म किया था, जिससे मुझे इतनी विपत्तियोंके बाद सम्पत्ति प्राप्त हुई?" गुरुने कहा,—"हे राजन्! सुनो—

"इसी जम्बूद्वीपके भरक्षेत्रमें वसन्तपुर नामका एक नगर है। उसी नगरमें तुम शूर नामके राजा थे। राजा शूर बड़े ही सरल-स्वभाव, क्षमावान्, दाक्षिण्य-पूर्ण, निर्लोभी और देव गुरुकी पूजामें तत्पर थे। इस प्रकार सब गुणोंके आधार, शीलवान् और दान-धर्ममें तत्पर वे राजा पृथ्वीका पालन कर रहे थे। उनकी पटरानीका नाम शूरवेगा था और वह विद्याधर-कुलमें उत्पन्न हुई थी। राजाने रतिचूला नामकी एक और राजकुमारीके साथ विवाह किया था। उन पर आसक्त रहते हुए भी राजाने दोनों प्रियतमाओंका त्याग कर दिया। इसके बादका सारा वृत्तान्त व्यन्तरी-देवीने तुमसे कहा ही था और तुमसे गन्धवाह-गति राजाकी दोनों कन्याओंका विवाह करा दिया था। हे महा भाग्य-वान्! वही तुम इस भवमें भी राजकुमार हुए। दानादि धर्म करनेके कारण हीं तुम्हें भोगकी सारी सम्पत्तियाँ प्राप्त हुई हैं, पूर्व भवमें राज्य करते हुए तुमने कुछ अन्तराय-कर्म कर दिया था, इसीलिये इस भवमें पहले कुछ दिनों तक राज्य-भ्रष्ट होकर तरह-तरहके दुःख भोगने पड़े।"

इस प्रकार गुरुके मुखसे अपने पूर्व भवका हाल सुन, राजा वत्स-राजको जातिस्मरण हो आया और उन्होंने गुरुकी बातोंको सच समझ लिया। इसके बाद विशेष पुण्य उपार्जन करनेके लिये उन्होंने दीक्षा लेनी चाही। इसीलिये घर आ, अपने पुत्र श्रीशेखरको राज्य दे, चारों स्त्रियोंके साथ उन्होंने चारित्र ग्रहण कर लिया। भली भाँति

चारित्रका पालन कर, विविध तपस्याएँ कर, अन्तमें समाधि-मरण पाकर वे देवलोकको चले गये। वहाँसे च्युत हो, मनुष्य जन्म पा, समग्र कर्मोका क्षय कर, वत्सराजका जीव मोक्षको प्राप्त होगा। हे मेघरथ राजा! मैंने पहले जिस शूर राजाका नाम लिया था, वह यही वत्सराज था; जिसने विपत्तिके दिनोंमें भी पूर्व-पुण्यके प्रभावसे सुख पाया।

वत्सराज-कथा समाप्त।

इसके बाद मेघरथ राजाको चारित्र ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। इसीलिये जिनेश्वरको प्रणाम कर, वे अपने घर गये और अपने भाई दृढ़रथसे बोले,—"भाई! तुम अब इस राज्यको चलाओ—मैं चारित्र ग्रहण करूँगा।" यह सुन, दृढ़रथने कहा,—"मैं भी तुम्हारे साथही व्रत अङ्गीकार करूँगा।" तब मेघरथ राजाने अपने पुत्र मेघसेनको गद्दी पर बैठा दिया और दृढ़रथके पुत्र रथसेनको युवराजकी पदवी प्रदान की। इसके बाद चार हज़ार राजाओं, सात सौ पुत्रों और अपने भाईके साथ उन्होंने श्री जिनेश्वरसे दीक्षा ले ली। इसके बाद राजर्षि मेघरथने अपने शरीरकी सारी ममता त्यागकर परिषह सहन करना आरम्भ किया। इसके बाद पाँच समिति और तीन गुप्ति सहित श्रीघनरथ जिनेश्वर बहुतेरे जीवोंका प्रतिबोध कर, पृथ्वी तलपर विहार कर सर्व-कर्म रूपी मलका नाश कर, मोक्षको प्राप्त हुए।

मेघरथ राजर्षिने बीस स्थानकोंकी आराधनासे मनोहर तीर्थङ्करका नाम-कर्म उपार्जन किया। बीस स्थानककी आराधना इस प्रकार है—अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन, गुरु स्थविर, साधु, बहुश्रुत और तपस्वी- इन आठोंका वे निरन्तर वात्सल्य करते थे। ज्ञान, दर्शन, विनय, आवश्यक और शीलव्रत – इन पाँचोंका निरन्तर उपयोग करते हुए वे अतिचार-रहित पालन करते थे। क्षणलव तप, दान, वैयावच्च और समाधिसे वे युक्त रहते थे। अपूर्व ज्ञानको ग्रहण करनेमें वे सदा प्रयत्नशील रहते थे। वे श्रुतज्ञानकी भक्ति करते थे और प्रवचनकी

प्रभावना करते थे। अन्तमें वे सिंहनिक्रीड़ित नामक तप-कर्मका आचरण करते थे।

इसके बाद राजर्षि मेघरथ, पूरे एक लाख वर्ष तक निरतिचार चारित्रका पालन कर, अन्तमें अनशन करते हुए अपने छोटे भाईके साथ, तिलकाचल पर्वत पर जा, समाधि-पूर्वक इस मलिन देहका त्यागकर सर्वार्थसिद्धि नामक पाँचवें अनुत्तर विमानमें तेंतीस सागरोपमके आयुष्यवाले देव हुए।

# छठाँ प्रस्ताव

आजसे बहुत पहले, भरत-क्षेत्रमें, युगादि जिनेश्वरके कुरु नामके एक पुत्र थे। उन्हींके नामसे कुरु नामका एक देश प्रसिद्ध है। उन्हीं कुरु राजाके हस्ती नामका एक पुत्र हुआ, जिसने बड़ी बड़ी हवेलियों और हाट-बाज़ारोंकी श्रेणीसे शोभित, ऊँचे-ऊँचे सुन्दर महलोंकी श्रेणीसे मनोहर मालूम पड़ता हुआ, प्राकारों तथा गोपुरोंसे (दरवाजोंसे) अलंकृत, हस्तिनापुर नामका एक अपूर्व नगर बसाया था। उस नगरमें क्रमसे बहुतसे राजा हुए, जिनके पीछे विश्वसेन नामक एक राजा हुए। उनकी पवित्र लावण्यवती अचिरा नामकी पत्नी जगत् भरमें प्रसिद्ध थी। उनके साथ रहकर राजा मनोवाञ्छित सुख भोग रहे थे।

एक दिन, भादों बदी सप्तमीको, चन्द्रमा जब भरणी नक्षत्रमें था और अन्य सभी ग्रह शुभ-स्थानमें थे, उसी समय रातको मेघरथका जीव आयुक्षय होने पर, सर्वार्थ-सिद्ध विमानसे च्युत हो, अचिरादेवीकी कोखरूपी सरोवरमें राजहंसके समान अवतीर्ण हुआ। उसी समय सुख-सेज पर पड़ी, कुछ जगी और कुछ सोयी हुई अचिरादेवीने हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीका अभिषेक, पुष्पमाला, चन्द्र-सूर्य, ध्वजा, पूर्णकुम्भ, सरोवर, सागर, विमान, रत्न-राशि और निर्धूम-अग्नि—ये चौदह स्वप्न देखे। उसी समय रानीकी नींद टूट गयी और वे हर्षसे व्याप्त हो, राजाके पास जा पहुँची तथा जय-विजय शब्दों द्वारा उन्हें बधाइयाँ देने लगीं। इसके बाद स्वामीकी आज्ञासे अच्छे-भले आसन

पर बैठकर उन्होंने क्रमसे अपने स्वप्नका सारा हाल राजाको कह सुनाया। यह सुन, हर्षसे खिलकर विश्वसेन राजाने उनसे कहा,—"प्यारी! तुमने यह बड़े ही अच्छे स्वप्न देखे। इनके प्रभावसे तुम्हें सब अच्छे लक्षणोंसे युक्त और अंग-अंगसे सुडौल एक पुत्र उत्पन्न होगा।"

यह सुन, रानीको बड़ा आनन्द हुआ और कहीं दूसरा कोई अशुभ स्वप्न न दीख पड़े, इसलिये जागती हुई देव, गुरु और धर्म-सम्बन्धी विचारोंमें ही उन्होंने बाक़ी रात बिता दी।

इसके बाद प्रातःकाल राजाने अपने सेवकोंको भेजकर अष्टाङ्ग ज्योतिषमें प्रवीण और स्वप्नके फल जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलवाया। राजपुरुषोंके बुलाये हुए ब्राह्मण माङ्गलिक उपचार कर, राजसभामें आ, क्रमशः रखे हुए भद्रासनों पर बैठ रहे। उस समय राजाने उनकी पुष्पादिसे पूजा कर, उनसे रानीके स्वप्नका सारा हाल सुनाकर उसका फल पूछा। इसके उत्तरमे उन्होंने कहा,—"हे राजन्! हमारे शास्त्रमें ४२ साधारण और ३० महास्वप्नोंका वर्णन है। सब मिलाकर ७२ स्वप्न होते हैं। इन ३० महास्वप्नोंमेंसे आपके कहे अनुसार १४ महास्वप्न अचिरा देवीने देखे हैं। अरिहन्तों और चक्रवर्त्तियोंकी माता ही ये १४ स्वप्न देखती हैं। वासुदेवकी माता सात, बलदेव की माता चार, प्रतिवासुदेवकी माता तीन और माण्डलिक राजाकी माता एकही महास्वप्न देखती हैं। अचिरादेवीने तो चौदह महास्वप्न देखे हैं। इसलिये आपके पुत्र भरत क्षेत्रके छहो खण्डोंके राजा होंगे, अथवा तीनों लोकोंके द्वारा वन्दना करने योग्य जिनेश्वर होंगे।" यह सुन रानी सहित राजाको बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद राजाने उन स्वप्न-विचारकोंको पुष्प, फल, धन, धान्य और वस्त्रादिसे सम्मानित कर, विदा कर दिया।

इसके बाद रानी बड़े यत्नसे गर्भका पालन करने लगीं। गर्भकी रक्षाके लिये उन्होंने अति स्निग्ध, अति मधुर, अति क्षार, अति

कटु, अति तीक्ष्ण और अति अम्ल ( खट्टे ) पदार्थ खाना छोड़ दिया और गर्भको लाभ पहुँचाने वाले पथ्य और गुणकारक पदार्थ खाना शुरू किया। स्वामीके गर्भमें आनेके पहले उस नगरमें महामारी आदि उपद्रवसे बहुतेरे लोग मर रहे थे। अब ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा, त्यों-त्यों महामारी आदि बीमारियाँ नष्ट होती गयीं और सारे नगरमें शान्ति फैल गयी। इससे स्वामीके माता-पिताने सोचा,—"यह जो महामारी आदिके उपद्रव शान्त होकर सर्वत्र शान्ति फैल गयी है, वह इसी गर्भस्थ बालकका प्रताप है।" इसके बाद गर्भके प्रभावसे जिन-जिन अच्छी-अच्छी चीज़ोंकी चाहना रानीको हुई, उसकी राजा विश्वसेनने भी भली-भाँति पूर्त्ति कर दी। क्रमसे नौ महीने साढे सात दिन बीतनेपर जेठ, महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीकी रातको, जिस समय चन्द्रमा भरणी नक्षत्र और मेष राशिमें था, सूर्यादिक ग्रह उच्चाति-उच्चतर स्थानोंमें थे, उसी शुभ लग्नमें, अनुकूल तथा धूलरहित वायुका जिस समय मन्द मन्द प्रवाह फैल रहा था, उसी शुभ मुहूर्त्तमें अचिरा देवीने, अपनी सुवर्ण-कीसी कान्तिसे भव-भ्रमणको निवारण करनेवाला, पवित्र-चरित्रवाला और तीनों लोकको सुख देनेवाला सुपुत्र सुखसे प्रसव किया।

उसी समय छप्पन दिक्कुमारियाँ, अवधिज्ञानसे जिनेश्वरके जन्मके वृत्तान्त जानकर तत्काल वहाँ आ पहुँचीं। उनमें अधोलोकके गजदन्तगिरिकी कन्दरामें रहनेवाली आठ कुमारियाँ, ऊर्ध्वलोकके मेरुपर्वत-पर नन्दन-वनमें रहनेवाली आठ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली आठ-आठ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारो विदिशाओंमें रहनेवाली चार कुमारिकाएँ तथा मध्यम रुचक-द्वीपमें रहने-वाली चार कुमारिकाएँ थीं। इस प्रकार सब मिलकर छप्पन कुमा-रिकाएँ वहाँ आयीं। पूर्वोक्त अधोलोक-निवासिनी आठों कुमारि-काओंने संवर्त्तक नामक वायु चलाकर भूमिको साफ़ कर दिया। मेरु पर्वतके नन्दन वनमें रहनेवाली आठों कुमारिकाओंने गन्धादिककी वर्षा

की और रुचक-गिरिकी पूर्व दिशाकी आठों कुमारिकाएँ हाथमें आरसी लिये जिनेश्वरकी माताके पास खड़ी रहीं। दक्षिण दिशाकी आठों कुमारिकाएँ पानीकी झारियाँ लिये खड़ी हो रहीं। पश्चिम दिशाकी आठों कुमारिकाएँ पंखे लिये खड़ी हो गयीं और उत्तर दिशाकी आठों कुमारिकाएँ चँवर डुलाने लगीं। रुचक-गिरिकी विदिशामें रहनेवाली चारो कुमारिकाएँ दीपिकाएँ धारण किये खड़ी हो गयीं और रुचक-द्वीपमें रहनेवाली चारों कुमारिकाओंने रक्षाबन्धन आदि सूतिकाके कार्य किये।

इसी समय शक्र इन्द्रका निश्चल आसन चलायमान हो गया। उसी समय देवेन्द्रने, अवधि-ज्ञानसे जिनेश्वरका जन्म हुआ जानकर, तत्क्षण पदातिसैन्यके अधिपति नैगमेषीदेवको आज्ञा देकर सुघोषा नामक घंटा बजाते हुए सब देवताओंको ख़बर दिलवायी। उसी समय सब देवता तैयार होकर देवराज इन्द्रके पास आये। इसके बाद इन्द्रने पालक देव से उत्तम विमान तैयार करवाया और परिवार सहित उस पर सवार हो, श्रेष्ठ शृङ्गार किये हुए तीर्थङ्करके जन्म-गृहमें चले आये। वहाँ आ स्वामीको प्रणाम कर, उनकी स्तुति कर, माताको विशेष रूपसे नमस्कार कर, उन्हें अवस्वापिनी निद्रा दे, प्रभुका मायामय प्रतिबिम्ब माताके समीप स्थापित किया। इसके बाद इन्द्रने अपने पाँच स्वरूप बनाये—एक स्वरूपसे उन्होंने जिनेश्वरको दोनों हाथमें लिया, दूसरे रूपसे छत्र धारण किया, तीसरे और चौथे रूपोंसे चँवर डुलाने लगे और पाँचवें रूपसे वज्र उछालते हुए आगे चले। इसी तरह चलते हुए वे मेरुपर्वतके शिखर पर पहुँचे। उसी समय अन्य तिरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवारके साथ वहाँ आ पहुँचे। तदनन्तर मेरु पर्वतके शिखर पर अतिपाण्डुकबला नामकी शिलापर शाश्वत आसन मारे बैठे हुए सौधर्म-इन्द्र श्रीजिनेश्वरको अपनी गोदमें लेकर बैठ रहे और अच्युतेन्द्र आदि देवेंद्रोंने सोने, चाँदी, मणि, काष्ठ और मिट्टीके अनेकानेक कलशोंमें तीर्थोंके जल भर कर बड़े हर्षके साथ श्रीजिनेश्वरका

अभिषेक किया । इसके बाद सौधर्म इन्द्रने श्रीजिनेश्वरको अच्युतेन्द्रकी गोदमें रख दिया और त्रिभुवन-स्वामीको पवित्र स्नान करा, उनका समस्त शरीर उत्तमोत्तम वस्त्रोंसे पोंछ, चन्दनादिका विलेपन कर, हरि-चन्दन और पारिजातके सुगन्धित पुष्पोंसे उनकी पूजा कर, चक्षुदोषके निवारणके लिये राई-लोन वारकर, तीर्थङ्करको प्रणाम कर, भक्तिपूर्वक उनकी इस प्रकार स्तुति की,—

"हे अचिरादेवीकी कोख-रूपी पृथ्वीके कल्पवृक्षके समान, भव्य प्राणी रूपी कमलोंको खिलानेके लिये सूर्यके समान और कल्याणका समूह देनेवाले स्वामी ! तुम्हारी जय हो ।

इस प्रकार उदार वचनोंसे तीर्थङ्करकी स्तुति कर सौधर्म इन्द्रने प्रभुको उनके घर पहुँचा दिया और उन्हें माताके पास सुलाकर, सबके सामने ही कहा,—"जो कोई जिनेश्वर या इनकी माताकी बुराई करनेका विचार करेगा, उसका सिर गर्मीके दिनमें एरण्डके फलकी तरह तत्काल फट जायेगा।" इसके बाद इन्द्र नन्दीश्वर द्वीपको चले गये। वहाँ अन्यान्य इन्द्र भी मेरुपर्वतसे घूमते-घामते बिना बोलाये चले आये थे। वहीं उन लोगोंने अष्टाह्निक उत्सव किया और उसके बाद अपनी-अपनी जगह पर चले गये। दिक्कुमारियाँ भी अपने अपने घर चली गयीं।

इधर अचिरादेवीकी नींद रातके पिछले पहर टूटी। उस समय उनके शरीरकी सेवा करनेवाली दासियाँ अपनी स्वामिनीको पुत्र सहित देखकर हर्षित तथा विस्मित हुईं। "मैं ही पहले पहुँचूँ।" यही सोचती हुई सब-की-सब जल्दी जल्दी राजाके पास बधाई देने आयीं और बोलीं,—"हे महाराज ! इस पुत्रकी दाईका काम दिक्कुमारियोंने आकर किया है और देवेन्द्रोंने स्वामीको मेरु पर्वत पर ले जाकर वहीं इनका जन्माभि-षेक महोत्सव सम्पन्न किया है। हम लोगोंको यह बात देवताओंकी ज़ुबानी मालूम हुई है।" यह बात सुनते ही राजा विश्वसेन मेघकी धारासे सिंचे हुए कदम्ब वृक्षकी भाँति रोमाञ्चित हो गये और उन्होंने उन दासियोंको हर्षके मारे मुकुटके सिवा अपने सब अङ्गोंके गहने उतार-

कर दे डाले। इसके बाद हर्षकी उमङ्गमें राजाने उन्हे इतनी सोना-चाँदी इनाममें दी, कि उनकी सात पीढ़ियों तक ख़र्च करनेसे भी न घटे। इसके बाद हर्षित राजाने, जिसने जो माँगा, उसे वही दे डाला, प्रजाका कर माफ़ कर दिया, माण्डवीमें लिया जाने वाला द्रव्य छोड दिया और सारे नगरमें गाना-बजाना, धवल-मङ्गल और बधाइयोंके महोत्सव जारी करा दिये। इसी तरह मंगलाचार होते रहे। इतनेमें बारहवाँ दिन आ लगा। उस दिन राजाने अपने सब बन्धुओंको अपने यहाँ बुलवाया और उन्हे भाँति भाँतिके भोजन करा, उनके सामने ही कहा,—“हे सज्जनो! जिस दिनसे मेरा यह पुत्र माताके गर्भमें आया, उसी दिनसे सारे नगरसे महमारी आदि उपद्रव दूर होकर शान्ति विराजमान हो गयी, इसलिये मैं इस पुत्रका नाम 'शान्ति' रखता हूं।” यह सुन, सबने यह नाम पसन्द किया। शक्रइन्द्रने भगवान्‌के अंगूठेमें अमृत डाल दिया था, उसीको पी-पी कर स्वामी, रूप-लावण्यकी सम्पत्ति-सहित, वृद्धिको प्राप्त होने लगे।

अब कर्त्ता स्वामीके शरीरका वर्णन करता है। वह इस प्रकार है:— स्वामीके हाथ-पैरके तलुवे लाल और शुभ लक्षण-युक्त थे। उनके चिकने, लाल और ऊँचे-ऊँचे नख आरसी (दर्पण) की तरह मालूम पड़ते थे, दोनों पैर कछुएकी तरह ऊँचे जान पडते थे, जंघाएँ मृगकी जंघाके समान थी। दोनों जाँघे हाथीकी सूँड़की तरह गोल और पुष्ट थीं। उनकी कमर बडी चौड़ी थी। दक्षिणावर्त नाभि बडी गम्भीर थी। उदर वज्रकी तरह पतला था। उनका वक्षःस्थल नगरके दरवाजेकी तरह विशाल और दृढ़। था उनकी दोनों भुजाएँ नगरकी अर्गलाके समान लम्बी थीं। उनकी गरदन शङ्खकी तरह सुन्दर थी। उनके होंठ बिम्बके-फलके समान लाल-लाल थे। उनके दाँत कुन्दकी कलियोंके समान थे। उनकी नासिका-सज्जनोंके आचरणकी भाँति ऊँची तथा सरल थी। उनके नेत्र कमल-पत्रकी भाँति थे। उनका ललाट अष्टमीके चाँदकासा दिखाई-देता था। उनके दोनों कान हिंडोलेके आकारके थे। उनका मस्तक छत्रसा शोभित हो रहा था। उनके बाल चिकने, भौंरेकी तरह काले

और अत्यन्त मुलायम थे। उनकी साँससे कमलकीसी सुगन्ध आती थी और उनके सारे शरीरकी कान्ति चमकते हुए सोनेके समान थी। इस प्रकार श्रेष्ठ अङ्गोंवाले स्वामीके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उत्तम लक्षण विराजमान थे।

ऐसे लक्षणोंसे युक्त, तीनों प्रकारके ज्ञानसे भरे हुए, समग्र ज्ञान-विज्ञानके पारगामी और सब मनुष्योंमें उत्तम भगवान् क्रमशः बढ़ते हुए युवावस्थाको प्राप्त हुए, उस समय पिताने अनेक रूपवती तथा कुलवती बालिकाओंसे उनका विवाह कर दिया। उन सब स्त्रियोंमें यशोमती नामकी पटरानी भगवान्‌की अतिशय प्रेम-पात्री और सारे अन्तःपुरमें प्रधान हो गयी। पचीस हज़ार वर्ष व्यतीत होनेपर पिताने स्वामीको राज्यपर बैठाया।

इसके बाद दृढ़रथका जीव, सर्वार्थ-सिद्ध विमानसे च्युत हो, यशोमतीके गर्भमें पुत्र-रूपसे अवतीर्ण हुआ। उस समय रानी यशोमतीने स्वप्नमें चक्र देखा। क्रमशः समय पूरा होनेपर शुभ मुहूर्त्तमें उनके पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताने ख़ूब धूमधामसे उत्सव कर, पुत्रका नाम स्वप्नके अनुसारही चक्रायुद्ध रक्खा। क्रमशः बढ़ता हुआ वह पुत्र, सब कलाओंका अभ्यास कर, युवावस्थाको प्राप्त हुआ। तब उन्होंने उसका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ कर दिया।

एक दिन राजा शान्तिनाथकी आयुधशालामें सूर्यकी सी कान्तिवाले हज़ार आरोंवाला, और हजार यक्षोंसे अधिष्ठित बडा ही उत्तम चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उस समय आयुधशालाके रक्षकोंने प्रभुको उस चक्र-रत्नकी उत्पत्तिका समाचार जा सुनाया। सुनकर स्वामीने उसके उपलक्षमें अष्टाह्निका-महोत्सव किया। इसके बाद वह चक्र आयुधशालासे बाहर निकलकर आकाशमार्गकी ओर चला। उसके पीछे-पीछे राजा शान्तिनाथ भी सैन्य सहित चल पड़े। चक्रके पीछे जाते-जाते पहले पूर्व दिशामें मागध-तीर्थके पास समुद्रका किनारा मिला। वहाँ सेनाका पडाव डाल, मागध-तीर्थके सामनेही शुभ आसन मारकर चक्रवर्त्ती बैठ रहे। उसी समय उनके प्रभावसे जलके अन्दर अधोभागमें बारह योजन दूरपर रहनेवाले

उस तीर्थके अधिष्ठाता देवता-मागधकुमारका आसन डोल गया। यह देख, उन्होंने अवधि-ज्ञानका उपयोग कर, अपने आसन डोलनेके कारण मालूम कर लिया, उन्हें मालूम होगया, कि श्रीशान्ति नामक चक्रवर्ती छहों खण्डोंको जीतनेके लिये तैयार हुए हैं और यहाँ आ पहुंचे हैं। यह जानकर देवताने सोचा,—"यदि और कोई चक्रवर्ती होता, तो मुझे उसकी भी आराधना करनी ही पड़ती। फिर ये तो श्रीशान्तिनाथ चक्रवर्ती जिनेश्वर हैं। इसलिये ये तो मेरे लिये अधिक आराध्य (पूजनीय) हैं। भला जिनकी भक्ति देवेन्द्र भी करते हैं, उनकी भक्ति मैं क्योंकर नहीं करूँगा?" यही सोचकर मागधकुमार देव, उत्तमोत्तम वस्त्र तथा महामूल्यवान् अलङ्कार लिये हुए प्रभुके पास आये और ये सब चीज़ें भेंट कर, कहा,—"हे स्वामी! मैं पूर्व दिशाका पालक और आपका सेवक हूँ। आप जब जैसी आज्ञा चाहें, मुझे दे सकते हैं।" यह सुन, भगवान्ने उनको आदरके साथ विदा किया।

इसके बाद चक्री चक्रके पीछे पीछे चलते हुए दक्षिण-दिशामें आये। क्रमशः उन्होंने वर-दाम तीर्थमें आकर सेनाका पड़ाव किया और वहाँके अधिष्ठाता देवको भी मगधके देवताके ही समान अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने पश्चिम दिशाके प्रभासतीर्थके अधिष्ठाताको भी वशमें कर लिया और उत्तर-दिशामें सिन्धु-नदीके किनारे आ रहे। वहाँ भी पहलेकी तरह उन्होंने सिन्धु-देवीको वशीभूत किया। देवीने प्रभुके पास आ, एक रत्नमय स्नान-पीठ, बहुतेरे सोने, चाँदी और मिट्टीके कलश तथा अन्यान्य स्नानोपयोगी सामग्रियोंके साथ-साथ उत्तमोत्तम वस्त्राभरण प्रभुको भेंट करते हुए कहा,—"हे नाथ। मैं सर्वदा आपकी आज्ञाके अधीन हूँ।" यह सुन, स्वामीने उनको सम्मानके साथ विदा किया और वे अपने स्थानको चली गयीं।

इसके बाद प्रभुकी आज्ञासे चर्म-रत्नसे सिन्धुनदी पारकर सेनापति पश्चिम-खण्डपर विजय प्राप्त कर, प्रभुके पास आये। इसके बाद चक्ररत्न वैताढ्य-पर्वतपर आया। उसी समय वैताढ्य पर्वतके वैताढ्यकुमार

देखा था भी प्रभुके वशवर्ती हुए और खण्डप्रपाता नामक गुफाका द्वार आप-से-आप खुल गया। उसके अधिनायक कृतमाल नामक देवने आप-से-आप प्रभुकी आज्ञा स्वीकार करली। उस गुफामें उन्मग्ना और निमग्ना नामकी दो अति दुस्तर नदियाँ हैं। उनके पार जानेके लिये मिस्त्रियोंने तत्काल उनपर पुल बँधवाये, जिनके सहारे प्रभु सारी सेनाके साथ उस गुफाके अन्दर चले गये। वहाँका अन्धकार दूर करनेके लिये, उस पचास योजन लम्बी गुफाकी दोनों तरफ़ उनचास मण्डल कांकिणीरत्नके बनाये गये। तब प्रभु उसके बाहर निकले। वहाँ भरतचक्रीके समान प्रभुने तत्काल अपने बड़े पुण्योंके प्रतापसे आपात-चिलात नामक म्लेच्छोंको अपने वशमें किया। इसके बाद सेनापतिके द्वारा सिन्धुके दूसरे पारका देश जीनकर, स्वामीने हिमाद्रिकुमार देवको वशमें किया। इसके अनन्तर वृषभ-कूटके पास जा, चक्रीने कांकिणीरत्नसे अपना नाम लिखा। तदनन्तर गङ्गानदीके उत्तर प्रदेश सेनापति द्वारा अपने अधीन कर, उन्होंने तमिस्रा गुफाके नाट्यमाल देवको वशवर्त्ती बनाया और उसी गुफाकी राहसे बाहर निकल कर गङ्गादेवीको शासित कर, उन्हींके किनारे अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया।

गङ्गानदीके किनारे रहनेवाले, बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े सन्दूकके आकारवाले नौ निधानोंको स्वामीने अपने पुण्य-प्रतापसे वशीभूत कर लिया। उन नवोंके नाम इस प्रकार हैं:—१नैसर्ग, २ पाण्डुकर, ३ पिङ्गल, ४ सर्वरत्नक, ५ महापद्म, ६ काल, ७ महाकाल, ८ मानव, और ९ शंखक। इन नवों निधियोंमें क्या क्या होता है, सब वह भी बतलाये देते हैं—पहले निधानमें स्कन्धावार और नगरके निवेशका समुदाय होता है। दूसरेमें सब प्रकारके अनाजोंके बीजकी उत्पत्ति होती है। तीसरेमें पुरुषों, स्त्रियों, हाथियों और अश्वोंके अलङ्कारोंका समुदाय होता है। चौथेमें चौदहों रत्न उत्पन्न होते हैं। पाँचवेंमें वस्त्रों तथा सब तरहके वर्णों (रंगों) की उत्पत्ति होती है। छठी कालनिधिमें तीनोंकाल—भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानका ज्ञान होता है। सातवीं महाकालनिधिमें सोना,

चाँदी, लोहा, मणि और प्रवालोंकी उत्पत्ति होती है। आठवीं माणवक-निधिमें समस्त युद्ध-नीति, समग्र आयुध और वीरोंके योग्य बख्तरआदिका समूह होता है। और नवीं शंखक-निधिमें सब तरहके बाजों और काव्य, नाट्य और नाटकोंकी विधि होती है। प्रत्येक निधिके एक पल्योपमकी आयुवाले और उसी निधिके नामसे प्रसिद्ध हज़ार-हज़ार देवता अधिष्ठाता होते हैं।

निधानोंको स्वाधीन कर, चक्रीने गङ्गाके पूर्वीय तटके प्रदेशको भी इसी तरह वशमें कर लिया। इस प्रकार स्वामीने भारतके छहों खण्डों पर आधिपत्य विस्तार कर, सब दिशाओंको जीतकर अपने हस्तिना-पुर नगरमे बड़ी धूम-धामसे प्रवेश किया। इसके बाद बत्तीस हज़ार मुकुटधारी राजाओंने बारह वर्ष पर्यन्त स्वामीके चक्रवर्तीके अभिषेकका महोत्सव मनाया। बारह वर्ष बाद महोत्सवकी समाप्ति होनेपर प्रत्येक राजाने स्वामीको बहुत सा धन दिया और साथ ही दो-दो कन्याएँ भी दीं। इस तरह स्वामीको रूप और लावण्यसे शोभित देवाङ्गनाके समान चौंसठ हज़ार पत्नियाँ हो गयीं। प्रभुके सेनापति आदि चौदहो रत्न हज़ार-हजार यक्षोंसे अधिष्ठित थे। उनके चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, और इतने ही शस्त्रोंसे भरे हुए ध्वजाङ्कित रथ भी थे। उनके परम समृद्धिशाली नगरोंकी संख्या बहत्तर हजार थी। उनके ९६ करोड़ गाँव और इतनेही पैदल सिपाही थे बत्तीस हज़ार देश और इतनेही राजागण उनके अधीन थे। बीस हजार बत्तीस नाटक और रत्नोंकी खानें और अड़तालीस हज़ार नगर उनके अधीन थे। इस प्रकार बहुत बडी समृद्धि पाकर, चक्रवर्त्तीकी उपाधि प्राप्त कर, सुख भोगते हुए स्वामीने पच्चीस हज़ार वर्ष बिता दिये।

एक समयकी बात है, कि ब्रह्मदेवलोकके अरिष्ट नामक प्रतरमें रहनेवाले सारस्वत आदि लोकान्तिक देवोंके आसन हिल गये। उसी समय अवधिज्ञानसे प्रभुकी दीक्षाका समय आया जानकर वे मनुष्य-लोकमे आये और वन्दी-जनोंकी भाँति जय-जयकी ध्वनि करते हुए उन्होंने प्रभुकी इस प्रकार विनती की,—"हे प्रभु! बोध प्राप्तकर

धर्मका प्रवर्तन करो।" यह सुनकर प्रभुने भी जान लिया कि मेरी दीक्षाका समय आ गया। उसी समयसे एक वर्षतक उन्होंने याचकोंको मुँहमाँगा दान दिया और चक्रायुध नामक अपने पुत्रको राज्यपर बैठाकर दीक्षा ग्रहण करनेको उत्सुक हुए। उसी समय सब देवेन्द्रोंके आसन काँप उठे और वे भी श्रीशान्तिनाथके दीक्षा-कल्याणकमें आये। इसके बाद छत्र-चँवरसे सुशोभित प्रभु सर्वार्थ नामकी शिविका (पालकी) पर सवार हुए। उस शिविकाको पहले मनुष्योंने, फिर सुरेन्द्रोंने, असुरेन्द्रोंने, गरुड़ेन्द्रोंने तथा नागेन्द्रोंने ढोया। पूरबमें देव, दक्खिनमे असुर, पश्चिममें गरुड़ और उत्तरमें नागकुमार उस शिविकाको ढोये चलते थे। भगवान्‌के आगे-आगे नट लोग नाटक करते चलते थे, मागध लोग जय-जय शब्द कर रहे थे, और कितनेही मनुष्य प्रभुके ऐश्वर्यादिक सद्गुणोंको अनेक छन्दों और रास-प्रबन्धोंमें वर्णन करते चले जा रहे थे। कितनेही लोग मृदङ्ग, सिंघा आदि बाजे ऊँचे स्वरसे बजा रहे थे। हाहा और हूहू नामके देव गन्धर्व सातो स्वरों, तीनों ग्रामों, तीनों मूर्च्छनाओं, लय और मात्राके सहित श्रेष्ठ सङ्गीत गान कर रहे थे। रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका और सुकेशिका प्रभुके आगे-आगे हाव-भाव और विलासके साथ मनोहर नृत्य कर रही थीं। हाव-भावादि लक्षण इस प्रकार होते हैं—हाव अङ्गकी चेष्टाको कहते हैं और भाव चित्तसे उत्पन्न होता है। विलास आँखोसे उत्पन्न होता है और विभ्रम भृकुटिसे उत्पन्न होता है।

इस प्रकारके साज सामानके साथ मन्द-मन्द गतिसे नगरके बाहर निकलकर, प्रभु सहस्राभ्रमन नामक उद्यानमें आकर शिविकासे उतर पड़े और सब आभूषणोंको उतार कर, दाढ़ी-मूँछ और सिरके बाल पाँच मुट्ठियोंसे नोंच लिये। उन केशोंको इन्द्रने अपने वस्त्रके छोरमें बाँध लिया और बड़ी धूम-धामसे क्षीर-सागरमें ले जाकर डाल दिया। इसके बाद जेठ महीनेकी कृष्ण-चतुर्दशीको, जब चन्द्रमा भरणी-नक्षत्रमें थे, तब प्रभुने वैराग्य-रंगसे रञ्जित होकर, सिद्धोंको नमस्कार कर छट्ठ-

तप करते हुए, हज़ार राजाओंके साथ सर्वविरति-सामायिकका पाठ करते हुए, चारित्र ग्रहण कर लिया ।

इसके बाद प्रभुने वहाँसे विहार किया । मार्गमें देवों, मनुष्यों और तिर्यञ्चोंका उपसर्ग सहन करते हुए श्रीजिनेश्वर पारणके दिन एक ग्राममें आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने सुमित्र नामक गृहस्थके घर पारणा किया । श्रीजिनेश्वरको तीन ज्ञान तो गर्भमें ही उत्पन्न हो चुके थे। अबके दीक्षा लेनेके बाद चौथा मनःपर्यवज्ञान भी उत्पन्न हो आया । इस प्रकार चारों ज्ञानके धारण करनेवाले स्वामी पुर, ग्राम और आकर आदि स्थानोंमें मौनावलम्बन किये हुए विचरण करने लगे । इस प्रकार आठ महीनेका छद्मस्थपर्याय पालन कर, पृथ्वीमण्डल पर विहार करते-फिरते हुए जगद्गुरु हस्तिनापुरके सहस्राम्रवन नामक उद्यानमें पधारे और पत्रपुष्पादिसे युक्त नन्दिवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग किये हुए टिक रहे । यहाँ छट्ठतप कर, श्रेष्ठ शुक्लध्यान करते हुए प्रभुको, पौष शुक्ल नवमीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी नक्षत्रमें था, तब चारों घातीकर्मोंका क्षय हो जानेके कारण निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।

उसी समय आसन काँपनेसे प्रभुके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका हाल मालूमकर, चारों निकायके देवगण वहाँ आये और श्रीजिनेश्वरके लिए सुन्दर समवसरणकी रचना की । उन्होंने पहले हवा चलाकर एक योजन प्रमाण पृथ्वीसे अशुभ पुद्गलोंको दूर किया । इसके बाद गन्धोदककी वृष्टि कर उन्होंने धूलकी शान्ति कर दी । उनके पश्चात् व्यन्तर-देवोंने मणिरत्नमय भूपीठकी रचना की और उसपर घुटने बराबर फूलोंकी वर्षा कर डाली । उस पर वैमानिक देवोंने भीतरका रत्नमय गढ़ बनाया, जिसके कँगूरे मणियोंके बने हुए थे । इसके बाद ज्योतिषी देवोंने रत्नोंके कँगूरोंवाली सुवर्णमय गढ़ तैयार किया । तदनन्तर भुवनपति देवताओंने एक तीसरा सुनहरे कँगूरोंवाला चाँदीका गढ़ रचा । प्रत्येक गढ़में तोरण सहित चार-चार दरवाज़े लगे । पहले गढ़में स्वामीके शरीरसे बारहगुना ऊँचा अशोक-वृक्ष बनाया गया ।
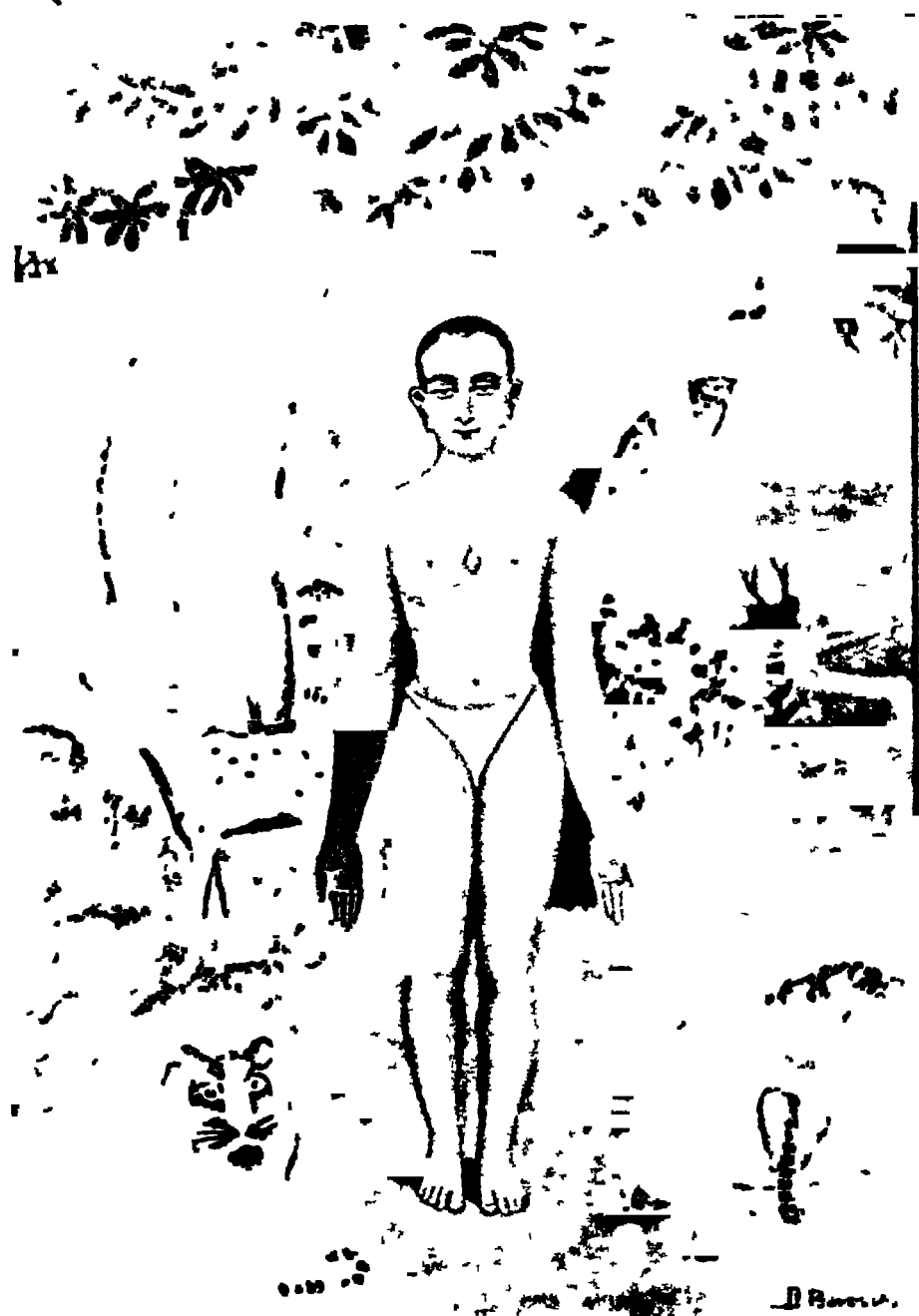
सहस्राम्रवन नामक उद्यानमें पधारं और पत्रपुष्पादिसे युक्त नन्दिवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग किये हुए टिक रहे। ( पृष्ठ २८६ )

NARSINGH PRESS, CALCUTTA
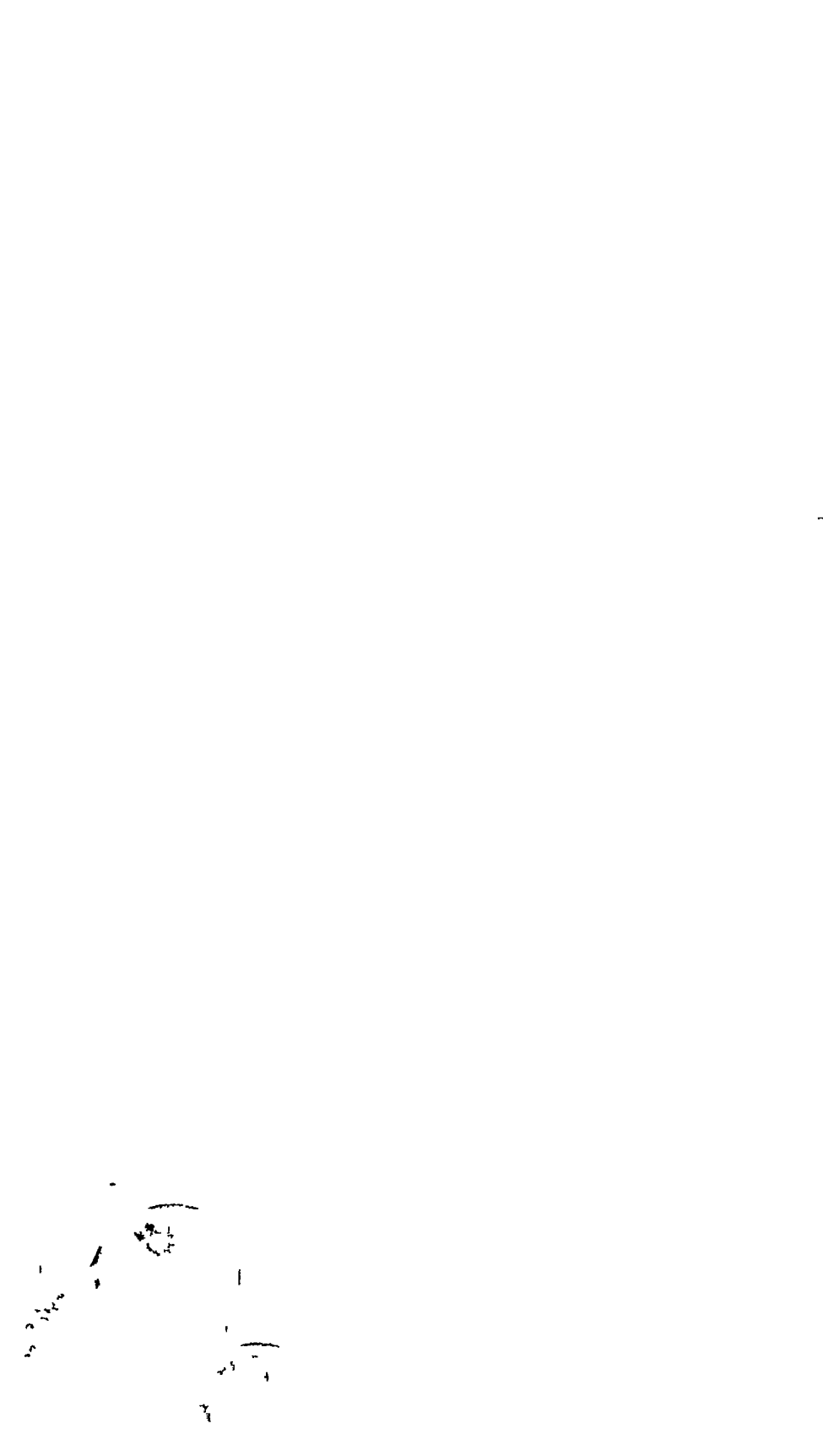
उसके चारों ओर चार मनोहर सिंहासन रखे गये। जिनमें प्रत्येक पर तीन-तीन छत्र और दो-दो चँवर लगाये गये। यह सब व्यन्तर-देवताओंने बनाया था।

इसके बाद श्रीजिनेश्वर, उस समवसरणके पूरबी दरवाजेसे भीतर जा, तीर्थको नमस्कार कर प्रसन्नमुखसे पूर्व दिशामें रखे हुए सिंहासन पर पूरबकी ओर मुँह किये हुए बैठ रहे। इसी समय बाकीके तीनों सिंहासनों पर देवोंने प्रभुके तीन बिम्ब बैठा दिये। प्रभुके पीछे प्रभामण्डल चमकने लगा और सामने घुटने बराबर डंठल समेत फूलोंकी वर्षा हो गयी। यह सब भी व्यन्तर देवोंने ही किया। इसी समय आकाशमें देव दुन्दुभि बजने लगी और अन्यान्य बाजोंके भी शब्द सुनाई देने लगे।

उस समवसरणमें बारह परिषदें बैठी थीं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है— पहली साधुओंकी सभा थी, जो कि पहले गढ़के मध्यमें पूर्वदिशावाले द्वारसे प्रवेशकर अग्निकोणमें बैठी हुई थी। इसके पीछे साध्वियोंकी सभा और उसके पीछे वैमानिक देवियोंकी सभा थी। दक्षिण दिशासे प्रवेश कर नैऋत्य-कोणमें जाने पर पहले ज्योतिषी देवियोंकी सभा उसके पीछे भुवनपति देवियोंकी सभा और उसके पीछे व्यन्तर देवियोंकी सभा थी। पश्चिम दिशासे प्रवेश करने पर वायव्य-कोणमें पहले ज्योतिष्क देवोंकी सभा, उसके पीछे भुवनपति देवोंकी सभा और उसके पीछे व्यन्तर देवोंकी सभा मिलती थी। उत्तर दिशासे प्रवेश करने पर ईशानकोणमें पहले वैमानिक देवोंकी सभा, उसके बाद मनुष्य-पुरुषोंकी सभा और उसके पीछे मनुष्य-स्त्रियोंकी सभा बैठी मिलती थी। ऐसी ही वे बारहों परिषदें थीं। दूसरे गढ़में चारों विदिशाओंमें परस्परका जातीय वैर त्यागकर, सब प्रकारके तिर्यंच जीव बैठे हुए थे और तीसरे गढ़के भीतर सब तरहके वाहन मौजूद थे। इस प्रकार संक्षेपमें उस समवसरणकी स्थिति जान लो।

इसी समय कल्याण नामक पुरुषने चक्रायुध राजाके पास आकर

स्वामीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया। यह सुन, चक्रायुधने हर्षित होकर उसे उचित इनाम दिया और बड़े आनन्दके साथ उद्यानमें चले आये। तदनन्तर विधि-पूर्वक समवसरणमें प्रवेशकर, श्री जिनेन्द्रकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उन्हें प्रणाम और स्तुति कर, वे दोनों हाथ जोड़े हुए उचित स्थान पर बैठ रहे। उस समय श्रीभगवान्ने मधुक्षीराश्रव-लब्धिवाली तथा पैंतीस अतिशयवाली वाणीमें धर्मदेशना कह सुनायी—उसीके साथ उन्होंने चक्रायुधको उद्देशकर कहा,—

"हे राजन्! तुमने अपने बाहुबलसे बाहरी शत्रुओंको जीत लिया है, परन्तु शरीरके अन्दर रहनेवाली पाँचों इन्द्रियोंको—जो बड़े भारी शत्रु हैं— नहीं जीता। इसीसे उनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि विषय बड़े-बड़े अनर्थ करते हैं। देखो—शिकारीके संगीतको सुननेके लिये कान खड़े किये हुए हरिणकी जान, इसी कर्णेन्द्रियके वशमें होनेके कारण चली जाती है। पतङ्ग, चक्षुइन्द्रियको वशमें नहीं रखनेके कारण दीप-शिखाको सोना समझकर तत्काल उसमें कूद कर मर जाते हैं। मांसके टुकड़ेका रस चखनेमें भूली हुई मछली, रसनेन्द्रियके वशमें होकर, अगाध जलमें रहने पर भी मछुएके जालमें फँस जाती है। हाथीके मदकी सुगन्धसे लुब्ध हुए भौंरे, घ्राणेन्द्रियके वशमें न होनेके कारण, मरणको प्राप्त होते हैं और स्पर्शेन्द्रियके वशमें पड़ा हुआ हाथी पराधीनताके दुःखोंमें आ पड़ता है। हस्तिनीके शरीरका स्पर्श करनेमें भूला हुआ हाथी बन्धन तथा तीक्ष्ण अङ्कुशके प्रहारको सहन करता है। जो सत्पुरुष होते हैं, वे इन विषयोंको तत्काल त्याग देते हैं। पूर्व समयमें अपनी प्रियाका ऐसा स्वरूप देखकर गुणधर्मकुमारने विषयोंका त्याग कर दिया था।"

यह सुन, चक्रायुध राजाने, भक्तिसे नम्र होकर, स्वामीसे पूछा,— "हे भगवन्! वह गुणधर्मकुमार कौन थे? और उन्होंने किस प्रकार विषयोंका त्याग किया था? इसकी कथा कृपाकर—कह सुनाइये।" इस पर श्रीजिनाधीशने कहा,—"सुनो,—

# गुणधर्म कुमारकी कथा

इसी भरत-क्षेत्रमें शौर्यपुर नामका एक नगर है। उसमें संसार-प्रसिद्ध राजा दृढ़धर्म राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम शील-शालिनी था, जो यथानाम तथा गुणकी कहावतको सच साबित कर रही थी। इन्हींके गर्भसे राजाके गुणधर्म नामक एक राजकुमार उत्पन्न हुए थे। क्रमशः राजकुमार बाल्यावस्थाको पारकर, कलाभ्यास करनेमें लगे और कुछही दिनोंमें बहत्तर कलाओंमें निपुण होकर युवावस्थाको प्राप्त हुए। रूप, लावण्य और गुणके कारण वे जगत्को आनन्द देनेवाले बन गये। कुमार बड़े ही भाग्यशाली, सरल-स्वभाव, शूर-वीर, अपूर्व भाषण करनेवाले, प्रिय वचन बोलनेवाले, दृढ़ मैत्रीवाले और मनोहर रूपवाले—अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न—हो गये।

वसन्तपुर नामक नगरमें ईशानचन्द्र राजाके कनकवती नामकी एक अति रूपवती पुत्री थी। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुई, तब राजाने उसके लिये स्वयंवर रचाया। स्वयंवर मण्डपमें गुणधर्म कुमार तथा अन्यान्य बहुतसे राजा और राजकुमार आये। सब राजाओंको रहनेके लिये महल दिये गये। एक दिन गुणधर्म कुमार स्वयंवर-मण्डप देखने गये। वहाँ राजकुमारी कनकवती भी आयी हुई थी। राजकुमारीने कुमारको और कुमारने राजकुमारीको देख लिया। कुमारने उसकी नज़रोंसे ही समझ लिया, कि वह उन पर अनुरक्त है। इसके बाद वह राजकुमारी आनन्दसे कुमारकी ओर देखती हुई अपने घर चली गयी। कुमार भी परिवार सहित अपने डेरे पर चले आये। इसके बाद घर पहुँचकर कुमारीने कुमारके पास एक दासीको भेजा। उसने कुमारके पास आकर उन्हे एक चित्रपट दिया। उसमें कुमारने एक राजहंसिनीका चित्र अङ्कित हुआ देखा। साथही उसके नीचे यह श्लोक भी लिखा हुआ देखाः—

'आदौ दृष्टे प्रिये सानुरागाऽमौ कलहंसिका ।
पुनस्तद्दर्शनं शीघ्र, वाञ्छत्येव वराक्यहो ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'जिस दिन पहले-पहल इस राजहंसीने अपने प्राणप्यारे-को देखा, उसी दिनमे यह उनपर अनुराग करने लगी । इसी लिये अब यह वेचारी फिर उनके दर्शनोंकी इच्छा कर रही है ।*

यह पढ़कर कुमारने उसी चित्रपट पर हंसका चित्र अङ्कित कर उसके नीचे यह श्लोक लिख दिया ,—

"कलहंसोऽप्यसौ सुभ्रु, क्षणं दृष्ट्वाऽनुरागवान् ।
पुनरेव प्रियां द्रष्टुमहोवाञ्छत्यनारतम् ॥ २ ॥"

*"हे सुन्दर भौंरोंवाली ! यह राजहस भी क्षण भरके लिये प्रिया-को देखकर अनुरागवान् हो गया है । इसी लिये अब यह फिर निर-न्तर प्रियाको देखनेकी इच्छा करता है ।'*

इस प्रकार लिखकर कुमारने वह चित्रपट दासीको लौटा दिया । इसके वाद कुमारीके दिये हुए ताम्बूल, विलेपन और सुगन्धित पुष्प आदि लाकर उस दासीने कुमारको दिये । कुमारने उन्हे हाथमें ले, फूलोंको सिरपर चढ़ाया, ताम्बूलको खा लिया और विलेपनको शरीरमें लगा लिया । तदनन्तर कुमारने प्रसन्न होकर उस दासीको एक हार इनाममें दिया । हारको लेकर दासीने कहा,—"हे कुमार ! राजकुमारीका संदेसा सुनो ।" इसपर कुमारने उस स्थानसे लोगोंको हटाकर वहाँ एकान्त कर दिया और दासीकी वातको सावधानीके साथ सुननेके लिये तैयार हो गये । दासीने कहा,—"राजकुमारीने तुम्हे कहला भेजा है, कि मैं कल सवेरे तुम्हारे गलेमें जयमाला डालूँगी पर मेरा पाणिग्रहण करनेके वाद वहुत दिनों तक तुम्हे विषय-सेवन नहीं करना होगा ।" यह सुन, कुमारने उस वातको स्वीकार कर लिया । दासी-ने यह वात जाकर राजकुमारीको कह सुनायी । सुनकर वह मन-ही-मन वड़ी सन्तुष्ट हुई ।

प्रातःकाल स्वयंवर-मण्डपमे हजारों राजा एकत्र हुए। उसी समय सुखासनपर वैठी हुई राजकुमारी वहाँ आ पहुँची और सब राजाओंको देख-भाल कर गुणधर्मकुमारके गलेमें वर-माला डाल दी। तब ईशानचन्द्र राजाने और सब राजाओंको सम्मान सहित विदा किया तथा गुणधर्मकुमारके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। इसके बाद श्वसुरकी आज्ञा लेकर गुणधर्मकुमार अपनी पत्नीके साथ अपने नगरको आये और स्त्रीको एक अच्छेसे महलमें रखकर आप दूसरे महलमें चले गये।

एक दिन कुमार रानीके पास वैठे हुए थे। इसी समय उसने कुमारसे पूछा,—"हे स्वामिन्! एकाध प्रहेलिका (बुझौअल-पहेली) बुझाओ।" तब राजकुमारने कहा,—"हे प्रिये। सुनो—

"स्थले जाता जले स्वैर, याति तेन न पूर्यते।
जनप्रतारिणी नित्य, वद सुन्दरि! का न्वसौ?॥ १॥"

*अर्थात्—जो स्थलमें तो उत्पन्न हुई है; पर जलमें मनमाने ढंगसे जाती-आती है और इतनेपर भी जलसे भरती नहीं है (डूबती नहीं है); साथही जो लोगोंको तारनेवाली है, वह कौनसी चीज है, सो हे सुन्दरि! बतलाओ।'*

यह सुनकर कनकवतीने विचार कर कहा,—"नौका"। इसके बाद उसने भी एक पहेली पूछी,—

'पयोधरभराक्रान्ता, तन्वङ्गी गुणसयुता।
नरस्कन्धसमारूढा, का प्रयात्यबला विना॥ १॥'

*अर्थात्—'पयोधरके * भारसे नम्र (झुकी हुई), पतले शरीरवाली, गुणसे ‡ युक्त ऐसी कौनसी चीज है, जो पुरुषके कन्धेपर चढकर जाती है; पर वह स्त्री नहीं है?'*

कुमारने इसके उत्तरमें कहा,—"कावाकृति (काँवर)।"

---

* स्तन और पानीका घड़ा। ‡ गुण और रस्सी।

इसी प्रकार कुछ देर तक उसके साथ हँसी-दिल्लगी कर, गुणधर्म-कुमार अपने घर आये और स्नान, भोजन, अंग-लेप आदि करके शान्ति-पूर्वक अपनी जगह पर बैठे हुए थे, इसी समय प्रतिहारने आकर कहा,—"हे स्वामी! आपके महलके दरवाज़ेपर एक साधु आपके दर्शनोंकी इच्छासे आया हुआ है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे भीतर बुला लाऊँ।" कुमारने कहा,—"बुला लाओ।" यह सुन, प्रतिहार उस साधुको बुला लाया। कुमारने साधुका बड़े विनयके साथ स्वागत किया। सच है, कुलीन मनुष्योंका यही स्वभाव है। कहा है,—

'को चित्तेइ मयूर, गइं च को कुणइ रायहंसाणं।
को कुवलयाण गंधं, विणयं च कुलप्पसूयाणं ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"मयूरको कौन चित्रित करता है? राजहंसोंको मनोहर गति किसने सिखलायी? कमलमें सुगन्ध किसने पैदा की? और ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यको विनयी कौन बनाता है?"—अर्थात् यह सब स्वभावसे ही होता है।*

कुमारने उसे आसन दिया, पर वह अपने काष्ठासनपर ही बैठ रहा। इसके बाद राजकुमारने उसे प्रणाम कर उससे यहाँ आनेका कारण पूछा। इसपर उसने कहा,—"हे भद्र! मेरे आचार्य भैरवने मुझे आपके पास आपको बुला लानेके लिये भेजा है। उनको आपसे क्या काम है, यह मैं नहीं जानता।" यह सुन, कुमारने पूछा,—"हे मुनि! भैरवाचार्य कहाँ हैं?" उसने कहा,—"वे नगरके बाहर एक स्थानमें टिके हुए हैं।" कुमारने कहा,—"मैं प्रातः काल उनके पास जाऊँगा।" यह सुन, वह तपस्वी 'बहुत अच्छा' कहकर अपने स्थानको चला गया। इसी समय कालका ज्ञान करानेवाले अधिकारी पुरुषने इस प्रकार कहा,—

"अथ प्राप्योदय पूर्वं, स्वप्रतापं वितत्य च।
गततेजा अहो संप्र —त्यस्त याति दिवाकरः ॥ १ ॥"

*अर्थात्—'अहो! यह सूर्य पहले उदयको प्राप्त हो, अपने प्रतापका विस्तार कर, इस समय तेजहीन होकर अस्ताचलको जारहा है।'*

यह सुन, कुमार सन्ध्याकालके कृत्य कर, सुखनिद्रामें रात बिता दी। प्रातःकाल काल-निवेदकने फिर कहा,—

"निहतप्रतिपक्षोऽसौ, सर्वेषामुपकारकृत्।
उदयं याति तिग्मांशु—रन्योऽप्येव प्रतापवान्॥ १॥"

*अर्थात्—"अन्धकार-रूपी शत्रुका नाश करनेवाला और सबका उपकार करनेवाला यह सूर्य उदयको प्राप्त हो रहा है। इसी प्रकार दूसरे लोग भी, जो प्रतापी होते हैं, उदयको प्राप्त होते हैं।"*

उसके ऐसे वचन सुन, गुणधर्मकुमार प्रातःकालके कृत्य कर, परिवार सहित भैरवाचार्यके पास आये। वहाँ बाघके चमड़ेपर बैठे हुए योगीको देखकर कुमारने पृथ्वीमें माथा टेककर भक्ति-पूर्वक उनको नमस्कार किया। उसी समय योगीन्द्रने बड़े आदरके साथ उन्हें आसन दिखलाते हुए कहा,—"तुम उसी पर बैठो।" उनके ऐसा कहने पर भी कुमारने विनयके साथ कहा,—"हे पूज्य! मेरे लिये यह उचित नहीं है, कि मैं गुरुके समान आसन पर बैठूँ।" यह कह, अपने सेवकके उत्तरीय वस्त्रपर बैठते हुए उन्होंने कहा,—"हे प्रभो! आपने इस नगरमें आकर मुझे कृतार्थ कर दिया।" यह सुन, योगीन्द्रने कहा,—"हे कुमार! तुम मेरे सब प्रकारसे माननीय हो; परन्तु मैं अकिञ्चन मनुष्य ठहरा, अतएव किस प्रकार तुम्हारा स्वागत सत्कार करूँ?" यह सुन कुमारने कहा,—"हे पूज्य! आपका आशीर्वादही मेरा सत्कार है। आपके दर्शनोंसे ही मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये।" यह सुन योगीन्द्रने फिर कहा,—"हे कुमार! तुमने बहुत ही ठीक कहा; पर लोकोक्ति तो यही कहती है, कि—

"भक्तिः प्रेम प्रियालापः, सम्मानं विनयस्तथा।
प्रश्रामेन विना लोके, सर्वमेतन्न शोभते॥१॥

*अर्थात्—"भक्ति, प्रेम, प्रियवचन, सम्मान और विनयके दान बिना लोकमें कोई शोभित नहीं होता।"*

यह सुन, कुमारने फिर कहा,—"महाराज! आप अपनी दयादृष्टिसे मुझे देखें और सम्यक् प्रकारसे मुझे आज्ञा प्रदान करें, बस यही आपका बड़ा भारी दान है।" यह सुन, योगीने कहा,—"हे कुमार! मेरे पास एक बड़ा ही उत्तम मंत्र है। उसका मैंने आठ वर्ष तक जप किया है। इसलिये यदि एक दिन रात भर तुम विघ्नोंका निवारण करनेके लिये तत्पर होओ, तो मेरा सारा परिश्रम सफल हो जाये।" यह सुन, कुमारने कहा,—"हे प्रभु। वह काम मुझे किस दिन करना होगा?" योगीने कहा,—"हे कुमार! तुम कृष्ण चतुर्दशीके दिन अकेले रातके समय खड्ग लिये हुए श्मशानमें आओ। मैं वहाँ अपने अन्य तीन शिष्योंके साथ मौजूद रहूँगा। यह सुन, कुमारने कहा,—"बहुत अच्छा।" और अपने घर चले आये।

क्रमशः कृष्ण चतुर्दशी आ पहुँची। उस दिन रातके समय अकेले ही कुमार खड्ग लिये हुए श्मशान-भूमिमे आ पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर योगीने उनसे कहा,—'हे कुमार! रातको भय उत्पन्न होगा, इसलिये तुम मेरी और इन उत्तर-साधकोंकी रक्षा करना।" यह सुन, कुमारने कहा,—"हे योगीन्द्र! आप स्वस्थ चित्तसे मन्त्रकी साधना कीजिये। मेरे रक्षक रहते हुए आपके कार्यमें कौन विघ्न उत्पन्न कर सकता है?" इसके बाद योगीने एक मण्डप बना कर उसमें एक मुर्दा ला रखा और उसके मुँहमें आग डाल, होम किया। योगी होम कर ही रहे थे, कि इसी समय सब दिशाओंको गुँजाती, आसमानको फाड़ती और दुनियाँके कान बहरे करती हुई एक बड़ी भारी कड़ाकेकी आवाज पैदा हुई। इसी समय अकस्मात् जमीन फट गयी और उसके अन्दरसे एक भयङ्कर और यमराजकासा विकराल पुरुष प्रकट होकर बोला,—"रे पापी! रे दिव्य स्त्रीका अभिलाषी! मैं मेघनाद नामका क्षेत्रपाल यहाँ

मौजूद हूँ, यह क्या तुझे नहीं मालूम है? तू मेरी पूजा किये विना ही मन्त्र सिद्ध करना चाहता है? तिसपर तूने इस सीधे-सादे राजकुमारको भी धोखेमें ला रखा है!" यह कह, उस क्षेत्राधिपने उसे मार डालनेकी इच्छासे सिंहनाद किया। उसे सुनते ही योगीके तीनों चेले पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख, कुमारने क्षेत्राधिपसे कहा,—"अरे! तू व्यर्थ क्यों गर्जन कर रहा है? यदि तुझमें शक्ति हो, तो पहले मेरे साथ युद्ध कर।" यह कह, उसे शस्त्र-रहित देख कर, कुमारने भी अपने हाथसे खड्ग फेंक दिया। इसके बाद दोनों प्रचण्ड भुज-दण्डसे युद्ध करने लगे। अन्तमें युद्ध करते हुए बलवान कुमारने उस क्षेत्रपालको अपने बाहुबलसे परास्त कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उसने कहा,—"हे महानुभाव! मैं तुमसे हार गया और तुम्हारे साहसको देखकर प्रसन्न हो गया हूँ, इसलिये तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, मुझसे माँगो।" यह सुन, कुमारने उसे अपने भुजबन्धनसे अलग कर कहा,—"यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस योगीकी इच्छा पूरी कर दो।"

यह सुन, क्षेत्रपतिने कहा,—"इच्छित फलको देनेवाला यह महामन्त्र तो तुम्हारे प्रभावसे इसे सिद्ध हो ही गया है। अब तुम कुछ अपनी इच्छित वस्तु माँगो, जिसे मैं तुम्हे दूँ; क्योंकि देवताका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।" यह सुन, कुमारने कहा,—"यदि ऐसी बात है, तो तुम ऐसा कर दो, जिससे मेरी पत्नी कनकवती मेरे वशमें हो जाये।" यह सुन, क्षेत्रपतिने ज्ञानसे उसका स्मरण कर कहा,—"वह स्त्री तुम्हारे वशकी हो जायेगी और तुम मेरे प्रभावसे अपनी मनचाही कर सकोगे।" इस प्रकार उसे वर-दान देकर वह क्षेत्रपाल अदृश्य हो गया। इसके बाद मन्त्रकी सिद्धि कर, उस योगीन्द्रने कुमारकी प्रशंसा करते हुए कहा,—"हे कुमार! तुम समय पड़ने पर मुझे याद करना।" यह कह, योगी अपने शिष्योंके साथ अपने स्थानको चले गये। इसके बाद अपना शरीर मार्जन कर घर आये और वीरोंका बाना उतारकर सो रहे।

दूसरे दिन, रातका पहला पहर वीतने पर कुमार अदृश्य रूप (जो दूसरेको न दिखाई दे) बनाये अपनी पत्नी कनकवतीके महलोंमें आये। उस समय कनकवती अपनी दो दासियोंके साथ बैठी बातें कर रही थी। बातों-ही-बातोंमें उसने दासियोंसे पूछा,—"हे सखियो! इस समय कितनी रात बीती होगी?" वे बोलीं,—"अभी दो पहर रात नहीं बीती है। स्वामिनी! वहाँ जानेका समय हो चला है।" यह सुन, कनकवतीने स्नान कर, अंगोंपर विलेपन लगाया और दिव्य वस्त्र पहन, बात-की-बातमें देवगृहके समान एक सुन्दर विमान बना कर उसीपर दासियोंके साथ सवार हो गयी। इसके बाद जब वह जानेको तैयार हुई, तब उसका यह सब बनाव-सिंगार देख, आश्चर्यमें पड़कर गुणधर्मकुमारने सोचा,—"ऐं! इस स्त्रीने विद्याधरियोंके समान विमान कैसे बना लिया? और इस विमान पर चढ़ कर इतनी रात गये कहाँ चली जा रही है? अथवा इस सोच-विचारसे मतलब क्या है? मैं भी इसी तरह इसकी नज़रोंसे छिपा हुआ इसके साथ-साथ जाऊँ और चलकर देखूँ, कि यह कहाँ जाती है और क्या करती है?" यही सोचकर कुमार अदृश्य-रूपसे उसी विमानके एक कोनेमें चढ़ बैठे और साथ-साथ चल पड़े। वह विमान उत्तर दिशामें बड़ी दूर जाकर नीचे उतरा। वहाँ एक बड़े भारी सरोवरके पास एक अशोक-वन था, जिसमें एक विद्याधर रहता था। कुमारने उसको देख लिया। कुमारकी पत्नी कनकवती विमानसे नीचे उतर, उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रही। इतनेमें और भी तीन कन्याएँ विमानोंपर चढ़ी हुई वहाँ आयीं और उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रहीं। इसके बाद और भी कितने ही विद्याधर वहाँ आ पहुँचे।

उस अशोक वनके ईशानकोणमें श्रीयुगादि जिनेश्वरका मनोहर और विशाल चैत्य था। उस मन्दिरकी सीढ़ियाँ रत्नों और सुवर्णकी थीं, जिनसे वह मन्दिर देव-विमानकी तरह शोभित हो रहा था। थोड़ी

इसके बाद वह सारी मण्डली उसी मन्दिरमें चली गयी। वहाँ विद्याधरोंने जिनेश्वरका स्नानमहोत्सव किया। इसके बाद विद्याधरोंके स्वामीने कहा,—"आज नाचनेकी बारी किसकी है?" यह सुनते ही तत्काल कनकवती खड़ी हो गयी और ओढ़नीको बराबर बाँधकर, रङ्गमण्डपमें प्रवेश कर, हाव-भावके साथ मनोहर नृत्य करने लगी। अन्य तीनों कन्याओंमेंसे एक वीन बजाने लगी, दूसरी बाँसरी बजाने लगी और तीसरी ताल देने लगी। उस समय गुणधर्मकुमार अदृश्य रूपसे एक स्थानमें खड़े खड़े आश्चर्यके साथ यह सब तमाशा देखने लगे। इतनेमें नाचती हुई कनकवतीकी करधनी टूट गयी और उसमें लगे हुए सोनेके घुँघरूकी एक लड़ी टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, जिसे कुमारने तत्काल उठाकर अपने पास रख लिया। नाच ख़तम होनेपर कनकवतीने उसे इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा, पर वह कहीं नहीं मिली। इसके बाद सब अपने-अपने घर चले गये। कनकवती भी अपनी दासियोंके साथ घर आयी। उसके साथ-ही-साथ कुमार भी छिपे-छिपे घर आये। कनकवतीने घर आकर विमानका लोप कर दिया। इसके बाद रातके पिछले पहर अपने घर जाकर कुमार सो रहे।

इसके बाद दूसरे दिन सवेरे ही अपने मित्र मन्त्री-पुत्र मित्रसागरके हाथमें घुँघरूकी वह लड़ी देकर कुमारने कहा,—"हे मित्र! यह घुँघरू-का दाना तुम समय पड़ने पर मेरी स्त्रीके हाथमें देना।" इस प्रकार उसे सिखला पढ़ाकर कुमार उसे लिये हुए अपने प्रियाके पास आये। कनकवतीने तुरतही उठकर उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। कुमार और उनके मित्र उसीपर बैठ रहे। इसके बाद कुमार अपनी स्त्रीके साथ जुआ खेलने लगे। कनकवती जीत गयी। जीतकर बोली,—"प्यारे! तुम हार गये—अब मुझे कुछ हर्ज़ाना दो।" यह सुनते ही कुमारने अपने मित्रकी ओर इशारा किया। उसने तुरतही अपने वस्त्रसे वह घुँघरूकी लड़ी निकाल कर कनकवतीके हाथमें देदी। उसे देखतेही भयभीत होकर कनकवतीने कहा,—"यह तो मेरी है—तुम्हारे पास कैसे

आयी ?" तब कुमारने कहा,—"तुम्हीं याद करो, इसे तुमने कहाँ गिरा दिया था ?" वह बोली,—"मुझे तो याद नहीं कि यह मेरी भूलसे कहाँ गिर गयी थी ?" कुमारने कहा,—"प्यारी! मेरा यह मित्र बड़ा भारी निमित्तज्ञ है। इसके बलसे यह सब कुछ जान लेता है। अतएव इनसे पूछो, यह सब बतला देगा, कि यह लड़ी कहाँ गिरी थी ?" यह सुन, कनकवतीने अपने स्वामीके मित्रसे ऐसा ही प्रश्न किया। इस-पर उसने कहा,—"मैं पोथी देखकर बतला सकूँगा।" इसके बाद थोड़ी देर हँसी-दिल्लगीकी बातें कर गुणधर्म कुमार अपने मित्रके साथ वहाँसे उठकर अपने घर चले आये।

इसके बाद दूसरे दिन रातको जब कनकवती, फिर विमानपर आरूढ़ हो उसी स्थानको जाने लगी, तब कुमार भी कौतूहलके मारे अदृश्य भावसे उसके साथ-साथ वहाँ चले गये। उस दिन भी विद्या-धरपतिकी आज्ञासे कनकवती ही नाचने लगी। उस समय छिपे हुए कुमारने किसी उपायसे उसके पैरका एक नूपुर निकाल लिया। उसकी उसे ख़बर नहीं पड़ी। नाच ख़तम होनेपर वह उस नूपुरको ढूँढ़ने लगी; पर पा न सकी। इसके बाद वह घर चली आयी और कुमार भी उसके साथ-साथ चले आये। इसके बाद प्रातःकाल होनेपर गुणधर्मकुमारने वह नूपुर अपने मित्रके हाथमें दे दिया और उसे लिये हुए अपनी स्त्रीके महलमें आये। उसने उठकर आसन दिया, जिस पर कुमार बैठ गये। कुछ देर तक उसने कुमारसे शास्त्रकी बातें कीं, इसके बाद उसने मित्रसागरसे पूछा,—"हे भद्र! मैंने कल तुमसे जो सवाल किया था उसका जवाब दो।" इसपर उसने कहा,—"हे भद्रे! मैंने अपने निमित्तज्ञानके बलसे मालूम किया है, कि आपका और भी कोई आभूषण खो गया है।" यह सुन, मन-ही-मन शङ्कित होकर वह बोली,—"वह कौनसा गहना है, यह जानते हो तो बतलाओ।" तब कुमारने कहा,—"हे प्रिये! क्या तुम्हें उसकी ख़बर नहीं है ?" उसने कहा,—"मैं उस गहनेके खो जानेकी बात तो जानती हूँ; पर वह कहाँ

गिरा, यह मुझे याद नहीं है।" तब कुमारने कहा,—"मुझसे एक दूसरे आदमीने कहा, कि तुम्हारी पत्नी कहीं दूर गई हुई थी, वहीं उसका एक नूपुर गिर गया है। जब उसने मुझसे ऐसा कहा, तब मैंने उस आदमी-से ज़बरदस्ती वह नूपुर छीन लिया, जिसने उसे ले रखा था।" यह सुन, कनकवतीने अपने मनमें विचार किया,—"अवश्य ही किसी-न-किसी तरकीबसे मेरे पति मेरा सारा हाल जान गये हैं क्योंकि—

'चौरमद्र कला चान्द्री, चौरेण क्रीडितानि च।
प्रकटानि तृतीयेऽह्नि, स्फुरन्ति छन्नानि च॥ १॥'

*अर्थात्- 'गुप्त रीतिसे किया हुआ चौरकर्म, चन्द्रमाकी कला, चोरी, क्रीड़ा और गुप्त—ये सब तीसरे दिन प्रकट हो जाते हैं।'*

यही सोचकर उसने फिर कहा,—"स्वामी! मेरा वह नूपुर कहाँ है?" यह सुन, कुमारके आदेशसे उनके मित्रने वह नूपुर उसे दे दिया। उसे लेकर उसने फिर कहा,—"प्यारे! सच कहना, यह नूपुर तुम्हें कहाँ मिला?" कुमारने कहा,—"तुमने इसे कहाँ गिराया था?" उसने पूछा,—"यह जहाँ गिरा था, वह स्थान तुमने देखा है या नहीं?" यह सुन, कुमारने कुछ उटपटाङ्ग जवाब दे दिया। तब वह बोली,—"हे स्वामी! यदि वह स्थान तुमने देखा है, तब तो ठीक है, नहीं तो अग्निमें प्रवेश करने पर भी मेरी शुद्धि होनेकी नहीं।" यह कह, कनकवती बायीं हथेली पर गरदन रख, चिन्तातुर होकर क्षणभर नीचा सिर किये रही। इसके बाद तरह-तरहकी हँसीकी बातें कर, उसे खुश करते हुए कुमार अपने घर गये। फिर रातके समय कुमार वहीं उसी प्रकार आ पहुँचे। उस समय उसकी सखीने उससे कहा,—"स्वामिनि! वहाँ जानेका समय तो हो गया, चलिये, नहीं तो देर होनेसे वह विद्याधर क्रोधित हो जायेगा।"

यह सुन, उसने लम्बी साँस लेकर कहा,—"सखी! अब मामला बड़ा गड़बड़ हो गया है। अब मैं अभागिनी क्या करूँ? बचपनमें ही, जब मैं अपने पिताके घर थी, तभी उस विद्याधरने मुझे सौगन्ध देकर कहा था, कि जबतक मैं आज्ञा न दूँ, तबतक तुम अपने पतिको सेवा

न करना और प्रतिदिन रातके समय विमानमें बैठकर मेरे पास आया करना। उसके ऐसा कहने पर भी, मैंने माँ-बापके आग्रह और कुमारके अनुरागमें पड़कर इनके साथ शादी कर ली। यह मुझे प्यारे हैं और मैं इनकी प्यारी हूँ, इसमें शक नहीं ; पर ये किसी-न-किसी तरहसे मेरा वहाँपर जाना जान गये हैं और शायद उन्होंने उस विद्याधरको भी आँखों देख लिया है। अतएव अब मेरे मनमें यह शङ्का हो रही है, कि या तो वह विद्याधर मेरे प्राणवल्लभकी जान ले लेगा या मुझे मार डालेगा। सखी! इसीलिये मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गयी हूँ। उसपर मेरी यह युवावस्था तो और भी आफ़तका परकाला हो गयी है। मेरा पितृकुल और श्वसुरकुल, दोनों ही उत्तम और प्रसिद्ध हैं। इधर दुनियामें हर तरहकी प्रकृतिवाले लोग हैं, जो अवाही-तवाही बका ही करते हैं। इन्हीं सब बातोंको सोच-सोच कर मैं व्याकुल हुई जाती हूँ।" उसकी यह बातें सुन, उसकी सखीने कहा,—"सखी! आज तो तुम यहीं रह जाओ— मै अकेली जाकर उससे कहूँगी, कि मेरी सखी की तबियत आज अच्छी नहीं है।" यह सुन, कनकवतीने कहा,—"हे शुभचित्तवाली! ऐसाही करो।" यह कह, कनकवतीने विमानको रचना कर, उसे दे दिया। वह ज्योंही विमान पर चढ़कर चली, त्योंही गुणधर्मकुमार भी उसके साथ हो लिये। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया,—"रहो, मैं आज ही उस विद्याधरकी सारी चौकड़ी भुलाये देता हूँ और जीव-लोकमें रहनेवाली स्त्रियोंके नाचोंका शौक़ मिटाये देता हूँ।"

क्रमशः वह विमान वनमें पहुँचा। खेचरोंने श्रीजिनेश्वरकी स्नात्र पूजा प्रारम्भ कर दी थी। इतनेमें दासी विमानपर चढ़ी हुई पहुँची और नीचे उतरकर जिनालयमें आयी। कुमार भी छिपे-छिपे सब कुछ देखने लगे। इतनेमें एक खेचरने उस दासीसे पूछा,—"आज आनेमें देर क्यों हुई और तुम्हारी स्वामिनी कहाँ रह गयी?" उसने पहलेसे ही सोचा हुआ उत्तर दिया, कि अमुक कारणसे मेरी स्वामिनीने आज मुझे ही यहाँ भेजा है। यह सुनते ही खेचरोंके स्वामीने क्रोधके साथ कहा,—

"खेचरो! तुम लोग श्रीऋषभस्वामीको स्नान कराओ। मैं इस पापिन-की पूरी-पूरी ख़बर लेता हूँ।" यह कह, उसने उस दासीके केश पकड़ लिये और इधर कुमारने भी (अदृश्य रूपमें ही) कमर कसकर नङ्गी तल-वार निकाली। उसी समय नाटकका रंग-भंग हो गया। विद्याधरने कहा,—"दासी! मैं पहले तेरे ही ख़ूनसे अपने क्रोधकी आग ठढी करूँगा। इसके बाद जो उचित मालूम पड़ेगा, वह करूंगा। इसलिये मौतकी घड़ी पहुँची जानकर तू अपने इष्ट देवको याद कर ले और जिसकी शरण लेनी चाहे, ले ले।" यह सुन, वह बोली,—"तीनों जगत्‌के पूज्य देवा-धिदेव श्रीजिनेश्वर मेरे इष्टदेवता हैं। मैं उन्हींको याद करती हूँ और हे विद्याधरेन्द्र! इस वनमें तो मृत्युही मेरी शरण है; क्योंकि यहाँ मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। तो भी मैं कहती हूँ, कि जो शूर-वीरोंमें शिरोमणि हैं, जो महाउदार और शत्रु-गज-केशरी हैं, वे ही धीर गुणध-र्मकुमार नामक आर्यपुत्र मेरी शरण हैं।" यह सुन, खेचरेन्द्रने कहा,—"अरे! तेरा वह आर्यपुत्र कौन है?" उसका यह प्रश्न सुन, कुमारने अपने मनमें सोचा,—"विद्याधरका यह प्रश्न तो बहुत ही ठीक है; क्योंकि मेरे मनमें भी बड़ी शङ्का हो रही है।" तब उस दासीने कहा,—"सब राजाओंके सामने जिनको मेरी स्वामिनीने स्वयंवरमें वरण किया है और जिनकी मार खाकर तू पापी क्षणभर भी खड़ा नहीं रह सकता, उन्हीं गुणधर्मकुमारकी मैं शरणमें हूँ।" उसकी यह बात सुन, अत्यन्त क्रोधान्ध होकर, वह विद्याधर ज्योंही तलवार उठाकर उसे मारनेको तैयार हुआ, त्योंही कुमार नगी तलवार लिये प्रकट होकर बोले,—"रे दुष्ट! सुन ले। जो पापी, विश्वासी, व्याकुल, दीन, बाल, वृद्ध और स्त्रीपर हाथ उठाता है, वह अवश्यही दुर्गतिको प्राप्त होता है। इसीलिये हे दुष्ट! तुझ स्त्री-हत्याके लिये तैयार हुए पापीको दण्ड देनेके ही लिये, मैं तेरा गुरु यहाँ आ पहुँचा हूँ।" यह सुन, उस विद्याधरने हँसकर कहा,—"मैं तुझे वहाँ जाकर मारता, इससे तो यही अच्छा हुआ, कि तू यहीं मरनेके लिये चला आया।"

इसके बाद ही दोनोंमें भयङ्कर युद्ध होने लगा। अन्तमें बलशाली कुमारने मौका पाकर उस विद्याधरका सिर काट डाला और उसकी सारी सेना डर गयी। सबको गुणधर्मकुमारने मीठे वचनोंसे शान्तकर ढाढ़स दिया। इसी समय अन्य तीनों युवतियोंने कहा,—"हे स्वामी! आज आपने हम लोगोंको इस दुष्ट खेचरके फन्देसे छुड़ा दिया!" यह सुन, कुमारने पूछा,—"तुम लोग किस-किसकी लड़कियाँ हो?" उनमेंसे एकने कहा,—"शङ्खपुर नामक नगरमें दुर्लभराज नामके एक राजा हैं। मैं उन्हींकी पुत्री हूँ, मेरा नाम कमलावती है। इसीके भयके मारे मैंने आजतक विवाह करना भी नहीं स्वीकार किया।" कुमारने पूछा,—"तुम्हारा भय कैसा था? प्रेमका या क्रोधका?" वह बोली,—"क्रोधका ही भय था। प्रेमका भला कैसे होता? क्योंकि एक दिन मैं अपने मकानकी खिड़कीपर बैठी हुई थी, वहींसे यह दुष्ट मुझे हर ले गया। जब यह मेरी जिह्वा काट लेनेको तैयार हुआ, तब इसने मुझे इस बातको मान लेनेको मज़बूर किया, कि मैं इसकी आज्ञाके बिना विवाह न करूँगी और हर रोज़ रातको इसके पास आया करूँगी। तब इसने कहा, कि तेरी सवारीके लिये मेरी आज्ञासे निरन्तर विमान तैयार हो जाया करेगा। यदि यह बात तुझे स्वीकार हो, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा और तेरी जान नहीं लूँगा। उसकी यह बात सुन, मैंने प्राणोंके मोहसे इसकी बात स्वीकार कर ली और सौगन्ध खायी। इसके बाद इसने मुझे नाचना सिखलाया। इसी तरह इसने और भी तीन राजकुमारियोंको वशमें किया है; पर आज इसे मारकर आपने हम सभीको सुखी कर दिया।" यह सुन, कुमारने उन सबको उनके घर पहुँचा दिया। इसके बाद कुमार उस दासीके साथ विमानपर बैठे हुए अपनी प्रियाके घर आये। उसी समय कनकवती कुमारको देखकर दासीसे पूछ बैठी,—"हे सखी! मेरे प्राणवल्लभने क्या उस दुष्ट विद्याधरको मार डाला?" इसके जवाबमें उस दासीने उससे सारा हाल कह सुनाया। कनकवती अपने स्वामीकी बढ़ी-चढ़ी हुई वीरता-

का हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद गुणवर्मकुमार बड़ी देर तक अपनी स्त्रीसे बातें करते रहे और सारी रात वहीं सोये।

इसी समय उस विद्याधरके छोटे भाईने क्रोधमें आकर नींदमें पड़े हुए गुणवर्मकुमारको उठा ले जाकर गम्भीर समुद्रमें डाल दिया और उसकी स्त्रीको एक पर्वतपर ले जाकर छोड़ दिया। दैवयोगसे कुमारको एक लकड़ीका तख़्ता हाथ लग गया, जिसके सहारे वे सात रात बाद समुद्रके किनारे जा पहुँचे। वहाँ उनकी एक तपस्वीसे मुलाक़ात हुई। उसीके साथ-साथ वे उस तापसीके आश्रममें चले आये। वहीं उन्होंने अपनी स्त्री कनकवतीको भी देखा। कुमार कुलपतिको प्रणाम कर उसके पास बैठ गये। तब कुलपतिने पूछा,—"हे भद्र! क्या यह स्त्री तुम्हारी पत्नी है?" कुमारने कहा,—"हाँ।" उस तापसने कहा,—"परसों मैं जंगलमें गया हुआ था। वहाँ मैंने इस बालाको तुम्हारे वियोगसे व्याकुल हो, पेड़से लटककर जान देनेको तैयार देखा। उसी समय मैंने इसका पाश छिन्न कर बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे इसकी जान बचायी। इसके बाद मैंने अपने ज्ञानसे तुम्हारे आनेका हाल जान लिया और इसे समझा-बुझाकर सन्तुष्ट किया।" जब कुलपतिने ऐसा कहा, तब कुमार अपनी स्त्रीसे मिले। इसके बाद वे दोनों स्त्री पुरुष, केले आदिके फल खाकर रातके समय उसी निर्जन लतावनमें सो रहे। इसी समय उस खेचरने फिर उन दोनोंको वहाँसे उठा ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया। इस बार भी पूर्व-कर्मोंके प्रभावसे दोनोंको एक तख़्ता हाथ लग गया, जिसके सहारे वे किनारे पहुँचे और फिर उसी स्थानपर आ गये। उस समय कुमारने कहा,—"ओह! विधि-विडम्बना किसीसे जानी नहीं जाती। कहा है, कि—

'स्त्रीचरित्रं प्रेमगतिं, मेघोत्थानं नरेन्द्रचित्तं च।
विषमविधिविलसितानि च, को वा शक्नोति विज्ञातुम्॥ १॥'

अर्थात्—'स्त्रीका चरित्र, प्रेमकी गति, मेघकी उत्पत्ति, राजाका

*मन, और वाम विधाताका विलास भला कौन जान सकता है ; अर्थात् कोई नहीं जान सकता ।'*

"सच है, विधि-विलास ऐसा ही हुआ करता है। अथवा, विषयमें आसक्त चित्तवालोंको विपद् प्राप्त होना भी कुछ दुर्लभ नहीं है ।" इसके बाद उन्होंने फिर विचार किया,—"हाँ, उत्तम प्रभाववाले जीव इसी तरह वैराग्य प्राप्त कर, सब परिग्रह छोड़ कर, ममता-रहित होकर निर्मल तपस्या करते हैं ।" गुणधर्मकुमार ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें कनकवतीने कहा,—"स्वामी! आप इतने पराक्रमी होकर भी क्यों खेद करते हैं ? आज तक आप नीरोग रहते चले आये और आपके किसी अंगमें कोई विकार नहीं है। कहा है, कि——

'दीनोद्धारो न विदधे, नैकच्छत्रा कृता मही ।
विषया नोपभुक्ताश्च, प्रकामं खिद्यतेऽथ किम् ? ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'दीनोंका उद्धार नहीं किया, पृथ्वीका एकछत्र राज्य नहीं किया, विषयोंको नहीं भोगा, तो फिर अब इनके लिये अफ़सोस क्या करना !'*

वे दोनों ऐसी-ही-ऐसी बातें कर रहे थे, कि इतनेमें रात हो आयी; परन्तु कुमार, अपनी स्त्रीकी बातें सुन, अपने चित्तमें वैराग्यकी भावना कर रहे थे, इसीलिये उन्हें नींद नहीं आयी । इसी समय वह खेचर फिर वहाँ आ पहुँचा । कुमारने उसे हरा कर जीता ही छोड़ दिया । इसके बाद प्रातः काल होने पर कुमार, कुलपतिको प्रणाम कर, एक नगरमें चले गये । वहाँ बाहरकी तरफ़ एक उद्यानमें गुणरत्न महोदधि नामक सूरिको देखकर कुमारने प्रियाके सहित उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया । इसके बाद उनकी मोहरूपिणी निद्राका नाश करनेवाली धर्मदेशना सुन, सूरिको प्रणाम कर, एकान्तमें आकर वैराग्यमें तत्पर कुमारने अपनी प्रियासे कहा,—"प्रिये ! अब हमें इन्हीं गुरुजीसे दीक्षा ले लेनी चाहिये ।" यह सुन, विषयोंसे विरक्त नहीं हो चुकनेवाली

कनकवती बोली,— "स्वामी! अभी हमारी नयी जवानीकी उमर है। अभी व्रत किस लिये लेते हैं? यह सुन, कुमारने कहा,— "कितनेही मनुष्योंको तो बुढ़ापे तक विषयोंकी अभिलाषा बनी रहती है और कोई जवानीमें ही वैराग्य प्राप्त कर लेता है।" इसपर उसने कहा,— "हे स्वामी! इन परम ज्ञानी मुनिवरसे पूछकर पहले अपने मरणकी बात मालूम कर लीजिये। इसके बाद जैसा उचित जँचे, वैसा कीजियेगा।" यह सुन, कुमारने उसकी बात स्वीकार कर ली।

इसके बाद कुमार कुछ खाने-पीनेकी सामग्री लानेके लिये नगरमें गये और कनकवती अकेलीही वनमें रह गयी। इतनेमे गुणपुत्र नामक एक राजकुमार वहाँ आया। उसने उस वनमें अकेली पड़ी हुई उस युवती कनकवतीको देख, अनुरक्त होकर कहा,— "हे भद्रे! तुम कौन हो? और इस वनमें अकेली क्यों पड़ी हुई हो? क्या तुम्हारे पति तुम्हारे साथ नहीं हैं?" यह सुनकर, उसने उसके हृदयका अनुराग ताड़ लिया और अपने पतिको संसारसे विरक्त हुआ जान, उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह भी मन ही-मन उसपर अनुराग करने लगी। जब गुणचन्द्रने अपने जीकी बात उससे कही, तब वह बोली,—"हे स्वामी! मैं किसी उपायसे अपने स्वामीको मारकर तुम्हारे घर चली आऊँगी।" यह सुन; वह राजकुमार अपने घर चला गया।

इधर गुणधर्मकुमारने नगरमें जा, जुएमें थोड़ा बहुत धन जीत, उसीसे आटा वगैरह खरीदा और भोजन बनाकर प्रियाके साथ खाया। इसके बाद कुछ विचार करती और पृथ्वीपर चिह्न खैंचती हुई कनकवतीको देखकर कुमारने उसकी चाल-ढालसे मालूम कर लिया, कि इसके मनमें किसी पराये पुरुषकी इच्छा उत्पन्न हुई है। यही सोचकर वे वहाँसे उठ खड़े हुए और संभ्रान्तचित्तसे वनमें घूमने लगे। इतनेमें किसीने आकर उनसे पूछा,— "हे भाई! क्या अबतक राजपुत्र वनमें ही हैं?" गुणधर्मने पूछा,—"कौनसा राजपुत्र?" उसने कहा,—"गुणचन्द्र नामक राजकुमार यहाँ आकर एक नौजवान स्त्रीसे बातें करनेमें

लगे हुए थे, मैं उन्हींकी आज्ञासे दूर चला गया था, इसीलिये लौटकर उन्हें ढूँढ़ रहा हूँ। हे भद्र! मैं तुमसे पूछता हूँ, कि क्या वह स्त्री उनके साथही उनके घर चली गयी?" यह सुन, कुमारने कहा,—'वह तो न जाने कहाँ चली गयी।" यही जवाब दे, उस आदमीको विदाकर, उन्होंने अपने मनमें सोचा,— "निर्लज्ज स्त्रियाँ उपकार या सरलताके लिहाज़से वशमें नहीं आतीं। इनको कुल, शील और मर्यादाका कुछ ख़-याल नहीं होता। जहाँ तक इन्हें एकान्त नहीं मिलता, समय नहीं मिलता अथवा चाहनेवाला पुरुष नहीं मिलता, वहीं तक ये सती बनी रहती हैं। नारदकी यह बात बहुत ही ठीक है।" यही सोचकर उन्होंने पा-सके ही एक नगरमें उसे उसके मामाके घर रख छोड़ा और उन्हीं मुनी-न्द्रसे आकर दीक्षा ले, उग्र तपस्या कर, आयुष्य पूर्ण होनेपर मृत्युको प्राप्त हो, देवलोकमें जा देव हुए तथा वहाँसे च्युत होकर मनुष्यजन्म पाकर वे मोक्षपदको प्राप्त करेंगे।

इधर कनकवती मामाके घरसे निकल कर गुणचन्द्र कुमारके घर चलीगयी और उसकी प्यारी बनकर रहने लगी। वहाँ उसकी सौतोंने उसे ज़हर दे दिया, जिससे वह रौद्र ध्यानमें मरी और चौथे नरकमें चली गयी। उस नरकसे निकल कर वह चिरकाल तक भव-भ्रमण करती फिरेगी।

गुप्तधर्म—कनकवती-कथा समाप्त।

भगवान्ने कहा,— "हे राजा! इसी तरह विषय नामक प्रमाद जीवोंको महा दुःख दिया करता है। फिर हे राजन्! कषायरूपी प्रमादके विषयमें नागदत्तकी कथा प्रसिद्ध है। वह श्रीमहावीर जिनेश्वरके तीर्थमें होनेवाला है; पर मैं तुमसे उसकी कथा कहता हूँ। सुनो,—

## नागदत्तकी कथा
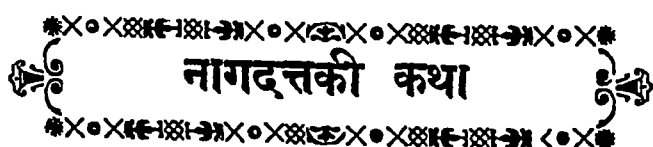
इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें ही वसन्तपुर नामका एक बड़ा भारी नगर है। किसी समय उसमें समुद्रदत्त और वसुदत्त नामके दो बड़े

भारी सौदागर रहते थे । वे दोनों ही शान्त, सुन्दर शीलवान्, अल्प कषायवान्, सरलचित्त और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे । उनका एकही साथ कारबार चलता था । एक जो काम करता दूसरा भी वही काम करने लगता । उनका ऐसाही निश्चय था । एक दिन वे दोनों एक उद्यानमें गये । वहाँ सभामें बैठे हुए वज्रगुप्त नामक मुनिको धर्मदेशना देते देख, उन दोनोंने उन्हें शुद्ध भावसे प्रणाम किया और उनके पास बैठ, धर्म-कथा श्रवण कर, साधु-धर्मका प्रतिपालन कर, आयुके अंतमें संलेखना द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, स्वर्ग चले गये । वहाँ भी उन दोनों देवोंमें परस्पर ऐसी ही प्रीति बनी रही । एक दिन स्वर्गमें रहतेही समय उन्होंने निश्चय किया, कि हम दोनोंमेंसे जो पहले स्वर्गसे नीचे आयेगा, उसे स्वर्गमें रहनेवाला दूसरा मित्र धर्ममें स्थापित करेगा । ”

तदनन्तर कुछ समय बाद समुद्रदत्तका जीव स्वर्गसे च्युत हो भरतक्षेत्रके धरा-निवास नामक नगरके सागरदत्त नामक व्यवहारीके घर, उसकी भार्या धनदत्ताकी कोखमें नागकुमार देवताके वरदानसे, पुत्र-रूपमें अवतार ग्रहण किया । समय आनेपर माताने उसे प्रसव किया । मा-बापने उसका नाम नागदत्त रखा । क्रमसे समय पाकर वह बहत्तर कलाओंमें निपुण हुआ और गन्धर्व-कलामें विशेष अनुराग रखने लगा । इसीलिये वह संसारमें गन्धर्व नागदत्तके नामसे विख्यात हो गया । एक दिन वह वीणा बजानेमें चतुर और गारुडी विद्यामें निपुण पुरुष मित्रोंके साथ नगरके उद्यानमें क्रीडा करने गया । इतनेमें स्वर्गमें रहनेवाले वसुदत्तके जीवने उसे धर्मकी ओरसे ग़ाफ़िल देखकर पूर्वभवमें निश्चय किये हुए सङ्कल्पके अनुसार उसे तरह-तरहसे प्रति-बोध दिया, परन्तु जब उसे किसी तरह बोध न हुआ, तब उसने अपने मनमें विचार किया,—“यह बड़ी मौजमें है—पूरी तरह सुखी है । ” इसलिये जब तक यह प्राण-संशयकारी सङ्कटमें नहीं पड़ेगा, तबतक धर्ममें प्रवृत्ति नहीं होगा । ” ऐसा विचार कर, वह देव, मुखवस्त्रिका

और रजोहरण लिये हुए मुनिका रूप बनाये, हाथमें साँपकी पिटारी धारण किये, वहीं आ पहुँचा, जहाँ नागदत्त क्रीड़ा कर रहा था। उसी समय पासके ही रास्तेसे उसे जाते देख, नागदत्तने पूछा,—"हे गारुडिक! तुम्हारी इस पिटारीमें क्या है?" उसने कहा,—"साँप है।" नागदत्तने कहा,—"तुम अपने साँपोंको बाहर निकालो। मैं तुम्हारे सर्पोंके साथ क्रीड़ा करूँगा और तुम मेरे सर्पोंके साथ क्रीड़ा करो।" इसके उत्तरमें उस व्रतधारीने कहा,—"हे भद्र! तुम मेरे सर्पोंके साथ क्रीडा करनेकी बात भी न करो; क्योंकि मेरे सर्पोंको देवता भी नहीं छू सकते। फिर तुम मूर्ख बालक होकर मन्त्र वा औषधिको जाने बिना ही मेरे सर्पोंके साथ किस प्रकार क्रीड़ा करोगे?" यह सुन, नागदत्तने कहा,—"तुम देखो तो सही, कि मैं किस तरह तुम्हारे सर्पोंको ग्रहण करता हूँ। पर पहले तुम मेरे इन सर्पोंको तो ग्रहण करो।" यह सुन उसने कहा,—'अच्छा, अपने साँपोंको छोड़ो।" नागदत्तने अपने साँपोंको छोड़ दिया; पर वे उसके शरीर पर नहीं चढ़े और एकाध बार चढ़-कर डँसा भी तो देवशक्तिके कारण उसके शरीरमें डंक नहीं व्याप सका। यह देख, नागदत्तने डाहके मारे कहा,—"हे गारुड़िक! अब देर न करो; तुम्हारे पास भी जितने सर्प हो, उन्हें छोड दो।" इसपर देवताने कहा,—"तुम पहले अपने सब स्वजनोंको इकट्ठा कर लो और राजाको साक्षी-रूपमें यहाँ बुलाओ, तो मैं अपने साँपोंको छोड़ूँगा। नहीं तो नहीं?" नागदत्तने ऐसा ही किया। तब व्रतधारी गारुड़िकने ऊँचे स्वरसे कहा,—"हे भाइयो! सावधान होकर मेरी बातें सुनो। यह नागदत्त गन्धर्व मेरे सर्पोंके साथ क्रीड़ा करना चाहता है। इस-लिये यदि मेरे ये विषधर इसे डँस देंगे, तो आपलोग मुझे दोष न देंगे।" यह सुनकर नागदत्तको उसके स्वजनोने मना किया; तो भी उसने नही माना। इसी समय गारुड़िकने अपनी पिटारीमेंसे चार सर्प निकाल कर चारों दिशाओंमें छोड़ दिये और कहा,—मेरे ये सर्प बड़े क्रूर हैं। इन सर्पोंके स्वरूप मैं तुमसे वर्णन किये देता हूँ सुनो,—"

'आरक्तनयन क्रूरो, द्विजिह्वो विषपूरित।
क्रोधाभिधान पूर्वस्या-मात्रिमोऽयं सरीसृप. ॥२॥

अयमष्टफणाटोप-भीषण स्तब्धवर्ष्मक।
याम्यायां यमसकाशो, मानो नाम महोरगः ॥२॥

वञ्चनाकुशला वक्रगमना पश्चिमश्रिता।
इयं मायाह्वया नागी, धर्तुं केनेह शक्यते ॥३॥

अयं हि त्रिशि कौबेर्या, लोभो नाम भुजगम.।
समुद्र इव दुष्पूरो, दष्टो येन भवेन्नरः ॥४॥'

*अर्थात्—"पूर्व दिशामें रहनेवाला यह पहला सर्प क्रोध नामका है। इसकी आँखें लाल रंगकी हैं और स्वभावका बड़ाही क्रूर है। इसके दो जिह्वाएँ हैं और विषसे भरा हुआ है। दक्षिण दिशामें रहनेवाला यह मान नामका दूसरा सर्प, अपने आठ फनोंके आटोपसे बड़ा भयंकर दिखता है. इसका शरीर स्तब्ध है और यमराजकी तरह महा भयानक है। पश्चिम दिशामें रहनेवाली यह माया नामकी नागिन है, जो छल करनेमें चतुर और टेढी चाल चलनेवाली है। इसे भला कौन पकड़ सकता है? और यह उत्तर दिशावाला साँप लोभ नामका है जिस मनुष्यको यह डँस देता है, वह समुद्रकी तरह दुष्पुर हो जाता है।*

जो प्राणि इन चार सर्पोंसे डँसा जायेगा, वह अवश्य ही नीचे गिर पड़ेगा—उसे कहीं कोई आलम्बन नहीं मिलेगा।"

यह सुन, गन्धर्व नागदत्तने कहा,—"हे गारुडिक! इतनी बातोंका बतक्कड़ किस लिये करते हो? तुम जल्दी ही उन सर्पोंको मेरी ओर छोड़ो।" यह सुनते ही उसने अपने साँप छोड़ दिये। उन चारोंने एकही साथ उस सौदागरके बेटेको काट खाया, जिससे वह उसी क्षण गिरकर बेहोश हो गया। उस समय उसके मित्रोंने मणि और मन्त्र आदिके अनेक बार प्रयोग किये, पर उसे जरा भी होश नहीं हुआ। तब उसके मित्रोंने गारुडिकसे कहा,—"हे भद्र! इसे किसी तरह

जिला दो। तब उसने कहा,—"यदि यह जीवन भर दुष्कर क्रिया करे, तो यह जी जायेगा। मुझे भी पहले इन साँपोंने डँसा था। मैने इनका विष दूर करनेके लिये निरन्तर जैसी क्रियाएँ की हैं, वह सुनो-मैं सदा सिर और दाढ़ी-मूँछके बाल नोंच देता हूँ, प्रमाणयुक्त श्वेत वस्त्र पहनता हूँ, उपवासादिक विविध प्रकारकी तपस्याएँ करता हूँ, इन तपस्याओंके पारणाके समय भी रूखा-सूखा भोजन करता हूँ, कभी कण्ठ पर्यन्त भोजन नहीं करता और उबाला हुआ पानी पीता हूँ। भाइयो! यदि मैं ऐसा न करूँ, तो इनका विष फिर मेरी देहमें व्याप जाये। साथही मैं कभी वनमें रहता हूँ, कभी पर्वत पर रहता हूँ और कभी सूने घर या स्मशानमें ही रहता हूँ। इसी तरह राग-द्वेष रहित सम्यक् प्रकारसे अनेक परिषहोंका सहन करता हूँ। ऐसा ही करनेसे मेरे विष नहीं चढ़ने पाता। और जो कोई अल्प आहार करता है, अल्प निद्रा लेता है और अल्प वचन बोलता है, उसके वशमें ही ये सर्प हो जाते हैं। यही नहीं, देवता भी उसके अधीन हो रहते हैं। इसलिये भाइयो! अधिक कहनेसे क्या लाभ। यदि यह मेरे कहे मुताबिक रहे, तो जियेगा, नहीं तो अवश्य ही मर जायेगा।" यह सुन सब मनुष्योंने कहा,—"हे गारुडिक! यह भी ऐसा ही करेगा। तुम कुछ ऐसा उपाय कर दो, जिससे विश्वास उत्पन्न हो।" उनकी ऐसी बात सुन, उस गारुड़िकने एक बड़ा भारी मण्डल खींचा और सब सिद्धोंको प्रणाम कर, सारी महाविद्याओंको नमस्कार कर, इस प्रकारकी पवित्र विद्याका उच्चारण किया,—'सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन और सर्व परिग्रहको तुम जीते जी सर्वथा त्याग करो।" इसी दण्डकको तीन बार कहनेके बाद उसने अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण किया, इससे वह श्रेष्ठीपुत्र तुरत होशमें आकर उठ बैठा। उसकी विद्याके प्रभावसे जब वह नींद्से जगे हुएकी तरह उठकर खड़ा हुआ, तब उसके स्वजनोंने गारुड़िककी कही हुई सब बातें बतला दीं; पर नागदत्तने उस तरहकी क्रियाएं

करनेसे इनकार किया और घरकी तरफ चल पड़ा। रास्तेमें आते-आते वह फिर बेहोश होकर गिर पड़ा। इस बार भी उसके स्वजनोंकी प्रार्थना सुनकर गारुड़िकने उसकी बेहोशी दूर कर दी। इसी तरह तीसरी बार भी वह बेहोश हुआ और फिर होशमें लाया गया। अंतमें उसे दृढ़ निश्चय हो गया और गन्धर्व नागदत्तने उसकी बात मान ली। इसके बाद वह देव उसे जङ्गलमें ले गया और अपना देव-रूप दिखा, उसे पूर्व भवका स्वरूप बतलाया, जिससे नागदत्तको जाति-स्मरण हो आया। वह पूर्व भवका स्मरण कर प्रत्येकबुद्ध मुनि हो गया। इसके बाद देवने उसे प्रणाम कर अपने स्थानकी यात्रा की। इसके अनन्तर वह मुनि, चार कषाय-रूपी-सर्पोंको शरीर-रूपी पिटारीमें बन्दकर, उन्हें बाहर आनेसे रोकने लगा। इस प्रकार मुनि नागदत्त कषायोंको जीत, समग्र कर्मोंका क्षय कर, कितनेही कालके अनन्तर केवल-ज्ञान प्राप्तकर, मोक्षको प्राप्त हुआ।

इति गन्धर्व—नागदत्त-कथा समाप्त।

शान्तिनाथ परमात्माने कहा,—"इसी प्रकार विवेकी जनोंको चाहिये, कि पाँचों प्रकारके प्रमाद* त्याग दें तथा चारों प्रकारके धर्म ‡ को अङ्गीकार करें। यह धर्म साधु और श्रावकके भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें क्षान्ति इत्यादि दस प्रकारके यतिधर्म कहे जाते हैं और श्रावक-धर्म बारह तरहके हैं। दोनों ही प्रकारके धर्मोंमें पहले समकित माना गया है। यह समकित दो तरहका, तीन प्रकारका, चार प्रकारका, पाँच प्रकारका और दस प्रकारका कहा जाता है। इसे सिद्धान्तके अनुसार जानना। और पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—ये बारह प्रकारके श्रावकधर्म अनन्त जिनेश्वरोंने बतलाये हैं। इनमें प्रथम स्थूल प्राणातिपात नामक पहले अणुव्रतकी कथा इस प्रकार है—

---

* मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा।

‡ ज्ञान, शील, तप और भाव।

## यमपाश-मातङ्गकी कथा

किसी नगरमें यमपाश नामका एक तलारक्षक रहता था। वह जातिका चाण्डाल था; परन्तु कर्मसे चाण्डाल नहीं था। उसी नगरमें दयादि गुणोंसे युक्त नलदाम नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था। उसीके गर्भसे उत्पन्न मम्मण नामका एक पुत्र भी उसके था। एक दिन उस नगरके राजाके यहाँ कोई व्यापारी एक बड़ा ही अच्छा घोड़ा ले आया। उसकी परीक्षा करनेके लिये ज्योंही राजा उसपर सवार हुए, त्योंही राजाका कोई शत्रु देव उस घोड़े पर सवारी कर बैठा, जिससे वह घोड़ा आकाशमें उड़ गया और बड़े वेगसे दौड़ता हुआ बड़ी दूर एक वनमें चला गया। वहाँ अकेला पाकर, उस निर्जन वनको देख, भयभीत हो, राजाने उस घोड़ेको छोड़ दिया। वह घोड़ा वहीका वहीं गिर कर ढेर हो गया। इसी समय एक मृगराजाके पास आ पहुँचा। राजाको देख, जाति स्मरण द्वारा अपने पूर्व भवका हाल जानकर उस मृगने पृथ्वी पर लिख कर राजाको सूचित किया, कि—"हे राजन्! मैं पूर्व भवमें आपका देवल नामका वस्त्राभूषणोंकी रक्षा करनेवाला सेवक था। मरते समय आर्त्तध्यान द्वारा मरण प्राप्त करनेके कारण ही मैं तिर्यंच योनिमें मृग हुआ हूँ।" इस प्रकार अपना हाल सुनाकर उसने प्यासे राजाके आगे-आगे चलकर उन्हें एक जलाशय दिखलाया। वहाँ पहुँचकर राजाने जलपान किया, मुँह धोया और स्वस्थ हुए, इतनेमें राजाकी सेना भी आ पहुँची। राजा अपने जीवनदाता मृगको साथ लिये हुए अपने नगरमें आये। वहाँ वह मृग राजप्रासादसे लेकर नगरके चौक आदि स्थानोंमें स्वच्छन्द भावसे विचरण करने लगा। उसे कोई बातोंसे भी दुखी नहीं करता था। कदाचित् वह किसीका कुछ नुकसान

भी कर देता, तो भी उसे कोई राजाके डरके मारे कडी घातें भी नहीं कहता था।

एक दिन मम्मण बाजारमें आकर घूमने लगा। इतनेमें पूर्व भवके वैरके कारण मम्मण उस मृग पर बेतरह नाराज़ हुआ। उसने अपने बापसे आकर कहा,—"पिताजी! आप इस मृगको मार डालिये—इसने मेरा बडा नुक़सान किया है।" यह सुन, उसके पिताने कहा,—"हे पुत्र! वणकोंके कुलका यह आचार है, कि किसी जीवकी हिंसा न करे। तिसपर यह मृग तो राजाको बड़ा ही प्यारा है, इसलिये इसे तो तुम्हें हरगिज़ नहीं मारना चाहिये। ऐसा कहकर उसके पिताने उसे रोका। तो भी उसने एक दिन मौक़ा पाकर क्रोधके वश होकर उसे मार ही डाला। मम्मणको यह पाप करते हुए उसके बापने भी देखा और दुर खड़े तलारक्षकने भी देख लिया। तलारक्षकने जाकर यह हाल राजाको कह सुनाया, राजाने उससे पूछा,—"हे यमदण्ड! तुम्हारा इस मामलेमें कोई गवाह भी है?" उसने कहा,—उसीका बाप मेरा गवाह है।" यह सुन, राजाने सेठको बुलाकर पूछा, उसने सच-सच बयान कर दिया। उसकी इस सच्चाईको देखकर राजाने उसकी बडी ख़ातिर की। इसके बाद राजाने यमपाशको आज्ञा दी, कि मम्मणको मार डालो। तब यमपाशने राजासे कहा,—"हे देव! मैं जीवहिंसा नहीं करता।" यह सुन, राजाने उससे पूछा,—"हे तलारक्षक! तुम जातिके चण्डाल होकर भी क्यों जीवहिंसा नहीं करते?" इसके जवाबमें उसने कहा,—"हे राजन्! सुनो—

"हस्तिशीर्ष नामक नगरमें देवदत्त नामक एक वणिक् पुत्र रहता था। उसने एक बार श्री अनन्त नामक तीर्थङ्करसे धर्मदेशना श्रवणकर, वैराग्यको प्राप्त हो, दीक्षा ग्रहण कर ली। देवदत्त मुनिको तप करनेसे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई। कुछ दिन बाद वे गीतार्थ मुनि अकेले विहार करते हुए इस नगरीमें आये और स्मशानके पास कायोत्सर्ग करके निश्चय भावसे टिक रहे। उसी समय मेरा पुत्र अतिमुक्तक, जो उपसर्गोंकी

व्याधिसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था, घूमता-फिरता हुआ इमशानमें आया और वहाँ टिके हुए मुनिकी बड़ी भक्तिके साथ वन्दना की। उनके प्रभावसे मेरा पुत्र नीरोग हो गया। उसने घर आकर मुझसे यह हाल कहा। यह सुन, कुटुम्ब सहित रोगसे पीड़ित मैं भी वहाँ गया और मुनिको प्रणाम किया। इसके बाद मैंने श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया और जीवज्जीव पर्यन्त हिंसाका त्याग कर दिया। हे राजन्! उन मुनिवरने मुझसे अपने प्रतिबोधकी कथा कह सुनायी थी, इसलिये मैं उनका सारा हाल जानता हूँ।" यह सुन, राजाने सन्तुष्ट होकर यमपाशका सत्कार किया और उसे सारी चाण्डाल-जातिका स्वामी बना दिया। इसके बाद राजाके हुक्मसे दूसरे चाण्डालने मम्मणको क़त्ल कर डाला। यमदण्ड अपनी आयु पूरी होनेपर मरकर देवता हो गया।

प्राणातिपात-विरति-सम्बन्धिनी यमपाश-कथा समाप्त।

दूसरा मृषावादविरमण नामक व्रतहै। कन्या, गौ, और भूमिके विषयमें असत्य बोलनेसे परहेज़ रखना, किसीकी धरोहर न मार लेना या झूठी गवाही न देना यही पाँचों मृषावाद-विरमणके स्वरूप हैं। इसके विषयमें भद्रश्रेष्ठीकी कथा इस प्रकार है:—

## सत्यव्रतपर भद्रश्रेष्ठीकी कथा।
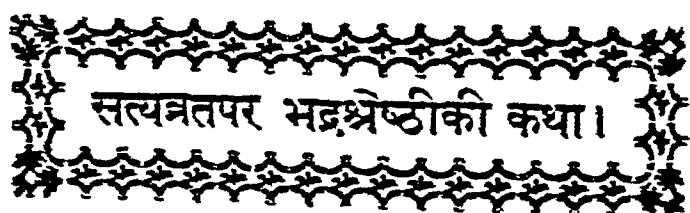
इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें क्षिति-प्रतिष्ठित नामक नगर है। उसमें सुबुद्धि और दुर्बुद्धि नामके दो निर्धन बनिये रहते थे। वे दोनों बड़ेही प्रसिद्ध और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे। एक बार वे दोनों बहुतसा किराना माल लेकर धन कमानेके लिये परदेशको चले। क्रमशः वे लोग एक बड़े ही पुराने और जीर्ण नगरमें आ पहुँचे। वहाँ वे लाभकी इच्छासे कई दिनोंतक टिके रह गये। एक दिन सुबुद्धि एक टूटे-फूटे मकानमें शौच करनेके लिये बैठा हुआ था. कि इसी समय उसे एक ख़ज़ाना

दिखाई दिया। उसे देखकर उसने दुर्बुद्धिको बुलाया। दोनोंने उस ख़ज़ानेको वहाँसे निकाला, तो उसमें एक हजार सोनेकी मुहरें मिलीं। इससे हर्षित होकर वे दोनों धन लिये हुए अपने नगरमें आये। नगरके पास पहुँचकर दुर्बुद्धिने सुबुद्धिसे कहा,—"हे मित्र! यदि हम लोग इस धनमेंसे आधा-आधा बाँट लेंगे, तो लोग हम पर तरह-तरहके सन्देह करेंगे, बात बातमें हमसे माँगा करेंगे और हमें गड़ा हुआ धन मिला है, यह सुनकर राजा भी इसे छीन ले सकता है, फिर तो हम दरिद्रके दरिद्रही बने रह जायेंगे। इसलिये यदि तुम्हारी राय हो, तो हम लोग इसमेंसे सौ-सौ मुहरें ले लें और बाक़ीका धन यहीं इसी बड़के पेड़के नीचे ज़मीनमें गाड़ दें।" यह सुन, सुबुद्धिने उसकी बात मान ली और रातके समय उस धनको वहाँ गाड़कर दोनों सवेरे ही-खुशी-खुशी अपने घर आये।

कुछ ही दिनोंमें दुर्बुद्धिने अपनी सौ मुहरें कुमार्गमें व्यय कर दीं और वह फिर ख़ज़ानेमेंसे सौ-सौ मुहरें निकाल लाया। कुछ दिन बाद दुर्बुद्धिने सोचा,—"मैं इस सुबुद्धिको धता बताकर सारा धन आपही ले लूँ, तो ठीक है।" ऐसा विचार कर, वह रातके समय वहाँ गया और सारा धन निकाल कर अपने घर ले आया। सच है, द्रव्यके लोभी मनुष्य अपने बापकोभी धोखा दे देते हैं, फिर औरोंका क्या कहना है? इसके बाद प्रात:काल दुर्बुद्धिने सुबुद्धिसे कहा,—"हे मित्र! अपने गड़े हुए धनमेंसे बाकी निकाल कर ले आना और बाँट लेना चाहिये।" सुबुद्धिने भी हामी भर दी और वे दोनों वहाँ जाकर वहाँकी भूमि खोदने लगे। अब खोद डालनेपर ज़मीन बिलकुल पोली निकली—ख़ज़ाना एक-दम ग़ायब था। बस, उस कपटी दुर्बुद्धिने माया फैलायी और कहा,—"हा! न जाने किस पापीने हमें इस तरह छका मारा! यह कहता हुआ वह पत्थरसे सिर और छाती कूटने और सुबुद्धिसे कहने लगा,—"हे सुबुद्धि मालूम पड़ता है, कि यह धन तुम्हीं ले गये हो, क्योंकि हम दोनोंके सिवा किसी तीसरेको यह बात मालूम न थी।" यह सुन,

सुबुद्धिने कहा—"हे मित्र! यदि मुझे यह धन हड़प कर लेनेकी ही इच्छा होती, तो मैं पहले तुमसे इसकी चर्चा ही क्यों करता? तुम खुद ही धोखेबाज हो, इसीलिये मुझे भी ऐसा ही समझ रहे हो।" इसी तरह परस्पर झगडा करते हुए वे दोनों राजाके पास पहुँचे। वहाँ सबसे पहले दुर्बुद्धिने ही राजासे फ़र्याद की, कि—"हे देव! मैंने एक जगह गड़ा हुआ धन पाया था। उसे मैंने आपके ही डरसे एक पेड़के नीचे गुप्त रीतिसे गाड़ दिया था, परन्तु इस सुबुद्धिने मुझे खूब छकाया—इसने वह सारा धन वहाँसे उड़ा लिया है। इसलिये हे नरेन्द्र! आप इसका जैसा उचित हो वैसा न्याय कर दें।" यह सुन, राजाने उससे पूछा,—"इस विषयमें तुम्हारा कोई गवाह भी है या नहीं?" दुर्बुद्धिने कहा,—"हे स्वामिन्! और तो कोई गवाह नहीं है; पर मैंने जिस वृक्षके नीचे धन गाड़ा था, वह वृक्षही यदि कह दे, तब तो आप सच मानेंगे न?" राजाने कहा,—"हाँ, जरूर मानूँगा।" उसने कहा,—"अच्छा तो कलही इस बातकी परीक्षा कर लीजिये इसके बाद राजाने दोनोंकी ज़मानत लेकर उन्हें विदा कर दिया और वे अपने-अपने घर चले गये। सुबुद्धिने सोचा, "ऐं! यह दुर्बुद्धि! ऐसा दुष्कर कार्य किस तरह कर सकेगा? क्योंकि लोग कहा करते हैं, कि धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं।" ऐसा विचार कर वह निश्चिन्त मनसे अपने घर गया।

इधर दुष्टबुद्धिने अपने घर आ, कपटका जाल फैलानेके विचारसे अपने पिता भद्र श्रेष्ठीको एकान्तमें बुलाकर कहा,—"हे पिता! मेरी एक बात सुनो। सारी मुहरे मेरे हाथमें आ गयी हैं। मैं रातके समय चुपकेसे तुम्हें उस वृक्षके कोटरमें ले जाकर रख आऊँगा। सवेरे जब सब लोग इकट्ठे हों, तब तुम कहना, कि सुबुद्धिने ही दुर्बुद्धिको धोखा देकर सब धन ले लिया है। यह सुन उसके पिताने उससे कहा,—"हे पुत्र! तेरा यह विचार अच्छा नहीं है। तो भी तेरा आग्रह देखकर मैं ऐसा ही करूगा।" यह सुन, हर्षित होते हुए दुर्बुद्धिने रातके समय चुपकेसे अपने पिताको ले जाकर उसी वट-वृक्षके कोटरमें रख दिया।

प्रातःकाल राजा और नगर-निवासियोंके सामने फूल और चन्दन लेकर उस वट-वृक्षकी पूजा करते हुए उसने कहा,—"हे वट-वृक्ष! तुम सच-सच बतलाओ, कि वह धन किसने लिया है! इस विवादका निर्णय तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है, इसलिये सच बतलाओ, क्योंकि—

'सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वायवो वान्ति, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥१॥'

*अर्थात्—'सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है, सत्यसे ही सूर्य प्रकाश फैलाते हैं, सत्यके ही प्रतापसे हवा चलती है। सब कुछ सत्यसे ही ठहरा हुआ है।'*

उसके ऐसा कहने पर उस वट-वृक्षके कोटरमें बैठा हुआ भद्रसेठ बोला,—"हे भाइयो! सुनो—सुबुद्धिने ही लोभके वशमें आकर सब धन ले लिया है।" यह सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद राजाने सुबुद्धिसे कहा,—"रे सुबुद्धि! तू अपराधी है। तूही धन चुरा ले गया है। जा, शीघ्र इसे वापिस कर दे।" राजाकी यह बात सुन, सुबुद्धिने अपने मनमें विचार किया,—"वृक्ष तो अचेतन है, इसलिये यह हरगिज़ बोल नहीं सकता। हो न हो, इसमें भी दुर्बुद्धिकी कोई चालबाज़ी है। मालूम होता है, कि इसीने किसी आदमीको इस वृक्षके कोटरमें सिखला-पढ़ाकर रख छोड़ा है, नहीं तो वृक्षसे यह मनुष्यकी सी बात कैसे निकल सकती है?" ऐसा ही विचार करके उसने राजासे कहा,—"महाराज! मैं धन तो जरूर वापिस करूँगा, पर मेरी कुछ अर्ज भी सुन लीजिये, तो बड़ी दया हो।" राजाने कहा,—"तो फिर कहता क्यो नही? जो कुछ कहना हो, जल्द कह डाल।" सुबुद्धिने कहा,—"महाराज! मैंने लोभान्ध होकर मित्रको भी धोखा दिया और धन ले लिया, परन्तु मैंने वह धन इसी वटवृक्षके अन्दर रख छोड़ा था। इसके बाद जब मैं फिर उसे लेने आया, तब एक भयानक सर्प फन फैलाये नजर आया। उसे देखकर मैंने सोचा, कि इस धनपर तो किसी देवताका पहरा मालूम

पड़ता है। यही सोचकर मैं फिर कर घर लौट आया। अब यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं किसी-न-किसी उपायसे उस धनके अधिनायक सर्पको मार डालूँ, जिससे वह धन हाथ लग सके।" उसकी ऐसी बातें, जो सच सी मालूम पड़ती थीं, सुनकर राजाने कहा,—"अच्छा, तुम जैसा चाहो, वैसा करो।" यह सुन, सुबुद्धिने उसी समय सबके सामने कंडे लाकर उस वृक्षका कोटर भर दिया और उसके चारों ओर सूखे हुए कंडे रखकर उनमें आग लगा दी। कंडोंके धुएँसे व्याकुल होकर दुष्टबुद्धिका पिता भद्रसेठ उसी समय वृक्षके कोटरमेंसे निकल आया और ज़मीनमें गिर पड़ा। राजा आदि सब लोगोंने उसे देखकर तुरत पहचान लिया। उसे देख, आश्चर्यित होकर सबने उससे पूछा,—"भद्रसेठ! यह क्या मामला है?" उसने कहा,—"हे राजन्! मेरे कुपुत्र दुष्टबुद्धि दुर्बुद्धिने ही इस प्रकार मुझसे झूठी गवाही दिलवायी है। झूठ बोलनेका फल तो मुझे इसी जन्ममें मिल गया। इसलिये किसीको भूले भी झूठ नहीं बोलना चाहिये।" यह कह, सेठ चुप हो रहा। इसके बाद राजाने दुर्बुद्धिका सर्वस्व छीन लिया और उसे देशनिकाला दे दिया। सत्यवादी होनेके कारण राजाने सुबुद्धिको वस्त्रालङ्कार आदि देकर सम्मानित किया और सबने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

इस कथासे शिक्षा ग्रहण कर, मनुष्योंको चाहिये, कि इस लोक और परलोकमें हित करनेवाला सत्यवचन ही बोले और असत्यका सर्वथा त्याग करें।

भद्रसेठ-कथा समाप्त।

अब स्थूल अदत्तका त्याग करना, तीसरा अणुव्रत है। इसका जिनदत्तकी भाँति पालन करना चाहिये। जब श्रीशान्तिनाथ स्वामीने ऐसा कहा, तब चक्रायुध राजाने कहा,—"हे स्वामी! वह जिनदत्त कौन था? और उसने किस प्रकार इस तीसरे व्रतका पालन किया था?" ऐसा पूछने पर प्रभुने कहा,—"भद्र! उसकी कथा यों है, सुनो,—
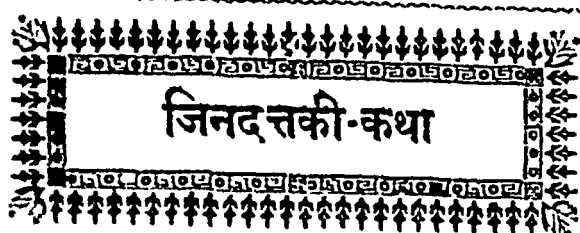
# जिनदत्तकी-कथा

बसन्तपुरमें जितशत्रु नामके राजा रहते थे। उसी नगरमें सेठ जिनदासका पुत्र जिनदत्त भी रहता था, जो जीवा जीवादि तत्त्वोंका जाननेवाला उत्तम श्रावक था। वह युवावस्थाको प्राप्त होनेपर भी वैराग्य-प्रवृत्तिके कारण चारित्र ग्रहण करना चाहता था और विवाहादि झंझटोंसे भागा फिरता था। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ नगरके बाहर उद्यानमें गया हुआ था। वहाँ उसने एक ऊँचे शिखर-वाला बड़ा भारी जिनमन्दिर देखा। उसे देखते ही उसका चित्त हर्षसे खिल उठा। इसके बाद विधिपूर्वक जिन मन्दिरमें प्रवेश कर, पुष्पादिसे जिनेश्वरकी पूजा कर, वह चैत्य वंदन करने लगा। इसी समय उसी नगरीकी रहनेवाली एक कन्या वहाँ आयी। वह उत्तरीय वस्त्रसे मुख-कोश बाँध, मनोहर सुगन्धित द्रव्योंसे जिन प्रतिमाका मुख शोभित करनेके लिये उसके दोनों गालों पर बेल काढ़ने लगी। इस प्रकार उस लड़कीको जिनेश्वरकी भक्तिमें लीन देख कर मन-ही मन आश्चर्यमें पड़े हुए जिनदत्तने अपने मित्रोंसे पूछा,—"मित्रो! यह किसकी लड़की है?" उन लोगोंने कहा,—"ऐं! क्या तुम इसे नहीं जानते? यह प्रियमित्र नामक सौदागरकी पुत्री, जिनमती है, जो सब स्त्रियोंमें शिरोमणि है। इधर तुम भी रूप-लावण्य आदि गुणोंसे पुरुषोंमें शिरोमणि हो रहे हो। इसलिये यदि कदाचित् विधाता तुम दोनोंकी जोड़ी मिला दें,तो उस सिरजनहारकी सारी मिहनत सफल हो जाये। उसकी सृष्टि-रचनाका प्रयास सार्थक हो जाये।"

जब मित्रोंने इस प्रकार हँस कर कहा, तो जिनदत्तने कहा,—"हे मित्रो! तुम लोग इस जिनमन्दिरमें मेरे साथ दिल्लगी कर रहे हो, यह अच्छा नहीं है। मित्रो! मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ, यह क्या

तुम्हें मालूम नहीं है? मैं तो इस लड़कीके मुख-मण्डन करनेकी चतुराई देखकर, राग-रहित भावसे तुमसे इसके बारेमें वैसा सवाल किया था, नहीं तो इस जिनालयमें स्त्री-जातिका नाम भी नहीं लेना चाहिये; क्योंकि सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है, कि जिनेश्वरके मन्दिरमें १ ताम्बूल, २ जलपान, ३ भोजन, ४ वाहन, ५ स्त्रीभोग, ६ शयन, ७ थूकना, ८ मूतना, ९ उच्चार और १० जुआ आदिका सेवन नहीं करना चाहिये। (ये दसों बड़ी आशातनाएँ हैं) इसलिये नारीकी बात चलानी भी उचित नहीं है।" जिनदत्त ऐसा कह ही रहा था, कि जिनमतीने उसकी ओर देखा। उसका सुन्दर चेहरा-मोहरा और रूप लावण्यादि देखकर उस कन्याके चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो आया, उसके मनकी यह हालत उसकी सखियाँ जान गयीं। घर जाकर उन सबने उसके माता-पितासे उसका यह अभिप्राय कह सुनाया। जिनदत्त भी अपने घर आ, भोजनकर, दूकान पर पहुँचा और द्रव्य उपार्जन करनेके लिये व्यापार करने लगा।

इसी समय जिनमतीका पिता जिनदास सेठके पास आया और अपनी पुत्री उसके पुत्रको देनी चाही। सेठने भी बड़े उल्लास और हर्षके साथ यह सम्बन्ध स्वीकार किया। उसने सोचा,—"जिसके पास अपने समान वित्त हो और जिसका कुल अपने समान हो, उसीके साथ मित्रता और विवाहका सम्बन्ध करना चाहिये; परन्तु यदि एक ऊँचे और दूसरा नीच कुलका हो, तो ऐसी असमानतामें सम्बन्ध करना उचित नहीं है।" उसने फिर सोचा,—"आती हुई लक्ष्मीका निषेध करना ठीक नहीं है।" इसी प्रकार इन लोकोक्तियोंका मन-ही-मन विचार करते हुए उसने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और अपने प्रिय मित्र श्रेष्ठीको आदरके साथ विदा किया।

इसके बाद जब जिनदत्त घर आया, तब उसके पिताने उससे विवाहकी बात कही। यह सुनकर उसने कहा,—"मैं तो विवाह करनेवाला नहीं हूँ। मैं दीक्षा लेनेवाला हूँ।" यह सुन, उसके पिताने उससे

पूछा,—"क्या वह कन्या कभी किसी जगह तुम्हे मिली थी? उसने कभी तुम्हें कहीं देखा था?" तब उसने जिनमन्दिरमें उससे मुलाकात होनेका हाल पितासे कह सुनाया। यह सुन, उसके पिताने कहा,—"तुम विवाह करना स्वीकार कर लो। बेटा! कहा भी है, कि—

"तथा न शोभते वत्स ! वैराग्यं तव यौवने।
ताम्बूले शर्कराचूर्णं, यथा चैत्रे च वर्षणम् ॥ १ ॥"

*अर्थात्—'हे वत्स! जैसे पानमें शक्कर नहीं अच्छी लगती, और चैतके महीनेमें बरसात बुरी मालूम होती है, वैसेही युवावस्थामें तुम्हारा यह वैराग्य भी अच्छा नहीं मालूम होता।'*

"इसलिये हे पुत्र! तुम यह विवाह करना स्वीकार कर, मेरे मनको आनन्दसे पूर्ण कर दो।" पिताकी यह बात सुन, जिनदत्त चुप रह गया।

एक दिन किसी कारणसे जिनमती घरसे बाहर निकल कर रास्तेमें चली जा रही थी। इसी समय वसुदत्त नामक कोतवालने उसको देखा। उसकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर उसने उसके पितासे उसके साथ अपना विवाह कर देनेकी प्रार्थना की। उसने कहा,—"कोतवाल साहब! मैं तो यह कन्या सेठ जिनदासके पुत्र जिनदत्तको दे चुका हूँ। अब तो यह बात नहीं बदल सकती। कहा भी है, कि—

'सकृज्जल्पन्ति राजानः, सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्या, प्रदीयन्ते, त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"राजा एकही बार बोलते हैं, पण्डित एकही बार बोलते हैं, कन्या एकही बार दी जाती है। ये तीनों काम एकही बार होते हैं।"*

उसकी यह बात सुन, उस दुष्टके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और वह रात-दिन जिनदत्तके विनाश करनेका मौक़ा ढूंढने लगा। एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो, क्रीड़ा करनेके निमित्त वनमें गये। वहाँ अश्वक्रीड़ा करते समय उनके एक कानका क़ीमती कुण्डल गिर पड़ा।

राजाको यह बात तब मालूम पड़ी, जब वे घर लौट आये। उन्होंने उसी समय वसुदत्त कोतवालको उसे ढूँढ़ लानेकी आज्ञा दी, राजाकी आज्ञा पाकर वसुदत्त कुण्डलकी तलाशमें चल पड़ा। इसी समय उसने अपने आगे-आगे उसी रास्तेसे जिनदत्तको भी किसी कार्यवश जाते हुए देखा। उसी समय जिनदत्तने रास्तेमें कुण्डल पडा हुआ देख, वह रास्ता ही छोड़ दिया और दूसरी राहसे जाने लगा। सोचा,—

"आत्मवत्सर्वभूतानि, परद्रव्याणि लोष्टवत्।
मातृवत्परदारांश्च यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"जो सब प्राणियोंको अपनी आत्माके समान जानता है, पराये धनको मिट्टीका ढेला समझता है और परायी स्त्रीको माताके समान देखता है, वही वास्तवमें देखता है; अर्थात् वही पण्डित है।"*

इतनेमें पीछेसे वसुदत्त भी वहाँ आ पहुँचा और कुण्डलको पड़ा देख उसे लिये हुए राजाके पास आकर उनके हवाले कर दिया। राजाने प्रसन्न होकर पूछा,—"हे भद्र! तुम्हें यह कुण्डल कहाँ मिला?" यह सुन, उस दुष्टने द्वेष-भावसे राजासे कहा,—"हे स्वामी! इसे मैंने जिनदत्तसे लिया है।" यह सुन, राजाने कहा,—"ऐं! क्या जिनदत्त पर-द्रव्य ग्रहण करता है? वह तो बड़ा धर्मात्मा और विवेकी कहलाता है! धर्मात्माओंके विषयमें पूर्वाचार्योंका मत है कि,—

'पतितं विस्मृतं नष्टं, स्थितं स्थापितमाहितम्।
अदत्तं नाददीत स्वं, परकीयं क्वचित्सुधीः ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'दूसरेका धन चाहे गिर गया हो, भूल गया हो, नष्ट हो गया हो, स्वाभाविक रीतिसे ही रखा हुआ हो, धरोहरके तौरपर रखा हुआ हो अथवा रख छोड़ा गया हो—वह इन सब अवस्थाओंमें अदत्तही कहलाता है। बुद्धिमानोंको चाहिये कि ऐसा अदत्त धन कभी न लें।'*

राजाकी यह बात सुन, वसुदेवने कहा,—"हे स्वामिन्! जिनदत्त

जैसा चोर तो शायद ही दूसरा कोई होगा। और-और चोर तो लुके-छिपे चोरी करते हैं; पर यह तो चौड़े मैदान पराया माल हड़प कर जाता है।" यह सुन, क्रोधित होकर राजाने सोचा,-"जिनदत्तको तो लोग बड़ा ही अच्छा आदमी बतलाते हैं ; पर इसके कहनेसे तो पता चलता है, कि वह सज्जन नहीं है। अतएव यदि वह सचमुच दुष्टात्मा है, तो राजाकी ओरसे उसे फाँसीका हुक्म सुनाया जाना चाहिये।" ऐसा विचार कर, राजाने वसुदत्तको हुक्म दिया,—"कोतवाल ! यदि जिन-दत्त चोर है, तो तुम उसे जला-जलाकर मार डालो।" राजाका ऐसा हुक्म होते ही हर्षित चित्तसे वसुदत्तने जिनदत्तको गिरफ़्तार कर लिया और उसे गधेपर चढ़ा उसके सारे शरीरपर रक्तचन्दनका लेप-कर, ढोल आदि बजवाते हुए उसे तिराहे-चौराहेकी राह खूब घुमवाया। यह देख, जहाँ-तहाँ लोग 'हा हा'-शब्द करने लगे। क्रमसे वह राज-मार्गमें लाया गया। इतनेमें शोरगुल सुनकर जिनमती पासवाले घरसे बाहर निकल आयी और जिनदत्तको दुःख देनेवाले सरकारी अफ़सरको देखा। उस समय उस बालाने रोते-रोते अपने मनमें विचार किया,—"अहा। यह जिनदत्त धर्मात्मा, दयालु और देव-गुरुकी भक्तिमें तत्पर है, तथापि यह निरपराध होते हुए भी ऐसी दुःखदायिनी दशाको क्यों प्राप्त हुआ ?" इतनेमें जिनदत्तने भी उसे अपनी ओर देखते देख लिया और उसके प्रति अनुरागवान् होकर अपने मनमें विचार किया,-"अहा! इसकी मेरे ऊपर कैसी अकृत्रिम प्रीति है! मेरा दुःख देखकर यह भी बड़ी दुःखित मालूम पडती है। अतएव अबके यदि मैं इस सङ्कटसे उद्धार पा गया, तो इसे अवश्य ही स्वीकार करूँगा और कुछ दिनों तक इसके साथ सुख भोग करूँगा, नहीं तो आजसे ही मेरा सागा-रिक अनशन होगा।" वह यही सोच रहा था, कि कोतवालके निर्दय मनुष्य उसे वधस्थानकी ओर ले आये।

इधर प्रियमित्रकी पुत्री जिनमतीने हाथ-पैर धो, घरके मन्दिरमें जा, प्रतिमाके पास बैठ, शासन देवताका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए,

जिनदत्तके दुःखका नाश करनेके लिए शुद्ध-बुद्धिसे कायोत्सर्ग किया। उसके शीलके प्रभावसे तथा श्रेष्ठ भक्तिसे प्रसन्न होकर शासनदेवीने जिनदत्तकी मज़बूत सूलीको भी पुराने तृणकी तरह तीन टुकड़े कर दिया। तब सिपाहियोंने उसके गलेमें फाँसी डाल, उसे एक वृक्षकी शाखामें लटका दिया। वहाँ भी देवताने उसकी फाँसी तोड़ डाली। यह देख, क्रोधमें आकर कोतवालके आदमियोंने उसके शरीर पर खड्ग-का प्रहार किया। उस प्रहारको देवताने उसके शरीर पर फूल-मालाकी तरह कर दिया। उसका यह बढ़ा-चढ़ा हुआ प्रभाव देख, सिपाही बड़े अचम्भेमें आ गये और राजासे जाकर उन्होंने सब हाल कह सुनाया। राजा भी भय और आश्चर्यके साथ उसके पास आ पहुँचे और उसका ऐसा प्रभाव देख, उसे हाथीपर बैठाकर अपने घर ले आये। तदनन्तर उन्होंने उससे बड़ी नम्रताके साथ सारा हाल सच-सच बतला-देनेको कहा। इसके उत्तरमें उसने सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। यह सुन, राजा कोतवालपर बड़े बेतरह नाराज़ हुए और उसका वध करने का हुक्म दे दिया। परन्तु दयालु जिनदत्तने राजासे प्रार्थना करके उसे छुड़वा दिया। उस समय राजाने उससे कहा,—“रे दुष्ट! जो तेरी तरह, एक सम्यग्दृष्टिवाले धर्मात्माको मिथ्या दोष लगाता है, उस दुष्टका तो वध करनाही ठीक है।” जिनदत्तने कहा,—“हे राजन्! मेरे ऊपर आये हुए कष्टोंके लिये आप इस बेचारेको क्यों दोष देते हैं? इसका क्या अप-राध है? यह सब मेरे कर्मोंका दोष था।” इसके बाद, राजाने सन्तुष्ट होकर उसपर पञ्चाङ्ग प्रसाद किया और बड़े उत्सवके साथ उसे घर पहुँचवा दिया। उसे देखकर उसके माता-पिता आदि सभी स्वजन बड़े हर्षित हुए। उसी समय प्रियमित्रने आकर जिनदत्तसे कोतवालके आने और जिनमतीके शासनदेवताका आराधना तथा कायोत्सर्ग करने आदिका वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर वह अपने मनमें बड़ा आन-न्दित हुआ इसके बाद शुभ दिनको जिनदत्तने बड़ी धूम-धामसे जिनमती-के साथ विवाह किया और कुछ कालतक उसके साथ संसारिक सुख-

भोगते हुए वैराग्य लेकर भार्याके साथही श्रीसुस्थित नामक आचार्यसे दीक्षा ग्रहण कर ली। चिरकाल तक दीक्षाका पालन कर, शुभध्यान-के साथ मृत्युको प्राप्त होकर वह प्रियाके साथ स्वर्गको चला गया।

जिनदत्त-कथा समाप्त।

अबके श्रीशान्तिनाथ स्वामी राजा चक्रायुधसे चौथे व्रतका विचार कहने लगे,—"हे राजन्! मैथुन दो तरहका होता है—एक औदारिक और दूसरा वैक्रिय। औदारिक मैथुन भी तिर्यञ्च और मनुष्यके भेदसे दो प्रकारका होता है तथा वैक्रिय मैथुन देवाङ्गना सम्बन्धी होनेके कारण एक ही प्रकारका होता है। सब व्रतोंमें यह व्रत बडा दुष्कर है। इस विषयमें कहा है, कि—

"मेरू गिरिट्ठो जह पव्वयाणं, एरावणो सारतरो गयाणं।
सीहो बलिट्ठो जह सावयाणं, तहेव सीलं पवरं वयाणं॥ १॥"

*अर्थात्—"जैसे सब पर्वतोंमें मेरु बड़ा है, सब हाथियोंमें ऐरावत बडा है, और सब शिकारी पशुओंमें सिंह बडा है, वैसेही सब व्रतोंमें शील बडी है।"*

परस्त्रीका त्याग करना ही शीलव्रत कहा जाता है और सब स्त्रियोंका निषेध करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। जो पर-स्त्री-लम्पट होता है, वह बड़ा भयङ्कर कष्ट पाता है। कहा भी है, कि—

'नपुंसकत्वं तिर्यक्त्वं, दौर्भाग्यं च भवे भवे।
भवेन्नराणां स्त्रीणां-चा-न्यकान्तासक्त चेतसाम्॥ १॥'

*अर्थात्—"परायी नारीमें आसक्त चित्तवाले पुरुषों और पराये पुरुषमें मन लगानेवाली स्त्रियोंको जन्म-जन्ममें नपुंसकत्व, तिर्यक्त्व और दुर्भाग्य प्राप्त होता है।"*

इसलिये मनुष्योंको चाहिये, कि परस्त्री पर मन न ललचाये। यदि वह परस्त्रीका त्याग नहीं करता, तो उसे वैसाही दुःख होता है, जैसा कपालपिङ्गल नामक पुरोहितको हुआ। यह सुन, चक्रायुध राजाने

पूछा,—"हे प्रभु! वह करालपिङ्गल कौन था? और उसने किस प्रकार चौथे व्रतका खण्डन करके दुःख पाया? हे स्वामिन्! कृपाकर उसकी कथा कहो।" इस पर भगवान्‌ने कहा,—"उसकी कथा यों है, सुनो—

## करालपिङ्गलकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें नलपुर नामका नगर है। उसमें नलपुत्र नामक एक प्रतापी राजा था। उसके घरमें राजाके अतिशय प्रिय और शान्तिक पौष्टिक आदि क्रियाएँ करनेमें निपुण करालपिङ्गल नामका पुरोहित रहता था। वह रूपवान्, युवा और धनवान् था। उसी नगरमें पुष्पदेव नामका एक बड़ा भारी व्यापारी रहता था। पुरोहितकी उस व्यापारीके साथ बड़ी मित्रता थी। उस व्यापारीकी स्त्रीका नाम पद्मश्री था। वह मनोहर रूपवाली और पतिव्रत आदि उत्तम गुणोंसे युक्त थी। कहा भी है, कि—

> पतिव्रतानां नारीणां, भर्तुस्तुष्यति देवता।
> गंगा यथाऽन्त्यजस्यापि, स्वयं हि श्रीफलं ददौ ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'पतिव्रता स्त्रियोंके स्वामीपर सभी देवता प्रसन्न रहते हैं जैसे कि * गंगानदीने स्वय ही एक चाण्डालको श्रीफल दिया था।'*

एक दिन पुरोहितने किसी कामसे राजाको बड़ा सन्तुष्ट किया। तब राजाने उसे वरदान दिया, कि तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, माँग लो। यह सुन, विषयासक्त चित्तवाले पुरोहितने कहा,—"हे स्वामिन्! यदि आप मुझे मुँह माँगा दान देना चाहते हैं, तो मैं आपसे यही माँगता हूँ, कि इस नगरमें मैं चाहे जिस पर-स्त्रीके साथ सम्भोग करूँ, पर मेरा अपराध नहीं माना जाय।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे पुरोहित! जो स्त्री तुमसे मिलना चाहे उसीसे तुम भी मिलना औरसे नहीं, यदि

* यह कथा किसीको मालूम नहीं है।

कदाचित् तुम किसी ऐसी स्त्रीके साथ बलात्कार क्रीड़ा करोगे, जो तुम्हारी इच्छा नहीं करती हो तो, मैं तुम्हें वही दण्ड दूंगा, जो परदार-निषेवन करनेवालोंको दिया जाता है।" पुरोहितने राजाकी यह आज्ञा स्वीकारकर ली। इसके बाद वह पुरोहित बेरोक टोक स्वच्छन्द भावसे परायी स्त्रियोंके फ़िराक़में सारे नगरका चक्कर लगाने लगा। योंही घूमते-फिरते उस कामान्धने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्री पद्मश्रीको देखा। उसे देखते ही वह प्रेमान्ध होकर उससे मिलनेका उपाय सोचने लगा। उसने सोचा,—"कैसे पुष्पदेवकी यह पत्नी मेरे वशमें आयेगी?" इसी सोच-विचारमें पड़े हुए उसने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्रीकी दासी विद्युल्लतासे कहा,—"हे भद्रे! तू ऐसी कोई तरकीब लडा दे, जिससे तेरी स्वामिनी मेरे ऊपर आशिक़ हो जाये।" यह सुन, उसने एक दिन अपनी स्वामिनीसे पुरोहितकी बात कही; पर उस शीलवतीने उसकी बात नहीं मानी। दासीने यह बात जाकर पुरोहितसे कही, कि मेरी स्वामिनी तुम्हारी बात माननेवाली नहीं है। यह सुनकर उस दुरात्माने एक दिन स्वयंही अवसर पाकर पद्मश्रीसे सम्भोग करनेकी प्रार्थना की। सुनतेही वह बोली,—"ख़बरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहना, नहीं तो कहीं तुम्हारे मित्रको इसकी ख़बर पड़ जायेगी।" यह सुन, पुरोहितने अनुमान किया, कि यह दिलसे तो मेरे ऊपर ज़रूर ही आशिक है। इसके बाद उसने फिर मुस्करा कर कहा,—"हे भद्रे! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे तुम्हारे पति परदेश चले जायें।" उसकी यह बात सुन, उसने यह सारा हाल अपने स्वामीसे जाकर कह दिया। पुष्पदेवने बात सुनकर मनमें रखली—किसीपर प्रकट नहीं की, पर उसने मन-ही-मन सोचा, कि यह पुरोहित क्या करता है, इसे देखना चाहिये।

इसके बाद पुरोहितने अपनी विद्याके प्रभावसे राजाके सिरमें बड़ी भयानक पीड़ा उत्पन्न कर दी। उस समय सिरके दर्दसे छटपटाते हुए राजाने पुरोहितको बुलवाकर कहा,—"पुरोहितजी! इस सिर दर्दसे तो मेरे प्राण आजही निकले जा रहे हैं; इसलिये तुम कुछ टोना-टटका,

तन्त्र-मन्त्र करके मेरी यह पीडा शान्त कर दो।" यह सुन, उसने अपनी उत्पन्न की हुई पीड़ा मन्त्रोपचार करके शान्त कर दी। उस समय रोग रहित हो जानेके कारण प्रसन्न होकर राजाने पुरोहितसे कहा,—"हे पूज्य! तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, माँग लो।" पुरोहितने कहा,—"हे राजन्! आपकी दयासे मेरे किसी चीज़की कमी नहीं है; पर हे नरे-श्वर! मेरा एक मनोरथ आप अवश्य पूरा कर दें। वह यह है, कि किंजल्प नामक द्वीपमें किंजल्पक-जातिके पक्षी रहते हैं—उनका स्वर बड़ाही सुन्दर होता है, उनका रूप भी बड़ा ही मनोहर होता है। उन्हें देखनेसे मनुष्यको बड़ा सुख होता है। उन्ही पक्षियोंको लानेके लिये आप यहाँके पुष्पदेव नामक वणिक्को आज्ञा दे दीजिये।" यह सुन, राजाने तत्काल पुष्पदेवको बुलाकर, कहा,—"सेठजी! तुम किंजल्प द्वीप-में जाकर वहाँसे किंजल्पक जातिके पक्षी ले आओ।" राजाकी यह बात सुन, उसने सोचा,—"यह सारा प्रपञ्च उसी पुरोहितका रचा हुआ है।" ऐसा विचार कर उसने राजासे कहा,—"जैसी आपकी आज्ञा।" यह कह, वह अपने घर गया। इसके बाद उसने अपने घरमें तहख़ाना सा गड्ढा खुदवाकर उस पर एक यन्त्र-युक्त पलँग रखवा दिया और अपने कुछ विश्वसनीय मनुष्योंको बुलाकर कहा,—"अगर किसी दिन कराल-पिङ्गल पुरोहित यहाँ आ पहुँचे, तो तुम लोग उसे इसी कलदार पलँग-पर बैठाना और इसी गड्ढेमें गिरा देना। इसके बाद गुप्त रीतिसे उसे मेरे पास ले आना।" इस प्रकारकी आज्ञा अपने सेवकोंको देकर पुष्प-देव, देशान्तर जानेके बहाने घरसे बाहर निकला और नगरके बाहर एक गुप्त स्थानमें जा छिपा। इसी समय पुष्पदेवको परदेश गया जानकर करालपिंगल बड़ी खुशीके साथ उसके घर आ पहुँचा। वहाँ पुष्प-देवके विश्वासी नौकर लुके-छिपे बैठे हुए थे। पुष्पदेवकी पत्नीने बड़ी ख़ातिरके साथ पुरोहितको उसी कलदार पलँगपर बैठाया। बैठतेही वह ख़न्दकमें गिर पड़ा, इसके बाद छिपे हुए सेवक बाहर आये और उसको मुश्कें बाँधकर उसे पुष्पदेवके पास ले आये। तब बुद्धिमान्

पुष्पदेव, उस दुष्टको पींजरेमें बन्दकर, अपने साथ दूसरे देशको ले गया। वहाँ छः महीने तक रह, अपना कार्य सिद्ध कर, वह फिर अपने नगरको आया। उस समय उस पुरोहितकी पूरी मिट्टी पलीद करनेके इरादेसे उसने अपनी बुद्धिसे यह उपाय सोच निकाला, कि पहले तो मोमको गलाकर उसका रस उसके सारे शरीरमें पोत दिया। इसके बाद उसके समूचे बदनपर खूबसूरत मालूम होने लायक़ पाँच रंगोंके चिड़ियोंके पर लाकर चिपका दिये। इस प्रकार उसने पुरोहितको पूरा पक्षी बना डाला और उसे काठके एक बड़ेसे पींजरेमें बन्द कर, उसमें ताला लगा, उस पींजरेको एक गाड़ीपर रखवाया और उसे लिये हुए राजसभामें आ पहुँचा। आतेही उसने राजाको प्रणाम कर, निवेदन किया,—"महाराज! मैं आपकी आज्ञासे जलमार्ग द्वारा उस द्वीपमें पहुँचा और वहाँसे बहुतसे किंजल्प-पक्षी लेकर चला था, पर सबके सब रास्तेमें मर गये—सिर्फ़ एक जीता बच गया है, उसे आपको दिखानेके लिये ले आया हूँ—कृपाकर देख लीजिये।" राजाने कहा,—"हे सौदागर! तुम उस पक्षीको यहीं लाकर मुझे दिखलाओ।" राजाकी यह आज्ञा पा, वह बहुतसे लोगोंसे उस गाड़ीको खिंचवा लाया, जिसपर वह पींजरा रखा था और पास आनेपर उन्हीं लोगोंसे वह पींजरा उतरवाकर, राजाके पास रखवा दिया। इसके बाद उसने उस पींजरेका ताला खोला। यह देख, राजाने कहा,—"यह पक्षी तो सुन्दर स्वर और मनोहर रूपवाला मालूम पड़ता है। ख़ैर, देखना चाहिये, यह कैसा है?" यह कह, राजाने उसे भली भाँति देखा, तो आदमीसा मालूम पड़ा। यह देख, उन्होंने पुष्पदेवसे पूछा,—"क्या यह पक्षी आदमीकी सी सूरत-शक्लवाला होता है?" उसने कहा,—"जी हाँ।" राजाने कहा,—"सुना है, कि इसकी बोली बड़ी मीठी होती है, इसलिये इसे एकबार बुलवाओ तो सही।" यह सुन, पुष्पदेवने हाथमें एक लोहेका सींकचा ले, उसकी तेज नोकसे उसे गोदते हुए कहा,—"रे पक्षी! बोल!" उसने कहा,—"क्या बोलूँ।" यह सुन राजाको बड़ा विस्मय हुआ उन्होंने उसका मुँह और दाँत देख,

उसे पहचान कर पुण्यदेवसे पूछा,—"हे व्यवहारी! यह पक्षी मेरे पुरोहितके समान दिखाई देता है।" उसने कहा,—"महाराज! यही समझ लीजिये, कि वही है।" राजाने फिर पूछा,—"तुमने इसकी ऐसी दुर्गति क्यों कर रखी है?" इसपर उसने राजाको उसका सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। यह सुन, क्रोधित होकर राजाने अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया, कि इस दुष्टकर्मा और परस्त्रीगामी अधम ब्राह्मणको मार डालो। राजाकी यह आज्ञा सुन, उन सबने पुरोहितको गधेपर चढ़ा, बड़ी फ़ज़ीहतके साथ उसे सारे नगरमें घुमाया और वध-स्थानमें ले जाकर मार डाला। वह मरनेपर घोर नरकमें गया। वहाँ उसे अग्निसे तपते हुए पुतलेका आलिंगन करना पड़ा और इसी तरहके और भी अनेक प्रकारके दुःख उठाने पड़े। वहाँसे निकलने पर भी वह अनन्तकाल तक इस संसारमें भ्रमण करता रहेगा।

करालपिंगल-कथा समाप्त।

इसके बाद स्वामीने फिर कहा,—"पाँचवाँ परिग्रह प्रमाण नामक अणुव्रत सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन तरहका है और इसके नौ भेद भी कहे जाते हैं—जैसे, धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, चाँदी, ताँबा-पीतल आदि, सुवर्ण, द्विपद और चतुष्पद, इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण करना। जो पुरुष इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण नहीं करता, वह सुलस श्रावककी भाँति दुःख पाता है। यह सुन, चक्रायुध राजाने कहा,—"हे भगवन्! वह सुलस कौन था? कृपाकर उसकी कथा कह सुनाइये।" तब प्रभुने कहा,—"हे राजन्! सुनो—
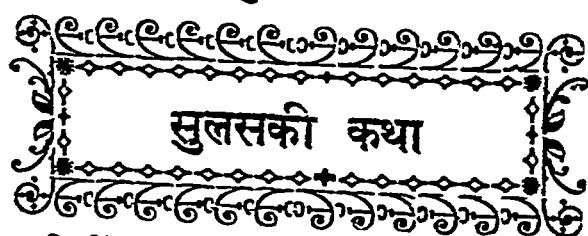
इसी भरतक्षेत्रमें अमरपुर नामका नगर है। उसमें छत्रको ही दण्ड लगता था, केशको ही बन्धन प्राप्त होता था, खेलमें ही मार शब्दकी

प्रवृत्ति होती थी, हाथियोंको ही मद होता था, हारके लिये ही छिद्र ढूँढ़ा जाता था और कन्याके विवाहमें ही करपीड़न * होता था; किन्तु प्रजाके विषयमें इनमेंसे एक भी नहीं था। उसी नगरमें न्याय-धर्ममें तत्पर अमरसेन नामके राजा और वृषभदत्त नामक सेठ रहते थे। वे विशेषतया जैनधर्मके पालक और समकितके धारण करनेवाले थे। सेठकी स्त्री जिनदेवी बड़ी अच्छी श्राविका थी। उसके गर्भसे सेठको सुलस नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। जब वह जवान हुआ, तब उसके माता-पिताने उसकी शादी सेठ जिनदासकी पुत्री सुभद्राके साथ कर दी। एक दिन सुलसने पिताकी आज्ञासे सद्गुरुके पास जाकर श्रावकके ग्यारहों व्रत ( परिग्रह प्रमाणके सिवा ) ग्रहण किये। उसके बादसे सुलस कलाओंमें अधिक दिलचस्पी रखनेके कारण विषय-विनोदमें वैसा मन नहीं लगाता था। सेठानीने इस प्रकार अपने पुत्रको धर्ममें तत्परता और शास्त्रोंमें आदर रखते देख कर सेठसे कहा,—"हे स्वामी! आपका पुत्र तो साधुसा मालूम पड़ता है, इसलिये आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे उसके मनमें विषयकी इच्छा उत्पन्न हो।" यह सुन, सेठने कहा,—"हे प्यारी! तुम ऐसी बात न कहो; क्योंकि अनादि कालसे प्राणी विषय-व्यापारमें आपसे आप प्रवृत्त हो जाते हैं; पर धर्ममें प्रवृत्ति होनी ही मुश्किल होती है।"

ऐसा कह कर भी सेठानीकी हठके मारे सेठने अपने पुत्रको चतुराई सीखनेके लिये नटों, विटों और जुआरियोंके पास भेजा, इसके परिणाममें सुलस कुछ ही दिनोंमें सब कलाएँ भूल गया। वह इन गये-गुज़रे मनुष्योंकी सङ्गतिमें पड़ कर सदा हँसी-दिल्लगी और तमाशा करने, शृङ्गार कथाएँ सुनने, नाटक देखने और जुआ खेलनेमें ही मग्न रहने लगा। क्रमशः वह इन्हीं लोगोंके साथ-साथ एक दिन कामपताका नामक वेश्याके घर जा पहुँचा। उस रण्डीने उसे धनवान्का बेटा जान कर, मन-ही-मन बड़ा अचम्भा माना और आदरसे उठ कर

* पाणिग्रहण—दूसरे पक्षमें राजाके कर ( टिकस ) की पीडा।

खड़ी हो, उसे आसन दे, उसकी बड़ी आवभगत की। सुलस भी मित्रोंके कहनेसे वहीं बैठ रहा। रण्डीने गप-शप करनी शुरू की। उसकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुन कर वह उस पर बेतरह लट्टू हो गया। यह बात ताड़ कर उसके सब मित्र वहाँसे उठ कर अपने-अपने घर चले गये। फिर तो उस वेश्याने धीरे-धीरे उसे ऐसा हत्थे चढ़ाया—इस प्रकार उसका दिल ख़ुश कर दिया,—कि वह उसके घरसे बाहर निकला ही नहीं। वह वहीं पड़ा हुआ बापका माल उड़ाने-खाने लगा। इसी प्रकार उसने सोलह वर्ष बिता दिये। इसी समय दैव-योगसे उसके माँ-बाप मर गये। तब उसकी स्त्री भी उसे उसी तरह उड़ानेके लिये धन देने लगी। कुछ दिनोंमें सारा ख़ज़ाना ख़ाली हो गया। तब उसकी स्त्रीने उस वेश्याकी दासीके द्वारा अपने गहने उसके पास भिजवा दिये। यह देख, उस रंडीकी नायकाने अपने मनमें विचार किया, कि इस पुरुषके घर धनका अब पूरा टोटा हो रहा है। अब हम किसीकी देहके गहने क्यों लें?" यही सोच कर बुढ़ियाने हज़ार रुपयेके साथ वे गहने उसकी स्त्रीको लौटा दिये। इसके बाद उसने अपनी बेटी कामपताकासे कहा,—"बेटी! अब इस मरदुएके पास धन बिलकुल ही नहीं रहा, इसलिये इसे छोड़ देना ही ठीक है।" वेश्याने कहा,—"जिसने हमें इतना धन दिया और जिसके साथ मैंने सोलह वर्ष तक भोग-विलास किया। उसे अब क्योंकर त्याग करते बनेगा?" यह सुन, कुट्टिनी बुढ़ियाने कहा,—"हमारे कुलकी तो यही रीति है। कहा भी है, कि—

> "विभवो वीतसंगानां वैदग्ध्यं कुलयोषिताम्।
> दाक्षिण्यं वणिजां प्रेम, वेश्यानाममृतं विषम्॥ १॥"

*अर्थात्—'संग-हीन साधुओंका वैभव, कुल-स्त्रियोंकी बेहद चतुराई, बनियोंकी उदारता (खर्चीलापन) और वेश्याओंका प्रेम—अमृत होनेपर भी विषके तुल्य है।'*

"हमारा तो यही काम है, कि धनवान्‌की सेवा करें और निर्धनको

उसी तरह त्याग दे, जैसे रस पीकर ईखको फेंक दिया जाता है।” वुआके ऐसा कहने पर भी उस वेश्याने सुलसको नहीं छोडा।

एक दिन मौक़ा पाकर बुढ़ियाने सुलससे कहा,—“हे भद्र! तुम थोड़ी देरके लिये नीचे जाओ, जिसमें यहीं बैठ कर नाकका गहना साफ़ किया जा सके।” यह सुनकर उसने सोचा,—“इन सोलह वर्षोंमें मैंने कभी इस तरहकी बात नहीं सुनी थी, आज ही यह बात क्यों सुन पड़ी?” यही सोचकर वह नीचे उतरकर बैठ रहा। इसी समय बुढ़ियाकी दासियोंने उससे कहा —“अरे! तू निर्लज्जकी तरह यहाँ क्या बैठा हुआ है?” यह सुन, सुलस तत्काल उस घरसे बाहर निकलकर अपने घरकी ओर चला, पर इतने दिन घरसे बाहर रहनेके कारण वह घरका रास्ता भी भूल गया था। कोमलताके कारण उसको चलनेमें भी कष्ट होता था। किसी-किसी तरह रास्ता याद करता हुआ वह धीरे-धीरे अपने घरके पास आ पहुँचा। उसका वह घर टूट-फूट गया था, उसकी दीवारे गिर पड़ी थीं, चूना झड़ गया था और किवाड़ टूट गये थे। इस तरह खण्डहरके समान शोभा रहित, उजाड़ और निर्जन घर देख कर उसने एक आदमीसे पूछा,—“हे भाई! वृषभदत्त सेठका यही घर है या दूसरा?” उसने कहा,—“यही है।” सुलसने पूछा,—“तो इसकी ऐसी हालत क्यों हो रही है? सेठजी कुशलसे हैं न?” उसने कहा,—“सेठ और सेठानी—दोनों कभीके मर गये और निर्धनताके कारण घरकी ऐसी हालत हो गयी।” यह सुन, उसने शोकातुर होकर विचार किया,—“ओह! मैं वेश्यामें ऐसा आशक्त हो रहा, कि माँ-बापके मरनेका भी हाल नहीं जाना। धन भी चौपट हो गया और मेरी ही करनीसे पिताका स्वर्गीय विमानके सदृश मकान स्मशान हो गया। अब मैं अपने आत्मीय-स्वजनोंको कैसे मुँह दिखलाऊँगा?” ऐसा सोचते हुए वह बाहरसे ही घरकी ओर आँख भर देख कर नगरके बाहर एक जीर्ण उद्यानमे चला गया। वहाँ उसने छूरीसे एक ताड़-पत्र पर यह चिट्ठी अपनी स्त्रीके नाम लिखी:--

"स्वस्तिश्री जिनेश्वरोंको नमस्कार कर, सुलस, अपनी प्रियाको इस पत्र द्वारा आनन्द देता हुआ उत्कण्ठापूर्वक यह बात बतला देना चाहता है, कि वह आज वेश्याके घरसे बाहर हो गया। रास्तेमें अपने मा-बापके मरनेका हाल सुन, मैं निर्धन लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आया; पर अबके देशान्तरको जा, मनोवाञ्छित धन उपार्जन कर मैं थोड़े दिनों बाद फिर आऊँगा। तुम अपने मनमें इस बातका ज़रा भी खेद न करना।" इस प्रकार पत्र लिख, उसने उन अक्षरोंपर कोयलेकी बुकनी छिड़क, उस पत्रको मोड़ा ही था, कि दैवयोगसे उसी समय उसकी स्त्रीकी दासी वहाँ आ पहुँची। उसीके हाथमें वह पत्र देकर वह परदेश चला गया।

क्रमशः चलता हुआ सुलस एक नगरके पास आ पहुँचा। वहाँ एक पुराने उद्यानमें पलाश वृक्षका अङ्कुर देखकर सोचने लगा,--"दूधवाले वृक्षोंके अङ्कुरके नीचे ज़रूर ही कुछ-न-कुछ होता है। विल्व और पलाशके वृक्षके नीचे थोडा या बहुत धन अवश्य ही होता है।" ऐसा विचार कर, उसने देखा, तो वृक्षके अङ्कुर छोटे-छोटे नज़र आये, इसलिये उसने सोचा, कि यहाँ थोड़ा द्रव्य है। साथही उसके दूधका रंग सुनहरा था, इसलिये उसने यह भी जान लिया, कि इसके नीचे सोना है। शास्त्रके आधार पर ऐसा विचार कर, वह "ॐ नमो धरणेन्द्राय, ॐ नमो धनदाय" आदि मन्त्रोंका उच्चारण कर उस जगहकी ज़मीन खोदने लगा। उसमेंसे हज़ार मुहरोंके बराबर धन निकला। उस धनको अपने वस्त्रमें छिपाये हुए वह नगरमें आया और बाज़ारमें पहुँच कर एक बनियेकी दूकानपर बैठ गया। उस समय वह बनियाँ गाहकोंके मारे बेतरह परेशान था, यह देख कर सुलसने भी उसकी थोड़ी बहुत मदद कर दी। इतनी ही देरमें सुलसकी व्यापार-सम्बन्धिनी चतुराई देख, उस दूकानका मालिक बड़ा खुश हुआ और सोचने लगा,—"ओह! यह सज्जन कैसे होशियार मालूम होते हैं! आज इनकी मददसे मुझे बड़ा लाभ हुआ। यह कोई मामूली आदमी नहीं मालूम पड़ते।"

ऐसा विचार उत्पन्न होतेही उसने पूछा,—"हे भद्र! तुम कहांसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे?" यह सुन, सुलसने कहा,—"मैं तो यहाँ अमरपुर नगरसे आया हूँ।" सेठने फिर पूछा,—"तुम यहाँ किसके घर अतिथि होकर ठहरे हो?" उसने विनयके साथ उत्तर दिया,—"सेठजी! इस समय तो मैं आपका ही अतिथि हूँ।" यह सुन, सेठ उसे अपने घर ले गया। वहाँ उसे अभ्यङ्ग, उद्वर्त्तन, स्नान, भोजन आदि कराकर उसने फिर उससे यहाँ आनेका कारण पूछा। तब सुलसने कहा,—"हे तात! मैं द्रव्य उपार्जन करनेके लिये घरसे बाहर निकला हूँ। मुझे कोई दूकान भाड़ेपर दीजिये, जिसपर बैठकर मैं व्यापार करूँ।" इसपर सेठने उसे एक दूकान दिलवा दी। उसीपर बैठकर सुलस व्यापार करने और धन कमाने लगा। छ: महीनेमें उसने पासकी मुहरोंको दुगुना कर डाला। तब वह उस धनसे किराना माल खरीद कर, बहुत बड़ा क़ाफ़िला साथ ले, समुद्रके किनारे बसे हुए तिलकपुर नामक नगरमें व्यापार करनेके लिये आया। वहाँ भी उसे मनचीता लाभ हुआ। इसके बाद वह अधिक लाभके लिये जहाज़में किराना माल भरकर स्वयं भी उसीमें सवार हो गया और रत्नद्वीपमें पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह भेट लिये हुए उस द्वीपके राजाके पास मिलने गया। राजाने भी उसका आदर-सम्मान कर उसका आधा कर माफ़ कर दिया। वहाँ मनचाहा लाभ उठानेके इरादेसे किराना बेंच तरह-तरहके रत्न लिये और बहुतसा धन इकट्ठा किये हुए वह अपने देशकी ओर जानेके लिये जहाज़पर सवार हो गया। राहमें जाते-जाते दुर्भाग्यके मारे उसका जहाज समुद्रमें टूट गया—सारा धन नष्ट हो गया। केवल अपनी जान लिये एक तख्ता पकड़े हुए वह पांच दिनोंमें समुद्रके किनारे आ लगा। वहाँ केलेका जंगल देख, उसीके मनोहर फल खा और एक स्थानपर जलाशय देख, उसीके पानीसे प्यास बुझा, स्वस्थ होकर उसने सोचा,—"ओह! मैंने कितनी बड़ी सम्पत्ति अर्जन की थी! पर आज इन हाथ-पैरोंके सिवा मेरे पास कुछ भी न रहा। पहननेके वस्त्र

भी न रहे । यह या तो मेरे पापोंका फल है अथवा दैवकी यही गति है। कहा भी है,—

"दैवमुल्लंघ्य यत्कार्यं, क्रियते फलवन्न तत् ।
सरोऽम्भश्चातकेनात्तं, गलरंध्रेण निर्गतम् ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"दैवका उल्लंघन करके जो काम किया जाता है, उसका कोई फल नहीं होता । जैसे कि, चातक सरोवरका जल चोंचसे उठाता है सही; पर वह गलेके छिद्रसे बाहर निकल जाता है—पेटमें नहीं जाने पाता ।'*

"पर जो कुछ हो, मुझे उद्यमका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये—विपत्तिमें भी पुरुषार्थ करनाही उचित है। पण्डितोंने कहा है,—

"नीचैर्नारभ्यते कार्यं, कर्तुं विघ्न भयात् खलु ।
प्रारभ्य त्यज्यते मध्यैः, किञ्चिद्विघ्न उपस्थिते ॥ १ ॥
उत्तमास्त्वन्तरायेषु, भयत्स्वपि सहस्रशः ।
प्रशस्यं कार्यमारब्धं, न त्यजन्ति कथञ्चन ॥ २ ॥"

*अर्थात्—"नीच मनुष्य इसी डरसे कोई काम नहीं करते, कि कहीं उसमें कोई विघ्न न पड़ जाये, मध्यम श्रेणीके मनुष्य कार्यारम्भ तो कर देते हैं; पर पीछे कोई विघ्न उपस्थित होते ही उससे हाथ खींच लेते हैं; परन्तु उत्तम पुरुष हज़ारों विघ्न पडनेपर भी आरम्भ किये हुए प्रशंसनीय कार्यको नहीं छोड़ते ।"*

इसी प्रकार विचार करता हुआ सुलस आगे बढ़ा। इतनेमें एक जगह उसे झुण्डके-झुण्ड गिद्ध दिखाई दिये । उन्हें ही लक्ष्यमें रखकर वह पास पहुँचा, तो उसे एक लाश नज़र आयी । उसके वस्त्रके छोरमें करोड़ोंकी क़ीमतीके पाँच रत्न देखकर उसने अपने मनमें सोचा,—"मैंने अदत्तादानसे विरति कर ली है; पर यह लावारिसी धन ले लेना मेरे लिये बेजा नहीं है। इन रत्नोंकी जो क़ीमत आयेगी, उससे मैं इनके स्वामीके पुण्यार्थ चैत्य ( मन्दिर ) बनवा दूँगा ।" यही सोच, उन

रत्नोंको लेकर वह वहाँसे चल पड़ा। क्रमशः वह समुद्रके किनारे बसे हुए वेलाकूल नामक नगरमें पहुँचा। उस नगरमें लक्ष्मीका वास देख, वह उसके अन्दर पैठा और श्रीसार नामक एक सेठके घर आया। सेठने भी उसे ख़ूब ठाट-बाटके साथ खिलाया-पिलाया और उसकी बड़ी आवभगत की। इसके बाद उसने दो करोड़ पर दो रत्न बेंचे और इसी धनसे किरानेका माल ख़रीद कर बड़ीसी गाड़ीमें लदवाया और बहुत बड़ा क़ाफ़िला साथ लिये हुए अपने देशकी ओर चला। रास्तेमें एक बड़ा भारी जङ्गल मिला। दोपहरमें वहीं एक स्थानपर सारे क़ाफ़िलेका डेरा पड़ा। क़ाफ़िलेके लोग रसोई-पानीकी धुनमें लग गये। इतनेमें भील-जातिके चोर एकाएक कहींसे आकर क़ाफ़िलेमें लूट-पाट मचाने लगे। यह देख, अपने सब साथियों समेत सुलस उनसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। भीलोंने सुलसके सेवकोंको हराकर भगा दिया और सुलसको जीता ही पकड़ कर द्रव्यके लोभसे एक बनियेके हाथ बेंच दिया। उस बनियेने उसे मुँहमाँगे दामोंपर एक ऐसे मनुष्यके हाथ बेंच दिया, जो मनुष्योंके रुधिरकी तलाशमें रहता था। यह आदमी 'पारसकूल' से आया था। वह मनुष्योंको ख़रीद कर अपने देशमें ले जाता और उनके शरीरका रुधिर निकाल कर कुण्डमें डाल देता था। उस रुधिरमें जो जन्तु उत्पन्न होते थे, उन्हींसे कृमिराग (किरमिची रङ्ग) बनता था, जिससे कपड़े रँगे जाते हैं। फिर तो वे कपड़े जला देने पर उनकी राख भी लाल रङ्गकी होती थी। बेचारा सुलस वहाँ बड़ा दुःख उठाही रहा था, कि एक दिन उसके शरीरसे रुधिर निकलता देख, एक भारण्ड पक्षी उसे उठाकर आसमानमें उड़ गया और उसे रोहिताचल पर्वतकी एक शिलापर ला पटका। ज्योंही वह पक्षी उसे खानेको तैयार हुआ, त्योंही एक दूसरे भारण्ड-पक्षीकी दृष्टि उस पर पड़ी, फिर तो दोनों पक्षी आपसमें युद्ध करने लगे। बस, सुलस उनके चंगुलसे बच कर पासकी एक गुफामें चला गया। इसके बाद जब वे दोनों पक्षी दूसरी जगह चले गये, तब सुलस गुफासे बाहर

निकला और झरनेके पानीसे अपनी देह धो, संरोहिणी-औषधिके रस-से अपने घावोंको आराम कर, वह पर्वतसे नीचे उतर आया। वहाँ उसने धूलसे भरे और हाथमें कुदाल लिये हुए कितनेही आदमियों और पञ्चकुलको देखकर एक आदमीसे पूछा,—"भाई यह कौनसा पर्वत है? इस देशका नाम क्या है? यहाँका राजा कौन है? ये आदमी कुदालसे क्या खोद रहे हैं? यह पञ्चकुल कैसे हैं? यह सब बातें कृपाकर मुझे बतलाओ।" यह सुन, उस आदमीने कहा,— "भाई! जो कोई किसी देशमें आता है, वह यह सब बातें ज़रूर पहलेही मालूम कर लेता है। तुम तो इस देशका नाम भी नहीं जानते! तो क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो या पातालसे निकल आये हो? अगर तुम्हें यहाँका कुछ भी हाल नहीं मालूम था, तो फिर तुम यहाँ किस लिये आये?" सुल-सने कहा,— "भाई! तुमने यह जो कहा, कि क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो, वह बिलकुल ठीक है। मैं सच-मुच आसमानसेही टपक पड़ा हूँ।" उसने पूछा,—"सो कैसे?" सुलसने उत्तर दिया,—"एक विद्याधर मेरा मित्र है। उसने मुझसे एक दिन कहा, कि मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सुमेरु-पर्वत दिखा लाऊँ। यह सुन, मैं कौतूहलके मारे उसकी सहायतासे आकाश-मार्गसे चल पड़ा। इतनेमें उसका कोई शत्रु विद्याधर रास्तेमें मिल गया। उस समय मेरा मित्र अपने शत्रुसे लड़ने लगा और मुझे छोड़ दिया, जिससे मैं नीचे गिर पड़ा।" इस प्रकार सुलसने उसे अपनी अक़्लसे ऐसा जवाब दे दिया, जो सचही मालूम पड़ता था। उसने फिर कहा,— "हे भाई! मैं इसी तरह आसमानसे टपक पड़ा हूँ, इसलिये मैंने जो-जो बातें तुमसे पूछी हैं, उनका सिल-सिलेवार उत्तर मुझे दे दो।" यह सुन, उस आदमीने कहा,—"यह रोहणा नामका देश है, इस पर्वतका नाम भी रोहणाचल है। यहाँके राजाका नाम वज्रसागर है। यह पञ्चकुल राजाके ही हैं। हाथमें कुदाल लिये हुए ये लोग ज़मीन खोदकर इसमेंसे रत्न निकाल रहे हैं और इसके लिये राजाको कर देते हैं।" यह सुन, सुलसने सोचा,—"इस

नगरमें कहीं डेरा जमाकर रहना और इस उपायसे धन कमाना चाहिये।" यही सोच कर वह उन्हीं आदमियोंके साथ रत्नपुञ्ज नगरमें चला गया। वहाँ वह एक बूढ़े बनियेके घर जा टिका। उसने उसे भोजन कराया। तब भोजन करके सुलसने उससे सब हाल कह सुनाया। इसके बाद रत्नोपार्जन करनेमें उत्साहित होकर वह कुदाल आदि सामग्रियाँ लेकर रत्न इकट्ठा करने लगा। इसी तरह रत्न-संग्रह करते हुए एक दिन उसे एक बड़ा ही मूल्यवान् रत्न हाथ लगा। किसी-किसी तरह उस रत्नको अपने शरीरके अन्दर छिपा कर वह खानसे बाहर निकला और उस एकके सिवा और सब रत्नोंमेंसे राजाके करका भाग पञ्चकुलोंको देकर पूर्व-दिशाके अलङ्कार-स्वरूप श्रीमत्पत्तन नामक नगरमें जा, वह रत्न बेंच, उसका किराना माल ख़रीद, फिर अपने नगरकी ओर चला। रास्तेमें एक बड़ा भारी जङ्गल मिला। उसमें दावाग्नि धधक रही थी, इसलिये उसका सारा किराना जलकर ख़ाक हो गया। फिर वह अकेला भटकता हुआ एक गाँवमें आया। गाँवके बाहर एक परिव्राजकको देख, उन्हें प्रणाम कर वह उनके पास बैठ रहा। परिव्राजकने उसे मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करते हुए पूछा,—"हे वत्स! तुम कहाँसे आ रहे हो? कहाँ जाओगे? और किस कारण तुम दुनियाँमें अकेले भटकते फिरते हो?" यह सुन, सुलसने कहा,—"मैं अमरपुरका रहने वाला बनियाँ हूँ और धनके लिये इधर-उधरकी ख़ाक छानता फिरता हूँ।" यह सुन, परिव्राजकने कहा,—"बेटा! तुम कुछ दिन मेरे पास रहो, मैं तुम्हें धनेश्वर बना दूँगा।" यह सुन, सुलसने कहा,—"आपकी यह मेरे ऊपर बड़ी भारी दया है!" और उन्हींके पास रहने लगा। परिव्राजकने उसे किसीके घर भोजन करनेके लिये भेजा। वह वहाँसे खाकर चला आया और परिव्राजकसे पूछने लगा,—"पूज्यवर! आप किस तरह मुझे धनाढ्य बनायेंगे?" परिव्राजकने कहा,—"बेटा सुनो। मेरे पास रस-कूपका कल्प मौजूद है। उसके रसकी एक बूँद टपका देनेसे बहुतेरा लोहा सोना हो जाता है। वही चीज मैं तुम्हें दूँगा।

पहले तुम जाकर एक बड़ीसी भैंस की पूँछ लाकर मुझे दो।" उनकी यह बात सुन, सुलसने एक मरी हुई भैंसकी पूँछ लाकर परिव्राजकको दी। योगीने उस पूँछको छः महीने तक तेलमें डुबो रखा। इसके बाद योगीने एक हाथमें कल्प-पुस्तक और दूसरे हाथमें वही पूँछ रख ली और सुलसके माथे पर दो रस्से, दो तुम्बियाँ, एक खटोली, बलिदान-की टोकरी और अग्निका पत्र रख दिया और दोनों वहाँसे चलकर पर्वतके मध्यमें गुफाके द्वारपर आ पहुँचे। वहाँ जो यक्ष प्रतिमा रखी थी, उसकी पूजा कर, वे दोनों गुफाके अन्दर घुसे। वहाँ जो कोई भूत, वैताल राक्षस विघ्न करनेके लिये उठ खड़ा होता था, उसे सुलस नि-निडर मनसे बलिदान देता जाता था। यह देख, योगी बडा प्रसन्न हुआ। आगे जाने पर एक विवर मिला। उसमें खूप अँधेरा था। उस अन्धकार-को दूर करनेके लिये, उन्होंने वही भैंसकी पूँछ जलायी और उसीके प्रकाशमें वे दोनों उस योजन-प्रमाण विवरको पारकर गये। इतनेमें चार हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा चौरस रसकूप देखकर दोनोंको बड़ा हर्ष हुआ। इसके बाद योगीने उस खटोलीको तैयार कर उसके दोनों ओर दो रस्से बाँध दिये और सुलससे कहा,—"सुलस! तुम इन दोनों तुम्बियोंको हाथमें लिये हुए इस खटोली पर बैठ कर कुएँमें उतर पड़ो।" यही सुन, सुलस दोनों तुम्बियाँ लिये हुए खटोली पर बैठ गया। योगीने धीरे-धीरे रस्सेको नीचे लटकाना शुरू किया। क्रमशः वह रसके पास पहुँच गया। इसके बाद वह नवकार-मन्त्रका उच्चारण कर रस लेने लगा, इसी समय उसके भीतरसे शब्द निकला,—"यह रस आदमीको कोढ़ी बना देता है, इसलिये हे साधर्मिक! तुम हाथसे इस रसको मत छुओ। यदि यह रस देहसे छू जायेगा, तो तुम्हारी जान चली जायेगी। तुम जैन-धर्मके आराधक हो, इसलिये मैं तुम्हारी सहा-यता करनेको तैयार हूँ। इन दोनों तुम्बियोंको तुम मुझे दे दो—मैं इनमें रस भर दूँगा।" वह शब्द सुन, सुलसने कहा,—"तुम मेरे धर्म-बन्धु हो, इसलिये मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। कहा है, कि—

'अन्ने देसे जाया, अन्ने देसे वड्ढिया देहा।
जे जिणसासणरत्ता, ते य मे बन्धवा भणिया ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"जो अन्य देशमें उत्पन्न हुए और अन्य देशमें ही जिनके शरीरने वृद्धि पायी है, वे भी जिन शासनानुरक्त होनेके कारण मेरे बन्धु हैं।"*

"अब तुम मुझे अपना वृत्तान्त कह सुनाओ। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। तुम कौन हो और इस कुएँमें कैसे आ पहुँचे हो, यह सब मुझे बतला दो।" इसके उत्तरमें उसने कहा,—"हे बन्धु! मेरा हाल सुनो। मैं विशालानगरीका रहनेवाला जिनशेखर नामका वणिक् हूँ। व्यापारके निमित्त जहाज पर चढकर मैं समुद्रमें जा रहा था, कि एकाएक रास्तेमें मेरा जहाज़ नष्ट हो गया। बड़े कष्टसे एक तख्ता पकड़ कर मैं जीतेजी समुद्रके बाहर निकला। इसके बाद जङ्गलमे घूमते-फिरते मुझे एक परिव्राजक मिल गया, जिसने मुझे रसका लोभ दिखा, इस कुएंमें लाकर ढकेल दिया। ज्योंही मैं तुम्बियाँ भर कर कुएँके मुंह पर पहुँचा था, त्योंही उसने मुझसे तुम्बियाँ लेकर मुझे कुएँमें डाल दिया। मैं अनुमान करता हूँ, कि तुम्हें भी वही योगी कुएँमें उतार लाया है। वह बड़ा ही दुष्टात्मा है। उस पर हरगिज़ विश्वास न करना। हे सुश्रावक! अब तुम भी मुझे अपना नाम आदि बतला दो।" इसके उत्तरमें सुलसने उससे अपना वृत्तान्त कह सुनाया। इसके बाद उसके साधर्मिकने वे दोनों तुम्बियाँ रससे भर कर उसे दे दीं। तदनन्तर खटोलीके नीचे दोनों तुम्बियोंको बाँधकर सुलसने रस्सा हिलाया। तब परिव्राजकने उसे कुएँके मुँहके पास-तक खींच लाकर कहा,—"हे भद्र! पहले तुम मुझे वे दोनों तुम्बियाँ दे दो, इसके बाद मैं तुम्हें बाहर निकालूँगा।" सुलसने कहा,—"दोनों तुम्बियाँ ख़ूब मजबूतीके साथ खटोलीके पायेमें बँधी हैं।" यह सुन, योगीने उससे फिर तुम्बियाँ माँगीं; पर उसने नहीं दी। तब उसने तुम्बियों सहित सुलसको कुएँमें डाल दिया और आप कहीं और

चला गया। शुभकर्मोंके योगसे सुलस कुएँकी मेखलाके ऊपर आ गिरा—रसमें नहीं डूबने पाया। तब वह बड़े ऊँचे स्वरसे नवकार-मन्त्रका उच्चारण करने लगा। कहा भी है, कि—"यह श्रेष्ठ नवकार-मन्त्र मङ्गलका स्थान है, यह भयका नाश करता है, सकल संघको सुख उत्पन्न करता है और चिन्ता करनेसे ही सुख देनेवाला है।"

इसके बाद अत्यन्त दुःखित हो कर वह आप-ही-आप अपनेको इस प्रकार बोध देने लगा,—"हे जीव! यदि तुमने परिग्रहसे विरति कर ली होती, तो हरगिज़ ऐसे कष्टमें नहीं पड़ते। हे प्राणी! अब भी तो तुम अपनी आत्माको साक्षी दे कर संयम ग्रहण कर लो और अनशन-व्रत करना आरम्भ करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा शीघ्र ही इस संसारसे निस्तार हो जायेगा।" ऐसा कह कर वह ज्योंही चारित्र लेनेको तैयार हुआ, त्योंही कुएँके मध्यमें रहनेवाला जिनशेखर श्रावक बोला,—"हे भद्र! चारित्र ग्रहण करनेको ऐसे आतुर मत होओ। इस कुएँसे निकलनेका एक उपाय है। उसे सुन लो। एक बड़ा भारी साँड किसी रास्तेसे कभी-कभी यहाँ रस पीनेके लिये आता है। ज्योंही वह रस पीकर पीछे लौटने लगे, त्योंही तुम खूब मज़बूतीसे उसकी पूँछ पकड़ कर बाहर निकल जाना। मैं अब मरा चाहता हूँ, इस लिये मुझे आराधना कराओ।" यह सुन, उसका अन्तिम समय आया जान, जिनशासनके तत्वको जाननेवाले सुलसने उसे उत्तम आराधना करायी; निर्यामणा करायी; चार शरण कह सुनाये; अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु जिनमें मुख्य हैं, ऐसे पाँच पदोंकी व्याख्या करके उसे उनका स्मरण कराया और चौरासी लाख जीवयोनिके जीवोंको मिथ्यादुष्कृत दिलवाये। इस प्रकार आगममें बतलायी हुई आराधना सुलसने उसे विस्तारके साथ करा दी, जिसे जिनशेखर श्रावकने अपने चित्तमें अङ्गीकार किया। इसके बाद अनशन ग्रहण कर, मन-ही-मन नवकार मन्त्रका स्मरण करते हुए शुभ-ध्यान-पूर्वक मृत्युको प्राप्त हो कर वह श्रेष्ठ श्रावक आठवें देव-

लोकमें जा देवता हुआ। उस समय घनी अँधियारीके मारे कुछ नहीं नज़र आने पर भी उसे बातका जवाब देते नहीं देखकर सुलसने यह जान लिया, कि वह मर गया और शोकातुर हो कर गाढ़ स्वरसे रोदन करने लगा,—"हे जिनशेखर श्राद्ध! हा धर्मबन्धु! हा धर्मगुणके स्थान! मुझ दुखियाको छोड़ कर तुम कहाँ चले गये? तुम तो आराधनारूपी रस्सीको पकड़ कर इस संसार कूपसे बाहर हो स्वर्गमें चले गये और मैं रसकूपमें पड़ा-पड़ा केवल इसी विचारमें पड़ा हुआ हूँ।"

वह इसी तरह विलाप कर रहा था, कि इतनेमें एक साँड़ वहाँ आया। वह ज्योंही रस-पान कर पीछेलौटने लगा, त्योंही सुलसने बड़ी मज़बूतीसे उसकी पूँछ पकड़ ली। इसके बाद बड़े कष्टसे कहीं सो कर, कहीं बैठ कर, कहीं शरीर सिकोड़ कर, कहीं शरीर घसीटते हुए, वह उस साँड़की पूँछ पकड़े बाहर निकला। बाहर आते ही सूर्यका प्रकाश और गिरि-गुफा आदिको देखकर उसने उस साँड़की पूँछ छोड़ दी। यह देख, भयभीत होकर वह साँड़ अपने स्थानको भाग गया।

इसके बाद सुलस एक ओर चल पड़ा। इसी समय जंगली हाथियोंने उसे देखा और उसकी ओर दौड़े। उसी समय सुलसने अपने मनमें सोचा,—"मैं तो एक दुःखसे उद्धार भी नहीं पाने पाता, कि दूसरा दुःख प्राप्त हो जाता है। अब मैं क्या करूँ? और कहाँ जाऊँ?" ऐसा विचार कर वह ज्योंही भयके मारे भागा चाहता था, त्योंही एक हाथीने क्रोधके मारे उसे सूँड़से पकड़ कर आसमानमें उछाल दिया। दैवयोगसे आसमानसे गिरते समय वह एक वृक्ष पर गिर पड़ा। वह उसकी शाखा पकड़े हुए वहीं लटका रहा। हाथी भी वहीं पहुँच कर क्रोधके मारे उसे मारने लगा। इतनेमें एक सिंहने आकर उस हाथीको मार डाला। उसी हाथीको खानेके लिये एक बाघ भी आ पहुँचा। एक भक्ष्यके लिये दो खानेवाले तैयार हो गये, बस, सिंह और बाघमें परस्पर युद्ध होने लगा। युद्ध करते-करते रात हो गयी। इसी समय वृक्षकी एक शाखामें सुलसने प्रकाश

देखा। बस, वह आलस्य छोड़, आश्चर्य सहित उस शाखापर पहुँच गया। वहाँ उसने एक पक्षीके घोंसलेमें एक उत्तम मणि और साँप-की ठठरी देखी। यह देख, उसने सोचा,—"अवश्य ही यह विष उतारनेवाली सर्प-मणि है। इसीका यह प्रकाश है।" ऐसा विचार कर, उस रत्नको हाथमें लिये हुए सुलस उस वृक्षसे नीचे उतरा। उस मणिका प्रकाश देख, बाघ और सिंह भी भाग गये। क्रमशः सवेरा हो गया। इसके बाद उस मणिको वस्त्रके छोरमें बाँधे हुए वह सात दिन बाद उस जङ्गलके पार हुआ। वहाँ एक पर्वतपर आगका उँजेला देखकर सुलस उसीकी सीधपर चलकर वहाँ पँहुचा और कितने ही आदमियोंको धातुवाद करते देखा। द्रव्यकी इच्छासे वह कितने ही दिन तक उनके पास रहा और उनकी सेवा करने लगा। वह उन्हीं लोगोंके साथ खाता-पीता भी था। सुवर्ण सिद्धिके लिये उसने बहुत दिनोंतक धातुवाद किया, परन्तु जब कुछ भी अर्थसिद्धि नहीं हुई, तब उसने अपने मनमें सोचा,—

'धातु धमेविण जा धण आसा, सिर मुंडेविण जा रूवआसा।
वेस धरेविण जा घर आसा, तिन्निवी आसा हुइ निरासा ॥१॥'

*अर्थात्*—*"धातु फूँके विना धनकी आशा, सिर मुँड़ाये विना रूपकी आशा, और वेश बनाये विना घरकी आशा, ये तीनों आशायें मुझे तो निराशा रूपमें हुई हैं।"*

ऐसा विचार कर, वह एक दिन धातुके विषयमें भग्नचित्त और निरुत्साह होकर रातको सोया हुआ था,—कि इसी समय उन धातु-वादी पुरुषोंने उसे नींदमें बेहोश देख, उसके वस्त्रके छोरसे वह मणि निकाल ली और उसके स्थानमें एक पत्थरका टुकड़ा बाँध दिया। इसके बाद प्रातःकाल उठकर सुलस वहाँसे चल पड़ा और क्रमशः अटवी शीर्षक नामक नगरमें आ पहुँचा। वहीं उस रत्नको बेंचनेके लिये उसने अपनी गाँठ खोली, तो रत्नकी जगह पर पत्थर देख कर वह सोचने लगा,—"ओह! उन धातुवादियोंने तो मुझे लूट लिया। अब

उन्हें मैं क्या दोष दूँ? सब मेरे कर्मोंका दोष है।" ऐसा विचार कर वह मन-ही-मन झींकने लगा।

एक बार उसने अपने मनमें सोचा,—"मेरा जीना व्यर्थ है, अब मेरा मर जाना ही अच्छा है।" ऐसा विचार कर, अँधियाले पाखकी चौदसके दिन आधी रातके समय, सुलस श्मशान-भूमिमें जाकर उच्च-स्वरसे कहने लगा,—'हे भूत-वैताल और राक्षसो! तुम सब साव-धान होकर मेरी एक बात सुनो। मैं महामाँस बेंचता हूँ, जिसे इच्छा हो, आकर ले जाये।" उसकी यह बात सुन, भूत, प्रेत और वैताल आदि किलकिल-शब्द करते, तत्काल हाथमें शस्त्र लिये, हर्षसे नाचते-कूदते हुए वहाँ महाभुक्खड़ोंकी भाँति आ पहुँचे और बोले,—"हे पुरुष! यदि तुम वैराग्य प्राप्त कर, महामाँस दे रहे हो, तो यहीं भूमिपर पड़ जाओ। हम तुम्हारा माँस ले लेंगे।" यह सुन, सुलस निडर हो कर ज़मीनपर पड़ गया। इसके बाद ज्योंही वे भूत, वैताल आदि उसका माँस ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए, त्योंही जिनशेखर देव, सुलसकी यह अवस्था देख, जल्दी-जल्दी वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही सब भूत-प्रेत भाग गये। तब उस देवने कहा,—"हे सुलस श्रावक! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। जिनशासनमें निपुण होकर भी तुमने ऐसा विरुद्ध काम क्यों करना चाहा था? क्या तुम मुझे पहचानते हो? मैं तुम्हारा मित्र जिनशेखर हूँ। तुमने मुझे कुएँमें निर्यामणा करायी थी। तुम्हारी उसी आराधनाके प्रभावसे मैं सहस्रार नामक आठवें देवलोकमें जाकर इन्द्रकी समानताका देवता हो गया हूँ। इसलिये तुम मेरे गुरु हो।" यह सुन, सुलस भी जिनशेखरको देव हुआ जान, उसे देखकर तत्काल उठ खड़ा हुआ और बोला,—"हे धर्मबन्धु! मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ।" यह कह, उसने कुशल-मङ्गल पूछा। इसके बाद देवने कहा,—"हे भद्र! मैं तुम्हारा कौनसा मनचीता काम कर दूँ? वह बतलाओ। तब सुलसने कहा,—"मुझे तुम्हारे दर्शन हुए, इससे मैं बड़ा खुशी हुआ, तो भी मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ, कि अभी मेरे गाढ़े अन्तराय

कर्मोंका क्षय हुआ है या नहीं? यदि क्षय हो गया हो, तो मैं दीक्षा ले लूँ।" देवने कहा,—"भाई! तुमने पूर्व जन्ममें कुछ देवद्रव्य नष्ट कर दिया था, इस समय उसी कर्मका उदय हुआ है; पर अब वह प्राय: क्षीण हो चला है—हाँ, समस्त क्षय नहीं हुआ है। इसलिये तुम अभी दीक्षाके योग्य नहीं हो।" यह कह, उस देवने उसे प्रसन्नता-पूर्वक बहुमूल्यवान् सुवर्ण समूह तथा उत्तम वस्त्र आदि बहुतसी चीज़ें दीं। इसके बाद सुलसने कहा,— "हे देव! तुम मुझे इस धनके साथ मेरे घर पहुँचा दो, जिससे मेरी प्रसिद्धि हो।" यह सुन, देवने वैसा ही किया और उसे पहुचा कर अपने घर चला गया।

राजाने सुलसके आगमनका हाल सुनकर बड़ी धूम-धामके साथ उसका नगरमें प्रवेश कराया। सुलसने भी राजाको नज़राने देकर उनकी पूरी भक्ति की। इसके बाद सुलसकी कुलवती पत्नीने पतिके आगमनके उपलक्षमें बड़ी धूम-धामकी बधाइयाँ बैठायीं और हर्षके साथ पतिका सत्कार किया। कामपताका नामकी वह वेश्या, सुलसके जाने बाद उसी नगरमें रहती हुई बालोंकी वेणी बाँध, श्वेत वस्त्र पहने, अन्य पुरुषोंका त्याग कर, शुद्ध शीलका पालन करनेमें तत्पर और सुलसके ही ध्यानमें मग्न रहती थी। वह प्रेममयी भी सुलसकी दूसरी स्त्री बन गयी। सुलस दोनों स्त्रियोंके साथ भोग-विलास करने लगा।

एक दिन सुलसने अपने मनमें सोचा,—"रे जीव! लोभमे पड़कर लम्पटताके कारण परिग्रहका प्रमाण किये बिना तुम्हें कौन-कौनसा दु:ख नहीं उठाना पड़ा? अब भी तो तुम परिग्रहका परिमाण करो।" ऐसा विचार कर, उसने अपने ही मनसे परिग्रहका परिमाण किया और बहुत सा धन जिनचैत्य आदि सात धर्मक्षेत्रोंमें लगाया। वे क्षेत्र इस प्रकार हैं,—जिनभवन, जिनप्रतिमा, आगम-ग्रन्थ और चार प्रकारके संघ—ये सात क्षेत्र हैं। इनके उपरान्त जीर्णोद्धार, पौषधशाला और साधारणमें भी उसने बहुतसा धन लगाया। तदनन्तर बहुतसा धन व्यतीत होने पर कर्मके दोषसे उसका धन ग्रीष्मकालके सरोवरकी तरह

क्षीण हो गया। इससे उसके मुखकी कान्ति भी नष्ट हो गयी। कहा भी है—

"वरं बाल्ये मृत्युर्न तु विभवहीनं निवसनं,
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमागारगमनम्।
वरं वेश्या भार्या न पुनरविनीता कुलवधू,
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे॥ १॥"

*अर्थात्—"लड़कपनमें ही मर जाना अच्छा; पर बिना वैभवके जीना अच्छा नहीं। प्राण त्यागकर देना अच्छा, पर अधम पुरुषके घर जाना अच्छा नहीं। वेश्या स्त्री हो सो भली, पर कुलवधू होकर भी जो विनयी नहीं हो, वह अच्छी नहीं। जंगलमें रहना अच्छा; पर अविवेकी राजाके नगरमें बसना अच्छा नहीं।"*

इसी समय वही देव, उसकी निधनताका हाल अवधिज्ञान द्वारा जानकर फिर उसके पास आया और बोला,—"हे सुलस! तुम ऐसे शोकाकुल क्यों हो रहे हो? मेरे जैसा मित्र होते हुए भी तुम्हें चिन्ता काहे की है?" यह कह, प्रसन्न होकर उसने तत्काल उसके घरके आँगनमें कुबेरकी तरह सुवर्णकी वर्षा की। यह देख, सुलसने कहा,—"हे मित्र! इतना धन मुझे नहीं चाहिये; क्योंकि मैंने तो परिग्रहका प्रमाण किया है।" यह सुन, देवने कहा,—"हे भद्र! तुमने यह बहुत ही अच्छा किया; क्योंकि मुनीश्वरोंने कहा है, कि जैसे-जैसे लोभ कम होता है, वैसे-वैसे आरम्भ और परिग्रह भी कम होता जाता है और इनके कम होनेसे मनुष्योंको सुख तथा धर्मकी सिद्धि होती है।" यह कह, उसने सुलसके इच्छानुसार उसे धन दिया और उससे विदा माँग कर अपने स्थानको चला गया।

एक दिन सुलस, नगरके बाहर बगीचेमें गया, वहाँ उसने एक जगह ख़ज़ाना देखा। उसी समय राजाके नौकरने उसे ख़ज़ाना देखते देख लिया। उसके जाने बाद राजपुरुषने भी उस ख़ज़ानेको देखकर अपने मनमें सोचा,—"ठीक है, आज हमलोग देख रहे थे इसीलिये सुलस इस

ख़ज़ानेको नहीं ले गया; पर कल छिपकर आयेगा और इसे उठा ले जायेगा।" इसके बाद दूसरे दिन भी बाहर जानेपर सुलसने उसी तरह ख़ज़ाना पड़ा हुआ पाया। उसी समय गुप्त रीतिसे दूर छिपे हुए राज-कर्मचारियोंने भी उसको देखा। इसी तरह उसने सात दिनोंतक उस ख़ज़ानेको देखा; पर लिया नहीं। राजपुरुषोंने भी उसे इसी तरह आकर चले जाते देखा; पर ख़ज़ाना ले जाते नहीं देखा। इसके बाद आठवें दिन सुलस उस ओरका रास्ता छोड़ दूसरी तरफ़ शौच करने गया। यह देख, राजपुरुषोंने विस्मयमें पड़ कर यह सब हाल राजासे जाकर कह सुनाया। यह सुन, राजाने सुलसको बुलवाकर पूछा,—"हे सुलस! तुमने ख़जाना आँखों देखा; पर लिया नहीं। इसका क्या कारण है?" सुलसने उत्तर दिया,—"स्वामी! मैंने परिग्रहका प्रमाण किया है, इसके लिये यदि मैं उस निधानको लेता, तो मेरे पास परिमाणसे अधिक धन हो जाता और इससे मेरा नियम भंग हो जाता। इसलिये मैंने उस धन-को हाथ नहीं लगाया।" यह सुन, उसकी निर्लोभता देख, राजाने उसकी इच्छा नहीं होते हुए भी उसको अपने ख़ज़ानेका निरीक्षक बना दिया।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें श्रीअमरचन्द्र नामक चारों ज्ञानवाले जैनाचार्य पधारे। किसीने सुलससे आकर उनके आनेका हाल कह सुनाया। इसके बाद राजा और सुलस दोनोंही सपरिवार गुरुके पास आ, उन्हें प्रणाम कर, उचित स्थानपर बैठ रहे। गुरुने प्रतिबोध तथा प्राणियोंको मनोवांछित पदार्थ देनेवाली धर्मदेशना सुनायी, जिसे सुन, अवसर देखकर सुलसने गुरुसे पूछा,—"हे भगवन्! मुझे बड़े कष्टसे लक्ष्मी प्राप्त होती और हाथसे निकल जाती थी, इसका क्या करण है? कृपा कर कहिये।" यह सुन, चतुर्विध ज्ञानको धारण करनेवाले गुरुने कहा,—"हे भद्र! बार-बार लक्ष्मी प्राप्त होकर भी क्यों तुम्हारे हाथसे निकल जाती थी, उसका कारण सुनो—

"ताम्राकर नामक ग्राममें तुम ताराचन्द्र नामके किसान थे। पहले उसे दान करनेकी बड़ी श्रद्धा रहती थी। वह याचकों तथा साधुओंको

खूब दान दिया करता था। क्रमशः वह श्रावक हो गया। एक दिन उसने अपने मनमें सोचा,—"मैंने इतना दान किया, अब ज़माना वैसा नहीं रहा, इसलिये अब तो साधुओंको दान नहीं दूँगा। इन्हें देनेका भला कौनसा फल है? याचकोंको ही देना ठीक है. क्योंकि इन्हें दान देनेसे लोकमें सर्वत्र प्रसिद्ध होती है और प्रशंसा होती रहती है। परन्तु साधुओंको देनेसे क्या नतीजा होता है? वे तो किसीसे जाकर प्रशंसा भी नहीं करते। इस प्रकार सोच-विचार कर ताराचन्द्रने बीच-बीचमें अविवेकके कारण दृढ़ अन्तराय-कर्म उपार्जन किया। फिर एक बार साधुओंको देखकर उसे दान देनेकी बड़ी श्रद्धा हुई, इसीलिये उसने उन्हे दान दिया। इसके सिवा हे वत्स! उस भवके पूर्व भवमें तुमने कुछ देवद्रव्य नष्ट कर डाला था। इसके बाद बहुत बार संसारमें भ्रमण कर तुम किसान हुए थे। उस भवमें तुमने बहुत दान-पुण्य किया था. पर पीछे दुर्बुद्धि उत्पन्न होनेके कारण उसे खण्डित कर दिया था। अन्तमें ताराचन्द्रने समाधिस्मरण द्वारा मृत्यु पाकर सौधर्म-लोकमें देवत्व प्राप्त किया और वहाँसे आयुष्य पूरा होने पर इस भवमे तुम सुलस नामके सेठके बालक हुए। पूर्वजन्मके कर्मोंके प्रभावसे ही तुम्हारे पास लक्ष्मी टिकने नहीं पाती थी। इसीलिये हे श्रेष्ठी पुत्र! विवेकी प्राणियोंको चाहिये, कि मनको शुद्ध करके दान दें और उसमे पीछे मीन मेष न करें। और-और धर्म-कार्य भी श्रद्धाके ही साथ करने चाहिये; क्योंकि श्रद्धापूर्वक किया हुआ धर्म-कार्य ही सफल होता है।"

इस प्रकार गुरुके मुखसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्त कर, सुलसने राजासे कहा,—"हे राजन्! मुझे आज्ञा दीजिये, तो मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँ।" राजाने कहा,—"मुझे भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ है, इसलिये तुम्हारे ही साथ-साथ मैं भी दीक्षा ले लूँगा।" यह कह, राजाने अपने घर जा, अपने पुत्रको गद्दी पर बैठा दिया। इसके बाद राजा और सुलस, उत्तम भावनासे अपनी आत्माको धन्य मानते हुए गुरुके पास आये और दोनोंने ही चारित्र ग्रहण कर लिया। संयम

अङ्गीकार करनेके वाद उन्होंने बडी उग्र तपस्या की । क्रमसे सुलस सब कर्मोंका क्षय कर, उसी भवमें केवल-ज्ञानको प्राप्त हो, मोक्षको प्राप्त हो गया ।"

इस प्रकार पाँचवें अणुव्रतके विषयमें भगवान्-श्रीशान्तिनाथने राजा चक्रायुधको सुलसकी कथा कह सुनायी ।

सुलस-कथा समाप्त ।

फिर स्वामीने कहा,—"हे राजन्! मैंने तुम्हें पाँचवें अणुव्रतका हाल सुना दिया । अब मैं तुम्हें दिग्परिमाणव्रत, भोगोपभोग-परिमाण-व्रत और अनर्थ-दण्ड त्याग-व्रत इन तीनों गुणव्रतोंका वर्णन सुनाता हूँ, उसे सुनो । पूर्वादि चारों दिशाओं और ऊर्द्ध तथा अधो दिशामें गमन करनेका परिणाम करना ही दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत कहलाता है । दिशाओंका प्रमाण नहीं करनेसे जीव अनेक प्रकारके दुःख पाता है । स्वयंभूदेव नामक वणिकने वैसा नहीं किया, इसीलिये म्लेच्छ-देशमें जाकर उसने बड़ा दुःख उठाया था ।" यह सुन, राजाने पूछा,—"हे स्वामी! उसका हाल कह सुनाइये ।" तब प्रभुने कहा,—

## स्वयंभूदेवकी-कथा
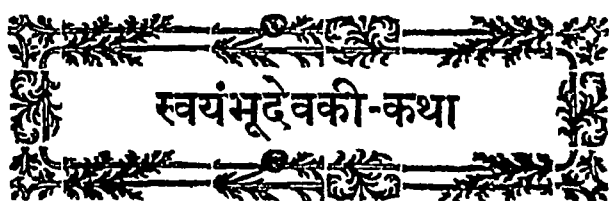
इसी भरतक्षेत्रमें गंगातट नामका नगर है । वहाँ सुदन्त नामके एक राजा रहते थे । राजा अपने नगरमेंही रहते और सर्वत्र दूत भेजकर अपने अधीन देशभरका समाचार मँगवाया करते थे । उसी नगरमें स्वयंभूदेव नामक एक किसान रहता था । वह खेतीका काम करता था; पर उसके जीमें सन्तोष नहीं था । एक दिन पिछली रातको उठकर उसने सोचा,—"यहाँ रहनेसे मुझे जैसा चाहिये, वैसा लाभ नहीं होता, इसलिये कहीं और जाकर खूब धन पैदा कर अपने समस्त मनोरथ सफल करूँ, तो ठीक हो ।" ऐसा विचार कर, वह बनज-

व्योपारके लिये सामान लेकर उत्तरापथकी ओर चला। क्रमसे वह लक्ष्मी-शीर्षक नामक नगरमें आ पहुँचा। उस नगरमें प्रवेश कर, उसने अपना व्यापार फैलाया। उसमें उसे भाग्यानुसार लाभ भी हुआ। वहाँसे वह धनकी आशासे और-और नगरोंमें भी गया; पर कहीं भाग्यसे अधिक नहीं मिला। तो भी उसके मनमें यह बात नहीं आयी, कि—

"भाग्याधिकं नैव नराधिपोऽपि, ददाति वित्त चिरसेवकेभ्य:।
निरन्तरं वर्षित वारिधार-स्तथापि पत्रत्रितय पलाशे ॥१॥"

*अर्थात्—"राजा अपने सदाके सेवकोंको भी उनके भाग्यसे अधिक धन नहीं दे सकता; वर्षाऋतुमें निरन्तर जलधारा पड़ती रहने पर भी ढाकके वही तीन पात होते हैं।"*

इस बातको सोचे बिना वह भाग्यसे अधिक फलकी इच्छासे किसी दूसरे नगरमें गया। वहाँ कितने ही बनियोंको देखकर उसने पूछा,—"हे व्यापारियो! तुम लोग किस देशसे आये हो?" उन्होंने कहा,—"हम लोग व्यापार करनेके लिये चिलात-देशमें गये हुए थे और वहाँसे खूब मालमता पैदा कर यहाँ आये हुए हैं।" यह सुन, स्वयंभूदेवने बहुतसा किराना माल ले, खाने-पीनेकी सामग्री तथा बहुतसे आदमियोंके साथ, उस देशकी ओर प्रस्थान किया। क्रमसे चलते हुए महातप्त वालुकामय मार्गको पारकर, अति शीतल हिममार्गको भी लाँघकर, वह अति विषम पार्वतीय मार्गमें आ पहुँचा। लोभके फन्देमें फंसा हुआ आदमी क्या-क्या नहीं करता? इसके बाद वह चिलात-देशके पास पहुँच गया इतनेमें वहाँके म्लेच्छ-राजाका जो शत्रु-राजा था, उसके सैनिकोंसे उसकी मुलाक़ात हुई। उस शत्रु-राजाने जब सुना, कि यह आदमी चिलात-देशमें जा रहा है, तब उसका सारा समान लूट लिया और उसे अपने नगरकी ओर लौट जानेको मजबूर किया। परन्तु स्वयंभूदेव किसी-किसी तरह उन लोगोंकी नजर बचाकर गुप्त रीतिसे चिलात-देशमें पहुँच गया। वहाँ भीलोंके लड़कोंने उसे पकड़कर उसके सारे शरीरको रुधिरसे पोत दिया। इसके बाद उन दुष्टोंने उसे एक जगलमें ले

जाकर छोड़ दिया। वहाँ उसे मुरदा समझकर उसपर बहुतसे पक्षी आकर बैठने लगे और चोंचकी ठोकरसे उसे पीड़ा पहुँचाने लगे। यह देख, भील-बालकोंने बाण मारकर गिद्ध आदि पक्षियोंको मार गिराया। इस प्रकार सन्ध्यापर्यन्त उसकी फ़ज़ीहत कर, वे उसे घर ले आये और उसे बन्धनसे मुक्तकर, खिला-पिलाकर बड़े यत्नसे उसे घरमें छिपा रखा। दूसरे दिन फिर उन सबने उसकी वैसी ही विडम्बना की। इस प्रकार उसने बहुत दिन तक दुःख भोगा। एक दिन भीलोंके लड़कोंने उसकी वैसी ही दुर्गतिकर, उसे जंगलमें छोड़ दिया। इतनेमें वहाँ एक बाघिन आयी। उसके डरके मारे भीलके वे लड़के भाग गये और वह बाघिन स्वयंभूदेवको उठाकर अपने बच्चोंके भोजनके लिये जङ्गलमें ले गयी। वहाँ अपनी डाढ़ोंसे उसके हाथ-पैरोंके बन्धन काट-कर, उसे वहीं छोड, वह बाघिन अपने बच्चोंको बुलाने चली गयी। इसी समय स्वयंभूदेव वहाँसे भागा और नदीमें अपना शरीर धो, एक क़ाफ़ि-लेके सङ्ग हो लिया। उन्हीं लोगोंके साथ चलकर वह कुछ दिनों बाद अपने घर पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने सोचा,—"रे जीव! तू अधिक लोभके कारण चिरकाल तक दुनियाँ भरकी ख़ाक छानता फिरा, पर तू भरपेट भोजन भी न पा सका। तू जीता घर लौट आया, इसीको बड़ा भारी लाभ समझ ले।" इस प्रकारका विचार मनमें आनेसे उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने एक मुनिसे चरित्र ग्रहण कर लिया तथा उसका अतिचार सहित पालनकर, आयुष्य पूर्ण होने पर, मरकर स्वर्ग चला गया।

स्वयंभूदेव-कथा समाप्त।

यह कथा सुनाकर भगवान्‌ने कहा,—"भोगोपभोगका प्रमाण कर लेना दूसरा गुणव्रत कहलाता है। यह व्रत भोजन और कर्मके भेदसे दो प्रका-रका है। इनमें भोजनका व्रत यह है, कि विवेकी मनुष्य अनन्तकाय आदि अभक्ष्योंका भक्षण न करें और समस्त खर-कर्म (कर्मादान) त्याग करना, कर्मका व्रत कहलाता है। इनमे भी भोजन-विषयक व्रतमे इन पाँच अतिचारोंका त्याग करना चाहिये—१ सचित्त आहार, २

सचित्त * मिश्रआहार, ३ दुष्पक्क आहार, ४ अपक्क आहार और ५ तुच्छ औषधिका भक्षण-भोजनके विषयमें येही पाँच अतिचार कहे जाते हैं। कर्मके विषयमें अङ्गार-कर्म आदि पन्द्रह कर्मादानोंको ही पन्द्रह अतिचार समझना चाहिये। हे चक्रायुध राजा! तुम्हें इन सब अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिये। भोगके विषयमें जितशत्रु राजा तथा उपभोगके विषयमें नित्यमण्डिता ब्राह्मणी का दृष्टान्त है।" भगवान्‌की यह बात सुन, चक्रायुध राजाने उनसे इन दोनोंकी कथा पूछी। इसपर प्रभुने मधुर वाणीमें कहा,—

## अजितशत्रु राजाकी कथा।

इसी भरतक्षेत्रमें वसन्तपुर नामका नगर है। उसमें जितशत्रु नामके एक राजा रहते थे। उनके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि था। राजा उसे बहुत मानते और प्यार करते थे एक बार उलटी शिक्षा पाये हुए दो घोड़ों पर राजा और मन्त्री सवार हुए। वे घोड़े उन्हें एक निर्जन वनमें ले गये। वहाँ वे दोनों तीन दिन तक भटकते फिरे। इतनेमें पीछे लौटती हुई उनकी सेनासे उनकी मुलाक़ात हो गयी। उन्हींके साथ-साथ वे दोनों चौथे दिन भूखे-प्यासे अपने घर आये। क्षुधासे पीड़ित राजाने उसी समय अपने रसोइयेको बुलवाकर उससे जघन्य, मध्यम और उत्तम सब तरहकी रसोई तुरत तैयार करवायी। कहा भी है, कि—

> 'त्रिविधमुदितमन्नं शृङ्गाघण्ट सुशीर्षं,
> जलदलफलपुष्पं पल्लवं पञ्चशाकम्।
> जलथलनभमेतन्मांसमेनं त्रिधा हि,
> षटरसजलयुक्तं भोज्यमष्टादश च ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"तीन प्रकारका अन्न, शृग-घंट, सुशीर्ष, जलसे उत्पन्न,*

---

* ये शब्द ठीक-ठीक समझमें नहीं आते, पर सम्भवतः इनका अर्थ वनस्पतियाँ, पक्वान्नों तथा पकाये हुए पदार्थोंका आहार है।

*पत्र, पुष्प और फल तथा पल्लव और पाँच प्रकारके शाक । इसके सिवा जलचर, थलचर और नभचरका (अर्थात् खेचर-तिर्यंचोंका) मांस—इन सबको षड्रस-युक्त जलके साथ तैयार करना—येही अठारह प्रकार भोजनके हैं ।"*

इसके बाद नटके नाटकका दृष्टान्त मन-ही-मन याद करते हुए राजा-ने पहले जघन्य आहार किया । इसके बाद मध्यम और उत्तम आहार भी इस तरह गलेतक ठूँस-ठूँस कर खाया, कि उनके पेटमें हवाकी भी गुंजाइश न रही । इससे राजाको हैज़ा हो गया । उसी बीमारीसे मरकर वे व्यन्तर हुए । सुबुद्धि मंत्रीने अपने शरीरकी हालत देख, सोच-समझकर भोजन किया, इसीलिये वह दुखी नहीं हुआ । इस प्रकार मैंने तुम्हें भोगमें लुब्ध होनेका बुरा नतीज़ा कथाके द्वारा बतलाया । अब उपभोगकी निवृत्ति नहीं होनेसे जो दोष होता है, उसे भी बतलाये देता हूँ ।

## नित्यमण्डिता ब्राह्मणीकी कथा ।

इसी भरतक्षेत्रमें वर्धन नामका एक गाँव है । उसमें वेदोंके अभ्यास-में तत्पर अग्निदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था । उसकी भार्याका नाम सुनन्दा था । गाँवके लोग उस ब्राह्मणको बहुत मानते थे, इसीसे उसे लोगोंसे धन मिल जाया करता था । इसी प्राप्तिकी बदौलत वह क्रमशः धनवान् हो गया । एक समयकी बात है, कि उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीके लिये सारी देहके अच्छे-अच्छे गहने बनवाये । उस दिनसे वह बराबर उन सभी अलङ्कारोंको पहने हुई रहने लगी—वह कभी उन्हें नहीं उतारती थी । यह देख, उसके स्वामीने कहा,—"प्यारी ! इन अल-ङ्कारोंको कभी-कभी तीज-त्यौहारके दिन पहन लिया करो और साधा-रणतः इन्हें छिपाकर रख दिया करो , क्योंकि अपना घर गाँवके एक

इस किनारे हैं। अगर कहीं किसी दिन घरमें चोर घुस पड़े, तो ये गहने तुम्हारे लिये फ़सादका घर हो जायेंगे। यह सुन, उसने कहा,—"यदि तुम्हें मुझे इन्हें पहननेको देना नहीं था, तब तुमने इन्हें बनवाया किस लिये? मेरे ख़यालसे तो इन्हें पहने रहना ही ठीक है। जब चोर आयेंगे, तब मैं इन्हें झटपट उतार फेकूँगी।" यह सुन, वह ब्राह्मण चुप रह गया। एक दिन उस गाँवपर भीलोंकी बड़ी प्रचण्ड चढ़ाई हुई और दैवयोगसे वे उसी ब्राह्मणके घरमें घुस पड़े। उस समय भीलोंने उस ब्राह्मणकी पत्नीको गहने पहने देख, उसे पकड़ लिया; पर चूँकि वह बड़ी हृष्ट-पुष्ट थी, इसलिये वे गहने उसके शरीरसे आसानीके साथ नहीं निकल सके। यह देख, उन भीलोंने उस ब्राह्मणीके हाथ-पैर आदि अङ्ग बड़ी निर्दयताके साथ काट डाले और उसके सब गहने लेकर चम्पत हो गये। वह ब्राह्मणी आर्त्तध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हो, नरकमें गयी।

भोगोपभोग पर नित्य मण्डिता ब्राह्मणी की कथा समाप्त।

फिर श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌ने चक्रायुध राजासे कहा,—"हे राजन्! तीसरा गुणव्रत अनर्थ-दण्ड-त्याग है। अनर्थके चार भेद हैं। पहला वह है, जो एक मुहूर्त्त बादही अपध्यान कराता है। दूसरा, जो प्रमादका आचरण कराना है। तीसरा, जो हिंसाके उपकरणोंको दूसरेको देता है और चौथा, दूसरेको पाप-कार्य करनेका उपदेश देता है। इसव्रतके विषयमें समृद्धदत्तकी कथा प्रसिद्ध है। वह इस प्रकार है—

## समृद्धदत्तकी कथा।
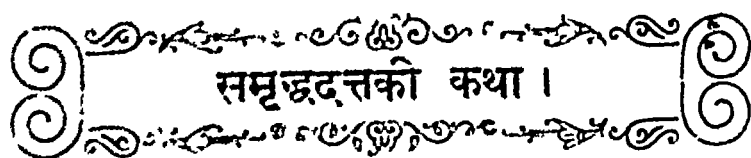
धातकी खण्डके भरतक्षेत्रमें रैपुर नामक एक नगर है। उसमें रिपुमर्द्दन नामके राजा राज्य करते थे। उसी नगरमें समृद्धदत्त नामका एक

किसान भी रहता था। वह एक दिन आधी रातको उठकर मन-ही-मन विचार करने लगा,—"यदि मुझे लक्ष्मी प्राप्त हो जाये, तो मैंही राजा हो जाऊँ और भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंको पैरोंतले ले आऊं। इसके बाद वैताढ्य-पर्वतपर रहनेवाले विद्याधर मुझे आकाशगामिनी विद्या बतला देंगे। उस विद्याके प्रभावसे मैं आसमानमें उड़ता फिरूँगा।" ऐसा सोचते-सोचते समृद्धदत्तने शय्यापरसे ही आसमानकी ओर छलाँगें मारीं और नीचे गिर पड़ा। उसके शरीरको बड़ी चोट पहुँची। उसकी चीख़ सुनकर घरके आदमी इकट्ठे हो आये और उन्होंने उसे फिर पलँगपर सुला दिया। कितने दिन बाद बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उसकी पीड़ा दूर हुई और वह स्वस्थ शरीरवाला हो गया।

१—एक दिन उसने सब लोगोंके सामने ही बहुतसा धन देकर एक अच्छीसी तलवार ख़रीदी। एक दिन वह तलवार भूलसे घरके आँगनमें ही पड़ी रह गयी और वह अन्दर जाकर सो रहा। जब दो पहर रात बीत चुकी, तब उसे उस तलवारकी याद आयी; परन्तु उसने प्रमादवश तलवारको घरमें लाकर नहीं रखा और "मेरी तलवार भला कौन छुएगा?" यही सोचकर सो रहा। रातके चौथे पहर उस घरमें चोर पैठे और वही तलवार लिये हुए अपने घर चले गये। एक दिन उन चोरोंने उसी खड्गके प्रतापसे किसी तरह नगर सेठके पुत्रको हराकर क़ैद कर लिया। इसी समय राजपुरुषोंने उन चोरोंको मारा। चोरोंने भी सेठके लड़केकी जान ले ली। राजकर्मचारियोंने चोरोंके घरसे बरामद की हुई वह तलवार ले जाकर राजाको दे दी। यह देख, क्रोधित होकर राजाने उसे बुलाकर कहा,—"रे दुष्ट! क्या तूने ही यह पाप किया है?" उसने कहा,—"नहीं, स्वामी! मैंने हरगिज़ नहीं किया।" राजाने पूछा,—"यह तलवार तुम्हारी है या नहीं? यदि तुम्हारी तलवार लेकर किसी दूसरेनेही यह पाप-कर्म किया हो, तो भी तुम्हीं इस पापके करनेवाले समझे जाओगे।" यह

सुन, उसने राजासे अपनी तलवारको भूलसे उठाकर नहीं रखनेका हाल कह सुनाया। तो भी राजाने उसके अपराधके लिये उसे दण्ड देकर छोड़ दिया।

२—एक दिन राजाका एक शत्रु उसके पास विष लेने आया। उसकी प्रकृति जाने बिना ही उसने उसके हाथ विष बेंच दिया। उस शत्रुने राजा और प्रजाका नाश करनेकी इच्छासे वह जहर ले जाकर गाँवके तालाबमें डाल दिया। उस ज़हरीले पानीको पीकर बहुतेरे मनुष्य मर गये। जब राजाने यह बात सुनी, तब इस मामलेकी जड़का पता लगाते-लगाते उन्हें मालूम हुआ, कि समृद्धिदत्तने ही उनके शत्रुके हाथ विष बेंचा था और उसने उसके यहाँसे ज़हर लाकर प्रजाका नाश करनेके इरादेसे उसे सरोवरके जलमें डाल दिया था। यह बात मालूम होनेपर राजाने उसे बुलवाकर उसपर जुर्म कायम किया और उसे सजा दी।

३—एक दिन वह गाँवकी सभामें बैठा हुआ था। इसी समय एक किसान दो बछड़े लिये हुए उधरसे आ निकला। यह देख, समृद्धदत्तने उससे पूछा,—“ये बैल सधे हुए हैं या नहीं?” उसने कहा,—“नहीं।” तब उसने फिर कहा,—“इन्हें बड़ी बेरहमीके साथ डंडे मार-मारकर अच्छी तरह साध लेना चाहिये।” उसका यह कठोर वचन सुन, वे दोनों बछड़े उसपर बड़े क्रोधित हो उठे। प्रायः प्राणीमात्रको अपने प्रति कटुवचन कहनेवाला अप्रिय मालूम होता है। इसके बाद उन बैलोंके स्वामीने उन्हें ज़बरदस्ती गाड़ीमें जोत दिया। उनके शरीर कोमल होनेके कारण, उनकी आँतें निकल पड़ीं और वे दोनों हीं, अकाम-निर्जरा द्वारा अपने अशुभ कर्मोका क्षय कर, मरणको प्राप्त हो, व्यन्तर हो गये। तब समृद्धिदत्तको अपना शत्रु समझकर उन्होंने उसके शरीरमें तरह-तरहकी व्याधियाँ उत्पन्न कर दीं और कहा,—“अरे पापी! तूने जो उन दोनों बैलोंके बारेमें बेमतलब ही पापोपदेश दिया था, उसका भलीभाँति फल आज भोग ले।” यह कह, वे उसपर अपना व्यन्तरपना

प्रकट करने लगे। तब वह बेचारा किसान बड़ी पीड़ा पानेके कारण पश्चात्ताप करता हुआ प्रणाम-पूर्वक उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा। इससे उन्हें दया हो आयी और उन्होंने कोपका त्यागकर, उसके शरीरकी पीड़ा दूर कर दी। इसके बाद वे अपने स्थान पर चले गये और किसान रोगके चङ्गुलसे छुटकारा पा गया।

४—उस समय उसने अपने मनमें सोचा,—"हे जीव! तूने चारों तरहके अनर्थ-दण्ड कर लिये और उनसे उत्पन्न होनेवाले दुःख भी भोगे। शास्त्रमें कहा है, कि करोड़ों कल्पमें भी किये हुए कर्मका क्षय नहीं होता। प्राणियोंको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है। ऐसा विचार कर, शुभ भावना करते हुए वह समृद्ध-दत्त एक जैनमुनिके पास आया और उनका उपदेश सुन, प्रतिबोध पा, सुश्रावक हो गया। इसके बाद शुद्ध धर्मकी आराधना करते हुए, अन्तमें मृत्युको प्राप्त होकर सौधर्म देवलोकमें जाकर वह देव हो गया। देवकी आयु पूरी होनेपर वहाँसे च्युत होकर वह मनुष्य-योनिमें उत्तम कुलमें जन्म लेगा और क्रमशः मोक्षसुखको प्राप्त करेगा। समृद्धदत्त-की यह कथा सुनकर तत्वज्ञानियोंको चाहिये, कि अनर्थ-दण्डका अवश्य मेव त्याग कर दे।

समृद्धिदत्त कथा समाप्त।

प्रभुने कहा,—"अब मैं शिक्षा व्रतोंकी बात कहता हूँ। इनमें पहला सामायिक व्रतहै। इस व्रतकी आराधना करनेसे त्रस और स्थावर जीवों-के विषयमें समानताका भाव उत्पन्न होता है। इसलिये सामायिक प्रति दिन करना चाहिये। सामायिक करते समय श्रावक भी उतनी देरके लिये साधुका सा हो जाता है। निश्चल चित्तसे सामायिक करनेसे भव्य जीवोंको सिंह श्रावककी तरह सुख होता है।"

प्रभुकी यह बात सुन, सभामें बैठे हुए मनुष्योंने पूछा,—"हे स्वामी! वह सिंह श्रावक कौन था?" इसके उत्तरमें श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर-ने जो कथा कही, वह इस प्रकार है:—

# सिंह श्रावककी कथा।

इसी भरतक्षेत्रमें रमणीय नामक नगरमें शूर-वीरोंमें शिरोमणि हेमाङ्गद नामके राजा थे। उनके हेमश्री नामकी रानी थी। उसी नगरमें जिनदेव नामक एक श्रावक रहता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदासी था। उसीके गर्भसे उत्पन्न सिंह नामका एक पुत्र भी उसके था। सिंह सदा सामायिक ग्रहण कर, दोनों वक्त प्रतिक्रमण करता था। एक दिन वह सिंह क़ाफ़िलेके साथ द्रव्य उपार्जन करनेके लिये किराना माल ले, उत्तरापथकी ओर चला। मार्गमें एक जङ्गलमें नदीके तीरपर उस क़ाफ़िलेका पडाव पड़ा। वहाँ भी सिंहने सामायिक ग्रहण किया। उस समय वहाँ मच्छरोंका ज़ोर नज़र आया। उनका उपद्रव दूर करनेके लिये क़ाफ़िलेके लोगोंने खूब धुआँ किया। इससे व्याकुल होकर सब मच्छर सिंहके पास आये। महाप्राण सिंहने मेरुकी तरह अचल भावसे उन मच्छरोंका उपद्रव सहन किया। इसके बाद तुरतही दक्खिनी हवा चलनेसे वे मच्छर जाते रहे। सिंहका उपसर्ग आपसे आप दूर हो गया। सामायिकका समय पूरा होनेपर सिंहने सामायिकका पारण किया; पर मच्छरोंके डंकसे उसके शरीरमें सूजन हो गया था और दर्द पैदा हो गया था। वह दर्द कई दिनोंमें दूर हुआ और उसका शरीर स्वस्थ हो गया। इसके बाद वह व्यापारके लिये वसन्त पुर नामक नगरमें गया। वहाँ किराना बेंचकर उसने बहुत लाभ किया। वहाँसे लौटकर घर आनेपर शुभध्यानमें तत्पर हो, सातों धर्म-क्षेत्रोंमें धन व्ययकर, वह गृहस्थ धर्मका पालन करने लगा। अन्तमें आराधनाकर, अनशनद्वारा मरण प्राप्तकर, वह स्वर्गमें गया। वहाँसे आकर वह क्रमसे मोक्षलाभ करेगा।

सिंह श्रावक-कथा समाप्त।

भगवान्ने कहा,—"अब मैं दूसरा देशावकाशिक नामक शिक्षाव्रत बतलाता हूँ। इस व्रतमें दिग्व्रनके परिमाणका और अन्य सब व्रतोंका सदा संक्षेप करना होता है। इसके आनयन प्रयोग * आदि पाँच अतिचार हैं। इस व्रतको शुद्ध रीतिसे निबाहनेसे गङ्गदत्त श्रावककी तरह मनुष्यके लोक परलोक सफल हो जाते हैं।" भगवान्की यह बात सुन, श्रावकोंने उनसे गङ्गदत्तकी कथा सुनानेको कहा। भगवान्ने उसकी जो कथा सुनायी, वह इस प्रकार है,—

## गङ्गदत्त श्रावककी कथा
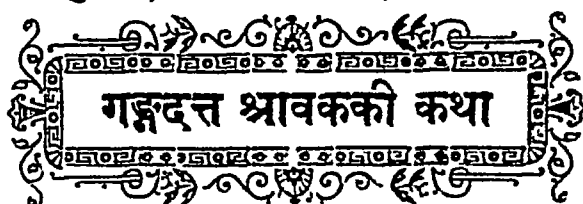
इसी भरतक्षेत्रमें शंखपुर नामका नगर है। उसमें गङ्गदत्त नामका एक प्रसिद्ध वणिक् रहता था। एक दिन उसने गुरुसे श्रावक-धर्म ग्रहण किया। वह निरन्तर बारहों व्रतोंका पालन करता था। एक दिन उसने देशावकाशिक व्रत ग्रहण किया। उसदिनउसने सोचा,—"आज मैं चैत्यके सिवा और किसी जगह घरसे बाहर नहीं जाऊँगा। इस प्रकारका अभिग्रह ग्रहण कर वह घर पर ही रहा। उसी समय उसके किसी मित्र वणिक्ने आकर कहा,—"आज नगरके बाहर एक क़ाफ़िला आया हुआ है। अगर तुम वहाँ चलो, तो हम दोनों वहाँ जाकर सस्ते भावसे किराना ख़रीदें और ख़ूब लाभ उठायें।" यह सुन, गङ्गदत्तने कहा,—"मित्र! आज तो मैं नहीं आ सकता। मैंने आज हो देशावकाशिक व्रत लिया है। आज मैं चैत्यके सिवा और किसी जगह घरसे बाहर नहीं जा सकता।" उसके मित्रने फिर कहा,—"मित्र! आज बड़ा लाभ होनेकी सम्भावना है। इसे क्यों हाथसे जाने देते हो? तुम फिर किसी दिन व्रत ले लेना।" गङ्गदत्तने कहा,—"मित्र! जिससे धर्मकी हानि हो, ऐसे बड़े आडम्बरवाले लाभका क्या फल होगा? मैं

* निर्णित बाहरी स्थानसे कोई चीज़ दूसरेके द्वारा मँगवाना आनयन प्रयोग कहलाता है।

उसकी इच्छा नहीं करता।" यह सुन, उसका दृढ़ निश्चय जान, उसका मित्र घर चला गया। इसके बाद जब व्रत पूरा हो गया, तब वह दूसरे दिन उस क़ाफ़िलेमें गया। उस समय उसने देखा, कि सब किराना ज्योंका त्यों रखा हुआ है, किसीने लिया नहीं है। अब तो उसने सब माल ख़रीद लिया और बाज़ारमें बेंचकर ख़ूब फायदा उठाया। उस समय गङ्गदत्तने सोचा,—"अवश्य ही यह धर्मका ही प्रभाव है। इसलिये मुझे यह सारा धन देवगृह आदि धर्म-स्थानोंमें लगा देना चाहिये।" ऐसा विचार कर, उसने विविध प्रकारसे जिनेश्वरकी पूजा की और श्रीसंघकी भक्ति-पूर्वक वस्त्र, भोजन और ताम्बूल आदि देकर ख़ूब सम्मानित किया। इस प्रकार धर्मके विषयमें उद्योग कर, अन्तमें अनशन करके मृत्युको प्राप्त हो, वह स्वर्ग चला गया। वहाँसे आकर वह क्रमसे मोक्ष प्राप्त करेगा।"

गंगदत्त-कथा समाप्त।

प्रभुने कहा,—"हे चक्रायुध राजा! तुम्हें मैंने दृष्टान्त सहित देशावकाशिक व्रतकी व्याख्या सुनायी। अब मैं दृष्टान्त सहित पौषधव्रतकी बात सुनाता हूँ। यह पौषधव्रत, पुण्यकी पुष्टिके लिये, उत्तम श्रावकगण प्रत्येक महीनेके चारों पर्वोंके दिन ( दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी ) किया करते हैं। पौषध चार प्रकारका होता है। इनमें पहला आहार पौषध है, जो सर्व और देशसे दो प्रकारका है। सर्वसे आहार-पौषध चतुर्विध आहारका त्याग करनेसे होता है और देशसे आहार पौषध, त्रिविध आहारका त्याग (उपवास) करनेसे अथवा आचाम्ल, नीवी या एकाशनके पच्चक्खानोंमेंसे कोई एक पच्चक्खान करनेसे हो सकता है। दूसरा देहसत्कार नामक पौषध है। वह सर्वसे और देशसे दो प्रकारका होता है। इनमें सर्वथा प्रकारसे शरीरके सत्कारका त्याग करना, सर्वसे स्नानादि मात्रका त्याग करना देशसे शरीर-सत्कार-पौषध कहलाता है। तीसरा ब्रह्मचर्य नामका पौषध है। इसके भी दो भेद हैं इनमें स्त्रियोंके हस्तस्पर्श आदिसे परहेज रखना पहला भेद है और दूसरा

भेद केवल मैथुनसे परहेज रखना और हस्त-स्पर्शादिके विषयमें स्वतन्त्रता रखना है। चौथा अव्यापार नामका पौषध है। यह भी दो तरहका होता है। इनमें सर्व सावद्य-व्यापारका त्याग करना पहला और सिर्फ किसी-किसी व्यापारका त्याग करना दूसरा भेद जानना चाहिये। (पौषध करते हैं उसमें आहार-पौषध देशसे और सर्वसे होता है। बाक़ीके तीनों प्रकारके पौषध सर्वसे ही होते हैं) इस व्रतके ऊपर जिनचन्द्रका दृष्टान्त प्रसिद्ध है।" यह सुन, चक्रायुध राजाने वह कथा सुनानेकी प्रार्थना की। तब प्रभुने जो कथा कही वह इस तरह है,—

## जिनचन्द्रकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें सुप्रतिष्ठित नामका नगर है। उसमें अनन्तवीर्य नामके राजा राज्य करते थे। उसी नगरमें जैनधर्ममें अति निश्चल जिनचन्द्र नामका एक श्रावक रहता था। उसके मनोहर रूपवाली सुन्दरी नामकी पत्नी थी। एक दिन जिनचन्द्र श्रावक किसी पर्व दिवसके उपलक्ष्यमें शुभ-वासनासे पौषध ग्रहण कर पौषधकालामें पड़ा हुआ था। उस समय शक्रेन्द्रने अवधिज्ञान द्वारा उसको निश्चल होकर पौषधव्रत ग्रहण किये हुए जानकर देवताओंकी सभामें उसकी इस प्रकार प्रशंसा की,—"अहा! जिनचन्द्र नामक श्रावक पौषधव्रतमें ऐसा निश्चल हो रहा है, कि उसे देवता भी नहीं डिगा सकते।" यह सुन, उसकी प्रशंसासे जल-भुनकर एक देव, इन्द्रकी आज्ञा ले, उसकी परीक्षा करनेके लिये आया। उस समय उस देवने मायासे प्रातःकाल हुए बिना ही सूर्योदय उपस्थित कर दिया और उसकी बहनका रूप धारण किये उसके पास आकर कहा,—"भाई! तुम्हारे लिये यह भोजन ले आयी हूँ। सूर्योदय हो गया है, इसलिये पौषध पूर्ण कर, पारणा करो।" बहनकी यह बात सुन, उसने सोचा,—"मैंने जितना धर्मध्यान किया

है और जितना करनेको बाक़ी है, उसके अनुसार विचार करनेसे तो अभी दिन होना असम्भव मालूम होता है। इसलिये यह अवश्य ही किसी देवकी माया मालूम होती है।" यही सोच कर वह चुप होरहा। इसके बाद उस देवने उसके मित्रका रूप धारण कर, सुगन्धित विलेपन और पुष्प लाकर उसके पास रख दिये ; पर उसने उसके हाथ भी नहीं लगाया। उससे बोला तक नहीं। जब इस तरह करनेसे भी वह नहीं डिगा, तब उस देवने अपनी मायासे एक पुरुष बनाया और उस पुरुषको उसकी भार्याके साथ विडम्बना करते हुए दिखलाया। तो भी उस श्रेष्ठ श्रावकको कोप या क्षोभ नहीं हुआ। इस प्रकार अनुकूल उपसर्गमें उसे निश्चल जान कर उस देवने सिंह और पिशाच आदिके प्रतिकूल उपसर्ग दिखलाने शुरू किये। तो भी उसे क्षोभ नहीं हुआ। तब उस देवने अपना रूप प्रकट कर, इन्द्रकी की हुई प्रशंसाका हाल सुनाते हुए उससे कहा,—"हे श्रावक! मैं तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूँ?" यह सुन, उसने निस्पृहताके कारण कुछ भी नहीं माँगा। तब फिर उस देवने कहा,—"हे श्राद्ध! देवका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता— इसलिये कुछ भी तो माँगो।" तब जिनचन्द्रने कहा,—"हे देव! लोकमें जिनधर्मकी प्रभावना हो, ऐसा काम करो।" यह सुन, उस देवने अपने परिवार सहित जिनचैत्यमें जा, अष्टाह्निका महोत्सव किया और सुगन्धित पुष्पोंसे श्रीजिनेश्वरकी पूजा की। इसके बाद वह जिनेश्वरके सामने बाहुदण्डको ऊँचाकर नृत्य करने लगा। यह देख, सब लोगोंने आश्चर्यके साथ पूछा,—"अहा! श्रीजिनधर्मका माहात्म्य कैसा है?" देवने कहा,—"इस जिनधर्मका प्रभाव कल्पवृक्ष और चिन्तामणिसे भी अधिक है। इसके प्रभावसे प्राणियोंको स्वर्ग और मोक्षका सुख प्राप्त होता है। इसलिये सुखार्थियोंको चाहिये, कि श्रीजिनशासनके विषयमे व्रतकी आराधनामें सर्वथा यत्न करते रहें।" देवका यह वचन सुन, लोग भी जिनभक्तिमें तत्पर हो गये। इस प्रकार जिनधर्मकी प्रभावना कर, वह देव जिनचन्द्र श्रावककी आज्ञा लेकर सौधर्म-लोकमें चला गया।

जिनचन्द्रका मन देवताके करते भी चलायमान नहीं हुआ। अन्तमें वह निरतिचारपनके साथ धर्मकी सेवा कर, स्वर्गको गया। वहाँ आकर वह क्रमशः मोक्ष प्राप्त करेगा।

पौपध-व्रत-सम्बन्धी जिनचन्द्रकी कथा समाप्त।

अब प्रभुने बारहवें अतिथि-संविभाग-व्रतकी बात करनी शुरू की। इस सिलसिलेमें पहले अतिथि किसे कहते हैं। इसके विषयमें उन्होंने कहा,—

"तिथिपर्वहर्षशोकास्त्यक्ता येन महात्मना।
सत्वतिथि विजानीय, परः प्राघूर्णको मतः॥ १॥"

*अर्थात्—"जो महात्मा तिथि, पर्व, हर्ष, शोक आदिका त्याग कर चुका हो, उसे ही अतिथि जानना। इसके सिवा औरोंको प्राघूर्णक—पाहुना कहते हैं।"*

इस प्रकारके अतिथिका, न्यायोपार्जित द्रव्यसे बनाये हुए कल्पनीय देशकालोचित और पर्याप्त अन्न-व्यंजन आदि श्रेष्ठपदार्थों द्वारा श्रद्धा-पूर्वक सत्कार करना ही अतिथि-संविभाग-व्रत कहलाता है। यह व्रत भक्तिपूर्वक सुसाधुके प्रति करनेसे बड़े पुण्यका कारण होता है। शूर-पाल नामक राजाको पूर्वजन्ममें सुपात्रको दान करनेके प्रभावसे ही सुख-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी।"

यह सुन, चक्रायुध राजाने कहा,—"हे भगवन्! उस शूरपाल राजाकी कथा कह सुनाइये।" तब श्रीशान्तिनाथ परमात्माने अमृतकी सी मधुर वाणीमें उसकी कथा कह सुनायी—

इसी भरतक्षेत्रमें श्रेष्ठ लक्ष्मीसे युक्त कांचनपुर नामक एक मनोहर नगर है। कहा है, कि—

"वापी वप्र विहार वर्ण वनिता वाग्मी वनं वाटिका,
वैद्य ब्राह्मण वादि वेश्म विबुधा वाचंयमा वल्लकी।
विद्या वीर विवेक वित्त विनया वेश्या वणिक् वाहिनी,
वस्त्र वारण वाजि वेसरवरं राज्यं च वै शोभते ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"जिस राज्यमें बावली, वप्र (किला), विहार (चैत्य) वर्ण (चारों वर्णोंके लोग), वनिता, वाचाल मनुष्य, वन, बाग-बगीचा, वैद्य, ब्राह्मण, वादी, वेश्म (हवेली), विबुध (देव तथा पण्डित), वाचयम (साधु), वल्लकी (वीणा), विद्या वीर, विवेक, वित्त, विनय, वेश्या, वणिक्, वाहिनी (सेना), वस्त्र, वारण (हाथी), वाजि (अश्व) और वेसर (खच्चर) इतनी वकारादि श्रेष्ठ वस्तुऐं होती हैं, वही शोभा पाता है।"*

उस पुरमें जितारि नामक राजा साम्राज्यका सञ्चालन कर रहे थे। उनकी रानीका नाम सुलोचना था। उस नगरमें महीपाल नामका एक क्षत्रिय रहता था। वह सदा खेतीका धन्धा करता था। उसकी भार्याका नाम धारिणी था। उसके गर्भसे उत्पन्न धरनीधर, कीर्त्तिधर, पृथ्वीपाल और शूरपाल नामके चार पुत्र थे। वे चारों क्रमशः बालकपनकी अवस्था पार कर युवावस्थाको प्राप्त हुए। तब उनकी शादी क्रमसे चन्द्रमती, कीर्त्तिमती, शान्तिमती और शीलमती नामकी कन्याओंके साथ कर दी गयी। एक दिन वर्षाऋतुमें महीपालके वे चारों पुत्र पिछली रातको अपने घरसे निकल कर खेतमें काम करने गये। उनके-पीछे-पीछे उनकी स्त्रियाँ भी वहाँ जानेके लिये घरसे बाहर निकलीं। वे चली आ रही थीं, इसी समय बड़े ज़ोरकी गरज-ठनकके साथ पानी बरसने लगा। यह देख, वे स्त्रियाँ पासहीके एक बडके पेड़ तले जाकर उसीके सहारे खड़ी हो रहीं। उनके पीछे-पीछे उनका ससुर भी खेतकी तरफ़ चला। वह भी वर्षाके जलको निवारण करनेके लिये उसी बडके पेडकी दूसरी तरफ़ गुप्त रीतिसे खडा हो रहा। उस समय वहाँ निर्जन देख, अपने ससुरके आनेका हाल जाने विना ही, वे चारों

वहुएँ इच्छानुसार परस्पर वातें करने लगीं। उनका ससुर भी कान लगाकर उनकी वातें सुनने लगा।

प्रथम चन्द्रमती नामकी वड़ी वहू वोली,—"हे सखियो! अब अपने अपने मनकी वातें खुलकर कहो-सुनो।" यह सुन शीलमतीने कहा,—"कहीं कोई और हमारी वातोंको कान लगाये सुनता न हो, इसलिये मनकी वाते करनी उचित नहीं है।" यह सुन, दूसरी वोली,—"हे शीलमती! तुम व्यर्थ ही भय न करो, यहाँ तो कोई नहीं है।" तव सबसे छोटी वहूने कहा,—"पहले तुम लोग अपनी-अपनी वातें कह जाओ, इसके वाद जव मेरी वारी आयेगी, तव मैं भी कह सुनाऊँगी।" यह सुन, पहली वड़ी वहुने कहा,—"अच्छी तरह पकायी हुई गरमागरम खिचड़ी और उसमें ताज़ा घी पड़ा हुआ हो, तो मुझे वहुत अच्छा मालूम होता है। इसके सिवा दही अथवा घीके साथ-साथ रवड़ी हो और उसके साथ आमके अँचार हो, तो मुझे वहुत अच्छे मालूम होते हैं।" इसके वाद कीर्त्तिमतीने कहा,—"मुझे खाँड़ और घीके साथ साथ खीर वहुत अच्छी लगती है। अथवा घीके साथ-साथ दाल भात और उनके साथ कड़वा और खट्टा साग मुझे वड़ा अच्छा लगता है।" तव तीसरी शान्तिमती वोली,—"मेरी पसंद सुनो। उमदा लड्डू और पक्वान मुझे वहुत पसंद आते हैं। साथही ठोर और पूरियाँ मुझे वहुत रुचती हैं।" इसके वाद चौथी शीलमतीने कहा,—"मैं तो अन्नके विषयमें ऐसी कोई ख़ास पसन्द नहीं रखती;क्योंकि लोग कहा करते हैं, कि पेट केवल अन्न चाहता है— वह ख़ास करके पूरी, मिठाई आदि नहीं माँगता। इसलिये मेरी तो यही इच्छा रहती है, कि उत्तम सुगन्धित जलसे स्नान कर, शरीरमें चन्दनादिका लेपन कर; अच्छे-भले वस्त्र पहन तथा उत्तम अलंकारोंसे शरीरका श्रृङ्गार-सम्पादन कर; ससुर, जेठ तथा स्वामीको भोजन करा, घरके अन्य मनुष्योंको भी सन्तुष्ट कर तथा दीन-दुखियोंको दान दे, अन्तमें वाक़ी वचा हुआ जो कुछ भोजन मिल जाये, वही खा लिया जाये। इसीसे मेरी इच्छा पूरी हो जाती है।" जव शील-

मतीने अपनी यह इच्छा प्रकट की, तब उसे सुनकर दूसरी बोली,—"तेरी इच्छा तो ऐसी है, कि जो कभी पार न लगे, क्योंकि किसानके घरमें वैसा अच्छा भोजनही मिलना दुर्लभ है, फिर उत्तम वस्त्रों और अलङ्कारोंकी तो बात ही क्या है ?" उस की बात पूरी ही हुई थी, कि वृष्टि भी बन्द हो गयी और वे चारों स्त्रियाँ खेतमें चली गयीं।

इधर महीपाल उन चारोंकी बात सुन, अपने मनमें विचार करने लगा,—"ओह ! मेरी चारों बहुओंमें तीन तो केवल खानेहीके लिये हाय-हाय करती हैं, इससे मालूम होता है, कि इनकी सास इनकी इच्छाके अनुसार खाना नहीं देती। इसलिये आज घर जाकर अपनी स्त्रीको डपटूँगा और तीनों बहुओंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। साथ ही असम्भवित बात कहनेवाली छोटी बहूकी, जो ही मिल जाये, वही खा लेनेकी इच्छा भी पूर्ण करूँगा।" यही सोचकर वह घर आया और उसने अपनी स्त्रीसे बहुओंकी बातें कह सुनायीं। उसने कहा,—"हे प्रिये ! आजसे तुम तीनों बड़ी बहुओंको उनके इच्छानुसार भोजन दिया करना और छोटी बहूको जेसा-तैसा खराब अन्न खानेको देना।" यह कह, वह भी खेतमें चला गया। इसके बाद खेतका काम खतम कर, भोजनके समय सारा परिवार घर आया। धारिणी सब तरहका भोजन तैयार रखे हुए थी। उसने पहले अपने स्वामी और चारों पुत्रोंको खिलाकर, पतिके बतलाये अनुसार भोजन बहुओंके सामने लाकर रखा। उस समय वे चारों विस्मित होकर परस्पर एक दूसरीका मुँह देखकर विचार करने लगीं,—"आज न जाने कैसे हमें इच्छित भोजन मिल गया; पर छोटी बहूको ऐसा खराब खाना क्यों मिला ? इसका क्या कारण है ?" ऐसा विचार करती हुईं वे खा-पीकर उठ गयीं। शीलमतीने अपने मनमें सोचा,—"मैंने तो कुछ बिगाड़ा नहीं था, फिर सासने ऐसा पंक्ति भेद क्यों किया ? कहते हैं, कि—

"पङ्क्तिभेदी वृथापाकी, निद्राच्छेदी निरर्थकम्।
धर्मद्वेषी कथाभङ्गी, पंचैते अन्त्यजा: स्मृता:॥ १॥"

*अर्थात्—'पंक्तिभेद करनेवाला, वृथा पाक करनेवाला, अकारणही निद्राभंग करनेवाला, धर्म-द्वेषी और कथाभंग करनेवाला—ये पाँचों चाण्डाल कहे जाते हैं।'*

इसके बाद वे चारों बहुएँ फिर क्षेत्रकी ओर चलीं। मार्गमें तीनों बड़ी बहुओंने कहा,—"आज तो अपना मनोरथ पूरा हो गया। इस शीलमतीने भी जैसा सोचा था, वैसाही इसे भी खानेको मिला। प्रायः पुण्यवान् मनुष्योंको उनके इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होही जाती है। इसीलिये बुद्धिमानोंको चाहिये, कि तुच्छ मनोरथ न करें।" उनके साथ जाते-जाते शीलमतीने कहा,—"इस तरह बढ़िया-बढ़िया चीज़ें खानेका कोई फल थोड़े ही है? भला-बुरा जैसा कुछ भोजन पेटमें पहुँचा, वह एकसाँ हुआ; परन्तु जिस दिन मेरा मनोरथ पूर्ण होगा, उस दिन मेरी आत्मा कृतार्थ हो जायेगी।" यह कह, वह चुप हो रही।

इस प्रकार सदा इच्छानुसार भोजन मिलनेसे बहुओंको बड़ा आश्चर्य होने लगा। एक दिन तीनों बहुओंने अपनी साससे पूछा,—"माताजी! आजकल आप हमें हमेशा पाहुनोंकी तरह उत्तम भोजन क्यों देती हैं? और शीलमतीको सदा बुरा खाना क्यों देती हैं? इसका कारण क्या है?" इसपर उनकी सासने कहा,—"तुम लोगोंने किसी दिन एक जगह खड़ी होकर भोजनकी बात चलायी थी। वहीं तुम्हारे ससुर भी खड़े थे। उन्होंने तुम्हारी बातें सुनकर मुझे कह सुनायीं। उन्हींके कहे अनुसार मैं तुम लोगोंको इस तरहका खाना दिया करती हूँ।" यह बात सुनते ही शीलमतीका चेहरा उदास हो गया। रातको एकान्तमें उसे इस तरह उदास मुँह किये देख, शूरपालने उससे पूछा,—"हे प्रिये! आज तुम ऐसी उद्विग्न क्यों दिखाई दे रही हो? क्या तुम्हें माताने अवज्ञाके साथ खिलाया है? अथवा तुमने उनके साथ कुछ ढिठाई की है, या तुमने माताका कुछ अनिष्ट कर डाला है?" यह सुन, वह बोली,—"हे स्वामी! तुमसे तो मेरी कोई बात छिपी नहीं है, पर इस मामलेमें कहनेकी तो कोई बात ही नहीं है, इसीलिये मैंने तुमसे कुछ भी नहीं

कहा।" यह सुन, उसके स्वामीने उससे बड़े आग्रहके साथ पूछा। तब उसने आदिसे अन्त तक अपने मनोरथकी कथा उसे कह सुनायी। यह सुन, शूरपालने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! मेरे माँ-बाप भी कैसे मूर्ख हैं! ऐसी रत्न-समान स्त्रीकी इन लोगोंने ऐसी दुर्गति कर रखी है! अहा, मेरी स्त्रीका मनोरथ कैसा प्रशंसनीय है! सब स्त्रियोंमें यह स्त्री प्रशंसाके योग्य है। इसलिये अब मैं परदेश चलकर अपनी प्रियाके मनोरथको सिद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा।"

ऐसा विचार कर, शूरपालने अपनी स्त्रीसे परदेश जानेकी अनुमति माँगते हुए कहा,—"हे प्रिये! तुम चिन्ता न करो। मैं परदेश जा, धन उपार्जन कर, शीघ्रही लौटूँगा और तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।" ऐसा कह, उसके माथेपर अपने हाथसे जूडा बाँध तथा अँगिया पहिना कर कहा,—"यह जूड़ा तुम मेरे आनेपर ही खोलना और यह अँगिया भी मेरे आये बिना न उतारना।" अपनी स्त्रीसे यह बात कह, हाथमें तलवार लिये हुए शूरपाल घरसे बाहर निकला और परदेशकी ओर चल पड़ा। उसकी स्त्री थोड़ी देरके लिये हर्ष और विषादका अनुभव करने बाद अपने काममें लग गयी। प्रातः काल महीपाल आदि सब लोग, शूरपालको घरमें न देख, उसे चारों ओर खोजकर हार जानेपर उसकी स्त्रीसे पूछने लगे,—"हे भद्रे! शूरपाल कहाँ गया? क्या तुझे कुछ मालूम है?" उसने कहा,—"मुझे कुछ भी नहीं मालूम।" इसके बाद उसका कोई समाचार नहीं मिलनेके कारण उसके माता, पिता और भाई आदि सब लोग परस्पर विचार करने लगे,—"क्या शूरपालको किसीने कोई दुःख पहुँचाया है, जिससे वह घरसे निकल भागा?" पुत्रोंने कहा,—"पिता! हम लोगोंने तो उसका कुछ भी नहीं बिगाडा; क्योंकि प्रायः छोटा भाई सबको प्रिय होता है।" इसके बाद फिर उन लोगोंने शूरपालकी स्त्रीसे पूछा,—"भद्रे! कहीं तुमसे तो उसकी कुछ लड़ाई नहीं हुई है?" वह बोली,—"मेरे स्वामीके साथ मेरा कभी झगड़ा नहीं हुआ। हाँ, उन्होंने जाते समय अपने हाथसे मेरे बालोंका जूड़ा

बाँध दिया और कहा, कि इसे मैं ही आकर खोलूँगा। यह कह, वे कहाँ चले गये, इसकी मुझे खबर नहीं है।"

यह सुन, तीनों भाइयोंने अपने मनमें विचार किया,—"शायद् माता-ने भोजनादिमें बहूका कुछ निरादर किया है, इसीसे वह इसे अपना ही अपमान समझकर परदेश चला गया है। कहा भी है, कि अपमानसे तिरस्कार पाये हुए मानी पुरुप माता, पिता, बन्धु, धन, धान्य, गृह और स्त्री सबको दूरसे ही त्याग देते हैं। माता-पिता और स्वामीके किये हुए अपमानसे भी मान-रूप धनसे धनिक पुरुप देश छोड देते हैं। गुरु जो शिष्यका अपमान करता है, वह शिष्यके लिये हितकारक होता है; क्योंकि गुरु वारण और स्मरण आदिके द्वारा शिष्यकी तर्जनाको सकारण कर देता है। फिर उसकी स्त्रीका अपमान, उसकाही अपमान है, क्योंकि शरीरकी पीड़ासे क्या जीवको पीड़ा नहीं होती? ज़रूर होती है।" ऐसा विचार कर, वे सब उसकी खोज करने पर भी उसका समाचार न पाकर उसके विरहसे दुःखित होते हुए भी अपने-अपने काममें लग गये।

इधर शूरपाल, अपने घरसे बाहर हो क्रमशः महाशाल नामक नगरमें आ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर, थका-माँदा होनेके कारण वह नगरके बाहर एक उद्यानमें एक जम्बूवृक्षकी छायामें सो रहा। उसे गाढ़ी नींद आ गयी, पर उसके पुण्यके प्रभावसे उस वृक्षकी छाया मध्याह्न हो जानेपर भी उसके ऊपरसे नहीं हटी। इसी समय उस नगरका राजा पुत्रहीन अवस्थामें ही मृत्युको प्राप्त हुआ। तब प्रधान पुरुषोंने पञ्चदिव्य प्रकट किये, जो दो पहर तक सारी वस्तीमें घूम-फिरकर अन्तमें नगरके बाहर वहाँ पहुँचे, जहाँ शूरपाल सोया हुआ था। शूरपालको देखते ही हाथियोंने गर्जन किया, घोड़े हिनहिनाने लगे, उस पर आपसे आप छत्र तन गया, कलशने स्वयं उसपर अभिषेक किया और चँवर आपसे आप ढुलने लगे। उसे देखते ही जय-जय और मङ्गल-गीतका शब्द होने लगा। उस समय मन्त्री और सामन्तोंने उसके सब अंगोंकी परीक्षा की, तो उसके हाथ-

पैरोंमें चक्र, स्वस्तिक और मत्स्य आदि शुभलक्षण देखकर, उन्होंने सोचा,—"यह तो कोई बड़ाही महापुरुष मालूम होता है। इसके प्रभावसे वृक्षकी छाया भी नहीं हटती। यह अपने पुण्योंके प्रतापसे आपसे आप राजा हो गया।" वे सब सामन्त ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय शूरपालकी नींद टूट गयी और वह सोचने लगा, कि यह मामला क्या है? इसी समय प्रधान पुरुषोंने उसे बड़े आग्रहसे आसन पर बैठाकर स्नान तथा विलेपन कराया और वस्त्राभूषणोंसे उसका श्रृङ्गार कर, अच्छेसे हाथीपर बैठाया। उसके माथेपर छत्र लगाया गया और दोनो ओर चँवर ढुलने लगे। इस प्रकार बडे ठाट-बाटके साथ उन लोगोंने राजाका नगर-प्रवेश कराया। उसे देखकर नगरकी स्त्रियाँ उसकी प्रार्थना करने लगीं। इस प्रकार भाँति-भाँतिके मङ्गलोंका अनुभव करते हुए राजा शूरपाल राजमन्दिरमें प्रवेश कर राजसभामें आ बैठा। मंत्रियों और राजसामन्तोंने आकर उसे प्रणाम किया। क्रमसे सारे नगरमें शूरपाल राजाका नाम फैल गया।

एक दिन उसने अपने जीमें सोचा,—"मैंने जो यह राजलक्ष्मी पायी, उसका क्या फल हुआ? कहा है, कि परदेशमें प्राप्त लक्ष्मीका कोई फल नहीं, क्योंकि उसे न तो शत्रु देखकर जलते हैं और न मित्र उसका उपयोग कर सकते हैं। इसलिये इस ढंगसे पायी हुई यह लक्ष्मी अच्छी नहीं है, क्योंकि अभीतक मेरी स्त्रीकी भी इच्छा पूरी नही हो सकी।

ऐसा विचार कर उसने अपने हाथसे पत्र लिखकर अपने परिवार वालोंको यहाँ बुला लानेके निमित्त अपने सेवकोंको अपने घर भेजा। वे काञ्चनपुर पहुँचे सही, पर बहुत खोजनेपर भी उसके परिवार वाले उन्हें नहीं मिले। इसी समय किसीने उन राजकर्मचारियोंके पास आकर कहा,—"हे भाइयो! यहाँ वृष्टि नही होनेसे अकाल पड़ा हुआ है, इसीलिये महीपालके खेतोंकी सारी फ़सल मारी गयी। खेतीके सिवा जीविका-निर्वाहका और कोई साधन नहीं होनेके कारण दुःखी होकर महीपाल यहाँसे कहीं और चला गया है, किन्तु कहाँ गया है, यह हम

लोगोंको नहीं मालूम ।" यह सुन, वे राजकर्मचारी लौट आये और राजासे यह सब हाल कह सुनाया। यह समाचार सुनकर राजाको बड़ा खेद हुआ और वह यह सोचकर अपने राज्यको निष्फल मानने लगा, कि जब मेरे कुटुम्बके ही लोग दुःखी हैं, तब मेरा यह राज्य किस कामका है? इसके बाद राजाने सब दिशाओंमें अपने परिवारके लोगोंको ढूँढ़नेके लिये अपने दूत रवाना किये। कोई आदमी कहींसे वहाँ आता, तो राजा उससे अपने परिवारवालोंका पता-ठिकाना और हालचाल पूछते ; पर कहीं उनका पता नहीं लगा।

इधर जिस वर्ष शूरपाल अपने घरसे निकल भागा था, उसके दूसरे वर्ष वर्षा न होनेसे बड़ा भारी अकाल पड़ा। इससे बहुतसे लोग मर गये। धनाढ्य मनुष्य भी दुःखी हो गये। फिर ग़रीबोंका क्या कहना? रास्तोंमें चोरोंका डर होनेके कारण लोगोंका आना-जाना भी मुश्किल हो गया। ऐसे विषम समयमें आदमी आदमीको खा जाता है, लोग अपने बालबच्चोंको भी छोड़ देते हैं, उत्तम कुलके मनुष्य भी निंद्य और नीच कुलमें अपने बाल-बच्चोंको बेंच देते हैं, तपस्वियोंको भी बड़ी मुश्किलसे भीख मिलती है, उस भीखको भी रङ्क-फ़कीर छीन लेते हैं और पुरुष अपनी स्त्रियोंको भी छोड़ देते हैं। ऐसे अकालकी बातही सुनकर लोगोंके प्राण थर्रा उठते हैं।

इस तरहका अकाल पड़नेसे महीपाल अपने परिवारके साथ काँचनपुरसे निकल भागा, और जगह-जगह अनेक प्रकारके प्रयास करते, एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जाते हुए, शून्य घरोंमें निवास करते हुए, भूखे कुटुम्बोंके दुःखदायी वचनोंसे पीड़ा पाते हुए; परिपूर्ण भोजन भी नहीं करते हुए तथा अनेक नगर, ग्राम और पर्वत आदिका उल्लंघन करते क्रमशः वे उसी नगरमें आ पहुँचे। शीलमती, बहुत दिन बीत जानेपर भी सिरका जूड़ा नहीं खोलती थी और अँगिया भी नहीं उतारती थी। उस फटी-पुरानी अँगियाको देखकर उसका ससुर उससे नयी अँगिया पहननेका कितना अनुग्रह करता था, तो भी उसने अँगिया नहीं उतारी। इसलिये खेद प्राप्त कर, ससुर आदि सब लोगोंने कहा,—"यह कदाग्रही

और कुटुम्बको उद्विग्न करनेवाली वह किसीका कहा नहीं मानती।" इस प्रकार कहकर वह उसका तिरस्कार करने लगा, परन्तु तो भी उसके तिरस्कारको सहन करती हुई, मुँहसे एक अक्षर भी नहीं बोलती हुई वह अपनी मनचीती बात करती जाती थी। इस प्रकार अपने पतिकी आज्ञा पालन करती हुई वह शीलमती भी अपने ससुर आदिके साथ ही उस नगरमें आ पहुँची।

इधर शूरपाल राजाने सब लोगोंकी भलाईके लिये अपने नगरमें एक तालाब खुदवाना आरम्भ किया था। वहाँ बहुतेरे निर्धन काम करते थे। यह देख, महीपाल भी अपने परिवारके साथ-साथ वहीं काम करने लगा। एक दिन सब लोगोंने राजाके पास जाकर कहा,—"हे स्वामी! कृपा कर एक दिन आप तालाबका काम देखने चलिये।" यह सुन, लोगोंका बड़ा आग्रह देख, राजा हाथीपर सवार हो, सारी सेनाके साथ सरोवर देखनेको आये। वहाँ सब काम करनेवालोंको देखते-देखते राजाने एक जगह अपने पिता महिपालको भी सपरिवार देखा। साथ ही विरहके कारण दुर्बल बनी हुई और परपुरुषके सामने भी न देखनेवाली अपनी स्त्री शीलमतीको भी देखा। उस समय राजाने सोचा,—"अहा! दैवयोगसे मेरे परिवारवालोंको इस तरह मज़दूरी करनेकी नौबत आ पहुँची है। अवश्य ही यह पूर्व कर्मोंका विपाक है। कहा है, कि—

> "हरि हरि छाभिरांमि यानि रेजु-र्हरि हरि तानि लुठन्ति गृध्रपादैः।
> इह खलु विषमः पुराकृतानां, भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः ॥१॥"

*अर्थात्—"हरि हरि! जो मस्तक मुकुट आदिसे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, वे ही आज गिध आदि पक्षियोंके पैरोंपर लोट रहे हैं। यह अवश्यही प्राणियोंके पूर्वकृत कर्मोंका विषम विपाक है और कुछ नहीं।"*

इस प्रकार कर्म-विपाककी विवेचना कर, वे राजा अन्य सब मजदूरोंको देख-भालकर अपने कुटुम्बियोंकी ओर इशारा कर अपने सर-

दारोंसे कहा,—"ये नवो आदमी कैसा काम करते हैं और तुम उन लोगोंको क्या देते हो ?" सरदारोंने कहा,— "हे स्वामी ! ये काम तो अच्छा करते हैं और हर एक मज़दूरको प्रतिदिन एक-एक रुपया तथा मध्यम श्रेणीके अन्नका भोजन देनेकी आज्ञा दी गयी है ।" यह सुन, राजाने फिर कहा,—"ये नवो आदमी अच्छा काम करते हैं, इसलिये इन्हें कुछ अधिक मज़दूरी देनी चाहिये, क्योंकि नीतिमें कहा है, 'कि सज्जन और दुर्जन दोनोंपर स्वामीकी समान दृष्टि होनेसे सज्जनोंका उत्साह भङ्ग हो जाता है—उनका दिल बढ़ने नहीं पाता, इसलिये अबसे इन नवो आदमियोंको अधिक मजदूरी तथा उत्तम अनाज खानेके लिये दिया करना ।" राजाने जब ऐसा कहा, तब उन सरदारोंने उन लोगोंको बुलाकर कहा,— "हे भाइयो! हमारे स्वामीकी तुम लोगोंपर बड़ी कृपा हुई है । आजसे तुम लोगोंको अधिक मज़दूरी और उत्तम भोजन मिला करेगा । यह सुन, महीपाल आदिने कहा,— "यह सरकारकी हमारे ऊपर बड़ी भारी कृपा है ।" इसके बाद राजाने महीपालसे पूछा,—"क्या तुम्हारे एक पुत्रके दो बहुएँ हैं ? क्योंकि तीन पुत्र और चार बहुएँ मालूम पड़ती हैं । इसका क्या कारण है ?" यह सुन, महीपालने राजासे अपने छोटे पुत्रके प्रवासकी बात कह सुनायी राजाने पूछा,—"तुम लोग यहाँ कहाँसे आये हो ?" उसने कहा,—"हे स्वामी! हम यहाँ काञ्चनपुरसे आये हैं । " राजाने कहा,—"हे कौटुम्बिक ! तुम लोगोंको दही-छाँछ खानेकी आदत होगी । इसलिये सदा अपनी इस छोटी बहूको दही-छाँछ लेनेके लिये राजमन्दिरमें भेज दिया करो ।" यह कह, राजा शहरमें चले गये । इसके बाद सब लोगोंने यह आश्चर्यकी बात देख, कहा,—"अहा ! हमारे स्वामी कभी किसीसे बात नहीं करते, तो भी इन्होंने इनके साथ इतनी देरतक बातें कीं, इसलिये इनका बड़ा भाग्य समझना चाहिये ।"

इसके बाद ससुरके आज्ञानुसार शीलमती राजाके घर छाँछ लेने आयी । उस समय प्रतिहारीने आकर राजासे कहा,—"हे स्वामी ! एक

मजदूरकी स्त्री छाँछ लेने आयी है। क्या मैं उसे अन्दर बुला लाऊँ?" राजाने हामी भरी। जब वह अन्दर आयी, तब राजाने उससे पूछा,—"हे भद्रे! तुम्हारी यह अँगिया ऐसी फटी पुरानी क्यों है?" यह सुन, लज्जासे नम्र बनी हुई शीलमती कुछ भी न बोली। इसके बाद राजाने उसे बहुतसा छाँछ दही दिलवा दिया। उसे लेकर शीलमती अपने स्थानपर आयी। तब उसके ससुरने कहा,—"बेटी! अब तो तू नयी अँगिया पहन ले। क्योंकि तुझे राजाके घर जाना पड़ता है, इसलिये यह पहनावा बड़ा बुरा दिखता है।" उसके ऐसा कहने पर भी उसने उसकी बात नहीं मानी। दूसरे दिन वह फिर राजाके घर छाँछ लेने आयी। तब राजाने कहा,— "हे भद्रे! मैं तुम्हें यह नयी अँगिया देता हूँ, इसे पहन लो।" किन्तु बारम्बार कहने पर भी उसने वह अँगिया नहीं ली। तब राजाने कहा,— "यदि तुम मेरी आज्ञा न मानोगी, तो तुम्हारी खैरियत नहीं है।" यह सुन, उसने कहा,—"हे देव,! चाहे ख़ैरियत हो या न हो; पर मैं अपने निश्चयसे नहीं टल सकती। नीतिकारोंने कहा है, कि लक्ष्मी आये चाहे चली जाये, लोग चाहे जो कुछ कहा करें; जान रहे या चली जाये; पर भले आदमी न्यायको नहीं छोड़ते।" यह सुन, राजाने कहा,—"सेवको! इस स्त्रीको क़ैद कर लो—यह मेरी आज्ञाको भङ्ग करती है।" यह सुनतेही राजाके सेवकोंने उसे क़ैद कर क़ैदखानेकी ओर पग बढ़ाया। इतना हो चुकनेपर भी उसने अपना निश्चय नहीं तोड़ा। तब राजाने सन्तुष्ट होकर उसे अपने पास बुलवा कर कहा, —"हे भद्रे! तुम इस शरीरकी शोभाको बिगाड़नेवाली फटी पुरानी ख़राब अँगियाको क्यों नहीं उतार देतीं?" उसने कहा,—"मेरे माथेका जूड़ा मेरे स्वामीका बाँधा हुआ है और यह अँगिया भी उन्होंनेही अपने हाथों पहनायी है; इसलिये अब तो इनके बन्धन उन्हींके हाथों खुलेंगे, नहीं तो ऐसे ही रहेंगे।" तब राजाने कहा,—"मैं ही तुम्हारा स्वामी हूँ, इसलिये अब तुम यह अँगिया उतार डालो।" यह सुन, शीलमतीने कहा,—"महाराज! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये क्योंकि

आप पृथ्वीके पालक हैं और अन्यायका निवारण करते हैं। जो दुर्जन होते हैं, वेही सतियोंके शीलका खण्डन करनेको तैयार होते हैं; पर आपके सदृश मनुष्योंको तो ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये। यदि आप भी ऐसा नहीं करने योग्य कार्य करने लगेंगे, तब तो 'जोही रक्षक, सोही भक्षक' वाली कहावत सच हो जायेगी।" शास्त्रमें कहा हुआ है, कि जो निर्लज्ज पुरुष परस्त्रीका सेवन करता है, वह अपने कुल, पराक्रम और चरित्रको कलङ्कित करता है। सारी दुनियाँमें उसकी बदनामीका नक्कारा बज जाता है।" और उसका महामूल्यवान शीलरत्न धूलमें मिल जाता है।" जब उसने ऐसा कहा, तब उसके पास रहनेवाले राजपुरुषोंने उससे कहा,—"हे भद्रे! जिन हमारे स्वामीकी अन्य स्त्रियाँ स्वयं प्रार्थना करती हैं, वे जब स्वयं ही तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं, तब तुम उनकी उपेक्षा क्यों कर रही हो?" यह सुन, शीलमती बोली,—"मेरे शरीरका स्पर्श या तो मेरे स्वामी करेंगे अथवा अग्नि ही करेगी। मेरे जीते जी इसके कोई पर पुरुष हाथ नहीं लगा सकता।" इसके बाद राजाने उसके मनमें प्रतीति लानेके लिये, उसको कुछ सङ्केतकी बातें कहीं, इसके बाद फिर कहा,—"हे मुग्धे! तुम मेरे सामने आँखें बराबर करके देखो और मुझे पहचानो। मैं काञ्चनपुरसे भागकर यहीं चला आया था। उसी समय यहाँके राजा अपुत्रक अवस्थामेंही मर गये थे, इसलिये पंचदिव्यमे मुझेही राजा बनाया। मैं वही तुम्हारा पति शूरपाल हूँ।" राजाकी यह बात सुन, उसकी बातें विश्वास करने योग्य समझ, सङ्केत वाक्योंका मनमें विचार कर विस्मित होती हुई उसने अपने स्वामीके सामने देखकर उन्हें पहचान लिया। उस समय शीलमती हर्षसे वैसीही खिल उठी, जैसे मेघको देखकर मयूरी हर्षित हो जाती है। इसके बाद राजाके हुक्मसे दासियोंने उसे तेल-उबटन लगाकर नहला दिया, सब अंगोंपर कुङ्कुमका लेप कर दिया, राजाका दिया हुआ रेशमी वस्त्र पहना दिया और तिलक आदि चौदह प्रकारके शृङ्गारोंसे उसके शरीरका शृङ्गार-सम्पादन कर दिया। इसके बाद दासियाँ शीलमतीको राजाके पास ले आयीं। इसके बाद राजाने उसे

अपने आधे आसनपर बैठाया। उस समय मन्त्री और सामन्त आदिने उसे प्रणाम किया।

उस दिन शीलमतीके साथ साथ छाँछ लेनेको शान्तिमती भी राजाके घर आयी हुई थी। जब राजाने क्रोधमें आकर शीलमतीको क़ैदखानेमें बन्द कर देनेकी आज्ञा दी, तब वह भागकर अपनी जगहपर चली आयी और अपने घरके लोगोंसे कहने लगी,—"शीलमतीने राजा की दी हुई अँगिया नहीं ली, इसीलिये राजाने क्रोधके मारे उसे कैद-ख़ानेमें डाल दिया है।" यह सुनते ही सबने कहा,—"जो हुआ, सो ठीक ही हुआ। बहुत कहने पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी, इस-लिये उसे ऐसी सज़ा मिलनी ही चाहिये थी।" यह कह, सब लोग अपने-अपने काममें लग गये।

इसके बाद एक दिन राजाने महीपालको कुटुम्ब सहित निमंत्रित किया। तदनुसार वह अपने परिवारके साथ ठीक समय पर भोजन करनेके लिये राजाके घर आया। राजाने उन सब लोगोंको स्नान करा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहना, योग्यतानुसार श्रेष्ठ आभूषणोंसे उन्हें अलंकृत कर दिया। यह देख, महीपालने सोचा,—"इस राजाने जो बन्धुकी तरह हमारी इतनी ख़ातिरदारी की, उसका क्या कारण है? अथवा जिससे जो कुछ लेना होता है, वह निर्गुण मनुष्य भी लेही मरता है।" महीपाल यही सोच रहा था, कि राजा उन सब लोगोंको मनोहर आसनों पर बैठा, उनके सामने बड़े-बड़े थाल रखवाकर आप भी उनके साथ ही उचित आसनपर बैठ गये। इसके बाद राजाके हुक्मसे श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये हुई सती शीलमती स्वयं ही उन्हें नाना प्रकारके श्रेष्ठ भोजन परोसने लगी। तब राजाने उससे कहा,—"प्रिये! बहुत दिनोंसे मनमें रखा हुआ अपना मनोरथ आज सफल कर लो।"

इसके बाद सब लोग भोजन करके उठे। राजाने अपने पिताको उत्तम सिंहासन पर तथा भाइयोंको भी उचित आसनों पर बैठा कर, माता और भाभियोंको भी अच्छे-अच्छे आसन दिलवाये। इसके

बाद उन्होंने पिताको प्रणाम कर कहा,—"पिताजी ! उस दिन तुम्हारा जो पुत्र घरसे निकल भागा था, मैं वही शूरपाल हूँ । यह राज्य तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैंने तुम्हें पहचान कर भी जान बूझ कर तुम्हें मज़दूरी करने दी, मेरी यह अविनय क्षमा करना।" शीलमतीने भी सबको प्रणाम कर कहा,—"मैंने आप लोगोंके वचन नहीं मान कर आप लोगोंको दुखी किया, मेरा यह अपराध आप लोग क्षमा करेंगे। ससुरजी महाराज ! मैंने जो आपके कहनेसे भी अपनी अँगिया नहीं उतारी, वह अपने पतिकी आज्ञा उल्लंघन होनेके ही भयसे, इसका और कोई कारण नहीं है।"

यह सब बातें सुन, महीपालने अत्यन्त हर्षित हो, अपने पुत्र शूरपालको पहचान कर कहा,—"हे पुत्र ! तुम्हें यह राजलक्ष्मी तुम्हारे ही पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हुई है, इसलिये तुम चिरकाल तक इसे भोग करो। तुम्हें देख कर ही मैं अत्यन्त सुखी हो गया।" यह कह, राजनीतिको जाननेवाले महीपालने स्वयं उठकर अपने हाथों शूरपालको उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया और राज्य पर बैठे हुए पुत्रको पिता भी नमस्कार करता है, इसी नीतिके अनुसार महीपालने भी शूरपालको नमस्कार किया। इसके बाद महीपालने मधुर वचनोंसे शीलमतीसे कहा,—"बेटी ! इस संसारमें ही तू ही धन्य है ; क्योंकि तेरे सारे असंभव मनोरथ सिद्ध हो गये, इसलिये तू स्त्रियोंमें रत्न है। तूने अपने शीलकी ख़ूब रक्षा की और पतिकी आज्ञाका अक्षर-अक्षर पालन किया, इसलिये तेरे समान इस दुनियाँमें दूसरी कौन स्त्री है ?" जब महीपालने उसकी ऐसी प्रशंसा की, तब उसने कहा,—"पिताजी ! आपलोगोंने जो मेरी उपेक्षा की, वही मेरे लिये हितकारक हो गयी। उस दिन आपने मेरा अपमान नहीं किया होता, तो आपके पुत्र परदेश क्यों जाते ? उन्हें राज्य क्यों कर मिलता ? आपका गौरव कैसे बढ़ता ? मेरे मनोरथ कैसे सिद्ध होते ?" इसके बाद शूरपाल राजाने सब मन्त्रियों और सामन्तोंसे कहा,—"ये मेरे पिता और ये मेरे भाई

हैं, यह मेरी माता और ये मेरी भाभियाँ हैं। ये लोग मेरे पूज्य हैं, इसलिये तुम लोग इन्हें प्रणाम करो।" यह सुन, आनन्दित होकर सब सामन्त आदिने उन्हें नमस्कार किया, तब शूरपाल राजाने अपने भाइयोंको अलग-अलग देश देकर उन्हें माण्डलिक राजा बना दिया। कहा है,—

"नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन।
प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"चंचल राज्यादि अधिकार पाकर जिसने शत्रुओंका अपकार नहीं किया, मित्रोंका उपकार नहीं किया और बन्धुओंका सत्कार नहीं किया, तो क्या किया? कुछ भी नहीं किया।"*

शूरपाल राजाने अपने माता-पिताको अपने पास ही रखा और अपनी आत्माको कृतार्थ मानते हुए अपने राज्यका पालन करने लगे। एक दिन उस नगरके बाहर वाले उद्यानमें श्री श्रुतसागर नामके सूरिका समवसरण हुआ। उस समय उनके चरणोंको नमस्कार करनेके लिये नगरके लोगोंको जाते देखकर शूरपाल राजाने मंत्रीसे पूछा,—"हे मंत्री! ये लोग कहाँ चले जा रहे हैं?" इसके उत्तरमें मंत्रीने राजाको सूरिके आगमनका समाचार कह सुनाया। यह सुन, राजाने कहा,—"जब इस नगरके लोग ज्ञानके सूर्यके समान गुरुको नमस्कार करनेके लिये जा रहे हैं, तब मुझे भी जाना चाहिये।" मंत्रीने कहा,—"हे स्वामी! यह विचार बहुत ही उचित है।" बस तुरतही राजा, माता-पिता और प्रियाके साथ उद्यानमें आ, सूरिको प्रणाम कर, उनके पास ही उचित स्थानपर बैठ रहे। उस समय सूरिने राजाको संसार-समुद्रके पार उतारनेमें नौकाके समान श्री सर्वज्ञ-भाषित जिनधर्मकी देशना कह सुनायी। उसे सुन, प्रतिबोध प्राप्त कर, राजाने गुरुके सामने ही श्रावक धर्म अङ्गीकार किया और उन्हें प्रणाम कर घर चले आये। इसके बाद राजा शूरपाल प्रतिदिन सूरिको प्रणाम करने आते और धर्म सुन जाया करते। एक दिन अवसर पाकर राजाने गुरुसे पूछा,—"हे

प्रभो ! मैंने पूर्व-जन्ममें कौनसा ऐसा पुण्य किया था, जिसके प्रभावसे मुझे इतनी बड़ी राजलक्ष्मी विना प्रयासके ही मिल गयी ! यह सुन, सूरिने कहा,—"हे राजन् ! पूर्व भवमे तुमने अतिथिसंविभाग किया था, इसीसे यह राजलक्ष्मी तुम्हें प्राप्त हुई है। उसका हाल सुनो—

"इसी भरतक्षेत्रमें क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर है। उसमें वीरदेव नामक एक श्रेष्ठ श्रावक रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुव्रता था। वह भी जिनधर्ममें बड़ी तत्पर थी। दोनों स्त्री-पुरुष धर्म-कार्यमें मुस्तैद रहते हुए गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन कर रहे थे। एक दिन अष्टमी तिथिको वीरदेवने पौषध करके पारणा के दिन विचार किया,—"जो पर्वके दिन उपवास कर, 'पौषध करते हुए, पारणके दिन साधुको निरवध दान भावके साथ करता है, वह धन्य है। इसलिये यदि आज मुझे कोई साधु मिल जाये, तो वड़ा अच्छा हो।" ऐसा विचार कर, वह घरके दरवाज़ेकी तरफ़ टक लगाये देखने लगा। इतनेमें तपस्यासे कृशित अंगवाले दो साधुओंको उसने अपने घरकी ओर आते देखा देखतेही वह झटपट उठकर उनके पास जा, उनको प्रणाम कर, भक्ति पूर्वक उन्हें अपने घर ले आया और उन्हें निर्दोष अन्न-जल खाने-पीनेको दिया। इसके बाद कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे जा, फिर उन्हें प्रणाम कर, अपने घर आ, वह सोचने लगा,—"मैं बड़ा ही पुण्यवान् हूँ। मेरा जन्म सफल है। क्योंकि कहा हुआ है, कि—

"सत्पात्रं महती श्रद्धा, काले देयं यथोचितम् ।
धर्मसाधनसामग्री, धन्यास्येय प्रजायते ॥ १ ॥"

*अर्थात्—सत्पात्र, महती श्रद्धा और समयानुकूल योग्य वस्तुका दान, ये धर्म-साधनकी सामग्रियाँ धन्य पुरुषोंकोही प्राप्त होती हैं।'*

उसकी स्त्री सुव्रता भी सोचने लगी,—"मेरे यह स्वामी बड़े ही पुण्यवान् हैं, जिन्होंने श्रद्धाके साथ साधुको दान दिया।" इस प्रकार विशुद्ध भावसे दानका अनुमोदन करनेके कारण वह भी पात्रदानके पुण्यकी अधिकारिणी हुई। इसके बाद दोनों स्त्री-पुरुषने अनेक बार

विविध प्रकारके दान दे, चिरकाल पर्यन्त समकित सहित श्राद्ध धर्मका प्रतिपालन किया। अन्तमें आशन अङ्गीकार कर, आराधना द्वारा आत्माको निर्मलकर शुभध्यानसे मरण प्राप्तकर, वे दोनों ईशान देवलोकमे जाकर देव हुए। वहाँ देवका आयुष्य पूर्णकर, वीरदेवका जीवही वहाँसे च्युत होकर, इस समय शूरपाल राजाके रूपमें अवतीर्ण हुआ है और सुव्रताका ही जीव च्युत हो, तुम्हारी प्रिया शुभ्र मनोरथा शीलमतीके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। हे राजन! तुमने पूर्व भवमें जो सत्पात्रको दान दिया था, उसीके प्रभावसे तुम्हें विना मिहनतके ही राज्य मिल गया।"

इस प्रकार अपने पूर्व भवका वृत्तान्त श्रवण कर, रानी सहित राजाको जातिस्मरण हुआ, जिससे उन्हें अपना पूर्व भव प्रत्यक्षकी भाँति दीखने लगा और उन्होंने वैराग्य प्राप्त कर, चन्द्रपाल नामक अपने पुत्रको गद्दीपर बैठा दिया और प्रिया सहित उन्हीं गुरुसे दीक्षा ले ली। इसके बाद अतिचार—रहित उसका पालन करते हुए विविधप्रकारका तप करते हुए केवल-ज्ञानको प्राप्त कर, वे मोक्षको प्राप्त हो गये

अतिथि-संविभागपर शूरपाल-कथासमाप्त

प्रभु कहते हैं,—"हे चक्रायुध! दानके विषयमें एक और कथा है। उसे भी सुनो—

सुपात्रदानजाद्धर्मा-दिह लोकेपि मानवः।
अभीष्टार्थमवाप्नोति, व्याघ्र कौटुम्बिको यथा ॥१॥

*अर्थात्--"सुपात्रको किये हुए दानसे जो धर्म होता है, उससे मनुष्य इस लोकमें भी व्याघ्र कौटुम्बिककी भाँति अभीष्ट अर्थको प्राप्त करता है।"*

## व्याघ्र कौटुम्बिककी कथा।
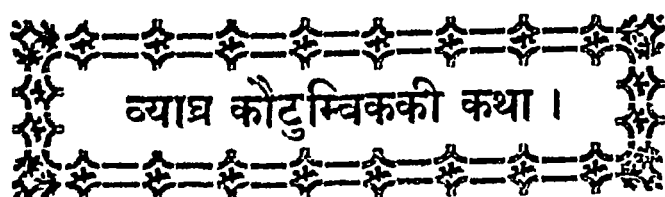
इसी भरतक्षेत्रमें पारिभद्र नामक नगर है। उसमें कभी व्याघ्र नामका एक क्षत्रिय रहता था। वह सेवा-वृत्तिका त्याग कर खेती

करने लगा था। उसके दुर्भाग्यसे कुछ ही दिनोंमें उसका धन नष्ट हो गया, वह निर्धनोंमें शिरोमणि हो गया और साथ ही साथ उसे आलस्यने भी घेर लिया।

"अलसोऽनुपायवेदी, भाग्यैरत्यन्तभुभितो यम्तु।
सीदति पुरुषत्रिनयं, केवलमिह जगति वहुरत्ने ॥१"

*अर्थात्--"इस जगत्में बहुतेरे रत्न पड़े हुए हैं; तथापि आलसी, उद्यम न जाननेवाले, और बदक़िस्मतीके मारे हुए—ये तीन तरहके लोग दुःखितही रहते हैं।"*

यही सोचकर एक दिन उसकी पत्नीने उससे कहा,—"हे स्वामी! तुम निश्चिन्त होकर निरुद्यम की भाँति क्यों बैठे हुए हो?" उसने कहा,—"हे प्रिये! मैं क्या करूँ? भाग्यकी खुटाईसे राज-सेवा और खेतीवारी दोनो ही उद्यमोंमें मुझे नुक़सान ही हाथ आया।" उसकी पत्नीने कहा,—"स्वामी! यदि तुम भाग्यहीन हो तो भी तुम्हें कोई-न-कोई उद्यम करना ही चाहिये। कहा है, कि—

"उद्यमे नास्ति दारिद्रंय, जपतो नास्ति पातकम्।
मौनेन कलहो नास्ति, नास्ति जागरतो भयम् ॥ १ ॥'

*अर्थात्--"उद्यम करनेसे दरिद्रता मिट जाती है, जप करने से पाप कट जाता है, मौन रहनेसे लड़ाई बन्द हो जाती है और जगते रहनेसे कोई डर नहीं रहता।"*

इसलिये आपको उद्यम करनाही उचित है और भी कहा है,—

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोष. ॥१॥"

*अर्थात्—"उद्योग करनेवाले पुरुषसिंहको लक्ष्मी प्राप्त होती है। 'दैव देगा, तो मिलेगा' ऐसा कहना कायर आलासियोंका काम है। इसलिये दैवका आधार छोड़कर अपनी शक्तिके अनुसार उद्यम*

*करो। यत्न करनेपर भी यदि कार्यसिद्ध न हो, तो फिर अपना क्या दोष है? कुछ भी नहीं*

"इसलिये हे प्राणेश! वस्त्र और आभूषणोंकी वात तो दूर रहे, तुम्हारे करते मेरी भोजन की इच्छा भी कभी पूरी नहीं हुई। ये वालक खानेके लिये वार-वार रोते रहते हैं। क्या इन्हें देखकर भी तुम्हारे दिलमें दुःख नहीं होता? तुमने इस राजाकी सेवासे वैसा कुछ लाभ नहीं उठाया, तो अवके दूसरे राजाकी सेवा कर देखो, क्योंकि —

"गन्तव्यं नगरशतं, विज्ञानशतानि शिक्षणीयानि।
नरपतिशतं च सेव्य, स्थानान्तरितानि भाग्यानि॥ १॥"

*अर्थात्—"सैकड़ों नगरोंकी सैर करो, सौ-सौ हुनर सीखो, सौ-सौ राजाओंकी सेवा करो—कहीं न कहीं लाभ हो ही जायेगा; क्योंकि मनुष्योंका भाग्य स्थानान्तरमें जानेसे ही खुलता है। इसलिये तुम्हें दूसरी जगह अवश्य जाना चाहिये। इससे तुम्हें जरूर लाभ पहुँचेगा।"*

इस प्रकार स्त्रीके समझानेपर व्याघ्र क्षत्रिय सेवावृत्तिके उद्योगमें लगा। प्रायः देखा जाता है, कि गृहस्थोंको अपनी स्त्रीकी वात अवश्य ही माननी पडती है। इसके वाद व्याघ्रने परदेश जानेके इरादेसे किसी वणिक्से कहा,—"सेठजी! यदि मेरी स्त्री आपसे कुछ माँगे, तो आप मेरे खाते नाम लिखकर दे दीजियेगा। मैं राजसेवा कर जव धन कमा लाऊँगा, तव आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका दूँगा। आप मेरी स्त्रीकी इच्छा सदा पूरी किया कीजियेगा।" यह सुन, उस वणिक्ने कहा,—"वहुत अच्छा।" इसके वाद कुछ राहखर्च लेकर वह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो, शुभमुहूर्त्तमें घरसे वाहर हुआ। क्रमशः शंखपुर नामक नगरमें पहुँच कर वह सेवकों पर अत्यन्त दया करनेवाले शूरसेन नामक वहाँके राजाकी सेवा करने लगा। राजाने उसे मधुर वचनोंसे वड़ा सुखी किया और वह भी धनकी आशासे उनकी आदर-पूर्वक सेवा करने लगा। इसी तरह कुछ दिन वीत गये। इस वीच उसने अपने

अस्त्र-शस्त्र भी बच खाये—पास-पल्ले भी जो कुछ दाम-दमड़ा था, वह भी उड गया। उसने एक वर्ष तक बिना वेतनके राजाकी सेवा की; पर उसने राजासे कुछ भी लाभ नहीं उठाया। तब उसने बड़े अफ़सोसमें पड़कर सोचा,—"राजाने पहले तो बड़ी उदारता भरी बातें कीं, पर अब तो मालूम होता है, कि वे निरी थोथी बातें थीं। कहा भी है, कि—

> असारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।
> नहि तादृग् ध्वनिः स्वर्णे, यादृशः कांस्य भाजने ॥ १ ॥"

*अर्थात्*—"अकसर देखा जाता है, कि जिसके भीतर कुछ सार नहीं होता, उसका उपरसे बड़ा भारी आडम्बर होता है, काँसके बर्त्तनसे ऐसी ध्वनि निकलती है, वैसी सोनेसे नहीं निकलती।

"कितने ही मनुष्य बातें बोलनेमेंही बहादुर होते हैं; काम करनेमें नहीं। शास्त्रमें कहा है, कि—

> "अदातरि समृद्धोऽपि, किं कुर्वन्त्युपजीविनः।
> किंशुके किं शुकः कुर्यात्, फलितेऽपि बुभुक्षित ॥ १ ॥"

*अर्थात्*—समृद्धिशाली हो; पर दाता न हो, तो उसके सेवक क्या करें? (सेवकों का दुःख-दारिद्रय कैसे दूर हो?) फले हुए किंशुकके वृक्षको लेकर भूखा तोता क्या करे? (उससे तोतेकी भूख थोडेही मिटनेकी है?)"

ऐसा विचारकर उसने फिर सोचा,—"इस कृपण राजाकी सेवासे तो मेरी खेती ही अच्छी है। कहा भी है, कि—

> "लक्ष्मी वसति वाणिज्ये, किंचित्किंचिच्च कर्षणे।
> अस्ति नास्ति च सेवायां, भिक्षायां न च नैव च ॥ १ ॥"

*अर्थात्*—"लक्ष्मी व्यापारमें ही रहती है। थोड़ी-थोड़ी खेती बारीमें भी रहती है। सेवासे लक्ष्मी होती है और नहीं भी होती। परन्तु भिक्षासे तो हरगिज होही नहीं सकती।

"इसके अतिरिक्त खेती करनेमें घरवालोंसे विछुड़नेका भी डर नहीं रहता। यद्यपि योंही खाली हाथ घर लौटना बड़ी शर्मकी बात है, तथापि व्यर्थ यहाँ रहना किस कामका?" ऐसा विचार कर वह उस स्थानसे चल निकला और बिना खर्च-वर्चके ही रास्ता तै करता हुआ रातके समय अपने घर आया तथा घरके बाहरवाली भीतसे उढ़क कर खड़ा हो रहा। इतनेमें उसने अपनी स्त्रीको, अपने बालकोंको, जो सुंदर पदार्थ खानेको माँग रहे थे, यह जवाब देते हुए सुना,—"पुत्रो! तुम्हारे पिता राजाकी सेवा कर, बहुतसा धन कमा लायेंगे। तब मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छानुसार भोजन दूँगी। तुम्हारे पिता बड़े अच्छे-अच्छे वस्त्र लायेंगे और मुझे गहने गढ़ा देंगे—सब कुछ अच्छा हो जायेगा; इसलिये तुम रोओ मत।" यह सुन, व्याघ्रने सोचा,—"अहा! मेरी स्त्रीके हृदयमें तो बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं! ऐसी हालतमें जब वह मुझे यों फटे हाल आया हुआ देखेगी, तो उसकी छाती फट जायेगी और वह मर जायेगी। इसलिये चाहे जितने दिन बीत जायें; पर मुझे धन लेकर ही घर आना चाहिये, नहीं तो नहीं।" ऐसा निश्चय कर वह पीछे लौटा और बिना किसीको कानोंकान अपने आनेकी ख़बर दिये चला गया। उस समय वह अपने मनमें विचार करने लगा,—

"निर्मितोऽसि नरः किं त्वं, विलीनोऽम्बोदरे न किम्।
जीव रे निर्धनावस्था, जाता यस्ये दृग्री तव॥ १॥
नार्जिता कमला नैव, चक्रे भर्तव्य पोषणम्।
दत्तं च येन नो दानं, तस्य जन्म निरर्थकम्॥ २॥"

*अर्थात्—"रे जीव! तू पुरुष काहेको हुआ? माके गर्भमें ही मर क्यों न गया, जो तेरी ऐसी दरिद्रावस्था हुई? जिसने धन नहीं कमाया; जिनका पालन-पोषण करना चाहिये, उन्हें नहीं पाला-पोसा; दीन-दुःखियोंको दान नहीं दिया, उसका जन्म व्यर्थ ही गया।*

ऐसा विचार कर, चित्तमें दृढ़ता और साहसको धारण कर वह उत्तम रत्नोंकी प्राप्तिके निमित्त रोहणाचल-पर्वतकी ओर चला गया।

मार्गमें भिक्षाटन करता हुआ वह रास्तेके लोगोंसे रोहणाचलकी राह मालूम करता हुआ क्रमशः उस पर्वतपर पहुँच गया । कहा भी है, कि—

"कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम् ?
को विदेशः सुविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम् ?"

*अर्थात्—"समर्थजनोंके लिये कुछ भी भारी नहीं है; उद्योगियों-के लिये कितनी भी दूरी हो ; पर वह जाना कुछ मुश्किल नहीं है। उत्तम विद्यावालोंको विदेश कौनसा है । और प्रिय वचन बोलनेवालेका पराया कौन है ?"*

इसके बाद व्याघ्र, रोहणगिरिपर चढ़कर कुदालसे वहाँकी भूमि खोद, अच्छे-अच्छे रत्न निकाल, अपने वस्त्रके छोरमें बाँध, भीख माँग-माँग कर पेट पालता हुआ अपने घरकी ओर चला । रास्ता चलते-चलते वह एक दिन विश्रामके लिये एक पेड़के नीचे बैठ गया । इसी समय उसने एक नुकीली दाढ़ोंवाले बाघको मुँह फैलाये अपनी ओर आते देखा । उसे देख, डरके मारे वह जान बचानेके लिये शीघ्रताके साथ उस पेड़ पर चढ़ गया । उस समय रत्नोंकी पोटली, जिसे उसने नीचे रख दिया था, भूमि पर ही पड़ी रह गयी । बाघ, कुछ देरतक उस पेड़के नीचे खड़ा रह कर, अन्तमें निराश हो, जंगलमें चला गया; परन्तु व्याघ्र उसके भयसे वृक्ष पर से नीचे उतरा नहीं इतनेमें वहाँ एक बन्दर आ पहुँचा और अपने चञ्चल स्वभावके कारण झटपट उस रत्नोंकी पोटलीको मुँहमें दबाये हुए उछलता कूदता हुआ भाग गया । उसे पोटली लेकर भागता देख, व्याघ्र झटपट पेड़से नीचे उतरकर उसके पीछे-पीछे दौड़ा; पर वह बन्दर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर छलाँग मारता हुआ थोड़ी देरमें कहीं अदृश्य हो गया । उस समय व्याघ्रने सोचा,—"हे जीव ! जिसे निकाचित पाप-कर्म कहते हैं, वही शायद मुझसे पूर्व जन्ममें बन आया है, इसीसे विधाताने मुझे इस पृथ्वीपर ऐसा बना कर भेजा है, कि मैं जिसी काममें हाथ डालता हूँ, वही बिगड़ जाता है । परन्तु यद्यपि पुण्यरहित प्राणियोंके

सारे उद्यम निष्फल हो जाते हैं, तथापि उन्हें पुरुषार्थका त्याग नहीं करना चाहिये।"

इस प्रकार अपनी आत्माको आपही धैर्य देकर वह आगे बढ़ा। क्रमसे वह जङ्गल पारकर एक गाँवमें पहुँचा। उस गाँवके बाहर एक योगीको बैठा देख, व्याघ्रने उसे प्रणाम किया। तब योगीने कहा,—"बेटा! तेरा दारिद्र दूर हो।" यह आशीर्वाद सुन, व्याघ्रने उसे अपनी पूरी राम कहानी सुनाकर कहा,—"स्वामी! अब आपकी कृपासे मेरी दरिद्रता अवश्य ही दूर होगी।" इसके बाद योगीने उसे रसकूपके कल्पकी बात सुनायी और एक पहाड़की कन्दरामें ले जाकर उसे रसके कूएँमें रस लानेके लिये लटकाया। इसी समय सुलसकी तरह उसे भी रस-कूपमें पहलेसे पड़े हुए किसी आदमीने उसके लिये रसकी तुम्बियाँ भर दीं और उस योगीकी दुष्टता बतला दी। इसके बाद व्याघ्र रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए कुएँके किनारे पहुचा। जब योगीने उससे तुम्बियाँ माँगी, तब उसने नहीं दी। उस समय योगीने सोचा,—"पहले मैं इसे बाहर तो निकालूं, पीछे किसी-न-किसी उपायसे इसे धोखा देकर तुम्बियाँ हथिया लूंगा।" यही सोचकर उसने उसे कुएँसे बाहर निकाला। इसके बाद वे दोनों पर्वतकी गुफासे बाहर निकलकर गाँव-के पास आ पहुँचे। वहाँ आकर योगीने उससे कहा,—"हे भद्र! हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया। इस रसको लोहेके पत्र पर लेपकर आगमें तपाकर मैं सोना बनाऊँगा। अब तुम निश्चिन्त रहो।" यह कह, पहलेका थोड़ासा सोना, जो योगीके पास था, उसे व्याघ्रके हवालेकर योगीने कहा,—"बेटा! तू यह सोना बस्तीमें ले जाकर बेंच डाल। और उसी दामसे दो वस्त्र तथा उत्तम भोजन ला, तो हमलोग भोजन करें। एक वस्त्र मेरे लिये और एक अपने लिये लाना। धनका यही उपयोग है, कि खाये और दान करे।" यह सुन, व्याघ्रने सोचा,—"यह योगी अवश्य ही मेरा हितैषी है, नहीं तो अपना सोना मुझे काहेको देता?" ऐसा विचारकर, रसकी तुम्बियाँ योगीके ही पास छोड़कर वह सरल

चित्तसे वस्तीमें जा, पूरी-मिठाई आदि अच्छी-अच्छी खानेकी चीज़ें बनवा, मिट्टीके बर्त्तनमें भर, और वस्त्र भी खरीद कर गाँवके बाहर हुआ । इधर योगी रसकी तुम्बियाँ लिये हुए उसे धोखा देकर चम्पत हो गया। वहाँ पहुँचकर, व्याघ्रने जब उसे नहीं देखा, तब सोचा,—"ओह ! उस दुष्ट योगीने तो मुझे खूब छकाया ! परन्तु कहा है,—

'मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, स्नेहीविश्वासघातकः ।
ते नरा नरकं यान्ति, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १ ॥'

*अर्थात्—"मित्रद्रोही, कृतघ्न और स्नेहीके साथ विश्वास-घात करनेवाले मनुष्य तबतकके लिये नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक सूरज और चाँद पृथ्वी पर प्रकाश फैलाया करते हैं ।"*

यह कह, भोजन और वस्त्र पृथ्वीपर फेंक, मूर्च्छित हो जानेके कारण वह ज़मीनपर पड़ा रहा। कुछ देर बाद होशमें आनेपर उसने आप-ही-आप कहा,—"हा दैव ! क्या इस संसारमें तुम्हें मुझसा अभागा और न कोई न मिला,जो तुम मुझे ही इस तरह सब दुःखोंका भण्डार बनाये हुए हो ? एक तो मुझे निर्धनता सता ही रही थी। दूसरे, मैंने जो सेवा की, तो वह भी बेकार होगयी ; फिर रत्न हाथमें आकर जाते रहे और अबके सुवर्ण सिद्धिका रसभी मुट्ठीमें आकर निकल गया ! मेरे लिये केवल दुःख-परम्परा ही रखी है। इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही अच्छा है।"

यही सोचकर वह एक पेड़पर चढ़ गया और उसकी एक डालमें रस्सी बाँध, उसमें अपना गला फँसाना ही चाहता था, कि इतनेमें महीने भरके उपवासी, ईर्यासमितिके शोधनमें तत्पर और बस्तीकी ओर आहारके लिये जाते हुए एक मुनिको देखकर उसने सोचा,—"मैं वृक्षसे नीचे उतरकर यह शुद्ध भोजन और वस्त्र इन्हीं मुनीश्वरको दे डालूँ, तो इस दानके प्रभावसे शायद जन्मान्तरमें मुझे सुखकी प्राप्ति होगी।" यह सोच, वृक्षसे नीचे उतर उसने मुनिको प्रणाम किया और उनके सामने वह भोजन-वस्त्र रख कर कहा,—"हे पूज्य ! कृपा कर आप इस भोजन और वस्त्रको ग्रहण करें ।"

यह सुन, मुनिने उस बयालीस दोषोंसे रहित शुद्ध भोजनको देख, बर्त्तनसे निकालकर ग्रहण किया और वस्त्रको भी कल्पनीय देखकर उसे भी ले लिया। इसके बाद उसने फिर मुनिको प्रणाम किया। मुनि अपने स्थानको चले गये। व्याघ्रने अपने मनमें सोचा,—"मैं भी धन्य हूँ, जो मुझे ऐसा सुअवसर हाथ लगा। बिना बड़े भाग्यके ऐसा उत्तम भोजन वस्त्र कैसे मिलता और ऐसे स्थानमें ऐसे महामुनिका शुभागमन कैसे होता? फिर मुझ विवेकहीनके ही मनमें दान देनेकी वासना कैसे उदय हो आती? अतएव आज मेरा जन्म सफल हो गया। वह शुद्ध भावसे यहाँ सब सोच रहा था, कि इतनेमें उस वटवृक्षमें रहने वाली कोई देवी बोल उठी,—"बेटा! तेरे मुनिको दान देनेसे मैं बड़ी सन्तुष्ट हुई हूं, इसलिये बता, मैं तेरा कौनसा मनोरथ पूरा करूँ?" यह सुन, व्याघ्रने कहा,—"तुम चाहे कोई देवी क्यों न हो, पर यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो मुझे पारिभद्र नगरका राज दे डालो—साथही बहुतसा द्रव्य भी दो।" देवीने कहा,—"हे महापुरुष! तुझे सब कुछ मिलेगा। पहले तू इस बाकी बचे हुए अन्नको खाकर अपनी जान तो बचा ले।" देवीके इस आदेशको सुन, हर्षित होकर उसने भोजन किया। वस्त्र पहना और स्वस्थ हुआ। इतनेमें देवीके प्रभावसे वही बन्दर जगल से आकर रत्नोंकी पोटली उसके पास रख कर फिर जंगलमें चला गया। उसी पुण्यके प्रभावसे वह योगी भी रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए आया और रससिद्धिके योगसे ढेर-का-ढेर सोना बनाकर व्याघ्रको दे गया।

इधर पारिभद्र-नगरके राजा, किसी कारणसे दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हुए। उनके राज्यको चलाने वाला एक भी पुत्र नहीं था। इसलिये देवी रत्नों और सुवर्णके साथ व्याघ्रको लिये हुई उस नगरके पास छोड गयी और लोगोंसे कह गयी,—"हे पुरवासियो! मैं तुम्हारे लिये एक सुयोग राजा ले आयी हूँ और उसे पुरीके बाहर छोड़े जाती हूँ। तुम लोग उसका बड़ी धूम-धामके साथ नगरमें प्रवेश कराओ।" देवीका

यह आदेश सुन, मन्त्री, सामन्त आदि पुरवासी बड़े सन्तुष्ट हुए और नगरके वाहर आये।

वहाँ उन्होंने अपने ही नगरके रहनेवाले व्याघ्रको देखा। इसके वाद बड़ी धूम-धामके साथ उसे हाथी पर बैठाकर मन्त्री-सामन्त आदिने उसे पुर-प्रवेश कराया। उस समय तक इस नगरमें पहलेसे क्या-क्या हो चुका था वह भी सुनो—

व्याघ्रकी स्त्री उसी वनियेकी दूकानसे वरावर आटा-चावल लेती रहती थी, इसलिये धीरे-धीरे उस पर वनियेंका वहुतसा लहना हो गया, इस कारण और वहुत दिनोंसे व्याघ्रका कोई समाचार नहीं मिला था, इसलिये भी—उस वनियेने व्याघ्रकी स्त्रीको वालकों सहित पकड़कर उस नगरके कोतवालके घर वन्धक रख दिया था। यह समाचार सुन कर व्याघ्रने उस वनियेका लहना कौड़ी-कौड़ी चुका दिया और वस्त्रों सहित अपनी स्त्रीको छुड़वाकर राजमहलमें वुला लिया। इसके वाद व्याघ्र भी राजमन्दिरमें आया। मन्त्री, सामन्त आदि सव लोगोंने उसे प्रणाम किया। इसके वाद व्याघ्र राजाने सवके सामनेही अपनी महा आश्चर्यदायिनी कथा कह सुनायी। इसके वाद राजाने अपनी स्त्री और वच्चोंको अच्छे-अच्छे वस्त्रालङ्कार देकर खूव खुश किया। इस प्रकार सत्पात्रको दान देनेका प्रत्यक्ष और तत्कालिक फल देखकर राजा निरन्तर सुपात्रोंको दान देने लगे। कहा भी है, कि—

"जले तैलं खले गुह्यं, पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं यान्ति, विस्तारंवस्तुशक्तितः॥ १॥"

*अर्थात्—"जलमें तेल, खलमें गुप्त वात, पात्रमें दान, वुद्धिमानमें शास्त्र—इतनी वस्तुएँ अपनी शक्तिके अनुसार आपसे आप विस्तारको प्राप्त होती हैं।*

अव अपने दुःखोंको याद कर, व्याघ्रराजा सव प्राणियोंपर मैत्री-भाव रखने लगे और कृपा पूर्वक जिसका जहाँतक उपकार वन पड़ता, वहाँतक उपकार करने लगे।

एक दिन उस नगरमें ज्ञानगुप्त नामके सूरि आ पहुँचे, उनके चरणों-में प्रणाम करनेके लिये व्याघ्र राजा भी वहाँ गये और उन्हें प्रणामकर उचित स्थान पर बैठ रहे। सूरिने उन्हें प्रतिबोध देनेवाली धर्मदेशना सुनायी। उसे सुनकर, उन्होंने कहा,—"पूज्यवर! धर्मका फल तो हाथों-हाथ मिला। दानके प्रभावसे मुझे इसी भवमें राज्यकी प्राप्ति हुई, परन्तु यह तो कहिये, पूर्व भवमें मैंने कौनसा पाप किया था, जिसके कारण मुझे पहले केवल दुःख-ही-दुःख प्राप्त होता गया?" यह सुन ज्ञानी गुरुने कहा,—"हे राजन! सुनो -

"पूर्व समयमें एक पहाड़ी प्रदेशमें दुर्गासिंह नामक पल्ली-पति (गाँव-का चौधरी) रहता था। यद्यपि सभी भील परद्रव्यको हरण करने वाले होते हैं, तथापि कितनोंके परिणाम अच्छे भी होते हैं और कितनोंके बुरे। एक दिन भील कहीं छापा मारने गये। वहाँ उनमेंसे एकने कहा,—"अपने सामने जो कोई दुपाया-चौपाया मिले, उसे बेधड़क मारते चलो।" दूसरेने कहा,—"भाई जानवरोंको मारनेसे क्या लाभ? मनुष्योंमें स्त्री-पुरुषका भेद न करके सबको मार डालो, क्योंकि बस्तियोंमें इन्हीं लोगोंका भय रहता है।" तीसरेने कहा,—"स्त्रियोंके मारनेसे क्या लाभ है? केवल पुरुषोंको ही मारना चाहिये।" चौथेने कहा,—"पुरुषोंमें भी जो शस्त्रधारी हों, उन्हे ही मारना चाहिये, शस्त्र हीनोंको मारनेका क्या काम है?" पाँचवेने कहा,—"शस्त्रधारियोंमें भी जो अपने सामने युद्ध करने आयें, उन्हें ही मारना चाहिये, औरोंको मारनेका क्या काम?" अन्तमें छठा भील बोला,—"किसीको मारना नहीं। अपनेको तो केवल धनसे काम है, इसलिये धन लेकर ही चल देना चाहिये।" इनमें पहलेको कृष्णलेश्यावाला, दूसरेको नीललेश्यावाला, तीसरेको कपोतलेश्यावाला, चौथेको तेजोलेश्यावाला, पाँचवेंको पद्म-लेश्यावाला और छठेको शुक्लेश्यावाला समझना। इनमें पहले तीन तो अवश्य ही नरकमें जाते हैं और शेषमें तीनों क्रमसे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जिस दुर्गासिंह नामक भीलोंके चौधरीका ऊपर

ज़िक्र आया है, वह पद्मलेश्यावाला था। वह निरन्तर पराये धनका हरणकर अपनी जीविका निर्वाह करता था। एक दिन वैरसिंहके सैनिकोंने उसे बल पूर्वक मार डाला। वही मरकर कितनें ही भवोंमें तिर्यंच गतिमें भ्रमण करता हुआ इस भवमें तुम्हारे रूपमें प्रकट हुआ है। पूर्वभवमें तुमनें पराया धन हरण किया था। इसीलिये तुम्हें इस भवमें धनकी प्राप्ति नहीं हुई। कहा भी है—

"अदत्तभावाद्धि भवेद्दरिद्री, दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापं हि कृत्वा नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी ॥१॥"

*अर्थात्—"दान नहीं करनेसे मनुष्य दरिद्र होता है, दरिद्र होनेके कारण वह पाप करता है और पाप करके नरकको जाता है। वहाँसे निकलकर फिर दरिद्री और पापीही होता है।*

"बीच-बीचमें तुम्हें धन मिलता रहा; पर वह भी नष्ट होता गया,—तुम्हारे पास नहीं रहने पाया। अबके सुपात्रको दान देनेके प्रभावसे ही, हे राजन्! तुम्हारी गयी हुई लक्ष्मी और यह राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है। कहा भी है, कि—

"सुपात्रदानेनभवेद्धनाढ्य, धनप्रयोगेण करोति पुण्यम्।
पुण्यप्रभावेण जयेच्च स्वर्गं, स्वर्गे सुखानि प्रगुणी भवन्ति ॥१॥"

*अर्थात्—"सुपात्रदानके प्रभावसे मनुष्य धनाढ्य होता है। धन पाकर वह पुण्य करताहै। पुण्यके प्रभावसे वह स्वर्ग जाता है और स्वर्गमें उसे बहुतेरा सुख मिलता है।*

इस प्रकार गुरुके मुँहसे अपने पूर्व भवकी बात सुन, प्रतिबोध प्राप्त कर, सूरिको प्रणाम कर, घर जा, अपने पुत्रको राज्य पर बैठा, व्याघ्र राजाने उन्हीं गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद चारित्रकी आराधना कर, समाधि मरण द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, वह देवलोकको चले गये। वहाँसे आकर वह मनुष्य-जन्म प्राप्त कर, मोक्षको प्राप्त होंगे।

सत्पात्रदान-सम्बन्धिनी व्याघ्र-कथा समाप्त।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर स्वामी श्रीशान्तिनाथने चक्रायुध राजासे कहा,—हे राजन्! पहले कहे हुए बारहोंव्रत गृहस्थोंके लिये बतलाये गये हैं। विवेकी मनुष्योंको उन व्रतोंका पालन कर, अन्तमें संलेखना करनी चाहिये। गृहस्थ-धर्मका आराधन कर, बुद्धिमानोंको अन्तमें सर्व-विरति ग्रहण करनी चाहिये। ऐसी शुद्ध संलेखना सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें बतलायी गयी है, अथवा श्रावककी दर्शन (समकित) आदि ग्यारह प्रतिमाएँ वहन करनेको भी शुद्ध संलेखना कहते हैं। इन प्रतिमाओंका वहन न करे, तो अन्तमें सन्थारामें रह कर भी दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसके बाद अन्त समयमें वृद्धि पाते हुए शुभपरिणामके साथ गुरुके निकट त्रिविध अनशन ग्रहण कर, गुरुके मुँहसे आराधना ग्रन्थोंको सुनना चाहिये।

"भव्य जीवोंको चाहिये, कि अपने मनमें निर्मल संवेग-रङ्ग लाकर शुद्ध मनसे इस प्रकार संलेखना करे और उसके पाँचों अतिचारोंका वर्जन करे। उन अतिचारोंके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं,—पहला-इहलोकाशंसा-प्रयोग अर्थात् 'यदि मैं मनुष्य-भव प्राप्त करूँ, तो अच्छा है, ऐसा मनमें विचार करना, पहला अतिचार है। दूसरा—परलोका-शंसा-प्रयोग अर्थात् 'परभवमें मुझे उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त हो, तो ठीक है' ऐसा विचार करना दूसरा अतिचार है। तीसरा—जीविताशंसा-प्रयोग अर्थात् पुण्यार्थी जन जो अपनी महिमा बखानते हों, उसे देखकर अधिक दिन जीनेकी जो इच्छा होती है, वही तीसरा अतिचार है। चौथा—मरणाशंसा-प्रयोग अर्थात् अनशन ग्रहण करने बाद क्षुधा आदि पीड़ासे जल्दी मर जानेकी जो अभिलाषा होती है, वही चौथा अतिचार है। पाँचवाँ—कामभोगाशंसा-प्रयोग अर्थात् उत्तम शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धकी जो इच्छा होती है, वही पाँचवाँ अतिचार है। पहले सुलसकी कथामें जो जिनशेखरका वृत्तान्त कहा गया है, उसे ही सलेखनाके विषयमें दृष्टान्त समझना।" इस प्रकार संलेखनाके सम्बन्ध में श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वरके कहे हुए धर्मोंको सुनकर, सारी सभाको ऐसा आनन्द हुआ, मानों सब पर अमृत बरस गया।

इसी समय चक्रायुध राजाने खड़े होकर प्रभुकी वन्दना कर, दोनों हाथ जोड़े हुए विनती की,—"हे समस्त संशय-रूपी अन्धकारको नाश करनेमें उत्तम सूर्यके समान और तीनो लोकोंसे वन्दना किये जाते हुए श्रीशान्तिनाथ प्रभु! तुम्हे नमस्कार है। हे प्रभु! मेरी दुष्कर्म रूपी बेड़ियोंको काट कर तथा राग-द्वेष रूपी शत्रुका नाश कर, मुझे इस संसार-रूपी कारागृहसे मुक्त करो। हे जिनेश! निरन्तर जन्म, जरा और मृत्युकी आगमें जलते हुए इस भवरूपी गृहसे दीक्षा-रूपी करावलम्बन देकर मुझे बाहर निकाल लो।" इस प्रकार श्रीशान्तिनाथसे विनती कर, अत्यन्त वैराग्य प्राप्त हो, चक्रायुध राजाने पैंतीस राजाओंके साथ प्रभुसे दीक्षा ग्रहण कर ली।

इसके बाद उन्होने प्रभुसे पूछा,—"हे स्वामिन्! तत्व क्या है?" प्रभुने कहा,—"उत्पत्ति—यह पहला तत्व है।" तब बुद्धिमान् राजाने एकान्तमें जाकर विचार किया,—"ठीक है। समय-समय पर नरक तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें जीव उत्पन्न हुआ करते हैं; पर यदि इसी तरह समय-समय पर उत्पन्न हुआ ही करे, तो वे तीनों भुवनमें न समायें, इसलिये उनकी कोई-न-कोई और गति अवश्य होगी।" ऐसा विचार कर उन्होंने फिर भगवान्से पूछा,—"हे भगवन्! तत्त्व क्या है?" प्रभुने दूसरा तत्त्व "विगम" बतलाया। यह सुन, उन्होंने फिर सोचा,—"विगमका अर्थ नाश है। इसका मतलब यही है, कि समय-समय पर जीवोंका नाश हुआ करता है। पर यदि योंही विनाश हुआ करे, तो जगत् ही सूना हो जाये।" ऐसा विचार कर, उन्होंने फिर पूछा,—"हे भगवन्! तत्त्व क्या है?" तब भगवानने तीसरातत्त्व "स्थिति" बतलाया। इससे समस्त जगत्‌का ध्रौव्य-स्वरूप जान, चक्रायुध राजर्षिने इन तीनों पदोंके अनुसार द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसी तरह अन्य पैंतीसों मुनियोंने भी भगवान्‌के मुँहसे त्रिपदी सुन कर द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसके बाद वे सब जिनेश्वरके पास गये। उन्हें इस प्रकार बुद्धि-वैभवसे सम्पन्न जान,

भगवान आसनसे उठकर खड़े हो गये। इधर इन्द्र सुगन्धित वस्तुओंसे (वासक्षेपसे) भरा हुआ थाल लिये जिनेन्द्रके पास आ खड़े हुए। इसके बाद भगवान्‌ने श्रीसंघको उसमेंसे वासक्षेप लेकर दिया। छत्तीसों मुनियोंने तीन बार भगवान्‌की प्रदक्षिणा की। इसके बाद उनके मस्तके पर श्रीसंघ तथा भगवानने वासक्षेप डाला। प्रभुने गणधरके पद पर स्थापित किया। इसके बाद भगवान्‌ने बहुतेरे पुरुषों और स्त्रियोंको दीक्षा दी, जिससे स्वामीको साधु-साध्वियोंका बहुत बड़ा परिवार प्राप्त हो गया। जो लोग यतिधर्मका पालन करनेमें असमर्थ थे, उन श्रावक-श्राविकाओंने जिनेन्द्रके निकट श्रावकोंके बारह व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार पहले समवसरणमें चार प्रकारके संघ उत्पन्न हुए।

पहली पोरशी पूर्ण होने पर श्रीजिनेश्वर उठ खडे हुए और दूसरे प्राकारमें बने हुए देवच्छन्दमें विश्राम करने गये। उस समय श्री जिनेन्द्रके पादपीठ पर बैठकर प्रथम गणधर चक्रायुधने दूसरी पोरशीमें सभाके समक्ष व्याख्यान दिया। उस व्याख्यानमें उन्होंने जिन धर्ममें स्थिरताके निमित्त श्रीसंघको पापका नाश करनेवाली अन्तरङ्ग-कथा इस प्रकार कह सुनायी,—

"हे भव्यजीवो! यह मनुष्यलोक नामका क्षेत्र है। इसमें शरीर नामका नगर है। इसमें मोह नामक राजा स्वेच्छा-पूर्वक विलास करता है। इस राजाकी पत्नीका नाम माया है। इनके पुत्रका नाम अनङ्ग है। इस राजाके प्रधान मन्त्रीका नाम लोभ है। सब वीरोंमें शिरोमणि क्रोध नामका महायोधा उस मोह राजाके पासमें रहता है। राग और द्वेष नामके दो अतिरथी योद्धा हैं। मिथ्यात्व नामका माण्डलीक राजा है। मान नामका बडा भारी हाथी इस मोहराजाकी सवारीमें रहता है। इस राजाके इन्द्रिय-रूपी अश्वों पर चढ़नेवाले विषय नामके सेवक हैं। इसी प्रकार उस राजाके बहुत बड़ी फ़ौज है। उस नगरमें कर्म नामका किसान रहता है। प्राण नामका एक बहुत बडा व्यापारी है। मानस नामका तलारक्षक (कोतवाल) है।

एक बार धर्म नामक राजाने मानस नामक नगर-कोतवालको गुरूपदेश-रूपी द्रव्य देकर अपनी ओर मिला लिया और सेना सहित उस नगरमें प्रवेश किया। इस धर्म राजाके ऋजुता नामकी रानी, सन्तोष नामका प्रधान मन्त्री, सम्यक्त्व नामका माण्डलिक राजा, महाव्रत-रूपी सामन्त, अणुव्रत-रूपी पैदल सिपाही, मार्दव नामका गजेन्द्र, उपशम आदि योद्धा और सच्चारित्र नामक रथपर आरूढ़ श्रुत नामका सेनापति है। ऐसे धर्मराजाने मोहराजको जीतकर उस नगरसे निकाल बाहर कर दिया। इसके बाद धर्मराजाने अपने सब सैनिकोंको आज्ञा दी,—"इस नगरमें कोई मोहराजाको ज़रा सी भी जगह न मिलने दे।" धर्मराजाकी ऐसी आज्ञा वर्त्तमान होते हुए भी यदि कदाचित् कोई मोहके वश हो जाये, तो उसे कर्म-परिणति फिरसे रास्तेपर ले आती है। जैसे कि अनीतिपुरमें गये हुए रत्नचूड़ नामक बनियेको यमघण्टा नामकी वेश्याने बुद्धि देकर विपद्से बचाया था।" यह सुन, श्रीसङ्घने प्रथम गणधरसे पूछा,—"वह रत्नचूड़ कौन था? उसकी कथा कह सुनाइये।" तब गणधरने नीचे लिखी कथा कह सुनायी —

## रत्नचूड़की कथा

इसी भरत-क्षेत्रमे समुद्रके किनारे धनाढ्य मनुष्योंसे पूर्ण ताम्रलिप्ति नामकी नगरी है। उस नगरीमे रत्नाकर नामका एक सदाचारी, लक्ष्मीवान् और मर्यादा-पूर्ण सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था। वह अगण्य पुण्य, लावण्य, नैपुण्य और दाक्षिण्यादि गुणोंसे विभूषित था। एक दिन सरस्वतीने रातके पिछले पहर स्वप्नमें महातेजस्वी और अँधेरेमें उजाला करने वाला एक रत्न अपने हाथमे आया हुआ देखा। सोकर उठनेपर उसने यह बात अपने पतिसे कही। स्त्रीकी यह बात सुन, पतिने कहा,—"प्रिये! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्ररत्नकी

प्राप्ति होगी।" यह सुन, सेठानी बड़ी हर्षित हुई। क्रमसे गर्भका समय पूरा होनेपर सेठानीके एक शुभलक्षण-युक्त पुत्र हुआ। स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम रत्नचूड रखा गया। जब वह लड़का पाँच वर्षका हुआ, तब सेठने उसे विद्या-शालामें कलाभ्यास करनेके लिये भेज दिया। क्रमसे पुत्र युवा हुआ। अब तो वह विचित्र शृङ्गार कर उद्भट वेश धारण किये, अपने समान वयसवाले मित्रोंके साथ नगरके उद्यान आदिमे मन-माने तौरसे क्रीडा-विलास करने लगा। एक दिन वह चौकपरसे घूमघामकर धीरे-धीरे चला आ रहा था इसी समय सामनेसे चली आती हुई राजाकी प्यारी वेश्या सौभाग्यमञ्जरीके कन्धेसे वह टकरा गया। इतनेमें उस वेश्याने उसका वस्त्र पकड, क्रोधसे मिली हुई हँसीके साथ कहा —"वाहजी सेठके बेटे! विद्वानोंने ठीक ही कहा है कि धन होनेपर लोग आँखें रहने भी अन्धे, बहरे और गूँगे हो जाते हैं। इसीसे तो तुमने इस नयी जवानीमे, दिन दहाड़े चौड़े रास्तेपर सामनेसे आती हुई मुझको नहीं देखा! अरे भाई! तुम्हें धनका इतना घमण्ड करना ठीक नहीं, क्योंकि नीतिके जाननेवाले विद्वानोंने कहा है, कि बापकी कमाईपर कौन नहीं मौज करता? पर तारीफ़ तो उसकी है, जो अपनी बाजू कूवतकी कमाई पर मौज करता फिरता हो। नीतिशास्त्रमे कहा है—

"मातुः स्तन्य पितुर्वित्त, परस्य क्रीडनार्थनम्।
पानं भोक्तं च भातु च, बाल्य एवोचित यत ॥१॥"

*अर्थात्—'माताका स्तन पान करना, पिताकी सम्पत्तिका उपयोग करना और दूसरोंसे क्रीडाकी वस्तुएँ मांगना—ये सब काम लड़कोंको ही सोहते हैं।' और भी कहा है, कि—*

"सोलसवरिसो पुत्तो, लच्छि भुंजेइजो पिय जणस्स।
सो रणरूवो पुत्तो, पुत्तो सो वयररूवेण ॥ १ ॥

*अर्थात्—"जो पुत्र सोलह वर्षकी उमर हो जानेपर भी पिताकी ही उपार्जित लक्ष्मीका उपयोग करता है, उसे ऋणी या वैरी ही समझना चाहिये।'*

इस प्रकारकी वाते सुनाकर वह वेश्या अपने घर चली गयी। उसकी बातें सुनकर सेठके लडकेने सोचा,—"अहा! इस वेश्याने बहुत ही ठीक कहा। मुझे इसकी वातोंपर अमल करना चाहिये ; क्योंकि कहा है, कि—

'वालादपि हितं ग्राह्य--म मेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां, स्त्रीरत्नदुष्कुलादपि ॥ १ ॥'

*अर्थात्—'यदि बालक भी कोई हितकी बात कह दे, तो उस मान लेना चाहिये। विष्ठामें भी यदि सोना पड़ा हो तो उठा लेना चाहिये। नीचके पासभी यदि उत्तम विद्या हो, तो उससे ले लेनी चाहिये और नीच कुलमें भी यदि स्त्री-रत्न मिले, तो उसे ग्रहण कर लेना उचित है।'*

इस प्रकार नीतिकी बातें मनमे सोचते हुए वह मुँह मलिन किये हुए घर आया। उसे उदास देख, उसके पिताने पूछा,—"पुत्र! आज तुम्हारा यह सूखा हुआ चेहरा मुझे साफ़ बतला रहा है, कि तुम्हें किसी वातका सोच पैदा हुआ है। इसलिये तुम बतलाओ, कि तुम्हें किस चीज़की जरूरत है? तुम्हें जो कुछ चाहिये, वह बतला दो, मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा, क्योंकि तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हो।" यह सुन, तनिक मुस्कुराकर रत्नचूडने पितासे कहा,—"हे पिता! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं द्रव्य उपार्जन करनेके लिये विदेश जानेकी इच्छा करता हूँ। इसलिये आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।" यह सुन, सेठ रत्नाकरने कहा,—"बेटा! अपने घरमें धनकी क्या कमी है? तुम इसीसे अपने सारे मनोरथ पूरे कर सकते हो। और यह भी जान रखो, कि परदेशका क्लेश बड़ा ही कठिन होता है। बड़े ही कठोर मनुष्योंका काम परदेश सेवन करना है। तुम्हारा शरीर बड़ा ही कोमल है, इसलिये तुम भला कैसे परदेश जा सकोगे? साथही जो पुरुष इन्द्रियोंको वशमें रख सके, स्त्रियोंको देखकर मोहित न हो सके, भिन्न-भिन्न तरहके लोगोंसे ठीक-ठिकानेके साथ बातें कर सके, वही परदेश जा

सकता है। इसलिये बेटा! तुम परदेश जाकर क्या करोगे? यह मैंने जितनी सम्पत्ति उपार्जन कर रखी है, वह सब तुम्हारी ही है।" ऐसा कहनेपर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। तब पिताने उसे जानेकी आज्ञा दे दी। जिस कामको करनेके लिये आदमी निश्चय कर लेता है, वह भला कैसे नहीं होगा?

इसके बाद रत्नचूडने अपने पितासे लाख रुपया अपने खाते नाम लिखवाकर लिया और उसीसे किरानामाल ख़रीद, एक भाड़ेके जहाज़में भरकर आप उसीपर सवार होने चला। उसी समय सेठने आकर उसे इस प्रकार शिक्षा दी "बेटा! देखना, अनीतिपुर नामक नगरमें भूले भी न जाना, क्योंकि वहाँके राजा अन्यायी हैं, जिनके अविचार नामक मन्त्री, सर्वग्राह्य नामक कोतवाल और अशान्ति नामक पुरोहित हैं। वहाँ गृहीतभक्षक नामक सेठ, मूलनाश नामका उसका पुत्र, रणघण्टा नामकी वेश्या और यतघण्टा नामकी कुटनी है। उस नगरमें चोर, जुआरी और परस्त्रीगामी लोग बहुत रहते हैं। उस नगरके लोग सदा ऊँचे-ऊँचे मकानोंमें रहते हैं। यदि कोई अनजान आदमी वहाँ व्यापार करनेके लिये पहुँच जाता है, तो वहाँके लोग, जो लोगोंको ठगनेमें बड़े उस्ताद हैं, उसका सर्वस्व हरण कर लेते हैं। इसलिये तुम सिर्फ़ उसी अनीतिपुर नगरको छोड़कर और जहाँ चाहो, वहाँ व्यापार करनेके लिये जा सकते हो। देखो, मेरी यह शिक्षा कभी न भूलना।" इस प्रकार पिताकी शिक्षा सिर-आँखोंपर चढ़ा, माँगलिक उपचार कर, वह सेठ-सुत शुभ-मुहूर्त्तमें घरसे बाहर निकला, उसके स्वजन उसे पहुँचाने चले और शुभ शकुनोंसे उत्साहित होता हुआ वह समुद्रके किनारे आया। कहा है, कि—

'गोकन्याशरसनाथं दधिफलकुसुम पावक दीप्यमान,
यानं वा विप्रयुग्म हयगजवृषभं पूर्णकुम्भ ध्वज वा।

उद्धृवाता चैव भूमिर्जलचरयुगल सिद्धमन्नं शवं वा,
वेश्या स्त्री मांस पिण्ड प्रियाहितवचनं मंगल प्रस्थितानाम्॥ १॥

*अर्थात्—'गौ, कन्या, शंख, बाजा, दही, फल, फूल, धधकती हुई अग्नि, वाहन, ब्राह्मण-युगल, अश्व, हस्ती, वृषभ, पूर्णकुम्भ, ध्वज, खोदी हुई पृथ्वी, जलचर-युगल सिद्ध अन्न, शव, वेश्या, स्त्री, मांसका पिण्ड तथा प्रिय और हितकारक वचन—ये सब चीज़ें यात्रा करनेवालोंको जाते समय मिलें, तो मंगलकी सूचना देती हैं ।'*

इसके बाद रत्नचूड़ जहाज़पर चढ़ा। उसके आत्मीय-स्वजन उसे विदा करके पीछे लौटे। इसके बाद पाल तानकर माँझियोंने जहाज़ चलाना शुरू किया। कूपस्तम्भ पर बैठा हुआ आदमी मार्गका ध्यान रखते हुए नाविकोंको सूचना दिया करता और वे लोग भी उसकी इच्छाके अनुसार वाञ्छित द्वीपकी ओर जहाज़को लिये जाते थे। परन्तु जहाँ पहुँचना था, वहाँ न पहुँचकर वह जहाज़ होनहारके वश वहीं रेतपर चढ़ गया,जहाँ अनीतिपुर नामका नगर था। उस जहाज़को आते देखकर उस नगरके लोग बड़े हर्षित हुए और ऊँचेप्रदेश पर चढ़कर उसकी ओर देखने लगे। उस द्वीपको देखकर रत्नचूड़ तथा नाविकोंने किसीसे पूछा,—"यह द्वीप कौनसा है और इस नगरका क्या नाम है?" उसने उत्तर दिया,—"यह कूट-द्वीप कहलाता है और इस नगरका नाम अनीतिपुर है।" यह सुन, उस सेठके पुत्रने अपने मनमें सोचा,—'जिस नगरमें आनेको पिताने मना किया था, दैवयोगसे वही नगर प्राप्त हो गया ; यह अच्छा नहीं हुआ। पर अब क्या करूँ ? शकुन तो अच्छे हुए थे—हवा भी पीठपरकी है और मेरे चित्तमें उत्साह भी भरा हुआ है, इसलिये मेरी तो यही धारणा होती है, कि मुझे यहाँ मनमाना लाभ होगा।"

इसके बाद वह रत्नचूड़ सेठ जहाज़से नीचे उतरा और सानन्द चित्तसे किनारेपर ही रहने योग्य स्थान देख, वहीं अपने नौकरोंसे सब माल जहाज़से उतरवा मगवाया। राजाके नौकरोंको उसने कर भी दे दिया। इतनेमें चार वणिकोंने आकर कुशल-प्रश्नके बाद रत्नचूड़से

कहा,—"हे श्रेष्ठीपुत्र! तुमने कहीं और न जाकर यहीं उतरकर बड़ा अच्छा काम किया। हम लोग तुम्हारे अपने ही हैं। हम लोग तुम्हारा सब माल ले लेंगे, तुम्हें बेंचनेके लिये तरद्दुद नहीं करना पड़ेगा। यहाँ हमलोग यह सब ख़रीद लेंगे और जब तुम घर जाने लगोगे, तब जैसा माल कहोगे, वैसा माल तुम्हारे जहाजमें भर देंगे।" यह सुन, श्रेष्ठीपुत्रने उनकी बात मान ली। उन कपट-बुद्धि बनियोंने उसका सारा माल ले, आपसमें बाँट लिया और अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद रत्नचूड़ अच्छे-भले कपड़े पहन, सुन्दर अलङ्कार धारणकर, अपने नौकरोंके साथ नगरकी ओर अन्यायी राजासे मिलने चला। रास्तेमें एक मोचीने सोने-चाँदीके लैस टँके हुए दो जोड़े जूते उसकी भेंट किये। उन्हें लेकर उसने कहा,—"भाई! इनके दाम क्या हैं?" यह सुन, उसने बड़े दाम माँगे। तब रत्नचूडने सोचा,—"यह तो बड़े अन्यायकी बात कहता है।" इसके बाद उसने उसे पान देकर कहा,—"हे कारीगर! जब मैं जाने लगूँगा, तब तुम्हें ख़ुश कर दूँगा।" यह कह, उसे विदा कर, सेठ आगे बढ़ा, इतनेमें उसे सामने ही कोई काना जुआरी मिला। उसने सेठसे कहा,—"सेठजी! मैंने अपनी एक आँख तुम्हारे पिताके पास हज़ार रुपये लेकर बन्धक रखी थी, इसलिये अपने रुपये लेकर मेरी आँख वापिस कर दो।" यह कह, उसने सेठको हजार रुपये दे दिये। यह सुन, रत्नचूड़ने सोचा,—"यह तो एकदम अनहोनी बात कह रहा है। तो भी जब यह धन दे रहा है, तब इसे ले ही लेना चाहिये; फिर जो उचित मालूम होगा, वह करूँगा। यही सोचकर उसने हज़ार रुपये लेकर उससे कहा,—"जब मैं यहाँसे लौटने लगूँगा, तब तुम मेरे पास आना।" यह कह, वह आगे बढ़ा।

रत्नचूड़को देखकर, चार धूर्त्त आपसमें बातें करने लगे। एकने कहा,—"समुद्रके जलका प्रमाण और गंगाकी रेतकी कणिकाओंकी गिनती भले ही कोई बुद्धिमान् कर ले, पर वह भी स्त्रीके हृदयकी तह तक नहीं पहुँच सकता।" यह सुन, दूसरेने कहा,—"वह तो किसीने

ठीक ही कहा है, कि स्त्रीके हृदयको कोई नहीं जान सकता; पर समुद्र-के पानी और गंगाकी रेतका प्रमाण भी कोई नहीं कर सकता।" यह सुन, तीसरेने कहा,—"यह तो पूर्वसूरिका सुभाषित बिलकुलही असत्य मालूम होता है। तो भी बृहस्पति और शुक्राचार्य जैसे लोग कदाचित् जान भी सकते हैं।" इसके बाद चौथेने कहा,—'अरे! गंगानदी तो दूर है, पर तुम इस समुद्रके जलकी थाह तो इससे लगवाओ।" इस प्रकार उन धूर्त्तोंने व्यर्थका विवाद कर अपनी धूर्त्त विद्यासे उस श्रेष्ठी-पुत्रको इस मामलेमें ऐसा उत्साह दिलवाया, कि वह इस कामको करनेके लिये राज़ी हो गया। इसके बाद उन्होंने फिर उससे कहा,—"सेठजी! अगर तुम यह काम कर दोगे, तो हम अपना सारा धन तुम्हें दे देंगे और यदि नहीं कर सकोगे, तो तुम्हारा सब धन हमलोग ले लेंगे।" यह कह, उन लोगोंने सेठके साथ बाज़ी लगानेके लिये उसके हाथपर हाथ मारा। रत्नचूड़ने भी उसके हाथपर हाथ मारा और आगे बढ़ा। इसके बाद वह सोचने लगा,—"मेरे पिताने जैसा कहा था, इस नगरके लोग ठीक वैसे ही हैं। फिर इन सब कामोंका निबटारा कैसे होगा? अच्छा रहो, पहले मैं रणघंटा नामकी वेश्याके घर चलता हूँ; क्योंकि वह बहुतोंका दिल खुश करती और तरह-तरहके फन्द-फ़रेब जानती है; इसलिये वह मुझे कुछ अक्ल ज़रूर सिखलायेगी।"

यही सोचकर वह वेश्याके घर गया। उसने उठकर उसका स्वागत किया और बड़े आदरके साथ उसे बैठनेके लिये आसन दिया। इसके बाद रत्नचूड़ने काने धूर्त्तका दिया हुआ धन उसके हवाले कर दिया। इससे वह वेश्या बड़ी प्रसन्न हुई और अभ्यंग, उद्वर्त्तन, स्नान और भोजन आदिसे उसने उसे ख़ूब सम्मानित किया। इतनेमें सन्ध्या हो गयी। उस समय सेठ उसकी मुलायम सेजपर बैठा और वह वेश्या श्रृङ्गार रससे भरी, मनोहर और विचक्षण पुरुषोंके योग्य, बातचीत करने लगी। बातों-ही-बातोंमें सेठने उससे अपनी सारी रामकहानी सुनाकर कहा,—"हे मनोहर नेत्रोंवाली! तुम इसी नगरकी रहनेवाली

हो, इसलिये यहाँका हाल तुम्हें बखूबी मालूम है, इसलिये तुम्हीं बतलाओ, कि मैं इन झगड़ोंका फ़ैसला किस तरहसे करूँ? इन मामलोंका निपटारा हो जानेपर ही मैं तुम्हारे साथ रंगरसकी बातें कर सकता हूँ। अभी तो मैं बड़ी चिन्तामें हूँ।" यह सुन, वह चतुर पतुरिया बोली,—"हे सुन्दर! सुनो, यदि कोई व्यापारी दैवयोगसे यहाँ आ पहुँचता है, तो यहाँके लोग, जो ठग-विद्यामें पूरे उस्ताद हैं, उसे एकबारगी लूट लेते हैं। इसके बाद वे अपनी लूटके धनका एक भाग राजाको, दूसरा भाग मन्त्रीको, तीसरा भाग नगरसेठको, चौथा भाग कोतवालको, पाँचवाँ भाग पुरोहितको और छठा भाग मेरी माता यमघंटाको दे आया करते हैं। सब लोग उससे आकर अपना ब्यौरेवार हाल सुना जाया करते हैं। मेरी माता बड़ी बुद्धिमान् है—सवालजवाब करनेमें बड़ी होशियार है। सब लोगोंको वही कपट-विद्या सिखलाया करती है। इसलिये मैं तुम्हें उसीके पास ले चलती हूँ। वहीं तुम भी उसकी बातें सुन लेना।" यह कह, रातके समय, उसकी उदारतासे प्रसन्न बनी हुई वह वेश्या, उसे स्त्रीकी पोशाक पहनाकर, अपनी माके पास ले गयी। वह प्रणाम कर माके पास बैठ रही। माने पूछा—"बेटी! आज यह तेरे साथ कौन आयी है?" उसने कहा,—"माता! यह श्रीदत्त सेठकी पुत्री रूपवती और मेरी प्राणप्रिय सखी है। यह मुझे एक दिन नगरमें मिली थी। उस समय मैंने इससे अपने घर आनेको कहा था; इसीलिये यह कुछ बहाना करके घरसे बाहर हो, यहाँ मुझसे मिलने आयी है। मैं इसे तुम्हारे पास लेती आयी हूँ।" यह कह, वह वहाँ बैठ रही। इतनेमें वे चारों बनिये, जिन्होंने रत्नचूड़का सारा माल ले लिया था, बुढ़ियाके पास आये और उचित स्थान पर बैठ रहे। बुढ़ियाने कहा,—"व्यापारियो! मैंने सुना है, कि आज यहाँ कोई जहाज आया है।" वे बोले,—"हाँ, स्तम्भतीर्थका एक वणिक्पुत्र यहाँ आया है।" उसने फिर कहा,—"उसके आनेसे तुम्हें कुछ लाभ हुआ या नहीं?" यह सुन, उन्होंने उससे उसका सारा माल ले

लेने और वादको जाते समय उसके जहाज़में उसके इच्छानुसार माल भर देनेका वादा करनेकी बात कह सुनायी। यह सुन, वह बोली,—"अरे! इसमें तो तुम्हें नुक़सान होगा, फ़ायदा नहीं होगा।" उन्होंने पूछा,—"क्यों कर नुक़सान होगा?" उसने कहा,—"तुमने उससे कहा है, कि जैसा चाहोगे, वैसा माल तुम्हारे जहाज़में भर देंगे। पर इच्छा अनेक प्रकारकी होती है। यदि वह कहे, कि मेरे जहाज़में मच्छरोंकी हड्डियाँ लाकर भर दो, तो तुम क्या करोगे?" यह सुन, वे बोले,-उसमें इतनी अक़्ल कहाँसे आयी? वह तो अभी भोला भाला बालक है।" यह सुन, वह कुटनी बोली,—"उसे बालक समझकर निश्चिन्त हो रहना ठीक नहीं; क्योंकि कोई-कोई बालक भी बड़े बुद्धिमान् होते हैं और कोई-कोई बुढ़ापेमें भी बुद्धिरहित होते हैं। इसके सिवा, देश-देशान्तरमें यह बात मशहूर है, कि यहाँके लोग बड़े धूर्त हैं। इस लिये जो अक़्लका पुतला होगा, वही दूर देशसे यहाँ आयेगा। तुम्हारे लाभमें मेरा भी लाभ है; पर मनके मोदक उड़ानेमें मस्त रहना ठीक नहीं।" उसकी यह बात सुन, वे अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद वह मोची (चमार) आया। दूर ही बैठ कर उसने हँसते हुए कहा,—"अम्मा! आज इस नगरमें एक परदेशी बनिया आया हुआ है। मैंने उसे दो जोड़े बड़े ख़ूबसूरत जूते दिये हैं। उसने कहा है, कि मैं तुम्हें राज़ी कर दूँगा। अब मैं तो उसका सर्वस्व लेकर ही सन्तुष्ट हूँगा। इसके बिना मैं राजी होनेका नहीं। यही बात मैं तुमसे कहने आया हूँ; क्योंकि मेरे लाभमें तुम्हारा भी तो हिस्सा है।" यह सुन, बुढ़ियाने कहा,—"भाई! आदमियोंको अपनी हैसियतके मुताबिक़ ही मनसूबा भी करना चाहिये। असम्भव मनोरथ करना ठीक नहीं। यदि वह बनिया तुमसे राजाके घर पुत्रका जन्म होनेकी बात कह सुनाये, और पूछे, कि तुम राज़ी हुए या नहीं? तब तुम क्या कहोगे?" यह सुन, वह भी मुँह लटकाये अपने घर चला गया। इसके बाद वह काना जुआरी पहुँचा, उसने भी उससे अपनी धूर्त्तताकी बात

कह सुनायी। यह सुन, यमघंटाने हँसकर कहा,—"अरे तुम्हारी चाल निरी ग़लत है। तुमने जो उसे पहले ही धन दे दिया, यह अच्छा नहीं किया।" उसने कहा,—"मैं ने उसका सारा धन हड़प करनेके लिये मछली फँसानेके चारेकी तरह अपना धन दिया है।" बुढ़ियाने फिर कहा,—"अरे! उसका धन कोई नहीं ले सकता।" यह सुन, जुआरीने कहा,—"वह भला मेरे फन्देसे कैसे छूट सकता है?" यमघंटाने कहा,—"वह यदि कहे, कि मेरे पास बहुतोंकी आँखें गिरवीं रखी हैं; इसलिये तुम अपनी दूसरी आँख भी दे दो, तो मैं काँटेसे तौल कर देखूँ, कि तुम्हारी आँख कौनसी है। बिना ऐसा किये पता नहीं चलेगा। उस समय तुम क्या जवाब दोगे?" यह सुन, जुआरीने कहा,—"अम्मा! यह हथकंडे तो तुम्हें ही याद हैं--उसे इनसे भेट कहाँ?" यह कह, वह भी चला गया, इसके बाद पूर्वोक्त चारों धूर्त्तोंने भी अपनी बात यमघंटासे आकर कही। वह सुनकर बुढ़ियाने कहा,—"मुझे तो तुम्हारे इस प्रपंचमें कोई सार नहीं नज़र आता। क्योंकि वह तुमसे कहेगा, कि मैं समुद्रके जलका प्रमाण तुमसे कहे देता हूँ, पर पहले तुम लोग उन सब नदियोंको दूर करो, जिनके जल उसमें आकर मिलते हैं। जब वह यह बात कहेगा, तब क्या तुममें नदियोंका जल दूर करनेकी शक्ति है, जो दूर करोगे?" उन्होंने कहा,—"वह ऐसा नहीं है।" तब बुढियाने कहा,—"सच जानो, तुम्हीं लोग अपनी बेवक़ूफ़ीसे अपना सर्वस्व हार आओगे।" यह सुन, वह भी अपने घर चला गया।

उसकी इन बातोंको रत्नचूड़ने गुरु-वाक्यकी तरह हृदयमें धारण कर लिया और बड़ा हर्ष अनुभव किया। इसके बाद वहाँसे उठ कर वह रणघंटाके साथ उसके घरमें आया और अपनी मरदानी पोशाक पहन उससे बिदा माँग कर अपने स्थानपर चला आया। इसके बाद उसने कुटनी बुढ़ियाके कहे मुताबिक ही सब काम किये। माल ख़रीदनेवाले व्यापारियोंसे उसने चार लाख रुपये वसूल किये और इतना

ही धन समुद्रका जल मापनेकी बाज़ी लगानेवालोंसे भी लिया। इस मामलेसे वह सेठ सारे शहरमें मशहूर हो गया।

एक दिन रत्नचूड भेट लिये हुए राजाके पास आया और उन्हें प्रणाम कर, उचित स्थानपर बैठ रहा। राजाने उससे सारा वृत्तान्त पूछा,--"उसने सब ज्योंका त्यों कह सुनाया। यह सुन कर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा,--"अहा! इस महापुरुषमें तो बड़ा माहात्म्य है। इसने इस नगरके लोगोंसे भी धन वसूल कर लिया।" यह सोच कर राजाने कहा,--"हे वणिक् पुत्र! मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। कहो, तुम्हारा कौनसा मनोरथ पूरा करूँ?" तब रत्नचूड़ने कहा,--"हे राजन्! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मुझे रणघण्टा नामकी वेश्याको दिलवा दीजिये।" उसकी माँग पूरी हुई। रणघण्टा उसकी स्त्री हो गयी। इसके बाद रत्नचूड़ने उसे बहुतसे गहने गढ़वा कर दे दिये।

इसके बाद वह सेठका पुत्र बहुतसा लाभ उठा कर, दूसरी तरहका माल जहाज़में लाद कर अपने स्थानको जानेको तैयार हुआ। इसके बाद अपने जहाज़पर सवार हो, क्षेमकुशलसे महासागरको पार कर, कुछ दिनों बाद रणघण्टाके साथ-साथ अपनी नगरीमें आ पहुँचा। उस समय एक आदमीने पहले ही पहुँच कर सेठको बधाई दी, कि तुम्हारा पुत्र बहुतसा धन उपार्जन कर कुशलमङ्गलके साथ घर आ गया।" यह सुन, सेठने उसे उचित इनाम देकर सन्तुष्ट किया और बड़ी धूम-धामके साथ बहुतेरे आदमियोंको लिये हुए अपने पुत्रके पास जा, उसे स्त्री सहित घर ले आया। पुत्रने स्त्रीके साथ-साथ माता-पिताको प्रणाम किया। माता-पिताने शुभाशीर्वाद दे, उसकी प्रशंसा की। इसके बाद पिताके पूछनेपर उसने अपना सारा हाल कह सुनाया। सब कुछ सुनकर उसके पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई; किन्तु उसने बातोंसे पुत्रके गुणोंकी बहुत प्रशंसा नहीं की, क्योंकि—

"प्रत्यक्षे गुरवस्तुत्या., परोक्षे मित्रबांधवाः ।
कर्मान्ते दासाभृत्याश्च, पुत्रो नैव मृताः स्त्रिय, ॥१॥

*अर्थात्—'गुरुजनोंकी प्रशंसा उनके सामने ही करनी चाहिये । मित्रों और बान्धवोंकी प्रशसा उनके परोक्षमें करनी चाहिये । दासों और भृत्योंकी प्रशंसा काम करनेके वाद करनी चाहिये । पुत्रकी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिये और स्त्रियोंकी प्रशंसा तो उनके मरनेके वाद ही करनी उचित है ।'*

इसके बाद उसके सभी आत्मीय-स्वजन अक्षतका पात्र लिये हुए अपना हर्ष प्रकट करनेके निमित्त सेठके घर आये। सेठनेभी उनका उचित आदर-सत्कार कर उन्हें विदा किया। इसके वाद सौभाग्य-मंजरी नामकी गणिका भी उन लोगोंसे मिलने आयी। उसे उचित आसनपर बिठाकर रत्नचूड़ने कहा,—"हे भद्रे! तुम्हारे ही उपदेशसे मैंने देशान्तरमें जा, लक्ष्मी और स्त्री उपार्जन की है।" यह कह, उसे बहुतेरे वस्त्राभूषण दे, उसने उसे विदा किया। उस समय उसने कहा,—"मैं राजाकी आज्ञा लेकर तुम्हारी प्यारी होकर रहूँगी।" यह कह, वह अपने घर चली गयी।

इसके बाद रत्नचूड, उत्तमोत्तम उपहार लिये हुए, उस नगरके राजाको प्रणाम करने गया। राजाने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद राजाकी आज्ञा लेकर सौभाग्यमजरी भी उसकी प्रिया हो गयी। तदन्तर रत्नचूड़, पिताका धन पिताको वापिस दे, शेष धनको दान और भोग आदिमें व्यय करने लगा। पूर्वाचार्योंने कहा है,—

"जीवितं तदपि जीवितमध्ये, गण्यते सुकृतिभि. किमु पुंसाम् ।
ज्ञानविक्रमकलाकुललज्जा—त्याग भोग विभुता विकलं यत् ॥१॥

*अर्थात्—'पुरुषके जिस जीवनमें ज्ञान; विक्रम, कला, कुलकी लज्जा, दान, भोग और और प्रभुताका पता न हो उस जीवितको क्या पुण्यात्मा लोग जीवित ही समझते हैं? अर्थात् नहीं समझते ।'*

इसके बाद सेठके उस पुत्रने विधिपूर्वक अन्य स्त्रियोंके साथ भी ब्याह किया। तथा अपनी भुजाओंके प्रतापसे उपार्जन की हुई लक्ष्मी-को सफल करनेके निमित्त उस नगरमें बड़ा भारी जिनचैत्य बनवाया। चिरकाल तक सुखभोग करनेके अनन्तर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। तब उसने सद्गुरुसे धर्म श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्तकर, वैराग्यके साथ संयम ग्रहण किया। और इसका त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक पालनकर, अन्तमें समाधिमरण द्वारा मृत्युको प्राप्तकर, स्वर्गको गया। वहाँ वि-विध प्रकारके सुख भोगते हुए पुनः वहाँसे निकलकर वह क्रमसे मोक्ष-को प्राप्त होगा।

इस कथाका उपनय इस प्रकार करना—मनुष्य जन्मको सुकुल मानो; वणिक्-पुत्र को भव्यप्राणियों मानना, उसके पिताके स्थानमें धर्मका बोध करानेवाले हितकारक गुरुको समझना, वेश्याके वचनकी जगह श्रद्धादि द्वारा उत्पन्न उत्साहको समझना; क्योंकि श्रद्धा भी पुण्य लक्ष्मीकी वृद्धि करनेमें मदद पहुंचाती है; मूल द्रव्यके स्थानमें गुरुका दिया हुआ चारित्र मानना; अनीतिपुरमें जानेका जो निषेध किया गया था, उसे गुरुकी 'सारणा-वारणा' (विधि-निषेध) समझना संयमरूपी जहाज़ पर चढ़कर भवसागर पार किया जाता है, ऐसा समझना, नाविकोंके स्थानमें साधर्मिकों और मुनियोंको समझना; भवित-व्यताके नियोगके समान प्रमादको जानना, अनीतिपुरके समान दुष्प्र-वृत्तिका प्रवृत्त होना समझना; अन्यायी राजाके स्थान पर मोहराजाको जानना; सौदागरी माल ख़रीदनेवाले चारों धूर्त्त बनियोंके स्थानमें चार प्रकारके कषायोंको जानना— वे ही विवेकरूपी धनको हड़प कर लेते हैं, वेश्या विषयकी पिपासाको समझना। अम्मा (कुटनी) कर्मपरि-णित है—वही पूर्व भवमें अच्छा कर्म करनेवालोंको सुमति देती है। उसके प्रभावसे प्राणी समस्त अशुभोंका नाश कर फिर जन्मभूमिके समान धर्ममार्गपर आ जाता है।

इसी प्रकार इस कथाका उपनय, जिस प्रकार घटित हो सके,

वैसा. पण्डितगण धर्मकी पुष्टि करानेके लिये विस्तार-पूर्वक घटित कर लेते हैं।

रत्नचूड़-कथा समाप्त ।

इस प्रकार प्रथम गणधरने श्रीसंघको धर्मदेशना सुना, अपनी विरचित द्वादशांगी प्रकट की तथा श्रुतज्ञानको धारण करनेवाले उन गणधरने इस प्रकारकी साधुसमाचारी कह सुनायी और साधुके सारे कृत्य प्रकाश किये ।

इसके बाद भगवान् श्रीशान्तिनाथने वहाँसे अन्यत्र विहार किया। सूर्यकी तरह स्वामी निरन्तर भव्यजीव-रूपी कमल वनको विकसित करने लगे। कितनोंनेही प्रभुके पास आकर दीक्षा ले ली, कितनोंने शुभवासनासे प्रेरित हो, श्रावकधर्म अङ्गीकार किया, कितनोंने समकित लाभ किया और कितने ही जीव भगवान्‌की देशना सुन, भद्रिक भावी हो गये—केवल अभव्य जीव बाक़ी रह गये, कहा भी है, कि—

सर्वस्यापि तमोनष्ट-मुदिते जिनभास्करे ।
कौशिका नामिवान्धत्व-मभव्यानामभुचतत् ॥ १ ॥

वन्हिनाऽपि न सिध्यन्ति, यथा कंकटुका. कणा ।
तथा सिद्धिरभव्यानां जिनेनाऽपि न जायते ॥ २ ॥

यथोपराहितौ धान्य, न स्यादवृष्टेऽपि नीरदे ।
बोधो न स्यादभव्यानां, जिनदेशनया तथा ॥ ३ ॥

*अर्थात्—"जिनेश्वर-रूपी सूर्यके उदय होनेसे सबके अज्ञान-रूपी अन्धकारका नाश हो गया; परन्तु उल्लुओंकी तरह अभव्योंका अन्धापन ज्योंका त्यों बना रहा। जैसे कंकटुकाके दाने आगमें पकाने पर भी नहीं पकते, वैसे ही जिनेश्वर द्वारा भी अभव्यों को सिद्धि नहीं मिलती। जैसे पानी बरसने पर भी ऊसरमें बोया हुआ धान नहीं उगता, वैसेही जिनेश्वरकी देशनासे भी अभव्योंको बोध नहीं होता।"*

जिस-जिस देशमें श्री शान्तिनाथ प्रभु विहार करते थे, वहाँ-वहाँ

लोगोंके सब उपद्रव शान्त हो जाते थे। प्रभु जिस भूमिमें विहार करते, वहाँसे सौ योजन पर्यन्तके लोगोंको अकाल या महामारी आदिके उपद्रवोंसे उद्विग्न होनेकी नौबत नहीं आती थी, तथा पचीस योजन तक सब तरहके वृक्षोंमें फल-फूल भर जाते थे। लोग सुखसे निर्भय होकर पृथ्वीमें विहार करते रहते थे। श्रीजिनेश्वरका प्रभाव विश्वके लिये विस्मय कारक होता है, वैसे जिनेश्वरका वर्णन मेरे जैसा अल्प बुद्धिवाला मनुष्य कहाँतक कर सकता है ? जिसके पल्योपमका आयुष्य हो और हज़ार ज़िह्वाएँ हों वही शायद उनके गुणोंका वर्णन कर सके। कहा भी है, कि—

"विजानाति जिनेन्द्राणां, कोनिःशेष गुणोत्करम्।
त एव हि विजानन्ति, दिव्यज्ञानेन तं पुनः ॥ १ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्र गुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ २ ॥"

*अर्थात्—"जिनेन्द्रोंके सब गुणोंको कौन जानता है ? वे ही दिव्यज्ञानके द्वारा अपने गुण समूहोंको जानते हैं। अंजन-गिरिके बराबर कज्जल, सिन्धु-पात्रमें घोल कर, कल्पवृक्षकी शाखाकी क़लम बना, पृथ्वीरूपी बड़ेसे काग़ज़ पर स्वयं शारदा चिरकाल तक लिखती रहें, तो भी हे ईश ! वह तुम्हारे गुणोंके पार नहीं पहुँच सकें।"*

इसी प्रकार भगवान् श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर समस्त भव्य जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर विहार कर रहे थे, चक्रायुध गणधर स्वयं जानते हुए भी भव्य जीवोंके प्रतिबोधके निमित्त भगवान्‌से अनेक प्रकारके प्रश्न किया करते थे और स्वामी उन सबके यथोचित उत्तर दिया करते थे।

इस प्रकार पृथ्वीपर विहार करते हुए श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌ने बासठ हज़ार मुनियोंको दीक्षा दी और इकसठ हजार छः सौ शीलवती साध्वियाँ बनायीं। श्रीसम्यक्त्व सहित श्रावकधर्मको धारण करने

वाले; जीवाजीव आदि तत्वोंके जाननेवाले, राक्षस, यक्ष और देवादि द्वारा भी धर्मसे न टलनेवाले; अस्थि तथा मज्जा पर्यन्त जिन धर्मसे वासित; जिन वचनोंको ही तत्त्वरूप माननेवाले, चारों पर्वोंमें पौषध-व्रतको ग्रहण करनेवाले और सदा निरवद्य आहारादि देकर मुनियोंका सम्मान करने वाले श्रीशान्तिनाथसे प्रतिबोध पाये हुए दो लाख नव्वे हज़ार श्रावक तथा विशिष्ट गुणोंको धारण करनेवाली तीन लाख तिरानवे हज़ार श्राविकाएँ हुईं। जिन नहीं होते हुए भी जिनकी भाँति अतीत अनागत और वर्त्तमान स्वरूपको जाननेवाले आठ हजार चौदह पूर्वी हुए। असंख्य मनुष्य-भव तकके स्वरूपवान्-द्रव्योंको प्रत्यक्ष देखनेवाले तीन हज़ार अवधिज्ञानी हुए। ढाई द्वीपोंमें रहनेवाले संज्ञा-वान् जीवोंके मनके पर्यायोंको जाननेवाले चार हज़ार मनःपर्यवज्ञानी हुए। छः हज़ार वैक्रिय लब्धिवाले मुनि हुए तथा दो हज़ार चारसौ वाद लब्धिवाले हुए। प्रभु शान्तिनाथका इतना बड़ा परिवार बंध गया।

श्रीशान्तिनाथके शासनमें भगवान्का वैयावृत्य करनेवाला और श्रीसंघके समग्र विघ्नोंके समूहका नाश करनेवाला 'गरुड़' नामका यक्ष हुआ तथा भक्तजनोंकी सहायता करनेवाली निर्वाणी नामकी शासनदेवी हुईं। चक्रायुध राजाका पुत्र कोणाचल नामक राजा भग-वान्का सेवक हुआ। भगवान्का शरीर चालीस धनुषकी ऊंचाईका था; उनके मृगका लाञ्छन था और ऐसी सोनेकी सी चमकती हुई रूपसी कान्ति थी, जिसकी उपमा तीनों जगत्में नहीं हो सकती। भगवान्को जन्मसे ही चारों अतिशय उत्पन्न हुए थे, जो ग्यारह कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए थे। साथ ही उन्नीस अतिशय देवोंके किये हुए उत्पन्न हुए, थे। इस प्रकार सिद्धान्तमें कहे हुए चौंतीस अतिशय सब जिनेश्वरोंके होते हैं तथा तीनों जगत्की प्रभुता प्रकट करनेवाले छत्रत्रय, अशोक-वृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य भी होते हैं।

श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वर पचहत्तर हजार वर्ष गृहवासमें रहे, एक वर्ष छद्मस्थ अवस्थामें रहे और एक वर्ष कम पचीस हजार वर्ष केवली-पर्याय-

का पालन करते रहे। सब मिलाकर भगवान्‌की एक लाख वर्षकी आयु हुई। अन्तमें जगद्गुरु, अपना निर्वाणकाल समीप आया जान, सम्मेद-शिखर-पर्वतके ऊपर आरूढ़ हुए। इसी समय स्वामीके निर्वाणका समय समीप जान, सब देवेन्द्र भी वहाँ आये और उन्होंने मनोहर समवसरणकी रचना की। उसी समवसरणमें बैठकर जिनेश्वरने अन्तिम देशना दी। उसमें उन्होंने सब पदार्थोंकी अनित्यता प्रमाणित की। भगवान्‌ने भव्य प्राणियोंको लक्ष्यकर कहा,—"हे भव्य-जीवों! इस मनुष्य भवमें ऐसा कार्य करना चाहिये, जिससे इस असार संसारको छोड़कर मुक्तिपद प्राप्त किया जा सके।" इसी समय श्री जिनेश्वरके चरणोंमें प्रणाम कर, प्रथम गणधरने पूछा,—"हे स्वामिन्, सिद्धिस्थान किस प्रकारका होता है, यह कहिये।" प्रभुने कहा,—

"सिद्ध-भूमि (सिद्धशिला) मोतीके हार, जलकी बूँद और चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह उज्ज्वल, पैंतालीस लाख योजनके विस्तारवाली (लम्बी, चौड़ी और गोल) श्वेतरंगकी है और उसका संस्थान खुले हुए छत्रकी तरह है। वह समग्र लोकोंके अग्रभागमें रहती है; मध्यभागमें आठ योजन मोटी है; अनुक्रमसे पतली होती हुई प्रान्तभागमें मक्खीके परकी तरह पतली हो गयी है। उसके ऊपर एक योजन लोकान्त है। उस अन्तिम योजनके अन्तिम कोशके छठे भागमें अनन्त सुखोंसे युक्त सिद्ध रहते हैं। वहाँ रहनेवाले जीवोंको जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक आदि उपद्रव तथा कषाय, क्षुधा और तृषा आदि नहीं व्यापते। वहाँ जो सुख मिलता है, उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। तो भी मुग्धजनोंके समझनेके लिये उपमा दी जा सकती है। वह इस प्रकार है—

श्री साकेतपुर नामक नगरमें शत्रुमर्दन नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने एक दिन विपरीत शिक्षावाले अश्वपर सवारी की, जो उन्हें एक बड़े भयङ्कर वनमें ले गया। वहां थके और प्यासे होनेके कारण राजा, मूर्च्छा आ जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े पासके ही पर्वत पर-

भीलोंकी वस्ती थी। वे कन्द-मूलके खानेवाले थे और वृक्षोंकी छालके वस्त्र पहनते थे। शिलातलको ही वे अपना आसन और शय्या समझते थे। इस प्रकार रहते हुए वे भील अपनेको अत्यन्त सुखी मानते थे और कहा करते थे, कि—"लोग जो भीलोंकी रहन-सहनको अच्छा बतलाते हैं, वह कुछ असत्य नहीं है, क्योंकि उन्हें झरनेका पानी आसानीसे मिल जाता है, खानेके लिये कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता और सदा अपनी प्रियाके पास ही रहना होता है।" इन्हीं भीलोंमेंसे कोई एक भील घूमता-फिरता राजाके पास आ पहुँचा। अलङ्कारोंसे यह पहचान कर, कि यह कोई राजा है, उसने अपने मनमें सोचा,—"अवश्यही यह कोई राजा मालूम पड़ता है और प्याससे व्याकुल होकर गिर पड़ा है। यह अवश्यही पानीके विना मर जायेगा। इसके मरनेसे सारी पृथ्वी स्वामी-शून्य हो जायेगी, इसलिये इसे पानी पिला कर जिला देना ही उचित है।" ऐसा विचारकर उसने पत्तोंका दोना बनाकर उसीमें जलाशयसे पानी भरकर राजाको ला पिलाया, जिससे वे स्वस्थ हो गये। इसके बाद होशमें आये हुए राजा मन-ही-मन उसका बड़ा उपकार मानते हुए उसके साथ बातें करने लगे। इसी समय उनके पीछे-पीछे आते हुए सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे। सैनिकोंने राजाके आगे सुन्दर लड्डू और शीतल जल रख दिया। राजाने उसमेंसे मोदक आदि निकाल कर पहले उस भीलको खानेके लिये दिया, इसके बाद सुखासनपर बैठ अपने उपकारी भीलके साथ-साथ राजा अपने नगरमें आये। वहाँ पहुंच, उस भीलको स्नान करा, मनोहर वस्त्र पहना, अलङ्कारोंसे सुसज्जितकर, चन्दनादिका विलेपन कर, दाल और भात आदि उत्तम भोजन खिलाकर राजाने उसे तेरह गुणोंवाला ताम्बूल उसे खानेको दिया। इसके बाद वह राजाकी आज्ञासे सुन्दर महलमें मनोहर शय्यापर सोया, प्रसन्न राजाने उसकी सारी दरिद्रता दूर की। इस प्रकार उस भीलको बड़ा सुख मिला, तो भी वह अपने जङ्गलको नहीं भूला। कहा भी है, कि—

"जणणी य जम्मभूमी, पच्छिम निद्दा य अभिनवं पिम्म
मज्जणजणाण गुट्ठी, पंच वि दुक्खेहिं मुञ्चन्ति ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"जननी, जन्मभूमि, पिछली रातकी निद्रा, अभिनव प्रेम और सज्जनोंकी गोष्ठी—ये पाँचों चीजें दुःखमें ही छोड़ी जाती हैं—अर्थात् बड़ी मुश्किलसे छूटती या भूलती हैं ।"*

इसी तरह उस भीलको वनका वह स्वच्छन्द विहार और अपनी स्त्री तथा परिवार विस्मृत नहीं होते थे; क्योंकि यदि ऊँट नन्दन-वनमें भी जा पहुँचे और कंकेलि-वृक्षके पल्लवोंका अहार करे, तो भी उसे अपनी मरुभूमिकी याद बनी रहती है । इसी तरह उस भीलके मनमें निरन्तर अपने स्थानादिका स्मरण बना रहता था; पर चूँकि उसके पास सदा सिपाहियोंका पहरा रहता था, इसीलिए वह अपने घर नहीं जा सका और कुछ दिनों तक वहीं पड़ा रहा । एक दिन वर्षा ऋतुमें मेघोंकी ठनक और बिजलीकी कड़क सुन, उसे विरह सताने लगा । कहा भी है, कि—

"मेघगर्जारवो विद्युद्विलासः केकिनां स्वरः ।
दुःस्सहो विरहार्त्तानामेकैको यमदण्डवत् ॥ १ ॥"

*अर्थात्—"मेघकी गर्जना, बिजलीकी चमक और मोरका शोर—इनमेंसे प्रत्येक यमराजके दण्डकी तरह वियोगीके लिये दुःस्सह होता है ।"*

उस समय उस वियोग-व्याकुल भीलने अपने मनमें सोचा,—"यदि मैं इन वस्त्रालङ्कारोंको यहाँसे लेता जाऊँगा, तो पीछे मेरी खोज होने लगेगी, इसलिये मुझे यहाँसे नङ्गा ही चल देना चाहिये ।" ऐसा विचार कर, वस्त्रालङ्कार उतार, किसी तरह पहरेदारोंकी आँखें बचा, वह रातके समय राजमन्दिरसे बाहर निकला और धीरे-धीरे अपने स्थानको चला गया । उस समय उसका बदला हुआ रूप देख, उसके परिवारके लोगोंने आश्चर्यके साथ उससे पूछा,—'अरे! तू कौन है ?" उसने कहा,—"मैं तुम्हारा कुटुम्बी हूँ ।" यह सुन, उसके परिवारवालोंने उसे पहचान कर पूछा,—"इतने दिन तुम कहाँ रहे ? तुम्हारे शरीरकी कान्ति

ऐसी क्योंकर हो गयी है?" इसके उत्तरमें उस भीलने अपना सारा हाल उनसे कह सुनाया और भोजन, वस्त्राभूषणका तथा शय्या आदिका जैसा सुख उसने अनुभव किया था, वह भी उन्हें बतलाया। भीलोंने उससे कहा,—"तुमने वहाँ जैसा सुख अनुभव किया था, वह दृष्टान्त सहित हमें बतलाओ।" यह सुन, उसने उनकी जानी हुई चीज़ोंके साथ उपमा देते हुए कहा,—"स्वादिष्ट कन्द और फलोंके समान लड्डू मैं खाया करता था। जैसे यहाँ हम लोग नीवार खाते हैं, वैसे वहाँ दाल-भात आदि खाया करता था। गुन्दीके पत्तोंकी तरह नागरबेल-पान मुझे खानेको मिलते थे। शाल्मलीवृक्षके चूर्णके समान सुपारीके चूर्णको मैं खाता था। वल्कलके समान मनोहर वस्त्र पहनता था। पुष्पोंकी मालाके समान गहने पहनता था। छिद्र-रहित गुफ़ाके समान मन्दिरमें रहता था और शिलातलके समान विशाल शय्यापर सोया करता था।" इस प्रकार उस भीलने उत्तमोत्तम पदार्थोंकी अन्य वस्तुओंके साथ उपमा देते हुए उन्हें अपने ऐशो आरामका हाल कह सुनाया। इसी तरह मैं भी संसारमें रहने वाले जीवोंको सिद्धि-सुखका वर्णन इस लोकमें मिलने वाली वस्तुओंके साथ तुलना करके कह सुनाता हूँ। जो सुख काम-भोगसे उत्पन्न होता है और जो सुख महान् देवलोकमें होता है, उससे अनन्तगुण अधिक सुख सिद्धोंको होता है और वह शाश्वत (अक्षय) होता है। भेद केवल इतना ही है, कि संसारका सुख पौद्गलिक और विनाशी है तथा सिद्धोंका सुख अपौद्गलिक ( आत्मिक ) अविनाशी ( शाश्वत ) है।"

इतनी बातें कह, श्री शान्तिनाथ भगवान् उस स्थानसे उठकर उसी पर्वतके एक श्रेष्ठ शिखरपर चढ़ गये। वहाँ नौ सौ केवलियोंके साथ स्वामीने महीने भरका अनशन किया। उसी समय सभी सुरेन्द्र, परिवार सहित, अत्यन्त प्रीति और भक्तिके साथ, जगन्नाथकी सेवा करने लगे। अन्तमें ज्येष्ठ मासकी कृष्ण चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी-नक्षत्रमें था, तब शुक्लध्यानके चौथे पदका ध्यान करते हुए स्वामीने मोक्ष-पद

प्राप्त किया। तब सभी सुरेन्द्र, अपने-अपने परिवारके साथ, श्रीशांतिनाथ महाप्रभुके निर्वाणका वृत्तान्त जान, शोकसे अश्रुपात करने लगे और प्रभुके गुणोंका स्मरण करते हुए उत्तर-वैक्रिय रूपमें पृथ्वीपर आये तथा विलाप करने लगे,—"हा नाथ! हे सन्देह-रूपी अन्धकारको नष्ट करनेमें सूर्यके समान शान्तिनाथ भगवान्! हमें स्वामी-रहित करके तुम कहाँ चले गये? हे नाथ! अब तुम्हारे बिना हमें अपनी-अपनी भाषामें सबकी समझमें आने योग्य और सब जन्तुओंको हर्ष देनेवाली देशना कौन सुनायेगा? लोकको पीड़ा देनेवाले दुर्भिक्ष, बाढ़ और महामारी आदि उपद्रवोंकी अब किसके प्रभावसे शान्ति होगी? तथा हे स्वामी! अपना देव-भव-सम्बन्धी कार्य छोड़, पृथ्वी-तल पर आकर अब हम किसकी सेवा करेंगे?" इस प्रकार विलाप कर सब इन्द्रोंने क्षीरसागरके जलसे स्वामीके शरीर-स्नान करा, नन्दन-वनसे मँगाये हुए हरिचन्दनके सुगन्धित काष्ठको घिसकर उसका भगवान्के शरीरपर भक्तिपूर्वक लेपकर, प्रभुके मुहमें कपूरका चूर्ण डाला और देव-दूष्य वस्त्रसे उनके शरीरको ढँक दिया। इसके बाद कृष्णागारुकी सुगन्धसे सब दिशाओंको वासित कर, मन्दार और पारिजात आदिके पुष्पोंसे प्रभुकी पूजा कर, रत्नोंजड़ी श्रेष्ठ शिविकामें उनके शरीरको पधराया। इसके बाद नैऋत्य-कोणमें चन्दन काष्ठकी चिता बना, वे उस शिविकाको उसके पास ले आये और उसे उठाकर चितामें डाल दिया। अन्य वैमानिक देवोंने अन्य मुनीश्वरोंका संस्कार-कार्य भी उसी प्रकार किया। इसके बाद अग्निकुमारदेवोंने पूर्वकी ओर मुँह किये हुए उस चितामें अग्नि डाली और वायुकुमार देवोंने हवा चला कर अग्नि प्रज्वलित कर दी। इसके बाद जब भगवान्के शरीरके रुधिर-मांस दग्ध हो गये, तब मेघकुमार देवोंने सुगन्धित और शीतल जलकी वर्षा कर, उस चिताग्निको शान्त कर दिया। इसके बाद भगवान्की भक्तिसे प्रेरित होकर उनकी ऊपरकी दाहिनी डाढ़ सुधर्मेन्द्रने ली, नीचेकी दाहिनी डाढ़ चमरेन्द्रने ली, ऊपरकी बाँयीं डाढ़ ईशानेन्द्रने ली और नीचेकी बाँयीं डाढ़ बलीन्द्रने

ले ली। बाक़ीके अट्ठाइस दाँत अन्य अट्ठाईस इन्द्रोंके लिये। अन्य देवोंने भगवान्‌के शरीरकी हड्डियाँ ले लीं और विद्याधरों तथा मनुष्योंने सब उपद्रवोंकी शान्तिके लिये भगवान्‌की चिता-भस्म ले ली। इस प्रकार देवेन्द्रोंने जिनेश्वरके शरीरका संस्कार कर, उसी स्थानपर सुवर्ण-रत्नमय श्रेष्ठ स्तम्भ बना, उसी पर प्रभुकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित की और भक्तिके साथ उसकी पूजा की। इसके बाद नन्दीश्वर-द्वीपमे जा, वहाँकी यात्राकर, सभी सुर-असुर श्रीशान्तिनाथ परमात्माका हृदयमें ध्यान करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये।

भगवान् चक्रायुध भी अनेक साधुओंके साथ भव्य जीवोंके प्रतिबोध देते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उन्होंने भी कुछ काल व्यतीत होनेपर घाती-कर्मों का क्षय कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर देवेन्द्रोंसे पूजित होते हुए वे भी भव्य जीवोंके अनेक संशयोंको दूर करने लगे।

इस भरत क्षेत्रके मध्य खण्डमें देवोंसे पूजित और जगत्‌में विख्यात कोटिशिला नामका एक उत्तम तीर्थ है। वहाँ बहुतेरे केवलियोंके साथ पुण्यवान् श्रीचक्रायुध गणधर पधारे और वहीं अनशन कर मोक्षको प्राप्त हुए। उस शिलाको पहले श्रीचक्रायुध गणधरने ही पवित्र किया। उनके बाद उस शिलापर कालक्रमसे करोड़ों मुनियोंने सिद्धिपद प्राप्त किया। उसके विषयमें कहा जाता है, कि—

"कोटिशिला तीर्थमें श्रीशान्तिनाथके प्रथम गणधरके सिद्ध होनेके बाद करोड़ों साधु सिद्ध हुए हैं। कुंथुनाथके तीर्थमें भी पापको नाश करनेवाले करोड़ों साधु उस शिलातलपर सिद्ध हुए हैं। श्रीमल्लिनाथके तीर्थमें, व्रतोंसे शोभित होनेवाले छः करोड़ केवली वहाँ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं। श्रीमुनिसुव्रत स्वामीके प्रसिद्ध तीर्थमें तीन करोड़ साधुओंने वहाँ अक्षय-पद प्राप्त किया है। नमिजिनके तीर्थमें विशुद्ध क्रियावाले एक करोड़ साधु-महात्मा सिद्ध हुए हैं। इसी प्रकार समय समयपर वहाँ बहुतसे साधु सिद्ध हुए हैं।" कर्त्ता कहते हैं, कि वह

सब मैंने इस ग्रन्थमें नहीं लिखा। जिन तीर्थङ्करके तीर्थमें कमसे कम पूरे एक करोड़ साधु सिद्ध हुए हैं, उन्हींका हाल यहाँ लिखा है। इसीसे इसे कोटिशिला कहते हैं। इस कोटिशिला तीर्थकी निरन्तर अनेक चारण-मुनि, सिद्ध, यक्ष, सुर और असुरादि भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हैं।

इस ग्रन्थमें मैंने श्रीशान्तिनाथ प्रभुके वारहों भावोंका हाल लिखा है, श्रावकोंके वारहों व्रतोंकी वात कथा सहित वतलायी है और प्रथम गणधार चक्रायुधका दिया हुआ व्याख्यान भी लिख दिया है। इस प्रकार श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वरका समग्र चरित्र मैंने वर्णन कर दिया।

"यस्योपसर्गा स्मरणेन यान्ति, विश्वे यदीयाश्च गुणा न मान्ति।
मृगांकलक्ष्मा कनकस्य कान्तिः, संघस्य शान्तिं स करोतु शान्तिः॥१॥"

*अर्थात्—'जिनके स्मरणसे सारे उपसर्ग नष्ट होते हैं, जिनके गुण सारे विश्वमें भी नहीं समाते, जिनके मृगका लाञ्छन है, और जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान है, वे श्री शान्तिनाथ परमात्मा श्री संघके उपद्रवोंकी शान्ति करें। तथास्तु।*

# आदिनाथ-चरित्र

इस पुस्तकमें पहले तीर्थङ्कर श्रीआदिनाथ स्वामीका आदर्श एवं शिक्षाप्रद जीवन-चरित्र दिया गया है। पुस्तकके भीतर नाना भावोंके सतरह चित्र दिये गये हैं। जिनसे भगवानका वह आदर्श जीवन अपनी आंखोंके सामने दीख आता है। भाषा बड़ीही सरल एवं रोचक है। कथानुयोगका विषय भरा हुआ है; इसलिये पढ़ना आरंभ करने के बाद पुस्तक को छोड़ते नहीं बनती। इसकी एक-एक कथा बड़ीही शिक्षाप्रद एवं रोचक है। इसके चित्र अत्यन्त दर्शनीय हैं। मूल्य सुनहरी रेशमी जिल्द ५) अजिल्द ४)।

मिलनेका पता—

**पंडित काशीनाथ जैन**

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

हमारी हिन्दी जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम

# सचित्र पुस्तकें।

| | सजिल्द | अजिल्द। |
|---|---|---|
| आदिनाथ-चरित्र | ५) | ४ |
| शान्तिनाथ-चरित्र | ५) | ४) |
| शुकराजकुमार | | १) |
| नलदमयन्ती | | ॥।) |
| रतिसार कुमार | | ॥।) |
| सुदर्शन सेठ | | ॥=) |
| सती चन्दनबाला | | ॥=) |
| कयवन्ना सेठ | | ॥) |
| सती सुर-सुन्दरी | | ॥) |
| अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश अचित्र | ४।) | ३॥) |
| द्रव्यानुभव रत्नाकर | | २॥) |
| स्याद्वाद् अनुभव रत्नाकर | | ३॥) |

चंपक सेठ सचित्र छप रहा है।

उत्तमकुमार चरित्र ,, ,,

पर्युषण पर्व माहात्म्य ,, ,,

रत्नसार चरित्र ,, ,,

**मिलनेका पता—पण्डित काशीनाथ जैन**

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

विराट आयोजन ! अपूर्व उद्योग

# जैन-साहित्यमें नया आविष्कार !

## हिन्दी-जैन-साहित्यके उत्तमोत्तम

### सरल और सचित्र ग्रन्थ-रत्न ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| आदिनाथ-चरित्र | ५) | चंपक सेठ | ॥ |
| शान्तिनाथ-चरित्र | ५) | पर्युषणपर्व महात्म्य | ॥ |
| शुकराजकुमार | १) | अञ्जना सुन्दरी | ॥ |
| नल-दमयन्ती | १) | अरणिक मुनी | ॥ |
| रतिसार कुमार | ॥।) | सती सीता | ॥ |
| हरिबलमच्छी | ॥।) | रत्नसार कुमार | ॥ |
| चन्दनबाला | ॥=) | सुरसुन्दरी | ॥ |
| सुदर्शन सेठ | ॥=) | विजयसेठ-विजया-सेठानी | ।= |
| कयवन्ना सेठ | ॥) | अध्यात्म अनुभव-योग प्रकाश- | ४ |
| राजा प्रियंकर | ॥) | | |
| जय-विजय | ॥) | | |
| कलावती | ॥) | स्याद्वादनुभवरत्नाकर | २ |

मिलनेका पत्ता—पंडित काशीनाथ जैन ।

२०१ हरिसन रोड (तीनतल्ला) कलकत्ता ।